प्रतिमा विज्ञान

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय
ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
द्वारा प्रकाशित

प्रतिमा-विज्ञान

[वैष्णव पुराणों के आधार पर]

डॉ० इन्दुमती मिश्र
एम०ए०, पीएच० डी०, डी० लिट्०

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्रतिमा-विज्ञान

प्रकाशक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

प्रथम संस्करण
१९७२

पुस्तकालय संस्करण मूल्य : १५ रुपये
साधारण संस्करण मूल्य : १३ रुपये

मुद्रक
नरेन्द्र तिवारी, नईदुनिया प्रेस,
केशरबाग रोड,
इन्दौर-२

प्रस्तावना

भारत में देवपूजा के प्रारम्भ का काल अविज्ञात है। देव-मूर्तियों या अर्चाओं का निर्माण कब से प्रारम्भ हुआ इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में यहाँ देवों की मूर्तियाँ ढाली जाती थीं। मौर्य राजाओं के समय में तो राज्य-स्तर पर देव प्रतिमाओं का निर्माण एवं विक्रय भी प्रचलित हो गया था और इस कारण अनेक प्रजा-जन मौर्य राजाओं को नीची दृष्टि से देखते थे। ब्राह्मणों और कल्प-सूत्रों के विवादग्रस्त स्थलों को छोड़ भी दें तो भी पाणिनि और उनके भाष्यकार पतञ्जलि में जो सन्दर्भ देव प्रतिमाओं के सम्बन्ध में मिलते हैं वे प्रतिमा-पूजन की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

प्राचीन भारत में देव-मंदिर प्रासाद कहलाते थे। इनमें से किसी-किसी में कई देवताओं की मूर्तियाँ एक साथ प्रतिष्ठित की जाती थीं। उदाहरणार्थ इन्द्र, विष्णु और कुबेर तथा बलराम और श्रीकृष्ण की मूर्तियों के त्रिक और युग्म पर्याप्त लोकप्रिय थे। यही बात शिव, स्कन्द और विशाख के त्रिक के विषय में कही जा सकती है। इतना होने पर भी भारत के प्राचीन मन्दिरों अथवा खुदाई से प्राप्त अवशेषों में जो देव मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे प्रायः गुप्त युग या उसके बाद की ही हैं। शुङ्ग काल भी मूर्तिकला की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध जान पड़ता है। यद्यपि इस काल की कलाकृतियों में वह सौष्ठव एवं संस्कार नहीं पाया जाता जो आगे चलकर गुप्त युग में दिखाई पड़ता है। गुप्त युग में जो वैविध्य एवं कला-सौष्ठव मिलता है वह किसी दीर्घकालीन अनवरत प्रयास की पृष्ठभूमि की ओर सङ्केत करता है।

ग्रीस भी मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत समृद्ध रहा है। किन्तु दोनों प्रदेशों की मूर्तिकला में बड़ा अन्तर रहा है। ग्रीक दृष्टि समुचित अङ्ग विन्यास, अङ्ग सौष्ठव एवं बाह्य प्रसाधन की ओर अधिक रही है। वहाँ का निर्माता कलाकार और चिन्तक दोनों एक साथ हैं किन्तु भारत की स्थिति सर्वथा भिन्न है। यहाँ कल्पना और चिन्तन मनीषी कवि की देन है और प्रतिमा या मूर्ति का निर्माण तक्षक या कलाकार का काम है। मूर्ति चतुर्भुज होगी या अष्टभुज यह बतलाना विद्वान् विचारकों का कर्त्तव्य रहा है और उसे कार्यरूप देना कलाकार का। भारत की कला प्रतीकात्मक है। चाहे जगन्नाथ की मूर्ति हो या बुद्ध की या महावीर की बाह्य सौन्दर्य की दृष्टि से किसी में कोई वैशिष्ट्य नहीं मिलेगा। कलाकार जिस बात की ओर भक्त का

ध्यान आकृष्ट करना चाहता है वही बात सम्बन्धित मूर्ति में प्रमुखता से दिखाई पड़ेगी। यक्षिणियों का भारी भरकम शरीर, विशाल नितम्ब और सघन अलङ्कार उनके सुविधा सम्पन्न विलासी जीवन के प्रतीक हैं। इसी प्रकार सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती आदि के दीर्घअनुपात में उभरे वर्तुल वक्षोज उनके मातृत्व के प्रतीक हैं। प्रतीकात्मकता भारतीय प्रतिमा विज्ञान का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। पूजा की वस्तु होने के कारण प्रतिमाओं का आकार-प्रकार अङ्ग–विन्यास, रूप और सज्जा, सब कुछ निर्विवाद व्यक्तित्व के विचक्षण वर्ग द्वारा निर्देशित और नियन्त्रित होता था।

पुराण युग को हम प्रतिमा–युग भी कह सकते हैं। इस काल में शैव, वैष्णव, शाक्त आदि वर्गों के देवी देवताओं की अलग-अलग श्रेणियाँ बन गयी थीं जिनमें एक-एक परिवार के अनेक देवता प्रतिष्ठित हो चुके थे और प्रतिमाओं के निर्माण का एक तन्त्र बन गया था।

डा० इन्दुमती मिश्र का प्रस्तुत ग्रन्थ 'वैष्णव पुराणों में प्रतिमा विज्ञान' उनसे सम्बन्धित देवी–देवताओं की प्रतिमाओं का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत करता है। डा० इन्दुमती जी ने बड़े मनोयोग पूर्वक इस विषय पर गम्भीर चिन्तन किया है और उपलब्ध सामग्री के आधार पर पुराणों में प्राप्त सङ्केतों का विश्लेषण करने की चेष्टा की है। उन्होंने अपने वक्तव्यों को आवश्यक उद्धरणों से पुष्ट किया है जिससे उनका ग्रन्थ न केवल ज्ञान वर्धक और मनोरंजक अपितु इस विषय में खोज करने वालों के लिए अत्यन्त प्रामाणिक भी बन पड़ा है।

मेरा विश्वास है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व के विद्यार्थियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रभुदयालु अग्निहोत्री

(डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री)
संचालक
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका

इतिहास (रामायण–महाभारत) एवं पुराण भारत के सांस्कृतिक विकास के अध्ययन के प्रमुख स्रोत हैं। उक्त ग्रन्थ प्राचीन भारतीय जीवन के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हैं। इनका स्थान वैदिक एवं लौकिक साहित्य के मध्य आता है। इनमें उपलब्ध साहित्य विविध विषयों विशेषतः धर्म, दर्शन आदि के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए साधन प्रस्तुत करता है।

इतिहास–पुराण को पञ्चमवेद के रूप में स्वीकार किया गया है। अतएव रामायण-महाभारत की भाँति पुराणों का महत्त्व वैदिक साहित्य के बाद स्वीकार किया गया है। धर्म और दर्शन के इतिहास के अध्ययन के लिए पुराणों का विशेष महत्त्व है।

हिन्दू प्रतिमा-विज्ञान वस्तुतः भारतीय धार्मिक जीवन के आधार पर ही विकसित हुआ। प्राचीन भारतीयों के जीवन का दृष्टिकोण धार्मिक होने के साथ-साथ संस्कृति के अन्य पक्षों को भी प्रभावित करता रहा। अतः प्रतिमा-विज्ञान इस देश के व्यापक सांस्कृतिक इतिहास की ही एक शाखा है।

यद्यपि पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् विविध दृष्टिकोणों से पुराणों का अध्ययन करते रहे हैं, किन्तु पुराणों में उपलब्ध प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी सामग्री का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया। पार्जिटर महोदय ने पुराणों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन कर सबका ध्यान पुराणों के ऐतिहासिक महत्त्व की ओर आकृष्ट किया। किरफिल महोदय ने पुराणों की घटनाओं को दो भागों में विभक्त कर उनके मुख्य तत्त्वों का विवेचन किया। पुसाल्कर, रेप्सन, विण्टरनीज़ आदि विद्वानों ने भाषा की दृष्टि से पुराणों का अध्ययन किया। मेयर महोदय ने विधि अथवा कानून की दृष्टि से पुराणों का अध्ययन कर स्मृतियों को पुराणों का मुख्य स्रोत बतलाया है और हाज़रा महोदय ने पुराणों के विभिन्न तत्त्वों का अवलोकन कर उस पर आधारित रीति-रिवाजों एवं धर्मों पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार जी० सी० बोस महोदय ने पुराणों के क्रम पर तथा कोल्हटकर महोदय ने श्रीमद्भागवत पुराण के धर्म और दर्शन को लेकर गम्भीर अध्ययन किया। दीक्षितार महोदय ने पौराणिक किंवदन्तियों को अपने अध्ययन का आधार बनाया और मत्स्य पुराण में चित्रित राजनीति एवं वास्तुकला का विवेचन किया। एच० सी० राय चौधरी, हरदत्त शर्मा, ई० रोज, वी० स्मिथ, भण्डारकर, जायसवाल आदि विद्वानों ने धर्म, दर्शन एवं

ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाकर पुराणों का विवेचन किया किन्तु पूर्णतः प्रतिमा-विज्ञान किसी विद्वान् का विषय नहीं रहा। फर्गुसन, हैवेल, कुमारस्वामी आदि विद्वानों ने पुरातत्त्व विज्ञान के आधार पर प्रतिमा विज्ञान के तथ्यों की खोज अवश्य की है। इसके लिए उक्त विद्वानों ने शिलालेखों, प्राचीन सिक्कों एवं मुद्राओं का भी आधार लिया है।

इस क्षेत्र में गोपीनाथ राव महोदय का नाम चिरस्मरणीय है। उक्त विद्वान् ने पुराणों, आगमों तथा अन्य वास्तुशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का आधार लेते हुए प्रतिमा-विज्ञान का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण अन्वेषण अपने ग्रन्थ में किया है। इसी प्रकार डॉ० जे० एन० बैनर्जी महोदय ने उपर्युक्त सभी आधारों का आश्रय लेकर एक वैज्ञानिक एवं महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। डॉ० ग्रुण्डवेल, गांगोली, भट्टाचार्य, फूचर, एस० क्रेम्रिश आदि का भी इस कला के क्षेत्र में सराहनीय प्रयास रहा है। डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने शिल्प ग्रन्थों के आधार पर प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तत्वों का अनुसन्धान किया है। विद्वानों के उक्त सभी ग्रन्थ लेखिका के प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

प्रतिमोपासना के सूत्र भारत में वैदिक काल के पूर्व से प्राप्त होते हैं। वैदिक मन्त्रों द्वारा प्रकल्पित दैवी शक्ति के विविध रूपों में ही प्रतिमा विज्ञान का बीजारोपण होता है। प्राचीन महर्षियों के उन कल्पनात्मक चित्रों को साकार रूप देने के लिए कलाकार एवं शिल्पी की आवश्यकता थी। फलतः दैवी अनुभूति के आधार पर प्राचीन महर्षियों ने कालान्तर में शिल्प शास्त्रों का प्रणयन किया। प्रतिमा पूजा का हिन्दू धर्म में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जन साधारण में प्रतिमा का उपयोग तो होता ही था, साथ ही साथ योगी, ज्ञानी एवं ध्यानी भी ध्यान एवं मनन के हेतु प्रतिमा का आधार लेते थे। महर्षि पतञ्जलि का 'योगानुशासनम्' इस तथ्य का प्रमाण है। वैदिक धर्म, कर्मकाण्ड-बहुल एवं हिंसा समन्वित होने के कारण मानव समाज को आकृष्ट करने में सक्षम सिद्ध हो रहा था। इसके साथ ही उपनिषदों के रहस्यात्मक एवं गूढ़ सिद्धान्त भी साधारण जनता की पहुँच के बाहर थे अतः धार्मिक आन्दोलन स्वाभाविक ही था। ऐसे समय में वैदिक धर्म की रक्षा के लिए एक ठोस प्रयास की आवश्यकता थी। भगवान् व्यासदेव ने जन साधारण की भाषा में पुराणों की रचना करके वैदिक धर्म को सर्वजनग्राह्य एवं जनप्रिय बनाने का अथक प्रयास किया। पुराणों का मुख्य विषय अवतारवाद था। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की प्रमुख देवों में गणना की गयी, यहाँ तक कि भगवान् बुद्ध को भी विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया। भगवान् व्यास की इस समन्वयवाद की भावना से देश पर पौराणिक धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा। मन्दिरों एवं तीर्थों का अधिकांशतः निर्माण

होने लगा और देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की स्थापना में भी वृद्धि हो गयी। यद्यपि पुराणों में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के महत्त्व को दर्शाया गया है, किन्तु विष्णु का जनता पर अधिक प्रभाव पड़ा और अन्य सम्प्रदायों के साथ-साथ वैष्णव धर्म सर्वप्रिय बन गया।

जिस प्रकार भारत के उत्तरी भू भाग—उत्तरापथ अथवा आर्यावर्त में पुराणों का व्यापक प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार आगमों द्वारा प्रतिपादित भगवान् शिव की उपासना का प्रभाव दक्षिण भू-भाग पर पड़ा। फलतः दक्षिण भारत शैव धर्म का गढ़ बन गया। साथ ही तान्त्रिक ग्रन्थों में शक्ति की उपासना पर बल दिया गया। अतः धार्मिक साहित्य की तीन शाखाएँ प्रस्फुटित हुईं—पुराण, आगम तथा तन्त्र। इन्हीं के आधार पर वैष्णव, शैव तथा शाक्त धर्मों का उदय हुआ। इन धर्मों के अपने पृथक् कर्म-काण्ड तथा पृथक् दार्शनिक विचारधाराएँ थीं। इन्हीं प्रमुख स्रोतों से प्रतिमोपासना का विकास हुआ और प्रतिमाओं का निर्माण कलात्मक रूप में होने लगा। शनैः शनैः इन प्रतिमाओं का प्रभाव इतना बढ़ता गया कि योगी, सन्यासी एवं बड़े-बड़े दार्शनिकों ने भी इसका आश्रय लिया, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म में भी प्रतिमोपासना को प्रोत्साहन मिला।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, पुराणों में यद्यपि अनेक देवी-देवताओं का वर्णन हुआ है, किन्तु विष्णु सम्बन्धी भावनाओं एवं विचारों का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। पुराणों ने भगवान् विष्णु के दशावतारों को लेकर उनके विविध रूप प्रस्तुत किये। उनके अवतारों के नाम के आधार पर अनेक पुराणों का नामकरण भी हुआ। पुराणों के अनेक संस्करण हुए और कालान्तर में समय की परिस्थितियों के अनुसार मूल पुराणों में संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुए। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के अनुयायियों ने अपने-अपने विचारों एवं दृष्टिकोणों से उनमें यथेष्ट परिवर्तन किये जिससे पुराणों का मूलरूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों ने शैव उपासना सम्बन्धी तत्वों को उनमें स्थान दिया और शाक्तों ने शक्ति की उपासना एवं महत्त्व प्रदर्शित किया। ब्राह्म उपासकों ने ब्रह्मा को तथा वैष्णवों ने विष्णु के महत्त्व का यशोगान किया। इस प्रकार इन विभिन्न सम्प्रदायों के आधार पर पुराणों का वर्गीकरण एवं विभाजन किया जाने लगा। इसी से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए अध्ययन करते समय जो सबसे बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई वह थी वैष्णव पुराणों का चयन एवं निर्धारण। वैसे तो विष्णु के दशावतारों के नाम पर जिन पुराणों का नामकरण किया गया है साधारणतः वे सभी पुराण वैष्णव पुराणों के अन्तर्गत माने जाने चाहिए। सम्भव है कि मूल पुराण इसी आधार पर रचे भी गये हों, किन्तु कालान्तर में अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के अनुयायियों द्वारा अपने-अपने दृष्टिकोण से जो इन पुराणों का अध्ययन किया गया उससे इसमें बहुत कुछ परिवर्तन हुए और पुराणों के नामकरण के आधार

पर उनका विभाजन भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध होने लगा। इस कारण भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में परस्पर मतवैषम्य हो गया। उक्त सभी विद्वानों के मतों का संग्रह करते हुए, पुराणों के वर्तमान रूप का अध्ययन करके, उन्हीं के आधार पर अपने दृष्टिकोण से वैष्णव धर्म की मान्यता को स्वीकार करते हुए लेखिका ने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में वैष्णव पुराणों का निर्धारण किया है। यही उक्त प्रबन्ध का प्रथम परिच्छेद है।

प्रतिमा-विज्ञान का ज्ञान करने के लिए प्रतिमा के लक्षण, द्रव्य, भेद तथा उसके विकास के विषय में भी ज्ञान अपेक्षित है। इन्हीं विषयों का विवेचन द्वितीय तथा तृतीय परिच्छेदों में हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, पुराणों के प्रमुख आराध्य देव हैं। अतः त्रिमूर्ति का विवेचन ही चतुर्थ परिच्छेद का विषय है। यह परिच्छेद ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीनों भागों में विभक्त है। त्रिमूर्ति के विवेचन के पश्चात् ब्रह्मा के विविध रूपों एवं वैष्णव पुराणों के आधार पर निर्मित प्रतिमाओं का वर्णन हुआ है। विष्णु के अन्तर्गत चतुर्व्यूह, उनकी चौबीस मूर्तियों, भुजा, वस्त्र, आभूषण, वाहन, देवी लक्ष्मी, विष्णु के अवतार एवं विशिष्ट रूपों का वर्णन हुआ है। देवी लक्ष्मी के साथ-साथ उनके अन्य सभी रूपों का भी चित्रण किया गया है। कालान्तर में वैष्णव-पुराणों के आधार पर बनी हुई विष्णु की अनेक प्रतिमाओं का स्पष्टीकरण भी यथास्थान हुआ है। शिव के विभिन्न रूपों एवं उनकी वैष्णव पुराणों के अनुसार बनी प्रतिमाओं का वर्णन शिव शीर्षक परिच्छेद के अन्तर्गत हुआ है।

सौर-सम्प्रदाय के आराध्य देव सूर्य हैं। इनकी उपासना आदित्य-सूर्य तथा नवग्रह-सूर्य इन दो रूपों में होती रही है। विदेशी प्रभाव के कारण सूर्य का भारतीय रूप कुछ-कुछ विदेशी हो गया। अतः उनकी उदीच्य तथा दक्षिण वेशभूषा के अनुसार दो प्रकार के रूप हो गये। दोनों ही रूपों का एवं प्राप्त प्रतिमाओं का विवेचन सूर्य के अन्तर्गत हुआ है। इसी के साथ नवग्रहों के रूप, आकृति आदि का भी वर्णन है। सूर्य तथा नवग्रह पञ्चम परिच्छेद के वर्ण्य विषय हैं। पुराण काल में इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि आदि वैदिक देवों का महत्त्व, बढ़ते हुए वैष्णव धर्म के समक्ष कम हो गया। उन्हें केवल लोकपालों के रूप में स्वीकार किया गया। विष्णु एवं कृष्ण के समक्ष इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवों ने अपने को हेय मानकर उनकी पूजा की। इन्हीं अष्टदिक्पालों का वर्णन षष्ठ परिच्छेद में हुआ है।

देवों के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी विभूतियाँ हैं, जो देवता तो नहीं हैं किन्तु हिन्दूधर्म में देवों के समान ही पूजी जाती रही हैं। उन्हें व्यन्तर देवता कहा गया। इनमें यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा, नाग, साध्य, बालखिल्य आदि की गणना हुई है। यही व्यन्तर देव सप्तम परिच्छेद के वर्ण्य विषय हैं। इस प्रकार मूल पुराणों के उपलब्ध वर्तमान संस्करणों का अध्ययन करके लेखिका ने प्रतिमा-विज्ञान के प्रमुख आचार्यों एवं

विद्वानों के सिद्धान्तों के आधार पर अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

उक्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पुराणों में प्राप्त देवी-देवताओं के स्वरूपों एवं कथानकों को शिल्पियों एवं कलाकारों ने प्रतिमाओं के रूप में ढाल कर पौराणिक धर्म के विकास में विशेष योगदान दिया। इस प्रकार पुराणों का प्रतिमा-विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी सम्बन्ध को प्रदर्शित करना इस शोध-प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय-चयन से लेकर पूर्णाहुति तक निरन्तर श्रद्धेय गुरुवर डॉ० रामकुमार दीक्षित, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग तथा अधिष्ठाता कला सङ्काय, लखनऊ विश्वविद्यालय से जो प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला है उसके अभाव में उक्त अध्ययन सम्भव ही न था। विश्वविद्यालय के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी श्रद्धेय गुरुवर ने प्रबन्ध का आद्योपान्त अध्ययन करते हुए अपने अमूल्य सुझावों से जो निर्देशन एवं मार्ग प्रदर्शन किया है, उसके लिए लेखिका उनके समक्ष नतमस्तक है।

—लेखिका

प्रथम परिच्छेद

पुराण एवं वैष्णव पुराण

भारतीय साहित्य के ज्ञान के लिए वेदों के बाद दूसरा अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत इतिहास-पुराण के रूप में प्राप्त होता है।

पुराणों की प्राचीनता

पुराणों का उल्लेख अथर्ववेद,[१] शतपथ ब्राह्मण,[२] गोपथ ब्राह्मण,[३] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण,[४] बृहदारण्यक उपनिषद्,[५] छांदोग्य उपनिषद्,[६] तैत्तिरीय आरण्यक,[७] साख्यायन-स्रोत सूत्र[८] तथा गौतम धर्म-सूत्र,[९] में हुआ है। अथर्व संहिता का कथन है कि यज्ञ के उच्छिष्ट में से यजुर्वेद के साथ ही ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए।[१०] शतपथ ब्राह्मण तो पुराण को ही वेद मानता है।[११] जिस प्रकार गीले इंधन में अग्नि लगने से धुआँ निकलता है उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, आंगिरस अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या धनुर्वेदादि, उपनिषद्, श्लोक सूत्र, मन्त्र विवरण तथा अर्थवाद ये सब उसी महद्भूत परमात्मा के ही निःश्वास हैं--

"स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येव वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसइतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि ।।[१२]

---

१. अथर्व० ७।७।२४ और १५।६।४.
२. शत० ब्रा० ११।५।६।८.
३. गो० ब्रा० १।१०.
४. जै० उ० ब्रा० १।५३.
५. बृह० उ० २।४।१०, ४।१।२.
६. छांदो० उ० ३।४।१, २, ७।१।२।४.
७. तैत्ति० आर० २।९.
८. सांख्या० श्रौ० सू० १६।२।२७.
९. गौ० ध० सू० ८।६ तथा ११।९.
१०. ऋचः सामानि छंदांसि पुराणं यजुषा सह—अथर्व० ७१।७।२४.
११. ...पुराणं वेदः सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षते—शत० ब्रा० १३।४।३।१३.
१२. शतपथ ब्रा० १३।४।३।१३.

यह ईश्वरीय ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजी को प्राप्त हुआ। सर्वज्ञ ब्रह्माजी ने इतिहास और पुराण रूप पाँचवें वेद को अपने मुखों से प्रकट किया।[1] मत्स्य पुराण तो समस्त शास्त्रों के पूर्व पुराणों को ब्रह्मा के मुख से निसृत हुआ बतलाता है।[2] ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम निकले हुए पुराणों को नित्य पुण्यदायी तथा कोटि विस्तार वाला बतलाया गया है।[3] पार्जिटर महोदय का कथन है कि पुराण प्राचीन तथा मध्यकालीन हिन्दुत्व, धर्म, दर्शन, इतिहास, समाज, राजनीति का ज्ञान कराने वाला आदर्श एवं प्रचलित कोश है।[4]

इतिहास और पुराण

पुराण के साथ-साथ इतिहास का भी नाम चलता रहा है, किन्तु इतिहास और पुराण के अर्थों में कुछ भिन्नता है। ऐतरेय ब्राह्मण पर लिखे हुए अपने भाष्य में सायण ने यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वेदों में देवासुर आदि के युद्ध का वर्णन इतिहास है और जगत् की प्रथमावस्था से लेकर सृष्टि की प्रक्रिया को पुराण कहा जाता है।[5] वृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में श्री शंङ्कराचार्य ने उर्वशी तथा पुरुरवा आदि के संवाद स्वरूप ब्राह्मण भाग को इतिहास तथा सृष्टि प्रकरण को पुराण बतलाया है।[6] यही दोनों पाँचवें वेद के रूप में स्वीकार किये गये हैं।[7] पुराण शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए सायण कहते हैं कि जगत् की प्रारम्भिक अवस्था में सर्ग सम्बन्धी वाक्य पुराण कहलाता है।[8] वायु पुराण के अनुसार प्राचीन काल से ही प्रमाणित होने के कारण पुराण शब्द की सार्थकता है।[9] पुराण का अर्थ प्राचीन अथवा पुराना है।

---

१. इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।श्रीमद्भा० ३।१२।३९.
२. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदा अस्य विनिर्गताः ।।मत्स्य पु० ५३।३.
३. नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।। मत्स्य पु० ३।२.
४. पार्जिटर—इन० रे० ए० १० पृ० ४४८.
५. ऐतरेय ब्रा० भाष्य ५।१।४।७.
६. इतिहास इत्युर्वशीपुरुरवसोः संवादादिरुर्वशीह्यप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव, पुराणमसद्वा इदमग्रं आसीदित्यादि ।। वृहदा० भाष्य २।४।१०.
७. इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद इष्यते ।।
. . . .
इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति —छान्दोग्य ७।१।२.
८. इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादि प्रतिपादकं जगतः प्रागवस्थामनुप्रकम्य सर्ग प्रतिपादकं वाक्यं जातं पुराणम् ।। ऋग्वेद भा० भू० पृ० ४८.
९. यस्मात्पुराह्यनितीदं पुरामं तेन हि स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य वो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।। वायु पु० १।२०३.

अतः प्राचीन घटनाओं को भी पण्डितजन पुराण कहते हैं ।[१] यह तो पुराण का अत्यन्त संकुचित अर्थ है । वैसे तो पुराण का अर्थ बड़ा व्यापक एवं विस्तृत है। अमरकोश[२] तथा अनेक पुराणों में पुराण के लक्षण इस प्रकार दिये हुये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।[३]

विष्णु पुराण में भी यही लक्षण है किन्तु अन्तिम पंक्ति कुछ भिन्न है ।[४]

सर्ग का तात्पर्य सृष्टि-विज्ञान से है । प्रति सर्ग के अन्तर्गत सृष्टि का विस्तार, लय और पुनः सृष्टि का वर्णन है। वंश में देवों की वंशावली है। मन्वन्तर में मनु के काल-विभाग का वर्णन है अर्थात् किस मनु का अधिकार किस समय तक रहा और उनके समय में कौन-सी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं । वंशानुचरित में सभी सूर्यवंशीय तथा चन्द्रवंशीय राजाओं के वंश का वर्णन है । पुराण के उपर्युक्त लक्षणों का मूल स्रोत आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि है। पुराणों की रचना करने में व्यास ने इन्हीं सबका आश्रय लिया ऐसा प्रसङ्ग विष्णु,[५] वायु[६] तथा ब्रह्माण्ड[७] पुराण में प्राप्त होता है। अतः ये सभी विशेषताएँ पुराणों के लक्षण को स्पष्ट करती हैं।

वर्तमान काल में उपलब्ध बहुत-से पुराणों में या तो यह पाँचों लक्षण नहीं प्राप्त होते या कुछ लक्षणों का वर्णन नहीं हुआ है। उनके स्थान पर धार्मिक तथा सामाजिक विषयों की ओर अधिक ध्यान दिया गया है । कुछ पुराणों में पाँचों लक्षणों का वर्णन यदि हुआ भी है तो उसके साथ ही साथ कुछ अध्यायों में सामाजिक रीति-रिवाज तथा देवों के महत्त्व का वर्णन हुआ है । अतः पुराणों को इस पञ्च लक्षण की सीमा में बाँध देना उचित नहीं । पुराणों में तो स्वयं ही कहा गया है कि पाँच लक्षण तो उपपुराणों के लिए उपयुक्त हैं । महापुराणों में तो दस लक्षणों का होना आवश्यक है ।[८] यह दस लक्षण विश्वसर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश,

---

१. पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।। मत्स्य० ५३।६३.
२. अमरकोश १।६।५.
३. ब्रह्मवैवर्त पुराण १३१।६.
४. वंशानुचरितं चैव भवतोगदितं मया—विष्णु पु० ६।८।२.
५. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।। विष्णु पु० ३।६।१५.
६. वायु० ६०।२१.
७. ब्रह्माण्ड० २।३४।२१ गाथाभिः कल्पज्योक्तिभिः ।।
८. सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तीरक्षान्तराणि च ।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ।।
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया ।। श्रीमद्भा० १२।७।९–१०.

वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु (अति) और अपाश्रय हैं। श्रीमद्भागवत ने स्पष्ट कर दिया है कि कुछ आचार्य पुराणों में जो पाँच लक्षण मानते हैं उनका भी विचार ठीक है, क्योंकि महापुराणों में दस लक्षण होते हैं और पुराणों में पाँच।[1] मत्स्य पुराण इन दस लक्षणों की सीमा में पुराणों को नहीं सीमित करना चाहता। उसका कथन है कि इन लक्षणों के साथ ही साथ पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र आदि देवों का गुणगान, सृष्टि की स्थिति तथा लय एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के विषय का भी वर्णन करते हैं।[2]

वेदों की भाँति पुराण भी परम्परा द्वारा प्राप्त हुए हैं। अतः जो पुराण आजकल उपलब्ध हैं वे मूल पुराण नहीं हैं। वे अनेक परम्पराओं द्वारा इस रूप में प्राप्त हुए हैं। विष्णु पुराण का कथन है कि प्रत्येक द्वापर में भगवान विष्णु व्यास रूप में अवतीर्ण होते हैं और संसार के कल्याण के लिए एक वेद के अनेक भेद करते हैं।[3] यह विभाग मनुष्यों के वल, वीर्य और तेज को अल्प जानकर प्राणियों के हित के लिए किया जाता है।[4] शास्त्र के अनुसार सृष्टि के समय की गणना करने पर यह जो वर्तमान कल्प चल रहा है वह वराह कल्प नाम से विख्यात है। इस कल्प के छः मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं और अट्ठाइसवें कलियुग का समय है। पुराणों में भी यह प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि द्वापर युग में व्यासदेव उत्पन्न होकर अव्यवस्थित एवं विश्रृङ्खल शास्त्रों को सुव्यवस्थित कर उनका संकलन करते हैं। यह संकलन क्रमबद्ध होता है और यही पुराण हैं।[5] वराहकल्प में २८ द्वापर युग हो चुके हैं। अतः अब जो पुराण उपलब्ध हैं उनका अट्ठाइसवीं बार सम्पादन एवं संकलन हुआ है। सभी का हर बार

---

१. श्रीमद्भा० पु० १२।७।९–३०.

२. ब्रह्मविष्णुवर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्रकीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्॥
म० पु० ५३।६६–६७.

३. द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने।
वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः॥ वि० पु० ३।३।५.

४. वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च।
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान्करोति सः॥ वि० पु० ३।३।६.

५. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
व्यास रूपं विभुं कृत्वा संहरेत् स युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
शिव पु० रेवा० महा० १।२३।३१-३२.

व्यास द्वारा सम्पादन एवं संकलन हुआ है।[1] इस प्रकार अब तक २८ व्यास हो चुके हैं। ये व्यास क्रमशः ब्रह्मा, प्रजापति, शुक्राचार्य, बृहस्पति, सूर्य, मृत्यु, इन्द्र, वशिष्ठ सारस्वत, त्रिधामा, त्रिशिख, भरद्वाज, अन्तरिक्ष, वर्णी, त्रय्यारुण, धनञ्जय, ऋतुञ्जय, जय, भरद्वाज, गौतम, हर्यात्मा, वाजश्रवा, तृणबिन्दु, ऋक्ष, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण तथा कृष्णद्वैपायन हैं। अट्ठाइसवें व्यास का नाम कृष्णद्वैपायन है। ये २८ पुरातन व्यास हैं।[2] आगामी द्वापर में द्रोणपुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे।[3] अतः स्पष्ट है कि व्यास किसी विशिष्ट व्यक्ति का नाम नहीं है, वरन् द्वापर में होने वाले व्यक्ति विशेष की पदवी एवं उपाधि है। प्रत्येक द्वापर में व्यास ही उपाधि रहती है। नामों की भिन्नता से विभिन्न व्यास हुए, जिनके द्वारा पुराण संकलित हुए। 'पुराणवर्म' ग्रन्थ में प्राप्त प्रसङ्ग से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

"व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं होता, प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करते हैं। व्यास किसी का नाम नहीं वरन् पदवी है। गोलवृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है उसका नाम व्यास है। उसी प्रकार वेद वृत्त में जो सीधा निकल जाय उसका नाम वेद व्यास होता है। जितने व्यास हुए हैं, वे वेद और पुराण तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं"।[4] इस उक्ति में ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही सन्देह हो किन्तु इससे पुराणों की प्राचीनता एवं सुदीर्घ परम्परा का निश्चित ज्ञान हो जाता है।

वेद का अर्थ अत्यन्त विस्तृत था। उसे ज्यों का त्यों स्मरण किया जाना असम्भव था। इतने सुदीर्घ समय में वह अनेक बार भुला दिया गया, और साथ ही साथ उसके कुछ अंश भी अज्ञात हो गये। फिर भी हमारे प्राचीन ऋषि-गण बार-बार मन्त्रों का ध्यान करके, मन्त्र के अर्थ की व्याख्या कर उस लुप्तप्राय ज्ञान को प्रकट करते रहे। यही कारण है कि एक ही मन्त्र के विभिन्न मन्त्रदृष्टा हो गये। द्वापर युग में वेद व्यास कृष्णद्वैपायन ने जब देखा कि ऋषियों की वाणी अत्यन्त अव्यवस्थित, उलझी हुई तथा विस्मृत हो गई है, उस समय उन्होंने उस सम्पूर्ण ज्ञान का संकलन कर उसे महाभारत तथा पुराणों के रूप में प्रस्तुत कर दिया। अतः उपलब्ध शास्त्र, संहिताएँ तथा पुराणों का क्रमबद्ध संकलन महर्षि कृष्णद्वैपायन वेद व्यास द्वारा हुआ। लोकपालों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मा ने पराशर के अंश से सत्यवती में जन्म

---

१. देवी भागवत पु० १।३८।२८.
अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदो व्यस्तो महर्षिभिः।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्द्वापरेषु पुनः पुनः ।। विष्णु ३।३।९.
२. विष्णु पु० ३।३।११-२०—अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ।।
३. "भविष्ये द्वापरे चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति" वि० पु० ३।३।२१.
४. युक्ति विशारद कालूरामजी शास्त्री प्र० संस्करण पृ० १३४.

लेकर व्यासदेव के रूप में यह कार्य किया।[१] शिव पुराण में भी इन्हीं को पुराणों का वक्ता स्वीकार किया गया है।[२]

पुराणों में ऋषियों एवं शास्त्रों के अनेक अंश उसी रूप में ज्यों के त्यों रख लिये गये हैं। अतः ऐसा स्पष्ट होता है कि पुराणों के वर्णन, उपदेश तथा घटनाएँ तो अनादि हैं किन्तु उनकी रचना, संकलनकर्ता एवं वक्ता कृष्ण-द्वैपायन व्यास ही हैं।[३] इन पुराणों की रचना द्वारा वेदव्यास ने स्त्री, शूद्र तथा द्विजाति के लिए अज्ञात ज्ञान को उन सबके लिए स्पष्ट कर दिया।[४]

वेद में इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, मनुष्य समाज, पशु जातियाँ, देववर्ग, सृष्टि प्रक्रिया, जो कुछ विश्व में हो चुका है, हो रहा है तथा होगा, यह सब वर्णित है। वेदों के उसी रेखा चित्र में पुराणों ने रङ्ग भर कर उसे विस्तृत, व्यापक एवं सुन्दर बना दिया। वेदों में तो अपरिवर्तनीय इतिहास है परन्तु पुराणों में कल्प भेद से जो परिवर्तन होते हैं उनका भी स्पष्ट वर्णन कर दिया गया है।

पुराणों की संख्या

पुराणों की संख्या भी बड़े विवाद का विषय है। विष्णु पुराण में पुराणों के लिए ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है—

पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम्।।[५]

यहाँ पर पुलस्त्य मैत्रेय को पुराण संहिता ध्यानपूर्वक सुनने का आदेश देते हैं। मत्स्य पुराण "पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ"[६] कहकर एक ही पुराण को स्वीकार करता है। महाभारत[७] में वायु के द्वारा कहे हुए एक पुराण का उल्लेख हुआ है। जैक्सन[८] आदि विद्वान् मत्स्यपुराण के इस मत का अनुमोदन करते हैं और उन्हें एक

---

१. अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ।।
पराशरात् सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः।
अवतीर्णो महाभाग . . . . . . ।। श्रीमद्भा० १२।६।४८–४९.

२. शिवपुराण रेवा माहात्म्य खंड १।२३।२८.

३. अष्टादशपुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः।। शिव पु० रे० म० ख० १।२३।३०।

४. स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।।
कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह।। श्रीमद्भा० १।५।२५.

५. वि० पु० १।१।३०.

६. म० पु० ५३।४.

७. महा० व० प० ३।१९१।१६.

८. ज० आ० बो० ब्रा० रो० ए० सो० बम्बई पृष्ठ ६७-७७.

ही पुराण का अस्तित्व मान्य है। वायुपुराण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि ब्रह्मा ने वेदों से पूर्व पुराणों का स्मरण किया और उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व सूत को प्रदान किया। ये सूत पवित्र अन्तःकरण वाले ब्राह्मण थे और ब्राह्मण स्त्री तथा क्षत्रिय पुरुष के संसर्ग से उत्पन्न होने वाले सूत से भिन्न थे।[1] दीक्षितार,[2] पार्जिटर,[3] रैप्सन,[4] विण्टरनीज़[5] आदि विद्वान् भी सूत को पुराण परम्परा का रक्षक मानते हैं।

उपर्युक्त सभी प्रसङ्ग एक पुराण संहिता की ओर संकेत करते हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी में एक से अधिक पुराण प्रचलित थे। इस विषय में अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक,[6] मनुस्मृति[7] तथा याज्ञवल्क्य स्मृति[8] में पुराण शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[9] में भविष्यत् पुराण का एक प्रसङ्ग प्राप्त होता है। इसके आधार पर पार्जिटर महोदय का कथन है कि पुराण शब्द इतना विस्तृत एवं व्यापक हो गया था कि उसने अपना मूल अर्थ खो दिया। इसी से यह शब्द एक विशिष्ट वर्ग के ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त होने लगा। विभिन्न ग्रन्थों के वर्ण्य-विषय की भिन्नता एवं परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिए अनेक ग्रन्थ पुराण नाम से प्रसिद्ध हो गये। एक दूसरे से विभिन्नता रखने के लिए उनके विभिन्न नाम रख दिये गये।[10] भिन्नता का कारण कुछ भी हो किन्तु यह स्पष्ट है कि आपस्तम्ब के समय के पूर्व एक से अधिक पुराण विद्यमान थे।

विष्णु पुराण के एक अन्य स्थल पर यह उल्लेख हुआ है कि व्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के सहित पुराण संहिता की रचना की और उस संहिता का अध्ययन उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सूत रोमहर्षण (लोमहर्षण) को

---

१. वायु पु० ३३।३५; ६२।१४७।
२. दीक्षितार– इ० हि० क्वा० वा० ८ पृ० ७५९.
३. पार्जिटर– ए० इ० हि० ट्रै०, पृ० १५-१८.
४. रैप्सन– कै० हि० आ० इ०, पृ० २९७.
५. विण्टरनीज़– हि० इ० लि०, पृ० २९७.
६. इतिहासपुराणानि.......।। तैत्ति० आ० २।९.
७. स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे......पुराणानि खिलानि च ।।
मनु० स्मृ० ३।२३२.
८. एतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ।। याज्ञ० स्मृ० ३।१८९.
९. आ० ध० सू० २।२४।५-६.
१०. पार्जिटर– ए० इ० हि० ट्रै०, पृ० ५०-५१.

कराया ।[१] रोमहर्षण के सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि––ये छः शिष्य थे । इनमें से काश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, सावर्णि और शांसपायन ने रोमहर्षण की संहिता के आधार पर एक एक संहिता की रचना की । इन तीनों संहिताओं की गणना रोमहर्षण की संहिता के बाद ही होने लगी ।[२] इस प्रकार चार मूल संहिताएँ कही गई हैं और इन्हीं चारों के आधार पर विष्णु संहिता अथवा विष्णु पुराण की रचना हुई––

चतुष्टयेन भेदेन संहितानामिदं मुने ।।[३]

इन चारों संहिताओं में से अब कोई भी संहिता उपलब्ध नहीं है ।

बी० सी० मजूमदार महोदय[४] का कथन है कि भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के अनुसार प्रत्येक वैदिक शाखा का अपना अलग-अलग पुराण था । वे अग्नि, वायु तथा सूर्य से सम्बद्ध पुराणों को क्रमशः ऋक्, यजुष् और साम से सम्बद्ध बताते हैं । वायु पुराण के मूलभाग के आधार पर हरप्रसाद शास्त्री महोदय ने पुराणों की संख्या दस बतलाई है । उनका विचार है कि विष्णु पुराण में जो पुराणों की चार संख्या बताई गई है वही क्रमशः बढ़कर दस हो गई, जिसमें रोमहर्षण की संहिता, उसके छः भाग तथा उनके तीन शिष्यों द्वारा रची हुई तीन संहिताएँ सम्मिलित हैं । इसके साथ ही साथ शास्त्री महोदय ने यह भी कहा है कि पुराणों की १८ संख्या तो अन्तिम स्थिति है ।[५] यही संख्या सभी को मान्य है ।

देवी भागवत पुराण में कहा गया है कि इन उपलब्ध पुराणों से पूर्व २७ बार विभिन्न व्यासों ने पुराणों को कहा––

अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च ।
पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे ।।[६]

यहाँ पर भी पुराण संहिता का एकवचन में प्रयोग न होकर बहुवचन में हुआ है ।

---

१. आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत्सूतो व रोमहर्षणः ।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामतिः ।। वि० पु० ३।६।१५-१६.
२. वि० पु० ३।६।१७-१९.
३. वि० पु० ३।६।१९.
४. स० आ० मु० सि० जु० क० वा० २, पृ० १३.
५. शास्त्री––डे० कैं० सं० मै० खण्ड ५, भूमिका, पृ० ८४-८९.
६. देवी भा० पु० १।३।२४.

पुराण संख्या में १८ हैं क्योंकि पुराणों की अष्टादश संख्या प्रसिद्ध है। विष्णु-पुराण में १८ महापुराणों के नामों का भी उल्लेख हुआ है।[1] इससे स्पष्ट है कि इस समय की वर्तमान पुराणों की व्यवस्था उस समय विद्यमान थी। विष्णु पुराण के अतिरिक्त मार्कण्डेय पुराण में भी १८ पुराण कहे गये हैं।[2] शिव पुराण में कहा गया है कि अनादि अपौरुषेय ज्ञान को १८ भागों में विभक्त करके इस पृथ्वी पर प्रकाशित किया गया—"तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रभाषते"।[3] पद्मपुराण भी इसी मत से सहमत है।[4]

पुराण ज्ञान के भण्डार हैं। सभी पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन है, परन्तु सब की सृष्टि प्रक्रिया भिन्न है, यद्यपि उसमें बहुत से अंश एक दूसरे पुराण से मिलते हैं। सभी के वर्ण्य-विषय में विभिन्नता आ जाने से विभिन्न नाम हो गये और उसी के आधार पर अटारह पुराणों की रचना हुई। विष्णु पुराण का कथन है कि महापुराण १८ हैं, इसके अतिरिक्त अन्य ऋषियों ने जो पुराणों की रचना की वे उपपुराण हैं—

महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।
तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च ॥[5]

इनमें सभी में सृष्टि, प्रलय, देववंश, मन्वन्तर तथा भिन्न-भिन्न राजाओं के चरित्रों का वर्णन हुआ है।[6]

पुराणों की विषय सामग्री में समानता होने के कारण पुराण एक दूसरे से बहुत अंश में मिलने लगे। कई पुराणों में तो श्लोक भी एक से मिलते थे। अतः इस पुनरुक्ति दोष को हटाने के लिए रोमहर्षण सूत ने इस प्रकार के मिलते-जुलते दो पुराणों में से एक को छोड़कर दूसरे को ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् उनके पुत्र उग्रश्रवा ने उन पुराणों में भी जो समान वर्ण्य-विषय एवं समान श्लोक वाले पुराण थे उनमें से एक को छोड़कर दूसरे पुराण को ग्रहण कर लिया अतएव पूर्व के कुछ नाम

---

१. वि० पु० ३।६।२१-२४.
२. मार्कण्डेय पु० १३७।१५-१६.
३. शिव पु० रेवा माहात्म्य खण्ड १।२३।३१.
४. पद्म पु० सृष्टि खण्ड १।५१-५२.
५. वि० पु० ३।६।२४-२५.
६. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत् ॥ वि० पु० ३।६।२६.

छूट जाने तथा कुछ नाम बढ़ जाने से पुराणों के १८ निर्धारित नामों में भिन्नता आ गई। पुराणों के नामों की गणना में भिन्नता के दो आधार हो सकते हैं—

१. वर्ण्य-विषय तथा

२. व्यक्ति विशेष का दृष्टिकोण।

विष्णु पुराण की सूची में ब्रह्म, पद्म, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, ब्रह्माण्ड ये अठारह महापुराण हैं।[१] इन पुराणों के नामों में शिव पुराण की भी गणना हुई है। अठारह पुराणों के यही नाम पद्म,[२] ब्रह्मवैवर्त,[३] भविष्यत्,[४] श्रीमद्भागवत्,[५] मार्कण्डेय,[६] लिङ्ग,[७] शिव,[८] तथा स्कंद[९] आदि पुराण भी स्वीकार करते हैं।

कुछ पुराण शिव पुराण की अष्टादश पुराणों में गणना नहीं करते। इन पुराणों में देवी भागवत्[१०] नारद[११] तथा वायु पुराण[१२] हैं। ये सब पुराण शिव पुराण के स्थान पर वायु पुराण को अठारह पुराणों के अन्तर्गत बतलाते हैं। पुसालकर महोदय भी इन पुराणों के मत से सहमत हैं। वे शिवपुराण की गणना महापुराण के अन्तर्गत नहीं करते।[१३]

मत्स्य पुराण स्वयं भी वायु के द्वारा कही हुई वायवीय संहिता का वर्णन करता है। इस पुराण की रचना श्वेतकल्प में हुई और यह रुद्र के महत्त्व से पूर्ण है। इसमें चौबीस हजार श्लोक हैं—

---

१. वि० पु० ३।६।२१-२५.
२. पद्म पु० ५।११५, १।६२।२.
३. ब्रह्म वै० पु० १३१।११-२१.
४. भविष्यत् पु० ९।१-५.
५. श्रीमद्भा० पु० १२।७।२२-२४.
६. मार्कण्डेय पु० १३७।८.
७. लिङ्ग पु० १।३९।६१.
८. शिव पु० ७।१.
९. स्कन्द पु० १।४, ३३-३४.
१०. देवी भागवत् १।३.
११. नारद पु० १।९२.
१२. वायु पु० ४।१०४.
१३. ज० आ० दि यू० आ० ब० १० वाँ पृ० १४८-१५५

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
तत्र तद्वायवीयंस्यात् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशतिसहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।।[1]

स्कन्द पुराण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि जो चौथा पुराण वायु द्वारा कहा गया है, वही वायवीय के नाम से प्रसिद्ध है । सम्पूर्ण पुराण में शिव की भक्ति का वर्णन होने के कारण इसे शिवपुराण भी कहते हैं। इसमें २४००० श्लोक हैं ।[2] नारद[3] तथा अग्निपुराण[4] इसी मत से सहमत हैं । महाभारत[5] भी वायु द्वारा कहे हुए एक पुराण का उल्लेख करता है । हरिवंश[6] वायु को प्रमाण मानता है । बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित[7] में लिखा है कि अपने जन्मस्थान में उन्होंने वायु नाम के पुराण का अध्ययन किया था । अल्बेरूनी[8] ने भारतवर्ष का वर्णन करते समय वायु पुराण का उल्लेख किया है ।

इस प्रकार ये सभी प्रसङ्ग वायु पुराण की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं, किन्तु फिर भी इस पुराण के विषय में कभी-कभी सन्देह हो जाता है। इसका यही कारण हो सकता है कि अधिकांश पुराणों में वर्णित अठारह पुराणों की सूची में वायवीय पुराण के लिए "शिव" अथवा "शैव" नाम प्रयुक्त हुआ है ।[9] शिव पुराण की वायवीय संहिता अत्यन्त विस्तृत है । इसी के आधार पर शिव पुराण तथा वायु पुराण एक माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त वायु पुराण में भी शिव के विषय में वर्णन हुआ है । शिव और वायु को एक ही पुराण मानने का यह भी कारण है । किन्तु यह धारणा निर्मूल है, क्योंकि जो उद्धरण वायु पुराण अथवा वायवीय पुराण से लिये गये हैं, उनमें से अधिकांश वर्तमान समय में प्राप्त वायु पुराण में मिल जाते हैं, शिव पुराण में नहीं । इसके अतिरिक्त जो अंश शिव पुराण से ग्रहण किये गये

---

१. मत्स्य पु० ५३।१७.
२. चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमितिस्मृतम्
शिवभक्तिसमायोगाच्छैव तच्चापराख्यया ।।
चतुर्विंशति संख्यातं सहस्राणि तु शौनक ।
स्कन्द पु० रेवाखण्ड १।३३–३४.
३. नारद पु० १।९५
४. चतुर्दश सहस्राणि वायवीयं.. ..अग्नि २७२।४–५.
५. वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणम् । महा० वन० ३।१८७।५७.
६. हरिवंश पु० १।७।१३, २५.
७. पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ–"हर्ष चरित" ३।१५.
८. अल्बेरूनीज़ इण्डिया पृ० ४१–४२.
९. विष्णु ३।६।२१, भागवत १२।७।२३, कूर्म १।१।१३,
पद्म १।६२।२, वराह ११२।६९.

हैं उनके कुछ अंश उपलब्ध शिव पुराण में प्राप्त हो जाते हैं किन्तु वायु पुराण में नहीं प्राप्त होते । इससे स्पष्ट है कि शिव तथा वायु पुराण दो भिन्न पुराण हैं, जिनमें से कुछ पुराण शिव को मानते हैं, कुछ वायु को । पद्म[१], ब्रह्मवैवर्त[२], भविष्यत्[३] भागवत[४], मार्कण्डेय[५], लिङ्ग[६], विष्णु[७], शिव[८], तथा स्कन्द[९]—ये ९ पुराण शिव पुराण को १८ पुराणों में गिनते हैं और वायु को नहीं मानते। देवी भागवत,[१०] नारद,[११] मत्स्य,[१२] वायु,[१३]—ये चार पुराण वायु पुराण की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं । परन्तु पार्जिटर महोदय का मत कुछ इनसे भिन्न है क्योंकि वे महापुराणों के अन्तर्गत वायु तथा शिव दोनों को स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार पुराणों की संख्या १९ हो जाती है।[१४] फर्कुहर महोदय ने तो हरिवंश की भी गणना पुराणों में की है ।[१५]

शिव तथा वायु पुराण की भाँति अन्य पुराणों की गणना में भी अनेक मत-भेद हैं। मार्कण्डेय पुराण में जो १८ पुराणों की संख्या दी हुई है उसमें पूर्णतः विष्णु पुराण में कहे हुए पुराणों की गणना की गई है।[१६] कूर्म पुराण पुराणों की संख्या में वृद्धि कर देता है। १८ पुराणों के स्थान पर वह १९ पुराणों की गणना कर लेता है, किन्तु दो पुराणों में सृष्टिवाद की प्रक्रिया समान होने से दोनों पुराणों को एक ही मानकर १८ पुराणों की संख्या स्वीकार करता है।[१७] देवी भागवत पुराण तो श्रीमद्भागवत पुराण को १८ पुराणों में से निकालकर देवी भागवत की

---

१. पद्म ५।११५.
२. ब्र० वै० ४।१३१.
३. भविष्य० १।१.
४. भागवत १२।७।२४.
५. मार्कण्डेय १३४।९.
६. लिङ्ग १३९।११.
७. विष्णु ३।६।२२.
८. शिव ७।१.
९. स्कन्द १।४.
१०. दे० भा० १।३.
११. नारद १।९२.
१२. मत्स्य ५३।१८.
१३. वायु ४।१०४.
१४. इन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स १० वाँ, पृ० ४४८.
१५. जे० एन० फर्कुहर–आउटलाइन आफ दि रेलिजस लिट्रेचर आफ इण्डिया पृ० १३९.
१६. मार्कण्डेय १३४।८–११.
१७. कूर्म १।१५–१६.

गणना कर लेता है। परन्तु यह स्वतन्त्र मत है। यह शाक्त पुराण है और इस पुराण को मानने वाले देवी के उपासक थे। अतः शाक्त धर्म की प्रधानता प्रदर्शित करने के हेतु उन्होंने ऐसा किया होगा। कुछ विद्वानों की धारणा यह भी है कि यह कालिका पुराण है। इसमें भगवती के उद्भव का वर्णन है इसीसे यह भागवत के नाम से प्रसिद्ध है[1], किन्तु यह धारणा निर्मूल प्रतीत होती है। सम्भवतः यह निर्णय नाम के साम्य पर ही किया गया है। इसका उल्लेख श्रीमद्भागवत पुराण के अन्तर्गत किया जायगा। कुछ भी हो यह स्पष्ट है कि यदि श्रीमद्भागवत को अष्टादश पुराणों की तालिका से हटा दिया गया तो पुराण साहित्य में रह ही क्या जायगा। इस प्रकार १८ पुराणों के नामों के विषय में निम्न प्रकार से मत वैषम्य हैं—

१. वे पुराण जो शिवपुराण को मानते हैं।

२. वे पुराण जो शिव को न मानकर वायु को मानते हैं।

३. वे पुराण जो लिङ्ग को न मानकर नृसिंह को मानते हैं।

४. वे पुराण जो श्रीमद्भागवत को नहीं मानते।

पुराण एक समय की रचना तो है नहीं। सभी पुराण विभिन्न समय में रचे गये। इन १८ पुराणों की तालिका में विभिन्नता के आधार वर्ण्य-विषय, साम्प्रदायिकता एवं धर्म हैं। अतएव विष्णु पुराण में दी हुई १८ पुराणों की सूची ही मान्य होनी चाहिए क्योंकि वही अधिक स्पष्ट एवं उचित है।

पुराणों के भेद

पुराण अपने लक्षणों के अनुसार दो प्रकार के हैं—महापुराण तथा उपपुराण। इस विषय में विभिन्न पुराणों के भिन्न-भिन्न मत हैं। विष्णु पुराण में ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, श्रीमद्भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ तथा ब्रह्माण्ड इन अठारह पुराणों को 'महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने' शब्दों के द्वारा महापुराण स्वीकार किया गया है। इन पुराणों के अतिरिक्त ऋषियों द्वारा रचे हुए अन्य पुराण उपपुराण माने गये हैं।[2] श्रीमद्भागवत का इस विषय में भिन्न मत है। वह भी विष्णुपुराण के द्वारा कहे हुए १८ पुराणों को ही मानता है, किन्तु इन्हीं १८ पुराणों में से "मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च"[3] कहकर महापुराण और उपपुराण स्वीकार करता

१. हाजरा—पु० रि० हि० रा० क० पृ० ५२.
२. वि० पु० ३।६।२१–२४
३. श्रीमद्भागवत १२।७।२२.

है। इसके अनुसार इन पुराणों के अतिरिक्त उपपुराण नहीं हैं। डा० आर० सी० हाजरा महोदय ने अपने ग्रन्थ में जिन १८ पुराणों का उल्लेख किया है, उसमें उन्होंने शिवपुराण को न मानकर वायु पुराण को माना है।[१] उन अठारह पुराणों को ही महापुराण तथा उपपुराण इन दो भागों में विभक्त किया है। महापुराण के अन्तर्गत मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, श्रीमद्‌भागवत तथा कूर्म इन सात पुराणों की गणना की है।[२] वामन, लिङ्ग, वराह, पद्म, नारद, गरुड़, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, भविष्यत्, स्कन्द तथा अग्नि इन ग्यारह पुराणों को उपपुराण माना है।[३] अपने इस विभाजन में हाजरा महोदय ने सम्भवतः लक्षणों का ही आधार लिया है। श्रीमद्‌भागवत की पञ्चलक्षणपूर्ण पुराणों तथा दसलक्षणपूर्ण महापुराणों की व्यवस्था उन्हें भी मान्य थी।

अष्टादश पुराणों का वर्गीकरण

पुराणों के वर्गीकरण के लिए निम्नलिखित आधार मान्य हो सकते हैं—

१. वर्ण्य-विषय का आधार,

२. देवों का आधार तथा

३. गुणों का आधार।

वर्ण्य-विषय का आधार

यदि पुराणों के वर्ण्य-विषय पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि पुराण अनेक वर्ण्य-विषयों के भण्डार हैं, यथा-धर्म, इतिहास, साहित्य, नीति, आश्रम-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, तीर्थव्रत, वंशपरिचय आदि। इसी विचार से महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने वर्ण्य-विषय के आधार पर पुराणों को छः भागों में विभक्त किया है—

१. **साहित्यिक पुराण**—इसमें गरुड़, नारद तथा अग्नि पुराण आते हैं। ये तीनों पुराण साहित्य के कोष माने जाते हैं। कला, विज्ञान तथा संस्कृत साहित्य सम्बन्धी सभी सुन्दर एवं उत्कृष्ट उदाहरण इनमें प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही साथ पौराणिक विषय, औषधि, व्याकरण, नाट्यकला, संगीत, नक्षत्रविज्ञान तथा ज्योतिष आदि का भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

---

१. हाजरा–पु० रि० हि० रा० क० पृ० १३.
२. वही पृ० ८–७५.
३. वही पृ० ७६–१७३.

२. **तीर्थ सम्बन्धी पुराण**--पद्म, स्कन्द तथा भविष्यत् पुराण ऐसे पुराण हैं जिनमें अन्य विषयों के साथ-साथ तीर्थों एवं व्रतों का इतना सविस्तार वर्णन हुआ है कि उनका मूलरूप ही लुप्त हो गया। इन पुराणों का मुख्य उद्देश्य तीर्थों एवं पवित्र स्थानों के माहात्म्य को प्रदर्शित करना है।

३. **परिवर्धित पुराण**--कुछ पुराण ऐसे हैं जिनके आगे तथा पीछे का भाग बढ़ाया गया है। इन पुराणों का मूल बीच में स्थित है। इनमें ब्रह्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण आते हैं।

४. **ऐतिहासिक पुराण**--ब्रह्माण्ड तथा लुप्त हुए वायु पुराण की गणना इन्हीं ऐतिहासिक पुराणों के अन्तर्गत होती है। हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि दूसरे भाग का कुछ अंश एक पाण्डुलिपि में प्राप्त हुआ है तथा शेष वायु पुराण लुप्त हो गया है। वर्तमान वायु पुराण ब्रह्माण्ड पुराण में मिल गया है।[1] इस पुराण में सृष्टि का आदि से अन्त तक पूर्ण इतिहास वर्णित है। सृष्टि के साथ ही साथ सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं के वंश एवं चरित्र का विस्तार से उल्लेख हुआ है। सृष्टि का अंश तो पुराण के कुछ अध्यायों तक ही सीमित है, परन्तु राजवंशों का इतिहास आरम्भ से अन्त तक बिखरा पड़ा है।

५. **साम्प्रदायिक पुराण**--इस विभाजन के अन्तर्गत विष्णु, श्रीमद्भागवत, लिङ्ग, वामन, मार्कण्डेय पुराणों की गणना हुई है। लिङ्ग पुराण शिव की लिङ्गपूजा का मुख्यतः वर्णन करता है। हरप्रसाद शास्त्री के मतानुसार वामन पुराण शैव सम्प्रदाय का विस्तृत चित्रण करता है।[2] मार्कण्डेय पुराण देवी की उपासना से सम्बद्ध है। विष्णु तथा भागवत पुराण विष्णु का यशोगान करते हैं। वामन पुराण के विषय में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का भिन्न मत है। वे वामन पुराण को शैव न मानकर वैष्णव पुराण स्वीकार करते हैं और साथ ही साथ यह भी बतलाते हैं कि वामन पुराण का मूल रूप जो लुप्त हो गया है वह वैष्णव था।[3]

६. **संशोधित पुराण**—कुछ पुराने पुराण फिर से ठीक कर लिखे गये। इन पुराणों का संशोधित रूप मूल रूप से बिलकुल परिवर्तित हो गया। इनके अन्तर्गत वराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण आते हैं। यद्यपि ये सभी पुराण विष्णु के अवतारों का वर्णन करते हैं फिर भी वराह पुराण मूल वराह का आधा है, मत्स्य मूल मत्स्य पुराण का एक तिहाई भाग है और कूर्म मूल कूर्म पुराण का आठवाँ भाग रह गया है। अतः मूल के विषय में ज्ञात करना अत्यन्त कठिन है।[4]

---

१. ज० आ० बि० ए० उ० रि० सौ० पटना, १४, पृष्ठ ३३७.
२. वही पृष्ठ ३३३.
३. अग्रवाल, वा० श०—वामन पुराण—एक अध्ययन पृ० ३.
४. ज० आ० बि० ए० उ० रि० सो० पटना, १४, पृष्ठ ३३७.

देवों के आधार पर विभाजन

देवों के आधार पर पुराणों को निम्नलिखित भागो में विभक्त किया जा सकता है–

१. विशिष्ट देव-तत्त्व पूर्ण
२. साम्प्रदायिक

पुराणों का प्रमुख अङ्ग देवोपासना है। वैदिक काल में जिन देवों का सूक्ष्म रूप से वर्णन हुआ है, पुराणों में वही रूप विकसित होकर बड़े पैमाने में दिखाई पड़ता है। पूर्व के देवता विशेष, अनेकानेक उपाख्यानों में रूपान्तरित और परिवर्धित हो गये हैं, जैसे–वेदों में विष्णु सूर्य के रूप में पूजे गये हैं किन्तु पुराणों में सूर्य एक स्वतन्त्र देवता माने गये हैं।[1] वेदों में विष्णु का पृथक् रूप से कोई महत्व नहीं, किन्तु पुराण विष्णु को सर्वप्रमुख देवता मानते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति तथा गणेश आदि देवों के अनेक प्रसङ्ग पुराणों में भरे पड़े हैं। मत्स्य पुराण का कथन है कि सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षणों वाले पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा सूर्य आदि देवों का माहात्म्य वर्णित है।[2] वर्ण्य-विषय के अतिरिक्त सभी पुराणों पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ब्रह्म, शिव, विष्णु, भागवत, वराह, कूर्म आदि पुराणों के नामों से ही स्पष्ट होता है कि इन पर ब्राह्म, शैव तथा वैष्णव आदि सम्प्रदायों का प्रभाव है। विचार करने पर पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि सभी पुराण किसी न किसी सम्प्रदाय के विशिष्ट ग्रन्थ हैं। यद्यपि अनेक सम्प्रदाय पुराणों के पूर्व से ही सूत्ररूप में विद्यमान थे किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः इन्हें विशेष महत्त्व इसी समय से प्राप्त हुआ। पुराणों में स्वयं ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि एक ही पुराण संहिता अठारह भागों में विभक्त होकर १८ पुराणों के रूप में प्रकाशित हो गयी।[3]

सभी पुराण विभिन्न देव-तत्त्व से भरे हैं। प्रायः सभी पुराणों में देवों के माहात्म्य एवं अवतारों का वर्णन हुआ है। किसी पुराण में शिव के माहात्म्य का प्रदर्शन है तो किसी पुराण में भगवान् विष्णु के अनेक रूपों एवं अवतारों का वर्णन हुआ है। कोई पुराण स्कन्द के यश का गान करता है तो कोई सूर्य के माहात्म्य को प्रकट करता

---

१. ऋ० वे० १०।१६५।४.
२. ब्रह्मा विष्णवर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके ॥ म० पु० ५६।६६।७.
३. तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ म० पु ५३।१०.

है। कोई पुराण आदि शक्ति के गुणगान में ही अपनी सार्थकता मानता है। इस प्रकार धार्मिक विषय में पुराणों का बड़ा ही उदार दृष्टिकोण रहा है। वे कट्टरता एवं साम्प्रदायिक वैमनस्य का विरोध करते हैं। वे सदा मुक्तकण्ठ से यही आदेश देते रहे हैं कि कोई व्यक्ति किसी के इष्टदेव एवं उपासना पद्धति को बुरा न कहे। वायु पुराण इस विषय पर विशेष बल देता है।[१] सभी उपासना के क्षेत्र में अपनी रुचि के अनुसार स्वतन्त्र हैं।[२]

तामिल ग्रन्थों के आधार पर दीक्षितार[३] महोदय ने ब्रह्मा, सूर्य, अग्नि, शिव तथा विष्णु इन देवों के आधार पर पुराणों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है जो निम्नलिखित हैं——

१. ब्रह्मा——ब्रह्म तथा पद्म

२. सूर्य——ब्रह्मवैवर्त

३. अग्नि——अग्नि

४. शिव——शिव, स्कन्द, लिङ्ग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय और ब्रह्माण्ड

५. विष्णु——नारद, भागवत, गरुड़ और विष्णु।

शास्त्रीजी ने अपने इस विभाजन में उपासना को मुख्य आधार के रूप में ग्रहण किया है।

इस प्रकार पुराणों का अपना स्वतन्त्र एवं व्यापक दृष्टिकोण है। जो पुराण विष्णु को श्रेष्ठ मानता है वह उन्हीं को जगत् का मूल कारण स्वीकार करता है। शिव की महत्ता को स्वीकार करने वाले पुराण सम्पूर्ण जगत् को शिवमय देखते हैं। ब्रह्मा के यश का गुणगान करने वाले पुराण सब देवों में ब्रह्मा को ही श्रेष्ठ बतलाते हैं, किन्तु भावनाओं में विभिन्नता होते हुए भी कोई पुराण एक दूसरे का विरोधी नहीं है। सब देवों में एक ही आत्मा के रूप के दर्शन कर एक विशिष्ट देवता को श्रेष्ठ मानते हुए भी वे अन्य देवता का विरोध नहीं करते। उदाहरणार्थ विष्णु पुराण में भगवान् विष्णु अपनी भक्ति के साथ शिव की भी भक्ति करने का आदेश देते हैं, और शिव से द्वेष करने वाले व्यक्ति को नरकगामी बतलाते हैं।[४] इस प्रकार सभी पुराण "एकं सद्विप्राबहुधा वदन्ति"[५] तथा 'एको देव सर्वभूतेषु गूढ़: सर्वव्यापी

---

१. वायु० पु० ६६।११४.
२. कूर्म पु० २२।३९.
३. इ० हि० क्वा० कलकत्ता वा० ८ पृ० ७६६.
४. मद्‌भक्त: शङ्करद्वेषी मद्वेषी शङ्करप्रिय:।
तावुभौ नरकं यातौ यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।। वि० पु० ३।५।७.
५. काठक संहिता ४।६.

सर्वभूतान्तरात्मा"[१] के सिद्धान्त का अनुमोदन करते हैं, यद्यपि वे सभी किसी न किसी विशिष्ट देव के उपासक हैं।

गुणों के आधार पर विभाजन

गुणों के आधार पर पुराणों को तीन प्रकार का बताया गया है––

१. सात्विक पुराण, २. राजस पुराण तथा ३. तामस पुराण

इस विषय में सब पुराणों के भिन्न-भिन्न मत हैं। शैव मतानुयायी शिव से सम्बन्धित पुराणों को सात्विक बतलाकर विष्णु से सम्बन्धित वैष्णव पुराणों की निन्दा करते हैं, दूसरी ओर वैष्णव लोग वैष्णव पुराणों को सात्विक बतलाकर शैव पुराणों को तामसी पुराण बतलाते हैं। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि विद्वानों द्वारा दस शैव पुराण सात्विक माने गये हैं जो हिंसा आदि दोषों से परे हैं––

दश शैव पुराणानि सात्विकानि विदुर्बुधाः।

....

दश शैव पुराणानि हिंसादोषपराङ्मुखम्॥[२]

इन दस शैव पुराणों के साथ ही चार वैष्णव पुराणों का भी स्कन्द पुराण में उल्लेख हुआ है जिन्हें तामसी कहा गया है––

वैष्णवानि च चत्वारि तामसानि मुनीश्वराः॥[३]

इसके अतिरिक्त राजसी पुराणों का भी वर्णन हुआ है जो ब्रह्मा सम्बन्धी हैं।[४] सत्व, रजस् तथा तमस् इन तीनों गुणों के भिन्न-भिन्न लक्षण हैं। सत्वगुण जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है शुक्लवर्ण स्फटिक के समान स्वच्छ, पवित्र, ज्ञान और सुख देने वाला योगियों द्वारा बतलाया गया है।[५] स्कन्द पुराण इस गुण वाले शैव पुराणों को सत्वप्रधान ब्राह्मणों के द्वारा अध्ययन करने का आदेश देता है।[६]

उपर्युक्त दस शैव पुराणों में ब्राह्मणों की कथाएँ वर्णित हैं। महर्षि मनु ने "ब्राह्मणस्य शिवो देवो क्षत्रियस्य जनार्दनः"[७] कहकर शिव को ब्राह्मणों का तथा हरि

---

१. श्वे० उप० पृ० ११.
२. स्क० पु० के० ख० १।३।१५.
३. स्क० पु० के० ख० १।३।१७.
४. स्क० पु० के० ख० १।३।२.
५. सत्त्वं शुक्लं समादिष्टं सुखंज्ञानास्पदं तु यत्।
विद्योपदेष्टा योगिभ्यः शुद्धस्फटिकसन्निभः॥ स्क० पु० १।३।३.
६. स्क० पु० के० ख० १।३।४.
७. मनु० स्मृ० २।४८.

को क्षत्रियों का देवता माना है। ये लोग शिव को सत्व गुण प्रधान मानते हैं अतः शिव से सम्बन्धित पुराणों को भी सात्विक पुराण कहते हैं और उन्हें ब्राह्मणों के लिए उपयुक्त मानते हैं--

तस्माच्छैवानि विप्राणां पुराणानि हितानि हि ।।[१]

ईशान संहिता रुद्र में ही विश्व की सम्पूर्ण शक्ति स्वीकार करती है और उनको द्विविधि रूपों वाला बताती है।[२] शिव पुराण शिव को ही सर्वस्व, सत्य तथा पूज्य कहता है--

शिवः सर्वं शिवः सर्वं शिवः सर्वमशेषतः ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमिति वेदान्तडिण्डिमः ।।[३]

शिवगीता "भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः"[४] कहकर शिव को भुक्ति एवं मुक्ति का साधन मानती है। वायु पुराण शिव को ही सत्व, रज तथा तमोगुणयुक्त मानता है।[५] जिस प्रकार कोई छत्र, दण्ड, कुण्डलधारी व्यक्ति किसी के द्वारा छत्रधारी, किसी के द्वारा दण्डधारी और किसी के द्वारा कुण्डलधारी कहा जाता है, यद्यपि वह तीनों आभूषणों से युक्त है उसी प्रकार शिव भी सत्व, रज तथा तम पूर्ण हैं।

स्कन्द पुराण श्रौतधर्मा क्षत्रियों के लिए तमोगुण उपयुक्त बतलाता है और विष्णु को तमोगुण युक्त बतलाकर उन्हीं को तामस पुराणों का आराध्य देव मानता है। वैष्णव पुराणों में क्षत्रिय धर्म का अधिक वर्णन होने से स्कन्द पुराण उन्हें तामसी कहता है--

वैष्णवानि च चत्वारि तामसानि मुनीश्वराः ।।
क्षत्रियाणां श्रौतधर्मास्तेषु तद्देवता हरिः ।
विष्णोर्विष्णुस्ततः शेषशायी भक्तविमोहकः ।।
तेषु च क्षत्रियाणां च धर्मः विप्रैरुदाहृतः ।[६]

सम्भवतः विष्णु की शेषशायी निद्रावस्था की मूर्ति को तमोगुण वाला बतलाया गया है,

---

१. स्क० पु० के० ख० १।३।५.
२. परास्य शक्तिर्विविधा इत्यादि श्रूयते स्फुटम् ।
तत्र घोरां तनुं धृत्वा रुद्रश्चैवावतिष्ठते ।। ईशा० सं० पृ० १७.
३. शिव पु० १०५।१८.
४. शिवगीता पृ० ११.
५. वायु पु० पृ० १११।२१.
६. स्क० पु० के० ख० १।८-९.

क्योंकि निद्रा तमोगुण युक्त है। पार्जिटर[1], रैप्सन[2] तथा विण्टरनीज़[3] आदि विद्वान् भी पुराणों को क्षात्र परम्परा वाला मानते हैं। इन विद्वानों ने वैदिक साहित्य को ब्राह्मण परम्परा वाला स्वीकार किया है और पुराणों को क्षात्र परम्परा वाला मानने के लिए दो आधार प्रस्तुत किये हैं––

१. पुराणों की गाथाओं एवं धार्मिक गाथाओं के नायक अधिकांशतः क्षत्रिय राजा ही हैं।

२. पुराणों का प्रसार करने वाला सूत है जो क्षत्रिय पुरुष से उत्पन्न है। जैसा कि पूर्व में बतलाया गया है कि ये विद्वान् सूत को अब्राह्मण मानते थे। ये सभी पुराणों की क्षात्र परम्परा को तो स्वीकार करते हैं किन्तु पुराणों के राजस, तामस आदि वर्गीकरण के विषय में चुप हैं।

रजोगुण हृदय में विकार उत्पन्न करता है, मन की स्थिरता को समाप्त करता है। अस्थिरता दुःख का कारण है। इसी कारण यह गुण दुःख देनेवाला रक्त वर्ण, तथा चञ्चल कहा गया है।[4] ब्रह्मा सम्बन्धी सभी पुराण राजस हैं और वैश्यों के लिए उपयुक्त बतलाये गये हैं, क्योंकि उनमें वैश्यों के धर्म का ही निदर्शन है––

ब्राह्मे तु राजसे वैश्य सर्वे सर्वत्र सम्मते।[5]

यहाँ पर "सर्वे सर्वत्र सम्मते" पद में बड़ा बल है। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि ब्रह्मा सम्बन्धी पुराण राजसी हैं, यह सभी के द्वारा सर्वत्र मान्य हैं। इसमें कोई संशय नहीं। सन्देह केवल सात्विकी और तामसी पुराणों में है। स्कन्द पुराण तामसी तथा राजसी पुराणों को अनिष्टकारी कहकर दूर से ही त्याग देने का आदेश देता है और शैव पुराणों की श्रेष्ठता उसे मान्य है।[6]

मत्स्य पुराण स्कन्द पुराण द्वारा कथित मत का खण्डन करता है। वह इससे सहमत नहीं कि शिव सत्व प्रधान हैं और विष्णु तमोगुणयुक्त। वह विष्णु को सत्व प्रधान मानता है और वैष्णव पुराणों को सात्विक पुराण कहता है। विष्णु को प्रमुख मानने के कारण वैष्णव पुराणों को अधिक प्रधानता देता है और शैव पुराणों को तामसी कहकर उनकी निन्दा करता है। उसका कथन है कि विष्णु सम्बन्धी सात्विक पुराणों

---

१. पार्जिटर––ए० इ० हि० ट्रै० पृ० ५८-७७.
२. रैप्सन––कैं० हि० आ० इ० अ० १ पृ० २९७, ३०२.
३. विण्टरनीज़––हि० आ० इ० लि० वा० १ पृ० ३१५.
४. दुःखास्पदं रक्तवर्णं चञ्चलं रजोमतम् ।। स्क० पु० १।६.
५. स्क० पु० १।७.
६. तस्माच्छैवानि विप्राणां पुराणानि हितानि हि।
राजसं तामसंचैव दूरतः परिवर्जयेत् ।। स्क० पु० १०।१.

में श्री हरि के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। अग्नि तथा शिव का माहात्म्य तामसी पुराणों में वर्णित है--

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्याधिकं हरेः ।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।।[1]

सात्विकांश विष्णु का आराधन-पूजन सात्विक पुराणों को मानने वाले व्यक्ति करते हैं और अग्नि तथा शिव के माहात्म्य वाले तामसी पुराण कहे गये हैं।[2] मत्स्य पुराण इन दोनों प्रकार के राजसी तथा तामसी पुराणों के वर्जन का आदेश देता है--

राजसेषु च माहात्म्याधिकं ब्रह्मणो विदुः ।
....
राजसं तामसं चैव दूरतः परिवर्जयेत् ।।[3]

विष्णु पुराण विष्णु को सत्वगुण वाला बतलाकर प्रमुख देवता मानता है।[4] पुराणों के विषय में "दूरतः परिवर्जयेत्" पद यह पूर्णरूपेण स्पष्ट कर देता है कि राजसी तथा तामसी पुराण निम्नकोटि के समझे जाते थे। राजसी पुराण तो सर्वसम्मति से ब्रह्मा से सम्बन्धित कहे गय हैं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा का माहात्म्य समाज में कुछ कम होता जा रहा था। तामसी पुराणों में जो दो विभिन्न भावनाएँ हैं उनसे प्रतीत होता है कि विष्णु की प्रधानता थी और कहीं शिव का प्राधान्य था। इसी के फलस्वरूप पुराण भी वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों के प्रभाव से न वच सके। मत्स्य पुराण सात्विक, राजस और तामस इन तीन प्रकार के पुराणों के अतिरिक्त संकीर्ण नाम के चौथे प्रकार के पुराणों का उल्लेख करता है। संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितृगणों के माहात्म्य का वर्णन हुआ है--

संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाश्च निगद्यते ।।[5]

स्कन्द पुराण अठारह पुराणों में से दस पुराण शैव बतलाता है। शेष बचे हुए पुराणों में से चार ब्राह्म पुराण हैं और दो पुराणों में देवी तथा श्रीहरि के माहात्म्य का वर्णन है--

---

१. मत्स्य पु० ५३।६६-६७.
२. सात्विकैरेव वर्तेत सात्विकांशं समाचरेत् ।
....
अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु च वर्ण्यते ।। म० पु० ५३।६९:
३. मत्स्य पु० ५३।७०-७२.
४. "सत्वभृद्भगवान्विष्णुरप्रमेय पराक्रमः" वि० पु० १।२।६२.
५. मत्स्य पु० ५३।६८.

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः ।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः ।।[१]

यह दस शैव पुराण मत्स्य, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि, कूर्म, मार्कण्डेय, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त तथा वायु हैं । किन्तु जो चार ब्राह्म पुराण कहे गये हैं उन्हें स्कन्द पुराण में ही एक अन्य स्थल पर ब्राह्म न कह कर वैष्णव कहा गया है और शैव पुराण दस ही माने गये हैं—

दश शैव पुराणानि सात्विकानि विदुर्बुधाः ।।
....
वैष्णवानि च चत्वारि तामसानि मुनीश्वराः ।।[२]

पद्म पुराण का वैष्णव तथा शैव पुराणों के विषय में भिन्न मत है । वह विष्णु को सात्विक अंश वाला मानता है और विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म तथा वराह पुराणों को श्रेष्ठ सुन्दर सात्विक पुराण बतलाता है—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।।
गारुड़ञ्च तथा पद्मं वाराहं शुभदर्शने ।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ।।[३]

यह पुराण भी ब्राह्म पुराणों को राजसी तथा शैव पुराणों को तामसी बतलाता है और ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन तथा ब्रह्म पुराण को ब्राह्म[४] तथा मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्नि इन छः पुराणों को शैव पुराण बतलाकर तामसी पुराण कहता है ।[५] पद्म पुराण के अन्य संस्करणों में यही प्रसङ्ग भिन्न रूप में प्राप्त होता है, यद्यपि गणना इन्हीं छः पुराणों की हुई है –

शैवमाग्नेयकं चैव लैङ्गं स्कान्दं तथैव च ।
कौर्म्यं चैव तथा मात्स्यं तामसानि प्रचक्षते ।।[६]

---

१. स्कन्द पु० के० खं० १।२०.
२. वही १।२१.
३. पद्म पु० उ० ख० २६३।८२–८३.
४. ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ।।
पद्म पु० उ० ख० २६३।८४.
५. मात्स्यं कौर्म्यं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।
पद्म पु० उ० ख० २६३।८१.
६. पद्म पु० उ० ख० २६३।८२-८४.

मध्वाचार्य ने अपने माध्वग्रन्थ में अष्टादश पुराणों का विभाजन किया है, जो उपर्युक्त विभाजन से साम्य रखता है —

वैष्णवं नारदीयं तु तथा भागवतं शुभम् ।
गारुड़ञ्च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शनम् ।।
षडेतानि पुराणानि सात्विकानि मतानि हि ।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यद्वामनं ब्राह्म्यं राजसानि निबोध मे ।।
मात्स्यं कौर्म्यं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि मतानि मे ।।[1]

यह ग्रन्थ वैष्णव पुराणों का समर्थक है इसीलिए "तमसा नरकायैव"[2] कहकर तामस पुराणों को न पढ़ने का आदेश देकर वैष्णव पुराणों की प्रशंसा करता है। विष्णु पुराण "कलौ संकीर्त्य केशवम्"[3] कहकर कलियुग में केशव के कीर्तन को ही मुख्य मानता है। महाभारत के "जप्येनैव तु संशुद्धये ब्राह्मणो नात्र संशयः" शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण विष्णु के जप से शुद्ध हो जाता है।[4]

इस प्रकार सभी की विरोधी भावनाएँ होने के कारण कोई आधार निश्चित नहीं हो पाता। शैव पुराण शिव के उत्कर्ष को प्रदर्शित करते हैं तो वैष्णव पुराण शैव पुराणों की निन्दा करते हैं और उन्हें तामसी कहते हैं। परन्तु इन विरोधी प्रसङ्गों को देखकर भी एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि पुराणों के विषय में अद्वैतवाद भी स्वीकार किया गया है। निरुक्त में ऐसा कहा गया है कि देवता की एक ही आत्मा अनेक रूपों में पूजी जाती है और उस एक ही आत्मा से अन्य देवों के प्रत्यङ्ग बन जाते हैं।[5] अतएव देवपक्ष में बिम्ब-प्रतिबिम्ब की भावना है। जब एक देवता के उत्कर्ष को प्रदर्शित किया जाता है तो अन्य की हेयता स्पष्ट होने के कारण निन्दा हो ही जाती है। अतः पुराणों में जो एक दूसरे के प्रति विरोध है उसमें उनका कोई दोष नहीं। यह विभिन्न सम्प्रदायों के वैमनस्य से प्रभावित हुए व्यक्तियों का ही दोष है। रामदास गौड़ महोदय को यही मत मान्य है अतः वे कहते हैं कि यदि किसी अन्धे व्यक्ति को स्थाणु नहीं दिखाई देता तो यह स्थाणु का दोष न होकर अन्धे का ही दोष होता है।

---

१. माध्वग्रन्थ पृ० ७-८.
२. माध्वग्रन्थ पृ० ८.
३. विष्णु पु० १।५।७.
४. महा० शा०पु० ६८।१३.
५. महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यंङ्गानि भवन्ति ।। निरुक्त दै० खं० १।५.

स्थाणु तो अपने उसी रूप में विद्यमान हुआ सभी के लिए समान है। यह व्यक्ति का अन्धत्वरूपी अज्ञान है जो उसे नहीं देख पाता।[1] इसी प्रकार पुराणों का दृष्टिकोण तो सबके लिए बड़ा उदार एवं व्यापक है। यह तो व्यक्तियों का संकुचित एवं ईर्ष्यापूर्ण दृष्टिकोण है, जो उनके ऊपर ऐसा आरोप करते हैं। पुराण तो अद्वैत सिद्धान्त के ही प्रतिपादक हैं।

अद्वैतवाद के आधार पर सभी पुराणों का अवलोकन करने पर विदित होता है कि पुराण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के मध्य में द्वैष नहीं वरन् साम्य को ही स्पष्ट करते हैं। पुराणों में कहा गया है कि कृष्ण सनातन शिव तत्त्व को जानते हैं और शिव कृष्ण की उपासना करते हैं।[2] पूर्व काल में ब्रह्मा तथा नारायण ने रुद्र का निर्माण किया, पुनः कल्पान्तर में ब्रह्मा ने विष्णु तथा रुद्र को फिर विष्णु ने रुद्र तथा ब्रह्मा को बनाया। अतः भिन्न-भिन्न कल्पान्तरों में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर परस्पर एक दूसरे की उत्पत्ति का कारण होते हैं।[3]

इसी भिन्न-भिन्न कल्पान्तरों की भावनाओं को लेकर पुराणों का भिन्न-भिन्न समय में संकलन हुआ है। अतः विद्वान् इस विषय में मोहित नहीं होते। कहीं पर रुद्र की, कहीं पर विष्णु की तथा कहीं पर ब्रह्मा की प्रशंसा करके जो प्रधानता दिखलाई गई है उससे किसी का दोष, न्यूनता एवं आधिक्य की भावना नहीं प्रकट होती––

> तत्कल्पेनोक्त वृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः।
> तानि तानि प्रणीतानि विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥
> क्वचिद्रुद्रः क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्ब्रह्मा प्रशस्यते।
> नानेन तेषामाधिक्यं न्यूनत्वं वा कथंञ्चन॥[4]

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव एक ही शक्ति के तीन रूप हैं। समय विशेष से वही

---

१. गौड़-रामदास, हिन्दुत्व पृ० ३४८-४९.
२. कृष्ण एव विजानाति शिवतत्त्वसनातनम्।
   येन स्व नेत्रपद्मेन पूजितोऽम्बिकया सह॥
   शङ्करोऽपि सदानन्दो देवदेवं जनार्दनम्।
   निरन्तरं भजत्येव साम्ब्रः श्रीकृष्णमद्भुतम्॥
   तपसा तोषयित्वां तं पितरं परमेश्वरम्॥ वायु० ६।१०-११
३. ब्रह्मनारायणौ पूर्वरुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्॥
   कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णुजगन्मयः।
   विष्णुश्च भगवान् रुद्रं ब्रह्माणंचासृजन्पुनः।
   एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
   परस्परमांज्जायन्ते परस्परजयैषिणः॥ वायु० ६।१२-१४।
४. वायु० ६।१६-१७.

शक्ति ब्रह्मा बनकर सृष्टि को रचती है, विष्णु का रूप धारण कर विश्व का पालन करती है तथा संहार के समय वही अपना तीसरा रूप धारण करती है, जो रुद्र के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार एक देवता तत्त्व का स्पष्टीकरण होने के साथ-साथ पुराणः का उदार दृष्टिकोण भी सिद्ध हो जाता है। अब वैष्णव पुराणों पर विचार करना अत्यन्तावश्यक है। वैष्णव पुराणों में विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म और वराह यह छः पुराण माने गये हैं।

वैष्णव पुराण

विष्णु पुराण :——अठारह पुराणों के मध्य विष्णु पुराण अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। यह पूर्णतः वैष्णव पुराण है। विष्णु पुराण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि यह वैष्णव पुराण पद्म पुराण के बाद कहा गया है। इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर आदि का वर्णन होने के साथ-साथ आदि, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र भगवान् विष्णु का ही कीर्तन है——

यदेतत्तव मैत्रेय पुराणं कथ्यते मया।
एतद्वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम् ।।
सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु।
कथ्यते भगवान्विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम ।।[1]

महर्षि पराशर ने स्वयं इसे वैष्णव पुराण मानकर सम्पूर्ण शास्त्रों में श्रेष्ठ, सभी पापों को नाश करने वाला एवं पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का प्रतिपादन करने वाला कहा है——

पुराणं वैष्णवं चैतत्सर्वकिल्विषनाशनम्।
विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम् ।।[2]

हाजरा महोदय भी विष्णु पुराण को वैष्णव पुराण मानते हैं और इसका सम्बन्ध पाञ्चरात्र सम्प्रदाय से बतलाते हैं। उनका कथन है कि यह पुराण आदि से अन्त तक पूर्ण वैष्णव है।[3] वेदसम्मत इस पुराण को सुनने से सभी दोषों से उत्पन्न

---

१. वि० पु० ३।६।२६–२७.
२. वि० पु० ६।८।३.
३. हाजरा–पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० १९.

पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं।[१] अन्य पुराणों की भाँति इस पुराण में भी स्मृतियों के विषय से सम्बद्ध अनेक अध्याय हैं तथा नरक के दृश्य[२], वर्णाश्रम व्यवस्था[३], युगधर्म और कर्मविपाक[४] का बड़ा सुन्दर चित्रण है। सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, पोषण एवं प्रलय के एक मात्र कारण[५] विष्णु के यश एवं माहात्म्य का स्मरण करने से सब पाप अग्नि में गली हुई धातु के समान[६] नष्ट हो जाते हैं। सबके उपादान कारण उनके समक्ष समस्त देवता, ग्रह, नक्षत्र, पृथिवी रेणु तुल्य हैं।[७] सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप, रूपरहित विष्णु के माहात्म्य से यह पुराण भरा पड़ा है[८] और सर्वत्र उन्हीं का यशोगान है।[९]

विष्णु पुराण को सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ऋभु को सुनाया।[१०] ऋभु ने प्रियव्रत को, प्रियव्रत ने भागुरि को, भागुरि ने स्तम्भमित्र को, स्तम्भमित्र ने दधीचि को, दधीचि ने सारस्वत को, सारस्वत ने भृगु को, भृगु ने पुरुकुत्स को, पुरुकुत्स ने नर्मदा को, नर्मदा ने धृतराष्ट्र एवं पूरणनाग से कहा। इन दोनों ने यह पुराण वासुकि-नाग को सुनाया। उन्होंने अन्य नागों को सुनाया। इसी समय पाताल में गये हुए वेदशिरा को यह पुराण प्राप्त हुआ। उनसे प्रमति तथा जातुकर्ण आदि को प्राप्त हुआ। उन्होंने अन्य महर्षियों को बतलाया। पुलस्त्य के वरदान से यह पुराण पराशर को याद रह गया। उसे इन्होंने मैत्रेय को सुनाया।[११]

विष्णु पुराण में गायों तथा गोपियों के रास आदि का वर्णन श्रीमद्भागवत की अपेक्षा संक्षिप्त हुआ है। विष्णु का ही अधिक विस्तृत वर्णन है। विष्णु के काले केश से कृष्ण की उत्पत्ति बतलाई गई है।[१२] वे विष्णु के ही अंश हैं। इसका

---

१. वि० पु० ६।८।१२.
२. वि० पु० २।६ और ७ अ०.
३. वि० पु० ३।८।१६, ६।८।१६–१८.
४. वि० पु० ६।१–२.
५. वि० पु० ६।८।१४.
६. पुमान्विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥ वि० पु० ६।८।१९–२०.
७. वि० पु० ६।८।२१–२६.
८. स सर्वः सर्ववित्सर्वस्वरूपो रूपवर्जितः।
भगवान्कीर्त्तितो विष्णुरत्र पापप्रणाशनः॥ वि० पु० ६।८।२७.
९. यत्रादौ भगवांश्चराचरगुरुर्मध्ये तथान्ते च सः।
ब्रह्मज्ञानमयोच्युतोऽखिल जगन्मध्यान्तसर्गप्रभुः॥ वि० पु० ६।८।५५.
१०. इदमार्ष पुरा प्राह ऋभवेकमलोद्भवः॥ वि० पु० ६।८।४३.
११. वि० पु० ६।८।४४–४९.
१२. वि० पु० ५।१।५९–६०.

एक अध्याय सुनने से कृष्ण के दर्शन का फल प्राप्त होता है।[1] इस प्रकार विष्णु पुराण के विष्णु ही वर्ण्य-विषय, विष्णु ही प्राप्तव्य फल हैं तथा विष्णु ही आराध्य हैं।[2] दीक्षितार महोदय ने भी विष्णु पुराण को पूर्णतः वैष्णव स्वीकार किया है। उनका कथन है कि इस पुराण में कोई भी ऐसा अंश नहीं है, जो विष्णु के माहात्म्य से अछूता रहा हो।[3]

नारदीय पुराणः––नारद पुराण की भी गणना वैष्णव पुराणों में की गई है। यह पुराण दो भागों में विभक्त––पूर्वभाग तथा उत्तरभाग। पूर्वभाग में १२५ अध्याय हैं तथा उत्तर में ८२ अध्याय। पूर्वभाग ४ पदों में विभक्त है। वर्तमान समय में प्राप्त नारद पुराण वह नारद पुराण नहीं है जिसका उल्लेख मत्स्य, अग्नि तथा स्कन्द पुराण ने किया है क्योंकि इन पुराणों में जिस नारद पुराण का उल्लेख हुआ है वह नारद द्वारा ही बृहत्कल्प में कहा गया है। इसमें २५००० श्लोक हैं।[4] किन्तु वर्तमान नारद पुराण में नारद, पुराण के वक्ता न होकर श्रोता हैं और बृहत्कल्प का भी उल्लेख नहीं हुआ है। नारद पुराण को बृहन्नारदीय पुराण भी कहा जाता है। परंन्तु हरप्रसाद शास्त्री महोदय ने दोनों को पृथक् माना है और उनमें एक को मूल पुराण स्वीकार किया है। वह इस समय उपलब्ध नहीं है।[5] विण्टरनीज़ महोदय[6] तथा नगेन्द्र वसु[7] आदि विद्वान् भी शास्त्री के मत के समर्थक हैं।

पुराण के पूर्व भाग के ९० अध्याय से लेकर १०९ तक के अध्याय विशेष रूप से अवलोकनीय हैं। इन अध्यायों में ब्रह्म पुराण से लेकर ब्रह्माण्ड तक अठारहों पुराणों की विषयानुक्रमणिका दी हुई है। इसके साथ-साथ विष्णु की स्तुति, मृकण्डु मुनि की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वयं पुत्ररूप में उत्पन्न होने का भगवान् द्वारा उन्हें वरदान, विष्णु का माहात्म्य, विष्णु सेवा के प्रभाव से यज्ञमाली तथा सुमाली के द्वारा श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया जाना, भगवान् की स्तुति करने से उत्तङ्क मुनि को विष्णु पद प्राप्त होना, नृसिंह माहात्म्य, राधाकृष्ण सहस्रस्तोत्र आदि का इस खण्ड में

---

१. वि० पु० ६।८।३२–३३.
२. वि० पु० ६।८।५६–५९.
३. इ० हि० क्वा० वा० ८ पृ० ७६६.
४. यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते।। ––म० पु० ५३।२३.
५. ए० सो० आ० बं०–कलकत्ता वा० ५ पृ० ८२.
६. विण्टरनीज़–हि० इ० लि० वा० १ पृ० ५५७.
७. वसु–विश्वकोश वा० ११ पृ० ६२७.

विशेष रूप से वर्णन हुआ है। इन विषयों के अतिरिक्त अन्य देवताओं, नक्षत्रों, ग्रहों, व्रतों, तीर्थों का भी वर्णन है।

नारद पुराण के प्रारम्भ में प्रथम तथा द्वितीय श्लोक में नर, नारायण, सरस्वती देवी तथा लक्ष्मी के आनन्द निकेतन, परमानन्द स्वरूप, पुरुषोत्तम वृन्दावन-वासी भगवान् कृष्ण की स्तुति की गई है––

> नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
> देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥
> वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
> उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परमानन्दं परात्परम्॥[1]

कृष्ण को ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का स्वरूप बताकर ज्ञान स्वरूप आदि देव माना है।[2] कलियुग में केशव के कीर्तन से मुक्ति प्राप्त होती है।[3] नारद पुराण सम्पूर्ण जगत् को हरि केशव, गोविन्द तथा वासुदेवमय कहता है। ऐसी भावना रखने वाले व्यक्ति को कलियुग की बाधा नहीं व्यापती।

> हरे केशव गोविन्द वासुदेवजगन्मयः।
> इतीरयन्ति यो नित्यं न हि तान्बाधते कलिः॥[4]

केवल हरि नाम ही जीवन है वही गति है।[5] विष्णु ही अतुल तेज वाले हैं[6]। उनका चरणोदक अकालमृत्यु का हरण करने वाला, सब व्याधियों को नष्ट करने वाला तथा सब पापों का क्षय करने वाला है।[7] विष्णु ही ब्रह्मा, शिव तथा सर्वदेवमय हैं।[8]

नारद पुराण में राधा सम्प्रदाय का भी वर्णन विस्तार से हुआ है। राधा को मूल प्रकृति कहा गया है। उनके लिये निर्गुणा, सर्वाद्या, तेजमण्डल मध्यस्था, दृश्यादृश्यस्वरूपिणी आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं और उनको कृष्ण से अभिन्न

---

१. नारद पूर्व १।१.
२. ब्रह्माविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशालोकसाधकाः।
तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे॥ ना० पु० पूर्व १।३.
३. यदाप्नोति तदाप्नोति कलौसंकीर्त्य केशवम्॥ ना० पु० पूर्व ४१।९१–९२.
४. न० पु० पूर्व ४१।९९–१००.
५. हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ ना० पु० पू० ४१।११५.
६. आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः॥ ना० पु० पू० ३२।३३.
७. अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकम् शुभम्॥ ना० पु० पू० ३।१२१–२२.
८. स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥ना० पु० पू० ८१।१०७.

बतलाया गया है।[१] ये कृष्ण गोपियों के कृष्ण से भिन्न हैं और गोपियों के स्वामी कृष्ण को उत्पन्न करने वाले हैं। महालक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती तथा अन्य देवियाँ राधा की ही अंशावतार मानी गई हैं। राधा के तान्त्रिक मन्त्र तथा तान्त्रिक उपासना का वर्णन विस्तार से हुआ है।[२] इस प्रकार अन्य वर्ण्य-विषयों के साथ-साथ राधाकृष्ण के वर्णन की ही प्रधानता होने के कारण इस भाग को वैष्णव कहा जा सकता है।

नारद पुराण के दूसरे उत्तर भाग में ८२ अध्याय हैं। यह खण्ड पूर्वभाग की अपेक्षा अधिक ऐतिहासिक हो गया है। इसका प्रारम्भ मान्धाता और वशिष्ठ के वार्तालाप से होता है। महर्षि एकादशी व्रत के विषय में बताते हैं। अनेक राजाओं एवं महर्षियों की कथाओं का उल्लेख है। राजा रुक्माङ्ग तथा रानी संध्यावती, मोहनी आदि का वर्णन अनेक अध्यायों में दूर तक चला है। तत्पश्चात् ब्रह्माजी, यमराज, गंगा, गोदावरी माहात्म्य, स्नान तर्पण, शिव पूजन, गया माहात्म्य, काशी तीर्थ, शिव लिंग के दर्शन एवं पूजन का माहात्म्य, राजा इन्द्रद्युम्न का चरित्र, प्रयाग तीर्थ, माघ मकर में स्नान का फल, पुष्कर माहात्म्य, पुण्डरीकपुर, गोकर्ण, वृन्दावन एवं मथुरा के विभिन्न तीर्थों का विस्तृत वर्णन पूरे खण्ड में हुआ है। केवल ६ अध्याय विष्णुमहिमा कृष्ण महिमा, राधाकृष्ण के उत्कर्ष एवं कृष्ण के चरित पर है। पूर्णरूप से विष्णु के चरित्र एवं माहात्म्य का वर्णन न होकर थोड़े अंश में हुआ है। शिव तथा शिव से सम्बन्धी तीर्थों का १७ अध्यायों में वर्णन हुआ हैं। अतः इस खण्ड को वैष्णव न कहकर शैव कहना अधिक उचित होगा। इन सभी आधारों पर सम्पूर्ण पुराण को वैष्णव कोटि में रखा जाना अधिक उचित नहीं प्रतीत होता।

श्रीमद्भागवत पुराणः—सभी पुराणों के मध्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्रीमद्भागवत पुराण की गणना भी वैष्णव पुराणों में की जाती है। इस पुराण में कृष्ण के चरित की प्रधानता है और आदि, मध्य तथा अन्त श्री हरि की लीलाओं से पूर्ण है। सर्वत्र उसी की चर्चा है—

आदिमध्यावसानेषु ....
हरिलीलाकथावार्तामृतानन्दिसतत्सुरम् ॥[३]

यह पुराण संसार भय का नाश करने वाला, सर्व सिद्धियों का देने वाला तथा कृष्ण के सन्तोष का हेतु है। काल सर्प के मुख से रक्षा करने के लिए कलियुग में शुकदेव द्वारा श्रीमद्भागवत कहा गया।[४] कलियुग में इसे भगवान् का ही रूप

---

१. ना० पु० पू० १।८३.
२. ना० पु० पू० १।८८.
३. श्रीमद्भा० १२।१३।११.
४. कालव्यालमुखग्रासत्राणनिर्णाशहेतवे।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्॥ श्रीमद्० १।९-१०

माना गया है। इसके पढ़ने तथा सुनने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।[१] कृष्ण की अमृत के तुल्य श्रीमद्भागवत् की वार्ता देवों के लिए भी दुर्लभ है।[२] जिस दिन श्री कृष्ण इस पृथ्वी को छोड़कर गये उसी दिन से कलियुग इस पृथ्वी पर आ गया। कलियुग में पापों से त्राण केवल केशव के कीर्तन से ही हो सकता है। अतः यह पुराण ही मुक्ति का साधन है।[३] इसकी ध्वनि को सुनकर कलियुग के सब दोष सिंह से भयभीत हुए भेड़िए के समान नष्ट हो जाते हैं।[४]

भागवत पुराण में वर्णित कथा वेद और उपनिषद् के सार से उद्भूत हुई है, किन्तु फिर भी अलग होने से यह अत्यन्त उत्तम जान पड़ती है। जैसे वृक्ष के मूल के अग्रभाग में रस विद्यमान रहता है, परन्तु किसी के द्वारा आस्वादन नहीं किया जा सकता। वही रस जब पृथक् रूप से फल में प्रकट होता है तब उसका सभी आस्वादन कर सकते हैं।[५] जिस प्रकार दूध में घी रहता है परन्तु जब वह दूध से अलग निकाल लिया जाता है तब वह देवों का हव्य बन जाता है।[६] उसी प्रकार वेद तथा उपनिषद् से अलग होने पर यही भागवती कथा भक्त, ज्ञानियों एवं वैरागियों में ज्ञान एवं भक्ति की स्थापना करने के लिए प्रकाशित होकर भागवत पुराण बन गई।[७]

यह पुराण कलियुग में कृष्ण की भक्ति को ही प्रधानता देता है और वेदों, यज्ञों, ज्ञान, तप, धर्म तथा सब क्रियाओं में वासुदेव को व्याप्त हुआ बतलाता है।[८] संसार में वासुदेव के अतिरिक्त अन्य कोई भी सिद्धि नहीं है।[९] विद्वानों के मध्य तभी तक अन्य पुराण सुशोभित होते हैं जब तक यह पुराण समक्ष नहीं आता। जिस प्रकार नदियों में गङ्गा, देवों में अच्युत श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार श्रीमद्भागवत् पुराणों में श्रेष्ठ है।[१०] भागवत् पुराण में स्पष्ट रूप से यह कह दिया गया है कि यह वैष्णवों का अत्यन्त प्रिय पुराण है—

"श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियम्"[११]

---

१. मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं भागवतं कलौ ।। श्रीमद्० १।२०.
२. श्रीमद्भागवती वार्ता सुराणामपि दुर्लभाः ।। श्रीमद्० १।१५-१७.
३. ....सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ।। श्रीमद्० १।६५-६८.
४. कलेर्दोषा इमे सर्वे सिंहशब्दात् वृकाइव ।। श्रीमद्० १।७१.
५. श्रीमद्० २।६७-६८.
६. वही २।६९.
७. इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ।। श्रीमद्० २।७०-७१.
८. श्रीमद्भा० १।२।२८-२९.
९. वासुदेव परागतिः ।। श्रीमद्० १।२।३०.
१०. हाजरा–पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० ५२.
११. तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ।। श्रीमद्० १२।१३।१६-१७.

और इसमें सभी पापों को दूर करने वाले मुक्ति देने वाले नारायण हृषिकेश का सर्वत्र कीर्तन है–

अत्र संकीर्तितः साक्षात् सर्वपापहरो हरिः ।।[1]

हाजरा महोदय द्वादश स्कन्ध वाले इस पुराण को वैष्णव मानते हैं और भागवत सम्प्रदाय से सम्बन्धित बताते हैं ।[2] विण्टरनीज़ महोदय भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि विष्णु पुराण तथा हरिवंश की अपेक्षा इस पुराण में कृष्ण का चरित्र अधिक विस्तृत रूप में मिलता है ।[3] विष्णु पुराण में कृष्ण विष्णु के अवतार माने गये हैं । वे विष्णु का ही छोटा रूप हैं ।[4] किन्तु श्रीमद्भागवत के कृष्ण विष्णु के अंशावतार हैं और वे स्वयं भागवत कहे गये हैं–कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।[5] इन सब प्रसङ्गों से स्पष्ट है कि विष्णु पुराण के समान भागवत पुराण भी पूर्णतः वैष्णव है ।

इस पुराण के विषय में अनेक शङ्कापूर्ण मत प्रचलित हैं । हाजरा महोदय का कथन है कि शाक्तों ने इस पुराण को तीन प्रकार से अप्रामाणिक सिद्ध किया है–[6]

१. भागवत वैष्णवों का महापुराण नहीं है ।

२. १८ पुराणों में भागवत की गणना करने में शाक्तों को शङ्का है । उनका कथन है कि यह कालिका पुराण है, जो भगवती के जन्म एवं उत्पत्ति का वर्णन करने के कारण भागवत नाम से प्रसिद्ध हो गया है ।

३. यह भागवत पुराण न होकर देवीभागवत पुराण है ।

भागवत पुराण के विषय में उपर्युक्त सभी शङ्काएँ व्यर्थ हैं । अनेक विद्वानों ने इसे वैष्णवों का ही महापुराण माना है । नित्याचारप्रदीप ग्रन्थ में नरसिंह बाजपेयी ने लक्ष्मीधर के मत का उल्लेख करते हुए कालिका पुराण के भागवत पुराण होने की बात का खण्डन कर दिया है–

अष्टादशभ्यास्तु पृथक् पुराणं यत्तु दृश्यते ।
विजानीध्वं मुनिश्रेष्ठाः तदेतेभ्यो विनिर्गतम् ।।

---

१. श्रीमद्भा० १२।१३।१८.
२. वही १२।१२।३.
३. हाजरा–पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० ५२.
४. विण्टरनीज़–हि० इ० लि० वा० १ पृ० ५५७.
५. वि० पु० ५।१।५९-६०.
६. श्रीमद्भा० १०।२।९-१६.

विनिर्गतं समुद्भूतं यथा कालिकापुराणादीनीति लक्ष्मीधरः एवं च सति भगवत्या इदं भागवतमिति कालिकापुराणं भागवत पदेनोक्तमिति ये वदन्ति ते निरस्ताः ।।[१] बल्लालसेन, मध्वाचार्य, हेमाद्रि, गोविन्दानन्द, रघुनन्दन, गोपालभट्ट तथा अन्य विद्वानों के द्वारा जो भागवत के अंश कहे गये हैं वे यत्र-तत्र इस समय उपलब्ध भागवत पुराण में प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु कालिका पुराण एवं देवीभागवत पुराण में नहीं प्राप्त होते। भागवत पुराण में देवी भागवत के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु देवी भागवत पुराण, भागवत पुराण की गणना उपपुराणों में करता है।[२] इसके अतिरिक्त भागवत पुराण में व्यासदेव के पुत्र शुकदेव को बचपन में ही सब शास्त्रों का ज्ञान कर सन्यास आश्रम में प्रवेश किया हुआ दिखाया है किन्तु देवी भागवत का कुछ भिन्न मत है। उसमें शुकदेव संसार को त्यागने के बाद राजा जनक के पास जाते हैं। जनक उनको जीवन की सब अवस्थाएँ व्यतीत कर चुकने के बाद सन्यास में प्रवेश करने का आदेश देते हैं। उनकी आज्ञा से शुकदेव पिता के साथ रहने के लिए लौट आते हैं। ये प्रसङ्ग कुछ युक्ति सङ्गत नहीं प्रतीत होते और सभी श्रीमद्भागवत की प्रामाणिकता को सिद्ध कर देते हैं। अतः स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत ही वास्तविक वैष्णव महापुराण है।

गरुड़ पुराणः—गरुड़ पुराण भी छः कहे गये वैष्णव पुराणों में से एक माना गया है। इसको वैष्णव पुराण मानने के अनेक कारण हैं, जो गरुड़ पुराण में प्राप्त हुए प्रसङ्गों से ही स्पष्ट हो जाते हैं। यह पुराण गरुड़ नाम से प्रसिद्ध है। इसका कारण प्राप्त गरुड़ पुराण में वतलाया गया है। एक बार गरुड़ की प्रचण्ड तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने गरुड़ को पुराण संहिता का निर्माता होने का वरदान दिया——

पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्य वाचकम् ।
यदुक्तं ममस्वरूपञ्च तव चाविर्भविष्यति ।।
गारुडं तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं भविष्यति ।[३]

इसके प्रारम्भ में अन्य देवों के साथ सर्वप्रथम विष्णु की ही स्तुति की गई है।[४] विष्णु के भक्त सूत से नैमिषारण्य के ऋषियों ने नारायण की कथा सुनने का आग्रह किया।[५] इस पर सूतजी ने विष्णु की कथा का आश्रय लेने वाले गरुड़ पुराण को ऋषियों को सुनाने के लिए कहा—

---

१. नित्याचार प्रदीप पृ० १८-१९.
२. देवी भा० पु० १।३।१६.
३. ग० पु० २।५२-५३.
४. नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् ।। ग० पु० १।२.
५. नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमाः ।। ग० पु० १।२-१०.

पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णु कथाश्रयम ।[1]

इसे सर्वप्रथम गरुड़ ने कश्यप से, कश्यप से व्यास ने, व्यास से सूत ने सुना और उसी पुराण को उन्होंने ऋषियों से कहा।[2] एक अन्य स्थल पर ऋषियों ने सूत से प्रश्न किया कि विष्णु की कथा पर आश्रित गरुड़ पुराण व्यासजी ने आपसे कैसे कहा।[3]

वर्तमान समय में उपलब्ध गरुड़ पुराण वह गरुड़ पुराण नहीं है जिसका उल्लेख मत्स्य, स्कन्द तथा अग्नि पुराण में हुआ है। मत्स्य तथा स्कन्द पुराण का कथन है कि गारुड़ कल्प में कृष्ण ने गरुड़ पुराण को कहा। साथ ही गरुड़ की उत्पत्ति विश्वाण्ड से बतलायी गयी है––

यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद्गरुडोद्भवम् ।
अधिकृत्याब्रवीत्कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ॥[4]

स्कन्द पुराण में इसी प्रकार का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। केवल 'च' के स्थान पर 'वा' और 'गरुडोद्भवम्' के स्थान पर गरुडोभवम् पाठ प्राप्त होता है।[5] अग्नि पुराण का कथन है –

गारुडं चाष्टसाहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पके ।
विश्वाण्डाद्गरुडोत्पत्तिं तद्दद्याद्धेमहंसवत् ॥[6]

उपलब्ध पुराण यद्यपि विष्णु द्वारा ही कहा गया है किन्तु उसमें गारुड़ कल्प का तथा गरुड़ की विश्वाण्ड से उत्पत्ति का वर्णन नहीं हुआ है। प्राचीन गरुड़ पुराण के जो जो अंश इस प्राप्त पुराण में नहीं हैं उनका उल्लेख आनन्दतीर्थ माधव, देवणभट्ट तथा हेमाद्रि आदि विद्वानों ने किया है।[7] माधवाचार्य तथा शूलपाणि आदि का भी यही मत है कि जो गरुड़ पुराण इस समय उपलब्ध है वह मत्स्य, स्कन्द तथा अग्नि आदि पुराणों द्वारा कथित गरुड़ पुराण नहीं है।[8]

---

१. ग० पु० १।११.
२. ग० पु० १।१२-१३.
३. कथं व्यासेन कथितं पुराणं गारुडं तव ।
एतत्सर्वं समाख्याहि परं विष्णुकथाश्रयम् ॥ ग० पु० २।१.
४. मत्स्य पु० ५३।५२.
५. स्क० पु० १।२।७२.
६. अग्नि पु० २७२।२१–२२.
७. चतुर्वर्ग चिन्तामणि वा० १ पृ० २१५, ४८९–४९१.
८. वही वा० २ भा० १–पृ० ३३८–३४१, ३८६–९, ४६५–७१; भा० २–पृ० ६२–३, २२७–९ आदि ।

गरुड़ पुराण के विषय में कुछ भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण गरुड़ पुराण का अवलोकन करना आवश्यक है।

गरुड़ पुराण दो भागों में है:–पूर्वार्ध खण्ड तथा उतरार्ध खण्ड। पूर्वार्ध खण्ड में २२९ अध्याय हैं, जिसमें सृष्टि, प्रलय, वंश आदि के साथ ही साथ अनेक अन्य विषयों पर भी अध्याय हैं, जिनमें नीति, व्रत-वर्णन, ज्योतिष, तीर्थ, आयुर्वेद, कुष्ट-रोग, स्त्रीरोग, उनकी चिकित्सा, अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, व्याकरण, स्नान, तर्पण, रत्न परीक्षा, राजनीति, धातुपरीक्षा, योग, ब्रह्मज्ञान तथा रामायण, महाभारत एवं हरि-वंश की कथाओं का वर्णन हुआ है। उत्तरार्ध खण्ड में प्रेत-कल्प का वर्णन हुआ है। इसमें ३५ अध्याय हैं। सभी अध्याय मृतात्मा से सम्बन्धित हैं और यमराज का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। मृत्यु के बाद प्रेतात्मा को यमपुर जाने में किन-किन यातनाओं को भोगना पड़ता है। यमपुरी के भयङ्कर एवं विकट मार्ग में उसे कितने दुःख दिये जाते हैं, उसे कितनी पीड़ा होती है। उसकी पीड़ा के निवारण के लिए उसके सम्बन्धियों को क्या-क्या करना चाहिए। प्रेतात्मा के लिए दान-पिण्डादि कैसे दिया जाना चाहिए। इन सबका विशद् वर्णन है। इसमें यमलोक, धर्म-अधर्म, प्रेत की मुक्ति, उसके निमित्त जल कुम्भादि का दान, अनशन-व्रत आदि विषयों का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। तथा यह मान्यता है कृष्ण के नाम से ही प्रेत की मुक्ति होती है। जो व्यक्ति मायामोह-पाश में नहीं फँसता वही अन्त में सुखी होता है अन्यथा भ्रमित होता रहता है।[1] इन सब वर्ण्य-विषयों को देखकर गरुड़ पुराण को पूर्णतः वैष्णव पुराण मानना उचित नहीं। केवल आंशिक रूप में अवश्य वैष्णव माना जा सकता है क्योंकि प्रेतात्मा अथवा उसकी यातनाओं का जो वर्णन हुआ है उस भयङ्कर पाश से छूटने का एकमात्र आश्रय विष्णु तथा उनकी आराधना को ही बताया गया है। जो व्यक्ति विष्णु की आराधना करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं व्यापता है।[2] विष्णु को ही ऐसा देव कहा गया है जिनके नाम का श्रवण प्रेतात्मा को प्रेत योनि की कष्ट से मुक्ति दिला सकता है।[3] गरुड़ पुराण विष्णु को ही माता-पिता, बन्धु-बान्धव, जल-थल मानता है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण जगत् को भी वह विष्णुमय बताता है—

---

१. ग० पु० उ० खं० १।११–२५।

२. ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् ॥
ग० पु० उ० खं० ४।५१.

३. सततं श्रवणाद्विष्णोः......प्रेतभावा विमुच्यन्ते आपत्सु प्रेतयोनिषु। ग० पु० उ० ख० १२।१८.

विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः ।
यत्र विष्णु न पश्यामि तत्र मे कि प्रयोजनम् ।।
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ।।[१]

विष्णु के नाम के साथ ही साथ विष्णु के कृष्ण नाम की भी महत्ता इस पुराण में प्रदर्शित है। कृष्ण का नाम लेने से नरक से व्यक्ति का उसी प्रकार उद्धार हो जाता है जैसे जल को भेदकर कमल निकल आता है।[२] इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय भगवान् ने स्वयं ही अपने श्रीमुख से इस पुराण को वैष्णवी वाक्सुधा कहा है—

वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाप्नुयुः ।।[३]

हाजरा महोदय वर्तमान गरुड़ पुराण को वैष्णव पुराण ही स्वीकार करते हैं।[४] गरुड़ पुराण का भागवत तथा विष्णु पुराण में तार्क्ष्य, वैनतेय अथवा सुपर्ण नाम प्राप्त होता है।[५] दानसागर ग्रन्थ में जो १८ महापुराणों के नामों की सूची दी हुई है उसमें गरुड़ के स्थान पर तार्क्ष्य नाम प्रयुक्त हुआ है।[६] किन्तु गरुड़ पुराण में इन नामों का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है ।

यद्यपि गरुड़ पुराण को वैष्णव ही स्वीकार किया गया है किन्तु इसमें कुछ संशय है । इसे वैष्णव मानने के लिए सम्पूर्ण पुराण का अवलोकन करना आवश्यक होगा। पुराण वही वैष्णव कहा जा सकता है, जिसमें विष्णु के नाम, रूप, गुण, यश, अवतार, चरित, महत्त्व आदि का वर्णन हो। सम्पूर्ण उपलब्ध गरुड़ पुराण में २६४ अध्याय हैं जिनमें से २२९ अध्याय पूर्व भाग में हैं। २२९ अध्याय में से केवल १८ अध्याय विष्णु, उनके अन्य रूपों, उनकी पूजा आदि से सम्बन्धित हैं। शेष २११ अध्याय अन्य विविध विषयों से सम्बन्धित हैं । इनमें सृष्टि-रचना, सूर्यपूजा, शिवपूजा, गायत्री पूजा-माहात्म्य, सन्ध्या-विधि, दुर्गापूजा, शालग्राम लक्षण, दान, उपासना, ज्योतिष शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, रत्न-वज्र मुक्ता, मणि आदि की परीक्षा, गया माहात्म्य, वर्णाश्रम-धर्म, नीतिशास्त्र, व्रतादि, आयुर्वेद, विविध रोग तथा उनकी चिकित्सा,

---

१. ग० पु० उ० ख० २०।३६–३७.
२. कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ।।
ग० पु० उ० ख० २८।४–६.
३. ग० पु० उ० ख० ३५।५१.
४. हाजरा–पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० १४५.
५. श्रीमद् भा० १।१२।१३।८, वायु पु० १०४।८.
६. दानसागर पृ० १८.

अश्वायुर्वेद, व्याकरण, सदाचार, स्नान-विधि, प्रलय वर्णन, आत्मज्ञान तथा गीतासार आदि अनेक विषयों का विस्तृत वर्णन है । इन सब विषयों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक महत्त्वपूर्ण विविध विषयों के ग्रन्थों से वर्ण्य-विषय संग्रहीत हैं । इन वर्ण्य-विषयों के स्रोत स्वरूप अनेक ग्रन्थों के नाम विद्वानों ने दिये हैं । उनमें से कुछ प्रमुख याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, पराशर स्मृति, बृहद्संहिता, कलाप व्याकरण (कात्यायन के धातु क्रिया पर लिखित अध्याय से युक्त), वाग्भट्ट की अष्टाङ्गहृदय-संहिता (द्वितीय भाग), नकुल का अश्वचिकित्सा तथा भोज का चाणक्य-राजनीति शास्त्र आदि हैं ।[१] हाजरा[२] तथा पुसालकर[३] महोदय ने वर्ण्य-विषय के आधार पर इस पुराण को पुराण न मानकर आदर्श कोष के रूप में स्वीकार किया है । उनका कथन है कि सभी विषयों का उपयुक्त वर्णन इस पुराण में विस्तार के साथ प्राप्त होता है । हरप्रसाद शास्त्री महोदय[४] तथा काणे महोदय[५] भी इसी मत का अनुमोदन करते हैं । इसके अतिरिक्त इस भाग के अनेक अध्याय अन्य पुराणों से मिलते हैं ।

उदाहरणार्थ—

१. गरुड़ पुराण का १।१।१४–३४ अंश जिसमें विष्णु के २१ अवतारों का वर्णन है वह भाग भागवत के १।३।६–२६ भाग से मिलता है ।

२. गरुड़ पुराण का १।४९।२–३०, १।५०।१–७९ अंश केवल ५० तथा ६६ श्लोकों को छोड़कर तथा १।५१।१ अंश कूर्म पुराण के १।२, २।१८ २।२६ में प्राप्त होता है ।

३. गरुड़ पुराण का १।५१।३ अंश कूर्म पुराण के २।२५।२ अंश से मिलता है ।

४. गरुड़ पुराण का १।५२ अंश कूर्म पुराण के २।३०, ३२–३३ से मिलता है ।

५. गरुड़ पुराण का १।२२७।१४–२० अंश कूर्म पुराण के १।१।१२–२० से साम्य रखता है ।

---

१. इण्डि० हि० क्वा० कलकत्ता वा० ६–१९३० पृ० ५५५–५५८.
२. हाजरा–पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० १४६.
३. पुसालकर–ए० स्ट० इ० ए० ए० पु० पृ० २९.
४. शास्त्री–हरप्रसाद– ए० सो० आ० बं० ए० क०–वा० ५–पृ० २२२–२२३.
५. काणे–हि० आ० ध० शा० वा० १–पृ० १७५ और १९१.

६. गरुड़ पुराण का १।८२–८६ तथा १।८८–९० अंश क्रमशः वायु पुराण के १०५।१२–१८ तथा मार्कण्डेय पुराण के ९५–९६ अंश से मिलते हैं।

इस प्रकार भागवत, कूर्म, वायु, मार्कण्डेय आदि अनेक पुराणों के प्रसङ्गों से गरुड़ पुराण का साम्य है। इस विषय में पूर्णतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अन्य पुराणों ने इन प्रसङ्गों को गरुड़ पुराण से ही लिया है। सम्भवतः कुछ न कुछ गरुड़ पुराण ने भी अन्य पुराणों से उसी रूप में ग्रहण किया है। सम्पूर्ण पुराण में अनुकरण भी अधिकांश रूप से हुआ है। अतः इन सभी आधारों पर इस भाग को वैष्णव कहना अधिक ठीक न होगा।

गरुड़ पुराण का दूसरा भाग उत्तर खण्ड है। इसमें ३५ अध्याय हैं। पूरे भाग में प्रेतात्मा का वर्णन होने से वह प्रेत कल्प भी कहा जाता है। इसमें एक २८ वाँ अध्याय कृष्ण माहात्म्य, हरिनाम माहात्म्य पर है। इसी में तुलसी माहात्म्य, कन्यादान माहात्म्य, वापीकूपतड़ागादि दान माहात्म्य का भी वर्णन है और यह अध्याय पूरा भी नहीं है। शेष ३४ अध्यायों में धर्म, जन्मान्तर कथन, दानादि कथन, संस्कार, यमलोक, यमवैभव, प्रेतोद्देश, यमपुरवर्णन, प्रेतकृत्य, प्रेतमुक्ति, घटादि दान, पुत्रोत्पादन फल, प्रेत सौख्य, धर्माधर्म, विविध श्राद्ध कर्म विपाक, वैतरणी, विविध पाप फल आदि विषयों का विस्तार से वर्णन हुआ है। इन अंशों का विशेषतः मृत्यु के अवसर पर सुनना आवश्यक माना जाता है। अतः इस अंश को वैष्णव कहना तो बिलकुल उचित नहीं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण पुराण में जितना विष्णु का वर्णन हुआ है उसके आधार पर इस पुराण को वैष्णव संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।

वराह पुराणः––पद्म पुराण द्वारा वराह पुराण की भी गणना वैष्णव पुराण में की गई है। वराह पुराण का उल्लेख मत्स्य, अग्नि तथा स्कन्द पुराण में हुआ है। किन्तु वराह पुराण की जो रचना इस समय उपलब्ध है वह मत्स्यादि पुराणों में कहे हुए वराह पुराण से भिन्न है। इसका प्रमाण उक्त पुराणों के अवलोकन से प्राप्त होता है––

महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते॥
मानव प्रसङ्गेण कल्पस्य मुनिसत्तमाः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत् पुराणमिहोच्यते॥[1]

अग्नि पुराण[2] में भी यही प्रसङ्ग प्राप्त होता है किन्तु तीसरी पंक्ति में 'कल्पस्य' के

१. म० पु० ५३।३८–३९, स्कन्द पु० ७।१।२, ५७–५८.
२. अग्नि पु० २७२।१५.

स्थान पर 'धन्यस्य' पाठ हुआ है। प्राचीन वराह पुराण के वक्ता विष्णु हैं और उन्होंने मानव कल्प में इस पुराण को कहा है जैसा कि निम्न प्रसङ्ग से स्पष्ट है—

चतुर्दशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम् ।
भूमौ वराहचरितम् मानवस्य प्रवृत्तितः ।।[१]

किन्तु प्राप्त वराह पुराण में वराह स्वयं पुराण के वक्ता हैं और मानव कल्प का भी उल्लेख नहीं हुआ है।

इस समय उपलब्ध वराह पुराण चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में १ से लेकर ११२ अध्याय, दूसरे में ११३ से १९२ अध्याय, तीसरे में १९३ से लेकर २१२ अध्याय, चौथे भाग में २१३हवाँ अध्याय है। इसी अध्याय से यह पुराण समाप्त हो जाता है।

इस पुराण के चारों भाग अपनी अलग-अलग विशेषता रखते हैं। प्रथम भाग में सूत वक्ता हैं तथा वराह और पृथ्वी परस्पर विलाप करते हैं। यह पुराण प्रारम्भ से ही पाञ्चरात्र सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, तथा नारायण प्रमुख देवता हैं। इसमें भगवान् के विष्णु और हरि नामों की अपेक्षा नारायण नाम अधिक प्रयुक्त हुआ है। कहीं-कहीं पर वासुदेव तथा कृष्ण का भी नाम आ गया है। 'नमोनारायणाय' मंत्र का प्रसङ्ग सर्वत्र प्राप्त होता है किन्तु 'नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है।[२]

पूरे प्रथम भाग में पाञ्चरात्र का ही महत्त्व वर्णित होने से यह पाञ्चरात्र-संहिता के नाम से भी प्रसिद्ध है। किन्तु यदि विचार किया जाय तो विदित होता है कि उत्तरी भारत में पतित होते हुए पाञ्चरात्र धर्म की उन्नति के लिए यह भाग लिखा गया जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है—

युगानि त्रीणि बहवो मामुपैष्यन्ति मानवाः ।
अन्त्ये युगे प्रविरला भविष्यन्ति मदाश्रयाः ।।[३]

पुराण का सूक्ष्म अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उस समय पाशुपतों का जोर अधिक बढ़ रहा था।[४] उनकी बढ़ती हुई संख्या को कम करने का ही यह प्रयास है।[५]

---

१. अग्नि पु० २७२।१६.
२. व० पु० ५०।९–१६.
३. व० पु० ७०।३४–३५.
४. असंख्यातास्तु ते रौद्रा भवितारो महीतले ।। व० पु० ७१।५७.
५. कलौ मत्कृतमार्गेण बहुरूपेण तामसैः ।
इज्यते द्वेषबुद्ध्या स परमात्मा जनार्दनः ।। व० पु० ७१।५९.

इस प्रकार यह पूरा भाग नारायण की प्रजा के प्रसार पर ही बल देता है। हाज़रा महोदय भी इसी मत का अनुमोदन कर इसे नारायणीय भाग स्वीकार करते हैं।[1]

दूसरे भाग पर भागवत सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। विष्णु के भक्तों को ही 'भागवत' नाम दिया गया है, वैष्णव नाम कम प्रयुक्त हुआ है। जो धर्म वराह भगवान ने बताया है उसे भागवतों को ही बताने का आदेश दिया गया है।[2] विष्णु उन सभी वस्तुओं को स्वीकार करते हैं जो भागवतों द्वारा मानी जाती है।[3] विष्णु की पूजा के बाद भागवतों का सम्मान करने का आदेश दिया गया है।[4] भागवतों से सभी मिलने तथा उनके दर्शन करने के इच्छुक रहते थे।[5] इससे स्पष्ट होता है कि पहले से भागवतों की महत्ता इस समय तक अधिक बढ़ चुकी थी। इस भाग में नारायण के नाम के साथ-साथ विष्णु के नाम का भी अधिक प्रयोग हुआ है। वासुदेव शब्द भी अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है।[6] इसी से यह भाग 'भगवच्छास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है और इस भाग में वर्णित सब प्रसङ्गों के लिए 'भागवतप्रोक्त धर्म' अथवा 'विष्णु प्रोक्त धर्म'[7] कहा गया है। 'नमो नारायणाय' मंत्र के आधिक्य के साथ-साथ 'नमो वासुदेवाय' मंत्र का भी उल्लेख यत्र-तत्र इस भाग में हुआ है।[8] ये सभी प्रसङ्ग इस भाग के भागवत होने के स्पष्ट प्रमाण हैं।

वराह पुराण के तृतीय भाग के सूत वक्ता हैं और जनमेजय तथा महर्षि वैशम्पायन वार्तालाप करने वाले हैं। हरप्रसाद शास्त्री प्रमुख वार्ताकारों में लोम-हर्षण तथा जनमेजय और सनत्कुमार तथा ब्रह्मा का नाम देते हैं। किन्तु ये नाम सम्भवतः ठीक नहीं हैं।[9] यह भाग पूर्व के दोनों भागों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। यह भाग धर्म संहिता के नाम से प्रसिद्ध है।[10] इस भाग के प्रारम्भ का 'अश्वमेधे तथा वृत्ते राजा वै जनमेजयः' प्रसङ्ग इसकी स्वतन्त्रता को स्पष्ट करता है। इसके बाद के प्रसङ्गों में जनमेजय तथा उनके अश्वमेध यज्ञ के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। इस प्रकार यह भाग किसी विशिष्ट सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं है।

---

१. हाजरा—पु० रि० आ० हि० रा० ए० क० पृ० ५६.
२. व० पु० ११७।४७.
३. व० पु० ११९।१०.
४. व० पु० १२४।१०.
५. व० पु० १२५।१६८.
६. व० पु० १२९।३, ५१—५२, १४८।१०.
७. व० पु० ११३।५, १२१।८९.
८. व० पु० १२३।३२, १८२।६.
९. शास्त्री—ए० सी० आ० वं०, वा० ५—पृ० १९६.
१०. व० पु० २१२।१.

इस पुराण का चौथा भाग अपनी अलग विशेषता रखता है। इसमें शिव के माहात्म्य का विस्तार से वर्णन हुआ है। उत्तर गोकर्ण तथा दक्षिण गोकर्ण आदि शिव से सम्बन्धित तीर्थों के विस्तृत वर्णन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यह नैपालवासियों द्वारा ही लिखा गया है। शिव लिङ्ग की पूजा पर इस भाग में विशेष बल दिया गया है।[१]

इस पुराण के चारों भागों के आधार पर ही इसके वैष्णव होने का यहाँ विचार किया जायगा। प्रथम भाग जैसा कि प्रसङ्गों से स्पष्ट होता है पाञ्चरात्र से सम्बन्ध रखता है किन्तु कुछ अंश में। इस भाग में पूर्णत: तो पाशुपत-धर्म व्याप्त है। इन्हीं अवैदिक पाशुपतों को ही रौद्र संज्ञा दी जाती थी। इन्हीं का आधिक्य था। ये रौद्र पापी व्यक्ति समझे जाते थे। माँस, मदिरा तथा वासना का अधिक सेवन करने वाले थे।[२] ये वेदबाह्य तथा तामस कहे गये हैं और व्यक्तियों में मोह उत्पन्न करने वाले[३] तथा पतन का कारण[४] माने जाते थे। इसी बढ़ते हुए अनर्थ को दूर करने के लिए प्रथम भाग में केवल थोड़ा-सा प्रयास है।

इसके अतिरिक्त प्रथम भाग में ९०-९७ तथा ९९-११२ अध्याय पाञ्चरात्रों से सम्बन्धित नहीं हैं। ९०-९६ तक के अध्यायों में ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री शक्तियों की उत्पत्ति एवं एकता पर विचार किया गया है अत: इन अध्यायों में शाक्त सम्प्रदाय की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। ९७ अध्याय पर शैव प्रभाव दिखाई पड़ता है। उसमें रुद्रव्रत की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। रुद्रव्रत, बाभ्रव्य अथवा शुद्ध शैव व्रत के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके साथ ही साथ पाशुपत शास्त्र का भी महत्त्व इसी अध्याय में प्रदर्शित किया गया है। ९७ अध्याय में महेन्द्र पर्वत पर महिष दैत्य का वध करने वाली वैष्णवी शक्ति का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। यह अध्याय शक्ति की महिमा से पूर्ण है। साथ-साथ अन्य अनेक अध्यायों में श्राद्ध, पितृगीता, राजनीति, धर्म व्याध आदि की कथाओं का वर्णन है। अत: इसे वैष्णव माना जाना ठीक नहीं।

दूसरे भाग पर भागवत सम्प्रदाय की छाप अवश्य है। अधिकांश भाग में भागवतों के महत्त्व एवं विष्णु पूजा का वर्णन है जैसा कि पूर्व में ही कहा जा चुका है। किन्तु इसके साथ ही साथ ११३-११९ अध्याय तथा १४०-१५१ अध्याय भागवतों के प्रभाव से शून्य हैं। इनमें अनेक पवित्र स्थानों का विस्तृत वर्णन है और साथ ही साथ स्त्रियों के दूषित समय का तथा उस समय में उनके द्वारा किये गये आचरणों का अधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। १५० से १८० अध्याय तक मथुरा का जो विस्तृत वर्णन है वह क्षेपक अंश है। १४० वें अध्याय में जो कोकामुख क्षेत्र की प्रशंसा

१. व० पु० २१५।४२-४६.
२. व० पु० ७१।५७-५८.
३. मोहार्थं—व० पु० ७०।७१.
४. 'पतन कारणम्' व० पु० ७०।४२.

है उसका वर्णन १२२वें अध्याय में हो चुका है। अतः यह भाग केवल पुनरुक्ति मात्र है, क्योंकि वराह ने स्वयं ही पूर्व में इसका वर्णन कर चुकने को कहा है--

तव कोकामुखं नाम यन्मया पूर्वभाषितम् ॥[1]

इस प्रकार यह भाग भी अन्य धर्मों, क्षेपकों, पुनरुक्तियों से भरा है। भागवत अंश बहुत थोड़ा है। अतः इसे आंशिक वैष्णव अवश्य माना जा सकता है।

तीसरे भाग का प्रारम्भ जनमेजय के अश्वमेध यज्ञ से होता है जिसका अनेक अध्यायों में बड़े विस्तार से वर्णन है। इसके पूर्व में जनमेजय का या उनके अश्वमेध यज्ञ का कोई वर्णन नहीं हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी अन्य पुराण से जिसमें जनमेजय की कथा वर्णित है, उसे यहाँ पर लेकर जोड़ दिया गया है। २११ तथा २१२ अध्याय में अवश्य विष्णु की पूजा करने की विधि दी हुई है। इसके अतिरिक्त सभी अध्यायों में विविध विषय एवं कथाएँ वर्णित हैं अतः इस भाग को भी वैष्णव नहीं कहा जा सकता।

चौथा भाग तो पूर्णतः शैव ही है। रुद्र-महिमा, रुद्रस्तोत्र, शिवपूजा, तीर्थों तथा अनेक विभिन्न विषयों का वर्णन है। हाज़रा महोदय भी इस भाग को पूर्णतः शैव मानते हैं।[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण पुराण के चार भागों में द्वितीय भाग केवल आंशिक वैष्णव सिद्ध होता है। अतः इसके आधार पर सम्पूर्ण पुराण को वैष्णव मान लेना उचित नहीं। वैष्णव की अपेक्षा तो इस पुराण पर शैव तथा शाक्त प्रभाव अधिक प्रतीत होता है।

पद्म पुराणः—छः वैष्णव पुराणों में पद्म पुराण की भी गणना की जाती है। वर्तमान काल में उपलब्ध पद्म पुराण दो रूपों में प्राप्त होता है। पहली उत्तरी भारत की हस्तलिखित प्रतिलिपि (बंगाल) और दूसरी दक्षिण भारत की प्रतिलिपि। बंगाल वाली हस्तलिपि में पद्म पुराण में पाँच खण्ड हैं—1. सृष्टि २. भूमि ३. स्वर्ग ४. पाताल और ५. उत्तर। किन्तु यह बंगाल की हस्तलिपि नहीं है।[3] दक्षिण भारत की पद्म पुराण की हस्तलिपि आनन्दाश्रम तथा वेङ्कटेश्वर प्रेस इन दो विभिन्न स्थानों से छपी है। पद्म पुराण के इन दोनों संस्करणों में पाँच खण्ड न होकर छः खण्ड हैं जो क्रमशः १. आदि २. भूमि ३. ब्रह्म ४. पाताल ५. सृष्टि तथा ६. उत्तर हैं। सृष्टि

---

१. व० पु० १४०।४.
२. हाज़रा—पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० ५७.
३. हाज़रा—पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० ११०.

खण्ड को प्रक्रिया भी कहते हैं। यह क्रम आनन्दाश्रम वाली हस्तलिपि का है। वेङ्कटेश्वर प्रेस से छपी हुई हस्तलिपि में यद्यपि छः ही खण्ड हैं किन्तु उनका क्रम १. सृष्टि २. भूमि ३. स्वर्ग ४. ब्रह्म ५. पाताल तथा ६. उत्तर है। पहली हस्तलिपि का आदि खण्ड दूसरी हस्तलिपि के स्वर्ग खण्ड के समान है। शेष क्रम एक-सा ही है।[१]

मूलरूप से पद्म पुराण में पाँच ही खण्ड हैं। जैसा कि बंगाल की हस्तलिपि द्वारा ही नहीं वरन् छपे हुए संस्करणों द्वारा भी माना गया है। क्योंकि आदि और स्वर्ग खण्ड एक ही हैं और शेष खण्ड बंगाल की हस्तलिपि के ही समान हैं। पद्म पुराण की कुछ हस्तलिपियों में आदि के साथ छः खण्डों के स्थान पर पाँच का ही उल्लेख हुआ है।[२]

पद्म पुराण का एक खण्ड 'स्वर्ग खण्ड' नाम के शीर्षक से कलकत्ता के बङ्गवासी प्रेस में छपा है। वह आदि खण्ड तथा ब्रह्म खण्ड के सम्मिश्रण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[३] अतः पद्म पुराण में सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, पाताल तथा उत्तर यही पाँच खण्ड मान्य हैं।[४]

पद्म पुराण को वैष्णव पुराण मानने के लिए भी इन्हीं पाँचों खण्डों का आश्रय लेना पड़ेगा।

१. **सृष्टि**—यह पद्म पुराण का प्रथम खण्ड है यद्यपि अनेक विद्वानों द्वारा इसे पाँचवाँ स्थान भी दिया गया है।[५] इसमें ४६ अध्याय हैं जो दो भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग १-४३ अध्याय तक तथा ४३ से अन्त तक दूसरा भाग है। प्रथम भाग विभिन्न अध्यायों के अनुसार अनेक भागों में विभक्त है।[६] इस खण्ड में महर्षि पुलस्त्य ने भीष्म को सृष्टि के क्रम से अनेक उपाख्यानों एवं इतिहास का वर्णन किया है। इसका प्रारम्भ पुष्कर तीर्थ के पवित्र जल के वर्णन से होता है। पुष्कर तीर्थ का बड़े विस्तार के साथ वर्णन हुआ है, जिसमें ब्रह्म-यज्ञ की विधि, वेद पाठ का लक्षण, अनेक प्रकार के दान एवं व्रतों का पृथक्-पृथक् निरूपण है। यह वर्ण्य-विषय इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सम्भवतः इस खण्ड का यह अंश ब्रह्मा के उपासक ब्राह्मों द्वारा लिखा अथवा संग्रह किया गया।[७] इन्हीं प्रसङ्गों के बीच में ब्रह्मा से सम्बन्धित एक कथा का भी प्रसङ्ग प्राप्त होता है, जो ब्रह्मा की उपासना की ओर सङ्केत करती है। । कथा इस प्रकार

---

१. वही।
२. प० पु० आ० खं०, पृ० २– टिप्पणी १ और २ में देखिये।
३. हाज़रा– पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० ११२.
४. संक्षिप्त नारद विष्णु पुराण– गीता प्रेस पृ० ४२१-२३.
५. हाज़रा– पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० १२०.
६. वही– पृ० १२०-१२१.
७. वही– पृ० १२१.

है कि एक बार ब्रह्मा ने पुष्कर क्षेत्र में बहुत बड़ा यज्ञ किया इसमें सब देवों को सम्मिलित होना आवश्यक था। जब यज्ञ का सब प्रबन्ध हो गया तब पुरोहित ब्रह्मा की पत्नी सावित्री को बुलाने के लिए गया। सावित्री देवी उस समय घर के कार्यों में लगी हुई थीं अतः उन्होंने कार्य समाप्त कर यज्ञ में जाने का निश्चय किया। जब पुरोहित ने आकर ब्रह्मा को यह बात बताई तो ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने इन्द्र से अपने लिए दूसरी पत्नी लाने को कहा। ब्रह्मा की आज्ञा सुनकर इन्द्र गायत्री नाम की एक आभीर कन्या को ले आये और यज्ञ का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। जब सावित्री यज्ञ में आईं और उन्होंने गायत्री को देखा तो अत्यन्त क्रुद्ध हुईं। उन्होंने ब्रह्मा को शाप दे दिया कि अब व्यक्ति सदैव तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे। वर्ष भर में कार्तिक मास में केवल एक दिन तुम्हारी पूजा करेंगे।[1] इसके अतिरिक्त जो देवता तथा देवियाँ वहाँ पर उपस्थित थीं उन सबको तथा गायत्री को भी शाप देकर वे चली गईं। तब गायत्री ने उठकर ब्रह्मा को वरदान दिया कि जो व्यक्ति उनकी पूजा करेंगे वे सभी सांसारिक ऐश्वर्यों को भोगते हुए मुक्त हो जायेंगे।[2] अन्य देवताओं तथा देवियों को भी गायत्री ने वरदान दिया।

यह कथा ब्रह्मा के उपासकों के पतन की ओर संकेत करती है। क्योंकि बहुत से ब्राह्मों ने शैव धर्म को अपना लिया था जैसा कि ब्रह्मा ने स्वयं ही कहा है--

कोट्याः शतं तु विप्राणामुद्धरत्तासि महाद्युते[3]

ब्रह्मा की उपासना नित्य ही घटती जा रही थी इसी से ब्राह्म व्यक्तियों ने ब्रह्मा की महत्ता को बढ़ाने के लिए इस कथा का आधार लिया। इस खण्ड में अनेक अंश मत्स्य तथा विष्णु पुराण से लिये गये हैं और ब्रह्मा के साथ अन्य देवताओं के नामों एवं महत्त्व का वर्णन है। यही कारण है कि ब्रह्मा के साथ अन्य देवों की समता होने लगी और विष्णु पुराण के अंशों के आ जाने से यह खण्ड कुछ अब्राह्म एवं कुछ वैष्णव हो गया। कुछ अध्यायों में राम के चरित्र का भी वर्णन है। इसी कारण हाज़रा महोदय का मत है कि यह वैष्णव राम सम्बन्धी होने के साथ-साथ कुछ अंश में शैव भी है।[4]

इस खण्ड के ३०वें तथा ३१वें अध्याय में क्षेमाकरी नाम की एक देवी का प्रसङ्ग आया है, जो शाक्त देवी हैं और पुष्कर की पहाड़ियों पर निवास करती हैं। अतः शाक्त प्रभाव की स्पष्ट झलक है और ये अध्याय शाक्तों द्वारा लिखे हुए प्रतीत

---

१. पद्म पु० सृ० खं० १७।१५३-१५८.
२. पद्म पु० सृ० खं० १७।२६०-६८.
३. वही १४।१३३.
४. हाज़रा– पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० १२२.

होते हैं। इन्हीं सब प्रसङ्गों के आधार पर हाज़रा महोदय ने कहा है कि सृष्टि खण्ड सर्वप्रथम ब्रह्मा के उपासकों द्वारा लिखा गया। बाद में अब्राह्म सम्प्रदाय के व्यक्तियों ने इसमें कुछ नये अध्याय तथा नवीन अंश जोड़ दिये। इसके बाद तान्त्रिकों ने तथा अन्त में शाक्तों ने इस भाग से कुछ अंश निकाल कर कुछ और जोड़ दिये।[1] हाज़रा महोदय का मत उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके साथ-साथ इस खण्ड में पार्वती-विवाह, तारकासुर वध तथा गो माहात्म्य आदि विषयों का अधिक विस्तार से वर्णन हुआ है। अनेक अध्याय दान, पूजन, ग्रह तथा तीर्थ आदि के महत्त्व से पूर्ण हैं। इन सभी आधारों पर इस खण्ड का वैष्णव न होना स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

२. **भूमि खण्ड**–नर्मदा नदी जिसे रेवा भी कहा गया है उसके माहात्म्य का अत्यधिक वर्णन होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो इस खण्ड की रचना उसी के आसपास हुई है। भूमि खण्ड भौगोलिक विषयों तथा धार्मिक कथाओं से भरा है। प्रह्लाद ने पाँच वर्ष की आयु में भगवान् केशव को प्रसन्न किया, प्रह्लाद का वासुदेव से युद्ध हुआ और वह उसमें मारे गये। इसका कारण ऋषिगण सूतजी से पूछते हैं। इसी से इस खण्ड का प्रारम्भ होता है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय सूत शिवशर्मन् की कथा कहते हैं। इसी प्रह्लाद के चरित्र तथा उनकी विष्णु की उपासना एवं भक्ति के आधार पर इस खण्ड को भागवत कहा जाता है क्योंकि इस कथा का प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत से कुछ मिलता है।[2] किन्तु इन आधारों पर इसे वैष्णव मानना ठीक नहीं।

भूमि खण्ड में सुव्रत, वृत्रासुर, पृथु, वेन, सुनीथा, सुकला, धर्म, नहुष, ययाति, अशोक सुन्दरी, महात्मा च्यवन, कामोदा, विहुण्ड दैत्य आदि की कथाएँ विस्तार से वर्णित हैं। इन कथाओं के आधिक्य के कारण यह खण्ड धार्मिक कथाओं का संग्रह बन गया है। इसके अतिरिक्त ५९वें अध्याय में वर्णाश्रम धर्म, ३९वें और ४०वें में दान एवं उपहारों का, ४१वें अध्याय में स्त्रियों के कर्त्तव्यों का, ९०-९२ तक पवित्र तीर्थों का तथा ८७वें अध्याय में अनेक व्रतादि का वर्णन है। अतः इस खण्ड का किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्ध जोड़ने के स्थान पर यदि इसे धार्मिक कथाओं का भण्डार कहा जाय तो अनुचित न होगा।

३. **स्वर्ग खण्ड**–इस खण्ड में सौति तथा महर्षियों के संवाद रूप से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति बतलाई गई है। पृथ्वी सहित सम्पूर्ण लोकों की स्थिति और तीर्थों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पृथ्वी के भूगोल का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है कि नदी, पर्वत, वन, समुद्र, द्वीप आदि सभी आ गये हैं। नर्मदा नदी की उत्पत्ति एवं माहात्म्य

---

१. वही······ पृ० १२३.
२. श्रीमद् भा० ७।५।३६.

का आधिक्य उसकी तत्कालीन पवित्रता की विचार-धारा ओर सङ्केत करता है। इसी माहात्म्य वर्णन के बीच में ही उसके सभी तीर्थों का पृथक्-पृथक् वर्णन हुआ है, जिसमें कुरुक्षेत्र स्थल की पुण्यदायिनी कथा का उल्लेख हुआ है। कालिन्दी की कथा तो अत्यन्त रोचक है। काशी माहात्म्य एवं प्रयाग का अनेक अध्यायों में वर्णन हुआ है। गया माहात्म्य अधिक विस्तृत है। सभी आश्रमों के अनुकूल कर्मयोग का निरूपण मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि का हेतु है। इसके अतिरिक्त समुद्र मन्थन की कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। व्रतों एवं उपवासों के वर्णन की भी इस खण्ड में कमी नहीं। भीष्मपञ्चक कार्तिक मास के अन्तिम पाँच दिनों में किया जाने वाला अनुष्ठान का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक राजाओं की कथाएँ, ग्रह-नक्षत्र ज्ञान से भी यह खण्ड भरा है। यद्यपि अन्तिम कुछ अध्यायों में विष्णु की भक्ति का वर्णन हुआ है परन्तु वह भी संक्षिप्त है। अतः यद्यपि यह भाग विष्णु भक्ति से अछूता नहीं रहा है फिर भी अनेक विभिन्न विषयों के आधारों पर इस खण्ड को वैष्णव नहीं माना जा सकता।

४. **पाताल खण्ड**—यह खण्ड शेषजी की स्तुति से प्रारम्भ होता है। वात्स्यायन वक्ता हैं तथा उसको सूत ऋषियों से बतलाते हैं। स्वर्ग खण्ड में भी सूत द्वारा ऋषियों को पाताल खण्ड बतलाने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि पाताल खण्ड स्वर्ग खण्ड के ठीक बाद में है। ऐसा निम्न प्रसङ्ग से भी विदित होता है:—

श्रुतं सर्वं महाभाग स्वर्गखण्डं मनोहरम्[1]।

इस खण्ड में पहले अध्याय से ९८ अध्याय तक राम के चरित्र का विस्तार से वर्णन हुआ है जिसमें उनका चरित्र, लङ्का से लौटना तथा अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि इतना अंश रामायत है। इसमें राम को विष्णु का और सीता को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। राम का नाम लेना ही मुक्ति का हेतु है। इसके साथ ही साथ इसमें ९वाँ अध्याय वर्णाश्रम धर्म पर है। १७-२२ अध्याय तक पवित्र तीर्थों का वर्णन हुआ है तथा ४८वाँ अध्याय कर्म फल के वर्णन से पूर्ण है। ६६वें अध्याय में रामायण का वर्णन है और उसमें बाल, आरण्यक, किष्किन्ध्या, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तर यह छः काण्ड बतलाये गये हैं।

राम के चरित्र के अतिरिक्त ६९-९९ अध्यायों में शिव और पार्वती में कृष्ण के चरित से सम्बद्ध वार्तालाप होता है। कहीं-कहीं पर कृष्ण परब्रह्म कहे गये हैं। वह विष्णु के अवतार हैं। उनकी उपासना अन्तिम मुक्ति दिलाने वाली है। राधा, कृष्ण की शक्ति है। वह अव्यया मूल प्रकृति कही गई है और दुर्गा तथा अन्य देवियाँ उनकी अंश हैं। हजारों विष्णु उनके चरणों की रज से उत्पन्न हो सकते हैं।[2]

---

१. पद्म पु० पा० खं० १।२.
२. हाज़रा—पु० रि० आ० हि० रा० ए० क०, पृ० ११८.

वृन्दावन कृष्ण का प्रिय स्थान है। उसके विषय में कहा गया है कि यह गोविन्द का शुद्ध, पवित्र एवं सुन्दर तीर्थ है। यह स्थान इनके शरीर से पृथक् नहीं किया जा सकता।[1] कृष्ण के चरित के अतिरिक्त शालग्राम की पूजा का ७८-७९ अध्याय तथा ८४-९९ तक के अध्यायों में व्रतादि का वर्णन है। यद्यपि ये सभी प्रसङ्ग इस खण्ड के वैष्णव होने की ओर सङ्केत करते हैं किन्तु जितना कृष्ण तथा राम के चरित्र का वर्णन है उससे कहीं अधिक शिव के माहात्म्य का वर्णन है। यद्यपि शङ्कर और राम में अभिन्नता है, फिर भी शङ्कर को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। लिङ्ग पूजा का विस्तार के साथ महत्त्व प्रदर्शित किया गया है और अनेक अध्याय शिव से सम्बद्ध तीर्थों के वर्णन, भस्म के महत्त्व तथा धार्मिक विषयों से युक्त हैं। अतः इन आधारों पर इसे पूर्णतः वैष्णव मानना ठीक नहीं।

५. **उत्तर खण्ड**–यह खण्ड किसी विशेष देवता से सम्बद्ध नहीं है। इसमें पञ्चायतन पूजा के ऊपर बल दिया गया है।[2] तुलसी के पौधे के महत्त्व का अधिक विस्तार से वर्णन है और तुलसी एवं त्रिरात्रि व्रत को करने को कहा गया है। मनुष्यों के नैतिक कर्तव्यों का ज्ञान कराया गया है।[3] इसके अतिरिक्त विवाह, दान, उपहार, पूजा, वरदान तथा वर्णाश्रम-धर्म का भी विस्तृत वर्णन है। विष्णु के सभी अवतारों में बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का वर्णन अधिक स्थलों पर हुआ है।[4] अतः विभिन्न विषयों का ज्ञान कराना ही इस खण्ड का उद्देश्य प्रतीत होता है। इस प्रकार इसे भी वैष्णव मानना ठीक नहीं।

अब सम्पूर्ण पुराण पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह पुराण कथा, उपाख्यान, व्रत, तीर्थ, यज्ञ, दान आदि के माहात्म्य से भरा है। इस पूरे पुराण के द्वारा मानव विविध विषयों का ज्ञान अवश्य प्राप्त कर सकता है। भूगोल का जितना विस्तृत वर्णन इस पुराण में हुआ है उतना अन्यत्र नहीं हुआ। अतः इस पुराण को किसी विशेष सम्प्रदाय की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता।

सभी कथित वैष्णव पुराणों में विष्णु तथा श्रीमद्भागवत ये दो पुराण ही ऐसे हैं जो पूर्णतः वैष्णव हैं जिन्हें किसी प्रकार भी अन्य सम्प्रदायों का सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः अन्य पुराणों एवं विष्णुधर्मोत्तर सहित इन्हीं दोनों पुराणों का आद्योपान्त अध्ययन किया गया है।

---

१. वही
२. पद्म पु० उ० खं० ९०।६३.
३. वही २३३।४१-५१.
४. वही ३१।१३-१४; ९८।५१; ७२।२७; २७१; २८३; ७१।९-११; २५७।४०-४१.

द्वितीय परिच्छेद

प्रतिमा लक्षण

परब्रह्म यद्यपि शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्ध इन सबसे शून्य हैं फिर भी पुराणों में उसके द्विविधि रूप का वर्णन हुआ है। उस सत्ता के दो रूप प्रकृति तथा विकृति हैं।[1] अव्यक्त, अदृष्ट एवं अलक्ष्य रूप प्रकृति है। इसी को निर्गुण रूप भी कहते हैं।[2] दूसरा रूप विकृति है।[3] यह साकार रूप है। इस रूप की पूजा-अर्चना द्वारा आराधना की जाती है। साकार रूप आधारपूर्ण होने के कारण सरलता से पूजा जा सकता है। यही ब्रह्म का सगुण रूप है।

ब्रह्म के प्रकृति अर्थात् निर्गुण रूप का कोई आधार नहीं होता। इस रूप की पूजा असम्भव है।[4] अतः भगवान् ने स्वेच्छा से अपने सुन्दर रूप को प्रकट किया। उसे देखकर देवगण हर्षित हुए और प्रसन्न होकर उसी रूप की पूजा करने लगे—

अतो भगवतानेन स्वेच्छया यत्प्रदर्शितम्।
प्रादुर्भावेष्वथाकारं तदर्चन्ति दिवौकसः॥[5]

साकार सगुण रूप आधारयुक्त होता है। उस रूप की यथा-विधि पूजा की जा सकती है। अतः उसी की पूजा का विधान है।

ईश्वर के साकार स्वरूप ने आगे चलकर विभिन्न प्रतिमाओं का रूप धारण कर लिया। कृत, त्रेता तथा द्वापर युग में व्यक्ति भगवान् के स्वयं ही दर्शन कर सकने में समर्थ थे, किन्तु कलियुग में ईश्वर की आराधना प्रतिमाओं द्वारा ही सम्भव है। अतः पुराणों में वर्णित ईश्वर के साकार रूप को कलाकारों ने विभिन्न कलाओं के माध्यम से सांसारिक भूमिका पर लाने का प्रयास किया।

---

१. रूपगन्धरसैर्हीनः शब्दस्पर्शविवर्जितः।
प्रकृतिर्विकृतिस्तस्य द्वे रूपे परमात्मनः॥ वि० ध० ४६।१–२.
२. अलक्ष्यं तस्य तद्रूपं प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥ वि० ध० ४६।२.
३. साकारा विकृतिर्ज्ञेया तस्य सर्वं जगत्स्मृतम्।
पूजाध्यानादिकं कर्तुं साकारस्यैव शक्यते॥ वि० ध० ४६।३.
४. अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ वि० ध० ४६।४.
५. वि० धर्मो ४६।५.

विभिन्न युगों के अनुसार रूप एवं वर्ण

श्रीमद्भागवत पुराण में ऐसा प्रसङ्ग आया है कि प्रत्येक युग में श्री हरि का रूप एवं वर्ण विभिन्न प्रकार का हो जाता है। सतयुग में भगवान् चार भुजाओं वाले रहते हैं। वे रुद्राक्ष की माला, दण्ड तथा कमण्डलु धारण करते हैं। वे शरीर पर कृष्णमृगचर्म और स्कन्ध पर यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इस रूप में उनके शरीर पर आभूषण नहीं होते। वे सिर पर जटाएँ रखते हैं और वल्कल वस्त्र पहनते हैं। उनके शरीर का वर्ण श्वेत होता है।[१] इस युग में हंस, ईश्वर, पुरुष, सुपर्ण, वैकुण्ठ आदि नामों से भगवान् की पूजा की जाती है। यह भगवान् का शान्त रूप है।

त्रेता युग में भगवान् के रूप तथा रङ्ग में परिवर्तन हो जाता है। यद्यपि भुजाएँ चार ही रहती हैं किन्तु उनका वर्ण लाल हो जाता है। वे अपनी भुजाओं में स्रुक, स्रुवा आदि यज्ञ पात्रों को ग्रहण करते हैं। उनके सिर पर सुनहरे केश रहते हैं और कटि प्रदेश में तीन लड़ की मेखला रहती है।[२] इस युग में वे वेद प्रतिपादित यज्ञ के रूप को प्रकट करते हैं। विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय आदि नामों से इनकी आराधना की जाती है।[३]

द्वापर युग में भगवान् श्याम वर्ण के हो जाते हैं। वे पीताम्बर पहनते हैं और अपनी भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध धारण करते हैं। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न, भृगुलता तथा कौस्तुभ मणि सुशोभित रहती है। इन्हीं चिह्नों के द्वारा भगवान् को पहचाना जा सकता है।[४]

कलियुग में भगवान् का वर्ण श्याम से कृष्ण हो जाता है। जिस प्रकार नीलम मणि से उज्ज्वल कान्ति निकलती है, उसी प्रकार की आभा उनके शरीर के कृष्ण वर्ण से निकलती है। वे सब अङ्गों, कौस्तुभ आदि उपाङ्गों तथा सुदर्शन चक्रादि आयुधों से सुशोभित रहते हैं। सुनन्द आदि पार्षद उनकी सेवा में सदैव लगे रहते हैं।[५]

---

१. कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद्दण्डकमण्डलुः॥ श्रीमद्भा० ११।५।२१.
२. हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥ श्रीमद्भा० ११।५।२४.
३. श्रीमद्भा० ११।५।२६.
४. द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥ श्रीमद्भा० ११।५।२७.
५. कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्॥ श्रीमद्भा० ११।५।३२.

पुराणों के इन्हीं विभिन्न स्वरूपों एवं वर्णों के आधार पर कालान्तर में भगवान् विष्णु की विभिन्न प्रतिमाएँ बन गयी ।

प्रतिमा शब्द का अर्थ

प्रतिमा का अर्थ है प्रतिरूप । इसी भाव को स्पष्ट करने के लिए प्रतिकृति, प्रतिमा, बिम्ब आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं । बिम्ब का अर्थ है छाया । यह शब्द पारलौकिक प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त होता है । बङ्गाल में शरद् के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मिट्टी की बनी हुई दुर्गा की प्रतिमा की पूजा के समय काँसे अथवा ताँबे के पात्र में शीशा इस प्रकार रखा जाता है जिससे प्रतिमा की छाया शीशे पर पड़े । उस छाया पर देवी को स्नान कराने के लिए पवित्र जल डाला जाता है । इस प्रकार देवी का स्नान सम्पन्न होता है ।[1] यह कार्य बिम्ब के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट कर देता है । शुक्र ने 'अपि श्रेयस्करं नृणां देवबिम्बमलक्षणम्'[2] कहकर प्रतिमा के लिए बिम्ब शब्द का प्रयोग किया है । प्रतिकृति का अर्थ भी समान आकृति है । पाणिनि ने अपने सूत्र 'इवे प्रतिकृतौ'[3] में साम्य आकृति के लिए प्रतिकृति शब्द का प्रयोग किया है ।

प्रतिमा शब्द अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रयुक्त होता रहा है । ऋग्वेद[4] में यज्ञ के रूप के विषय में प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है । श्वेताश्वतर उपनिषद् 'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यं नाम महद्यशः'[5] कहकर यशस्वी की प्रतिमा न बनाने का आदेश देता है । पतञ्जलि ने प्रतिमा के लिए 'अर्चा' शब्द का प्रयोग किया है और कुछ ऐसी प्रतिमाओं का उल्लेख किया है जिन्हें मौर्य राजा अत्यधिक स्वर्ण प्राप्ति की इच्छा से बनवाते थे ।[6]

प्रतिमा शब्द का प्रयोग केवल दैवी अर्थ में ही नहीं होता । महानात्मा, यशस्वी तथा पूर्वजों की बनी हुई आकृतियाँ भी प्रतिमाएँ कहलाती हैं । प्रतिमा नाटक[7] में भास ने सूर्यवंशी राजाओं की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है । वे सभी प्रतिमाएँ आदरणीय अवश्य थीं किन्तु उनकी नित्य पूजा आवश्यक नहीं थी । आगे चलकर प्रतिमा के लिए वपु, तनु, विग्रह, रूप, बेर आदि अनेक अन्य शब्द प्रयुक्त होने लगे जो प्रतिमा के रूप, आकार-प्रकार आदि का स्पष्ट उल्लेख करते हैं ।

---

१. बेनर्जी–जे० एन० डे० हि० आ०, पृ० १३.
२. शुक्रनीति ४।४।३६.
३. अष्टाध्यायी ५।३।९६.
४. ऋग्वेद १०।१३०।३.
५. श्वेत० उप० ४।१९.
६. मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिः अर्चा प्रकल्पिता–महाभाष्य पृ० ४५.
७. भास–प्रतिमानाटकम् द्वि० अंक.

प्रतिमा द्रव्य

प्रतिमा निर्माण के लिए अनेक प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग होता रहा है। इसी के आधार पर प्रतिमाओं के अनेक प्रकार हैं। रामायण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि जब सीता वाल्मीकि के आश्रम में रहती थीं उस समय राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। सीता के उपस्थित न रहने के कारण राम ने उनकी सोने की प्रतिमा बनवाकर अपने समीप स्थापित करवायी।[१] महाभारत में भीम की लोहे की प्रतिमा का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। जब धृतराष्ट्र ने अपने वक्षःस्थल से भीम की प्रतिमा को दबाकर चूर-चूर कर दिया तब विलाप करते हुए धृतराष्ट्र को कृष्ण ने समझाते हुए कहा कि आपने भीम को न मारकर उनकी लोहे की प्रतिमा नष्ट की है––

मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः।
आयसीप्रतिमा ह्येषा त्वया राजन्निपातिता ।।[२]

पुराणों में प्रतिमा के विषय में अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। कृष्ण अक्रूरजी से कहते हैं कि मिट्टी और शिला की बनी हुई प्रतिमाएँ अधिक दिन उपासना करने पर मनुष्य को प्रसन्न करती हैं––

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।।[३]

इसी प्रकार जब कृष्ण उद्धव को क्रिया-योग एवं कर्मकाण्ड का उपदेश देते हैं, तब वे अपनी प्रतिमाओं के निर्माण के विषय में भी बतलाते हैं कि प्रतिमाएँ मिट्टी, काष्ठ, पत्थर, धातु, चन्दन, बालुका, मनोमयी तथा मणि द्वारा निर्मित होती हैं––

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।।[४]

इन आठ प्रकार की प्रतिमाओं द्वारा भगवान् की उपासना की जा सकती है। विष्णुधर्मोत्तर में शिला, दारु, तथा लौह में प्रतिमाकरण का विधान दिया है।[५] इसके साथ ही साथ स्वर्ण, ताम्र, चाँदी आदि धातुओं द्वारा भी प्रतिमाएँ बनाने का उल्लेख होता है––

---

१. काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायज्ञांश्च कर्मणि।
वा० रा० उ० कां० ९१।५।२५.
२. महा० स्त्री प० १२।५।२३.
३. श्रीमद्भा० १०।४८।३१.
४. श्रीमद्भा० ११।२७।१२.
५. शिलादारुषु लौहेषु प्रतिमाकरणं भवेत् ।। वि० ध० ४३।३२.

सुवर्णरूप्यताम्रादि तच्च लोकेषु दर्शयेत् ।।[१]

धातुओं में गड्ढा बनाकर तथा पत्थर को तराश कर प्रतिमा निर्माण होता है।[२] मत्स्य पुराण में शिला, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र आदि धातुओं से प्रतिमा बनाने का आदेश दिया गया है।[३] जिस वस्तु अथवा धातु की प्रतिमा हो उसी की पीठिका बनानी चाहिए क्योंकि यह मङ्गलकारी होता है––

शैले शैलमयीं दद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा ।
दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च ।।[४]

'लिङ्गलक्षणम्' अध्याय के अन्तर्गत बहुमूल्य मणि, मिट्टी तथा लकड़ी का शिवलिङ्ग बनाने के लिए कहा गया है ।[५] भविष्यत् पुराण सात वस्तुओं से बनी हुई सात प्रकार की प्रतिमाएँ बताता है ।[६]

वृहत् संहिता के अनुसार सुवर्ण की प्रतिमा से स्वास्थ्य, रजत से यश, ताम्र से प्रजावृद्धि, शिलामयी से भू, धनलाभ तथा विजय, दारुमयी से आयु, मिट्टी से श्री, वल, मणि से लोकहित की वृद्धि होती है ।[७] शुक्र सैकती, पैष्टी, लेख्या, लेप्या, मृण्मयी, वार्क्षी, पाषाणमयी तथा धातु की बनी हुई प्रतिमाओं का उल्लेख करते हैं और क्रम से उत्तरोत्तर प्रतिमा को अधिक स्थिर बताते हैं—

प्रतिमा सैकती पैष्टी लेख्या लेप्या च मृण्मयी ।
वार्क्षी पाषाणधातूत्था स्थिराज्ञेया यथोत्तरा ।।[८]

---

१. वि० धर्मो० ४३।३१.
२. यथा चित्रं तथैवोक्तं खातपूर्वं नराधिप ।। वि० धर्मो० ४३।३३.
३. मत्स्य पु० अ० २५८–२६३.
४. मत्स्य पु० २५७।१९.
५. एवं रत्नमयं कुर्यात् स्फटिकं पार्थिवं तथा ।
शुभं दारुमयंचापि यद्वा मनसि रोचते ।।मत्स्य पु० २५८।२१.
६. अर्चा सप्तविधा प्रोक्ताभक्तानांशुभवृद्धये ।
काञ्चनी राजसी ताम्री पार्थिवी शैलजाः स्मृता
वार्क्षी च लेख्यजा चैति मूर्तिस्थानानि सप्तवै ।।
म० पु० १३१।२–३.
७. आयुः श्रीबलजयदा दारुमयी मृण्मयी प्रतिमा तथा ।
लोकहिता च मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ।।
रजतमयी कीर्तिकरी प्रजाविवृद्धिं करोति ताम्रमयी ।
भू लाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ।।
वृ० सं० ६०।५१–५८.
८. शुक्रनीति ४।४।७२.

समराङ्गण सूत्रधार में प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त सात प्रकार के द्रव्यों का प्रसङ्ग प्राप्त होता है––

प्रतिमानामथ ब्रूमो लक्षणं द्रव्यमेव च ।
सुवर्णरूप्यताम्राश्मदारुलेख्यानि शक्तितः ।।
चित्रं चेति विनिर्दिष्टं द्रव्यमर्चासु सप्तधा ।[1]

डॉ० शुक्ल ने लेख्यानि के स्थान पर लेप्यान्रि शब्द अधिक उपयुक्त माना है ।[2] शिल्परत्न ग्रन्थ में सात प्रकार की प्रतिमाएँ बतायी गयी हैं ।[3] गोपाल भट्ट[4] ने सभी प्रतिमाओं को दो भागों में विभक्त किया है । प्रथम भाग में निम्न प्रकार की प्रतिमाएँ हैं––

१. चित्रजा––दीवालों तथा कपड़े पर चित्रित की जाने वाली ।
२. लेप्यजा––मिट्टी की बनी हुई ।
३. पाकजा––धातु की बनी हुई ।
४. शस्त्रोत्कीर्णा––धातु के बने शस्त्रों से तराशी हुई ।

दूसरे विभाजन के अन्तर्गत सात प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है––

१. मृण्मयी––मिट्टी की बनी हुई ।[3]
२. दारुजा––लकड़ी की बनी हुई ।
३. लौहजा––लोहा अथवा अन्य धातु की बनी हुई ।
४. रत्नजा––रत्न तथा अन्य मणियों की बनी हुई ।
५. शैलजा––पत्थर की बनी हुई ।
६. गन्धजा––चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों तथा अन्य तरल पदार्थों की बनी हुई ।
७. कौसुमी––पुष्पों से बनी हुई ।

बैनर्जी महोदय का मत है कि गन्धजा लेप्या के अन्तर्गत आ जाती है और कौसुमी क्षणिक प्रतिमा है। अन्य सभी प्रतिमाएँ भी किसी न किसी रूप में प्रथम विभाजन

---

१. सं० सूत्र० ७६।१.
२. डॉ० डी० एन० शुक्ल–वास्तुशास्त्र वा० २ पृ० ९६.
३. शिलामयं मणिमयं लौहं दारुमयं तथा ।
मृण्मयं मिश्रकं लेख्यं विम्बं सप्तविधं स्मृतम् ।।
शिल्प र० २।२५–२६.
४. हरिभक्ति विलास विला० १८.

में मिल जाती हैं। सभी धातुओं की बनी प्रतिमाओं को उन्होंने पाकजा माना है।[1] अतः उन्हें प्रथम विभाजन ही मान्य है।[2] राव महोदय ने लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, बहुमूल्य मणि तथा दो या दो से अधिक मिश्रित धातुओं को प्रतिमा के द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त ईंट, केडिशर्कर (चूने से मिला हुआ एक पदार्थ) तथा दन्त को वे अन्य विद्वानों के आधार पर बढ़ा लेते हैं।[3]

पहले श्रीमद्भागवत में वर्णित आठ प्रकार की प्रतिमाओं का जो प्रसङ्ग दिया गया है[4] उसमें लौही प्रतिमा से तात्पर्य लोहे तथा अन्य सभी धातुओं से बनी हुई प्रतिमाओं से है और 'लेख्या' का तात्पर्य गन्धजा अथवा लेप्या प्रतिमाओं से है।

मिट्टी:––प्रतिमा बनाने में मिट्टी का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक होता चला आ रहा है। प्राचीन कलाकारों के सम्प्रदाय में कुम्भकार, स्वर्णकार, लोहार आदि प्रसिद्ध जातियाँ हैं। ये विश्वकर्मा के वंशज कहे जाते हैं। कुम्भकार तो अब भी मिट्टी की प्रतिमाएँ बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं। आज भी विभिन्न प्रकार की सुन्दर मृण्मयी प्रतिमाओं के साथ दीपावली के अवसर पर गणेश, लक्ष्मी की प्रतिमाओं की उपासना होती है। उत्तरप्रदेश में मिर्जापुर में मृण्मयी प्रतिमा बनाने का केन्द्र है जो अत्यन्त सुन्दर देवों की ही प्रतिमा नहीं वरन् महापुरुषों, पशुओं एवं पक्षियों की प्रतिमाएँ बनाता है।

मिट्टी की बनी हुई प्रतिमाएँ[5] दो प्रकार की हैं––

१. अपक्व प्रतिमाएँ और
२. पक्व प्रतिमाएँ।

अपक्व प्रतिमाएँ अत्यन्त प्राचीन काल से प्राप्त होती रहीं। मोहेन्जोदड़ो में प्राप्त होने वाली इन प्रतिमाओं को डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[6] ने दो भागों में विभक्त किया है––

१. मनुष्य तथा पशुओं की प्रतिमाएँ––यह भी पुरुष तथा स्त्री भेद से दो प्रकार की हैं।
२. स्त्री प्रतिमाएँ।

---

१. बैनर्जी–जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २१२.
२. बैनर्जी–जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २०९.
३. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं० १, भा० १, भू० पृ० १९.
४. श्रीमद्भा० ११।२७।१२.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० २ भा० २ पृ० २१२.
६. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० २३.

एक दो सिर वाले पुरुष की प्रतिमा प्राप्त हुई है। उसकी लम्बी तथा चिरी हुई आँखें, लम्बी नाक तथा चपटे, लम्बे आकार का मुख है। सम्भवतः इसी रूप ने ऋग्वेद में (द्विशीर्षा महादेव) दो शिर वाले देवता का रूप धारण कर लिया।[1] १९५० ई० में ह्वीलर महोदय ने एक पुरुष की प्रतिमा प्राप्त की जो कुछ विचित्र आकार-प्रकार की है।[2] शिव की एक प्रतिमा है जिसके सिर पर सींग बने हुए हैं। उनके समीप गैंडा, भैंसा, हाथी आदि अनेक पशु उपस्थित हैं। बैनर्जी महोदय का मत है कि यह मृण्मयी प्रतिमा शिव के पशुपति रूप को प्रकट करती है।[3]

कुछ मातृदेवियों की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं। एक देवी की प्रतिमा बहुत सुन्दर तथा सजी हुई है। शरीर पर आभूषण हैं।[4] इसका आकार-प्रकार ऋग्वेद[5] में कही हुई महीमाता का ही रूप प्रतीत होता है। इनके साथ अनेक हाथी, वृषभ, गैंडे आदि पशुओं की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं।[6] बसाई (प्राचीन वैशाली) में एक ५½" ऊँची स्त्री की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह कमल के ऊपर खड़ी है। दोनों हाथ कमर पर हैं और वह कमल नाल पकड़े हुए है। इस प्रतिमा की यही विशेषता है कि स्कन्ध पर दोनों ओर दो पङ्ख हैं। कानों में कण्डल, गले में हार तथा हाथों में चूड़ियाँ हैं। कमर में मेखला है। प्रतिमा को दीवाल पर लटकाने के लिए उसमें दो छेद बने हैं।[7] यह प्रतिमा श्री लक्ष्मी के रूप से मिलती है।

कोसम में एक पुरुष की ऐसी ही प्रतिमा प्राप्त हुई। उसके भी स्कन्ध पीछे के दो पङ्खों से जुड़े हैं। शरीर पर आभूषण हैं। नीचे से उठे हुए दो कमल के पुष्पों पर उसके दोनों हथ उठे हुए हैं। यह प्रतिमा ५" लम्बी तथा ३¾" चौड़ी है और वह इलाहाबाद म्यूनिसिपल म्युज़ियम में अब भी रखी है।[8] कौशाम्बी से एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें दो स्त्री पुरुष एक साथ आलिंगन मुद्रा में पर्यङ्किका पर बैठे हैं। दोनों आकृतियाँ सुन्दर हैं और पैर सुन्दरता से बने हैं। प्रतिमा के तीन ओर नक्काशी बनी है। यह प्रतिमा लखनऊ म्युजियम में है।[9] कौशाम्बी

---

१. ऋ० वे० ४।५८।३.
२. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० २४.
३. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २१०.
४. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० २४.
५. ऋ०वे० ५।४७।१.
६. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट० पृ० २४.
७. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० ३१०.
८. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इडियन आर्ट पृ० ३११.
९. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इडियन आर्ट पृ० ३११.

से प्राप्त एक और स्त्री-पुरुष की प्रतिमा है। दोनों एक दूसरे के सामने वेत्रासन पर बैठे हैं। स्त्री के दाहिने हाथ में मदिरा का घट है। उसका बायाँ हाथ पुरुष के कंधे पर रखा है। पुरुष के दाहिने हाथ में मदिरा का पात्र और बाएँ में बाँसुरी है। दोनों के सिर पर विचित्र प्रकार के शिरोभूषण हैं। वे भरहुत के स्त्रियों के सिरों से साम्य रखते हैं। यह २" लम्बी और २६" चौड़ी है और इलाहाबाद म्यूजियम में है।[1] स्त्रियों की अनेक प्रतिमाएँ जो कोसाम से प्राप्त हुईं अब इण्डियन इन्स्टीट्यूट में हैं।[2] अहिच्छत्र में एक मुस्कराती हुई युवती की अपक्व प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह युवती विचित्र आभूषणों एवं वस्तुओं को सिर पर धारण किये है। पाँच फूले हुए पुष्प दाहिनी ओर तथा पाँच बायीं ओर निकले हुए छत्र के समान प्रतीत होते हैं। पूरा शरीर खूब सजा है। वह अङ्कुश, रत्नपात्र, दर्पण, परशु आदि धारण किये है। घुटनों के ऊपर का भाग खूब सजा है। यह मातृदेवी की प्रतिमा स्वीकार की गयी है। इसी प्रकार की प्रतिमा बनगढ़ में प्राप्त हुई है।[3] इसी प्रकार भीटा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, पहाड़पुर, महास्थान, लोथल आदि स्थानों में अनेक प्रकार की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जो विभिन्न प्रकार की हैं।

१९२६ ई० में आरकेलॉजिकल सर्वे के द्वारा राजशान टीलों की खुदाई की गयी। उसमें एक टेराकोटा का फलक प्राप्त हुआ जिस पर बोधिसत्व की प्रतिमा अङ्कित है। इसीमें श्री० के० एन० दीक्षित ने एक विष्णु की मिट्टी की प्रतिमा प्राप्त की। प्रतिमा के नीचे "भगवते वासुदेवाय" लिखा था।[4]

दूसरी प्रकार की वे प्रतिमाएँ हैं जिन्हें हम लेप्यानि शब्द के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं। समराङ्गण सूत्रधार में विशेष प्रकार से लेप्य बनाने का उल्लेख हुआ है। अतः इस प्रकार की लेप्यजा प्रतिमाएँ मिश्रित प्रकार की होती हैं, क्योंकि इसमें मिट्टी का लेप, बालू, भूसा, घोड़े-गाय के बाल, नारियल की जटा तथा पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े मिलाकर तैयार किया जाता है।[5] चित्रलक्षण[6] में भी इसी प्रकार के लेप का वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवत की लेप्यजा प्रतिमा सम्भवतः इसी ओर सङ्केत करती है।

---

१. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० ३१०.
२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल–इण्डियन आर्ट पृ० ३११.
३. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल–टेराकोटा फिगर्स आफ अहिच्छत्र–ऐन्शन्ट. इण्डिया न० ४ जनवरी, १९४८ पृ० ११०.
४. आइ० बु० ब्रु० स्क०..भूमिका पृ० ७.
५. समराङ्गण सूत्रधार ७३।३१–३२.
६. चित्रलक्षण पृ० ३०५–६.

शिल्परत्न[१] में दो प्रकार की प्रतिमाएँ बतायी गयी हैं—

१. आममार्तिक अथवा अपक्व, तथा २. पक्व

आममार्तिक प्रतिमाएँ मिट्टी की बनी हुई अपक्व प्रतिमाएँ होती हैं। 'सर्वप्रथम किसी तीर्थ, पवित्र क्षेत्र अथवा पर्वत, उद्यान अथवा किसी पवित्र स्थान से सफेद, लाल, पीली अथवा काली मिट्टी लाकर उसका खूब महीन चूर्ण बना लें। उस चूर्ण को जौ अथवा गेहूँ अथवा उड़द तथा गुग्गुल के चूर्ण में मिला दें। फिर पवित्र वृक्षों द्वारा प्राप्त हुए रस में उसे मिलाकर गीला कर लें। उसमें तेल तथा कपिला गाय का पञ्चगव्य डालें। उसे पन्द्रह दिन तक रोज साफ करें। फिर उसकी प्रतिमा बनाकर, सुखाकर एक महीने रखें।'[२], डा० बैनर्जी ने इस प्रकार के मिश्रित पदार्थ के विषय में कहा है कि यह पदार्थ साधारण मिट्टी से अधिक समय तक चलने वाला है।

हरिभक्ति विलास ग्रन्थ में भी इसी प्रकार के मिश्रण द्वारा मिट्टी की प्रतिमा बनाने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है किन्तु वह कुछ भिन्न है। पवित्र स्थान से मिट्टी लेकर उसमें बालू मिलायें। फिर खदिर, अर्जुन, सर्ज, श्री तथा कुटज वृक्षों की लकड़ी का चूर्ण मिलाकर दूध, दही तथा घी डालकर उसे एक महीने के लिए अलग रख दें। जब प्रतिमा बनाने वाली मिट्टी हो जाय तब बनावें।[३] यह मिश्रण गान्धार कलाकारों द्वारा तीसरी से पाँचवीं शताब्दी के बीच में प्रयोग में लाये जाने वाले पदार्थ से मिलता-जुलता है।[४]

श्रीमद्भागवत कृष्ण की मिट्टी की प्रतिमा का उल्लेख करता है जिसको बनाकर उद्धव बचपन में खेलते थे।[५] इसी प्रसङ्ग में भगवान् चन्दन, बालू तथा मणि द्वारा भी प्रतिमा बनाने का आदेश देते हैं।[६]

बालुकामयी प्रतिमा दो प्रकार से बनाकर आराधना की जा सकती है—

१. बालू पर आकार खींचकर तथा

---

१. शिल्परत्न १।४४–५४.
२. तीर्थक्षेत्राचलारामपुण्यदेशोद्भवा मृदम्।
शुक्लां रक्तां तथा पीतां कृष्णामादाय चूर्णयेत्॥
यवगोधूममाषाणां चूर्णानां गुग्गुलोरपि।
..............................।
तां मृदं मर्दितां पक्षं मासमात्रोषितां पुनः॥ शिल्परत्न १।४५–४७.
३. हरिभक्ति विलास वि० १८.
४. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २१०.
५. श्रीमद्भा० ३।२।२.
६. श्रीमद्भा० ११।२७।१२.

२. बालू की साकार प्रतिमा बनाकर ।
मनोमयी प्रतिमा में प्रतीक मानकर और मन में देवता के रूप का ध्यान कर पूजा की जाती है ।

श्रीमद्भागवत में एक और प्रकार की प्रतिमा का उल्लेख हुआ है जिसके लिए लेख्या[1] शब्द का प्रयोग हुआ है । प्रतिमा का यह रूप भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । अन्य वास्तु–शास्त्र के ग्रन्थों में जो आलेख्य का प्रयोग हुआ है वह सम्भवतः लेख्य प्रकार की ही प्रतिमा है । चित्रजा प्रकार की प्रतिमाएँ इसी के अन्तर्गत आ जाती हैं । श्रीमद्-भागवत में लेख्या के लिए चन्दनादि की प्रतिमाओं की ओर सङ्केत किया गया है । सम्भवतः ये चित्रमयी प्रतिमाएँ ही हैं अर्थात् लेपकर बनाने वाली हैं । शिल्परत्न में कुछ अन्य पदार्थों का भी उल्लेख हुआ है जो प्रतिमा निर्माण के लिए उपयुक्त हो सकते हैं । उनमें बालू, गोबर, पिष्ट पीठा–चावल के चूर्ण से बना हुआ, फल तथा मक्खन हैं । इन सब से बनी हुई प्रतिमाएँ अस्थायी ही रहती हैं अतः शीघ्र ही विसर्जन योग्य होती हैं–

सैकतं गोमयं पैष्टमान्नं गौलं फलात्मकम् ।
नावनीतं च लिङ्गानि त्यज्यतां प्रतिवासरम् ।।[2]

मिट्टी की पक्व प्रतिमाओं के भी अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं । विष्णु की एक प्रतिमा ढाका जिले में सामार स्थान के समीप प्राप्त हुई है । यह प्रतिमा मिट्टी के फलक के नीचे की ओर बनी हुई है । फलक पकी हुई मिट्टी का है । इस प्रतिमा में विष्णु की चार भुजाएँ हैं । उनके समीप में दाहिनी ओर गदा, देवी तथा बायीं ओर चक्र-पुरुष हैं । विष्णु के दो हाथ उन्हीं दोनों के सिर पर हैं । शेष दो हाथों में से दाहिने हस्थ में कमल पुष्प का दण्ड तथा बाएँ में शङ्ख है । इसी प्रतिमा के नीचे एक शिलालेख है जिसके वर्णों से स्पष्ट होता है कि यह सातवीं से आठवीं शताब्दी के बीच की प्रतिमा है ।[3]

लकड़ी —कला में लकड़ी का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है । ऋग्वेद में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि लकड़ी ही ऐसी वस्तु थी जिसकी सहायता से विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम इस सृष्टि की रचना की–

किम् स्विद् वनं क उ स वृक्ष
आस यतो द्यावा पृथिवी ।।[4]

---

१. श्रीमद्भा० ११।२७।१२.
२. शिल्परत्न १।५२–५३.
३. आ० बु० ब्र० स्क० पृष्ठ ८३–८४.
४. ऋ० वे० १०।८१।४.

अर्थात् किस वन की कौन सी लकड़ी से द्यावा पृथिवी बनायी जाय। यह सरलता से प्राप्त होने के साथ ही साथ बड़ी महावपूर्ण है। यज्ञ के अधिकांश कृत्यों की पूर्ति काष्ठ द्वारा ही होती थी। इसी से प्रतिमाकरण में इसका प्रयोग किया गया। डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने एक ऐसे गृह का उल्लेख किया है जो वृक्ष की शाखाओं तथा पत्तियों से निर्मित है और वह शाला-गृह नाम से प्रसिद्ध है।[1] प्रतिमा के लिए लकड़ी काटने के प्रसङ्ग अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। बृहत्संहिता के वनसम्प्रवेशाध्याय में वन में जाकर वहाँ से लकड़ी काटकर घर लाने और तत्पश्चात् उससे देवी-देवताओं की प्रतिमा बनाने का वर्णन हुआ है। इस युग में अनेक संस्कार तथा उत्सव किये जाते थे। ज्योतिषी द्वारा बताये हुए शुभ दिन में कलाकार वन से लकड़ी लेने जाते थे।[2] इसी प्रसङ्ग में उन अनेक वृक्षों की तालिका दी है जो प्रतिमा बनाने के लिए वर्जित हैं।[3] देवदारु, चन्दन, शमीक, मधूक के वृक्ष की लकड़ी ब्राह्मणों के द्वारा प्रतिमा बनाने के लिए ली जाती थी। अरिष्ट, अश्वत्थ, खदिर, बिल्व वृक्ष की लकड़ी क्षत्रिय लेते थे। जीवक, खदिर, सिन्धुक, स्यन्दन की लकड़ी से वैश्य प्रतिमा निर्माण करते थे। तिन्दुक, सर्ज, अर्जुन, आम्र, शाल की लकड़ी शूद्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती थी।[4] विष्णुधर्मोतर में दारु परीक्षा के अध्याय के अन्तर्गत वृक्षों की लकड़ी पर विचार किया गया है। इसमें पलाश, कोविदार, शाल्मलि, पिप्पल, वट आदि वृक्षों की लकड़ी को प्रतिमाकरण के लिए वर्जित बतलाया गया है।[5] नन्दन, स्यन्दन शाल, शिंशुप, खदिर, घव, किंशुक, हरिद्र, अर्जुन, कदम्ब आदि वृक्षों को इस उद्देश्य के लिए, उत्तम बताया है।[6] रक्तवर्ण के वृक्ष राजाओं के लिए, श्वेत वर्ण वाले वृक्ष ब्राह्मणों के लिए, पीतवर्ण वाले वैश्यों के लिए तथा कृष्ण वर्ण वाले शूद्रों के लिए उपयुक्त हैं।[7] कोटर युक्त, लताओं से बँधे हुए, कीड़ों द्वारा काटे हुए, अग्नि द्वारा जले हुए, वायु द्वारा गिरे हुए हाथियों द्वारा गिराये हुए, पक्षियों के घोंसलों से पूर्ण, मार्ग में लगे हुए, उद्यान में उत्पन्न हुए वृक्षों का परित्याग कर देना चाहिए।[8] मत्स्य पुराण 'शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते' कहकर लकड़ी की बनी प्रतिमा की पूजा को शुभ मानता है।

प्रतिमा निर्माण करने में लकड़ी का प्रयोग तो होता रहा किन्तु पत्थर तथा धातु का प्रयोग कम हुआ।। इसका कारण स्पष्ट ही है। लकड़ी की बनी प्रतिमाएँ अधिक दिन

१. शुक्ल, द्वि० ना०–हि० सा० आ० आ० भाग २ खं० ३ पृ० २११.
२. बृ० सं० वनसम्प्रवेशाध्याय ५८।४८–५८.
३. वही ५८।५९–६२.
४. वही ५८।५–८.
५. वि० धर्मो० ९१।३–८.
६. वही ९१।९–१०.
७. रक्तसारा नरेन्द्राणां शुक्लसारा द्विजन्मनाम्।
पीतसारा विशां शस्ताः, शूद्राणां कृष्णमध्यकाः ।। वि० ध० ८९।१२.
८. वि० ध० ८९।३–७.

तक स्थायी नहीं रह पाती । वे कीड़े, चूहे तथा दीमक द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं । साथ ही उनके रङ्ग भी खराब हो जाते हैं । 'हरिभक्ति विलास' में एक प्रतिमा–फलक का प्रसङ्ग प्राप्त होता है जो खदिर की लकड़ी का बना हुआ है और १२० अथवा १२५ अङ्गुल लम्बा है । इस प्रतिमा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर बने हैं । वेदी रत्नमयी है । उसी पर प्रतिमा स्थापित है ।[1] बैनर्जी महोदय ने इस प्रतिमा को बंगाल की 'काठामो' प्रतिमा का रूप बताया है ।[2] 'अंतगडदसाओ' ग्रन्थ में मोग्गरपाणि यक्ष की काष्ठ की बनी हुई प्रतिमा का उल्लेख हुआ है । यह राजगृह नगर के बाहर बनी हुई थी ।[3]

ढाका म्यूजियम में लकड़ी की बनी हुई अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं जो मुसलमान काल के पूर्व की हैं । एक विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है । इसमें विष्णु ध्यानमुद्रा में बैठे हैं । प्रतिमा दीमकों द्वारा नष्ट कर दी गयी है । बीच-बीच में ठीक किया हुआ काम पेबन्द की भाँति प्रतीत होता है ।[4] एक अन्य विष्णु की प्रतिमा है जो लकड़ी की है किन्तु पत्थर की प्रतीत होती है ।[5] यहीं पर विष्णु की एक खड़ी मूर्ति है किन्तु मौसम के प्रभाव से खराब हो जाने के कारण बीच से चिटक गयी है । प्रतिमा ४ फीट ४½ इन्च लम्बी और १ फीट ४ इन्च चौड़ी है और कृष्णपुर स्थान से प्राप्त हुई है ।[6] यहाँ गरुड़ की लकड़ी की प्रतिमा है वह अच्छी दशा में है और खराब नहीं हुई है ।[7] ढाका के पास अरियल नामक स्थान में एक लकड़ी का स्तम्भ प्राप्त हुआ है । इस पर बड़ी सुन्दर नक्काशी बनी है । स्तम्भ अब भी अरियल म्यूजियम में है । ये सभी प्रसङ्ग मुख्यतः लकड़ी के प्रयोग को स्पष्ट करते हैं । एक और स्तम्भ ढाका जिले के सोनरङ्गदोआब के उत्तर की ओर एक तालाब में प्राप्त हुआ है । स्तम्भ के मध्य में चार भुजा वाली विष्णु की मूर्ति बनी है । वे गोलाकार खुदे हुए बीच भाग में ध्यानासन मुद्रा में बैठे हैं । दो स्तम्भ इधर-उधर हैं । विष्णु के दो हाथ उनकी गोद में रखे हैं । दो हाथ ऊपर की ओर हैं जिनमें उनके आयुध हैं ।[8]

अब भी दक्षिण भारत में पुरी नामक स्थान में जगन्नाथ, बलराम तथा सुभद्रा की प्रतिमाएँ लकड़ी की प्रतिमाओं का ज्वलन्त उदाहरण हैं । तीनों प्रतिमाएँ मन्दिर के बीच में बनी हैं । हर बारह वर्ष बाद ये नयी बनायी जाती हैं और पुरानी प्रतिमाएँ मन्दिर

---

१. हरिभक्ति विलास वि० १८.
२. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २१०.
३. अन्त० द० अ० ६.
४. अ० बु० ब्र० स्क० पृ० १७–२२.
५. वही
६. बेनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २११–१२.
७. आ० बु० ब्र० स्क० पृ० ८३.
८. वही पृ० २२८.

की सीमा में ही एकान्त स्थान में गाड़ दी जाती हैं।[1] राव महोदय ने दक्षिण भारत में विष्णु के तिरुक्कोइलूर मन्दिर में स्थित त्रिविक्रम की प्रतिमा भी काष्ठ की बतलायी है।[2] बङ्गाल में अब भी अनेक साम्प्रदायिक तथा ग्रामदेवों की प्रतिमाओं की नित्य पूजा होती है। प्रतिमाएँ लकड़ी की हैं। इन्हें कुछ समय बाद रंगना तथा सजाना आवश्यक होता है।[3] ढाका जिले में घामराइ नामक स्थान में यशोमाधव के मन्दिर में विष्णु की लकड़ी की बनी हुई प्रतिमा यशोमाधव नाम से पूजी जाती है। प्रतिमा अत्यन्त गाढ़े और मोटे रङ्ग के पर्त से रंगी है जिससे उसकी सुन्दरता छिप गयी है। जुलाई के मास में रथोत्सव के समय अब भी अनेक व्यक्ति इस मन्दिर को देखने आते हैं।[4]

पत्थर—पत्थर अथवा शिला का प्रयोग प्रतिमा बनाने के लिए न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में अधिकता से होता रहा है। यूनानी कला में मुख्यतः पत्थर का ही प्रयोग हुआ है। भारत में भी पत्थर की प्रतिमाएँ सबसे अधिक प्राप्त होती हैं।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में शिलापरीक्षा भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य बतलाया गया है। विष्णुधर्मोत्तर में दारु के साथ-साथ शिला परीक्षण पर भी एक अध्याय प्राप्त होता है। उसमें चारों वर्णों के लिए चार वर्ण की शिलाओं का उल्लेख है। शुक्ल वर्ण की शिला ब्राह्मणों के लिए, रक्तवर्ण की क्षत्रियों के लिए, पीतवर्ण की वैश्यों के लिए तथा कृष्ण वर्ण की शिला शूद्रों के लिए अत्यधिक उत्तम मानी गयी है—

शुक्ला शस्ता द्विजातीनां क्षत्रियाणां च लोहिता
विशां पीता हिता कृष्णा शूद्राणां च हितप्रदा ।[5]

शुक्ल वर्ण की शिला सात्त्विकी, रक्त तथा पीतवर्ण की राजसी और कृष्ण वर्ण की तामसी कही गयी है।[6] प्रतिमा बनाने के लिए एक वर्ण वाला, देखने में सुन्दर, पृथ्वी में गड़ा हुआ, दृढ़, मृदु, मनोहर, कोमल, सिकताहीन, नदी के जल में पड़ा हुआ, वृक्ष की छाया में पड़ा हुआ तीर्थ स्थान से प्राप्त पत्थर चुनना चाहिये—

एकवर्णां समां स्निग्धां निमग्नां च तथा क्षितौ।
घातातिमात्रस्फुटनां दृढ़ा मृद्वीं मनोरमाम् ॥

---

१. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २१२.
२. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं० १ भाग १ भूमिका भाग पृ० ४९.
३. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २१२.
४. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० ८६.
५. वि० ध० ९०।२.
६. शुक्र नीति ५।४१-४२.

कोमलां सिकताहीनां प्रियां दृङ्मनसोरपि।
सरित्सलिलनिर्घृतां पवित्रां तु जलोषिताम्॥
द्रुमच्छायोपगूढां च तीर्थाश्रयसमन्विताम्।
आयामपरिणाहाढ्यां ग्राह्यां प्राहुर्मनीषिभिः॥[१]

सूर्य के ताप से जला हुआ, अन्य कर्मों में प्रयुक्त, क्षारयुक्त, छेदयुक्त, विचित्र बिन्दु तथा रेखा युक्त, टूटा हुआ पत्थर प्रतिमा बनाने के लिए नहीं लेना चाहिये।[२] यहीं पर एक 'विमल सयुताम्' अर्थात् विमल से युक्त शिला भी अग्राह्य बतलायी गयी है। विमल से तात्पर्य स्वच्छ से नहीं है। विमल तीन[३] प्रकार के कहे गये हैं––

१. लौह विमल,
२. कांस्य विमल तथा
३. हेमज।

किसी-किसी पत्थर में लोहे के समान, काँस्य के समान चमकीले तथा स्वर्ण के समान सुनहले अंश होते हैं। विमल शब्द का उन्हीं से तात्पर्य है। ये तीनों प्रकार के अंश जिस शिला में विद्यमान रहते हैं वह वर्जित शिला है। लौह विमल से युक्त शिला मनुष्यों का नाश करने वाली, कांस्य विमल वाली शिला जनमान को नष्ट करने वाली तथा हेम युक्त शिला दुर्भिक्ष तथा आपत्ति का प्रसार करने वाली है––

या लौहविमलैर्जुष्टा सा जनक्षयकारिणी।
कांस्याभविमलोपेता जनमानविनाशिनी॥
हेमेनयुक्ता दुर्भिक्षं तथा कुर्यादवग्रहम्।[४]

घर्षण करने, छेदने तथा काटने पर जिसमें मण्डल दिखलाई पड़े उस शिला को भी यत्न करके त्याग देना चाहिये। यह गर्भा शिला होती है।[५] शिला के गर्भ में कौन जीव अथवा क्या है इसका ज्ञान शिला के ऊपरी वर्ण से हो सकता है। यदि शिला मञ्जीठ के वर्ण की है तो उसके गर्भ में मेढक, पीतवर्ण की है तो गोधा, कृष्ण वर्ण की हो तो सर्प,

---

१. वि० ध० ९०।३-५.
२. अग्राह्यां ज्वलनालीढां तप्तां भास्कररश्मिभिः॥
.. ..
रेखामण्डलसंकीर्णां विद्धां विमलसंयुताम्॥ वि० ध० ९०।६-८.
३. विमलं त्रिविधं ज्ञेयं लौहं कांस्यं च हेमजम्॥ वि० ध ९०।८.
४. वि० ध० ९०।९-१०.
५. घर्षणे छेदने चैव मण्डलं यत्र दृश्यते।
सगर्भा तां विजानीयाद् यत्नेन च विवर्जयेत्॥ वि० ध० ९०।१०-११.

कपिल वर्ण की हो तो मूषक, अरुण वर्ण की हो तो बड़ी छिपकली विषखोपड़ा, गुड़ वर्ण, की हो तो पाषाण, कपोत वर्ण की हो तो छोटी छिपकली रहती है ।[१] तलवार के वर्ण की शिला के गर्भ में जल और भस्मवर्ण की शिला में बालुका रहती है।[२]

कुछ शिलाएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें बाहर कोई लक्षण नहीं रहता और गर्भ में प्राणी विद्यमान रहता है । ऐसी शिलाओं पर विभिन्न प्रकार के लेप करके जाना जाता है, यथा–ब्राह्मी, माहेश्वरी, शाक्री, वैष्णवी आदि शिलाओं पर बकरी के दूध का लेप करना चाहिये । यदि वह एक रात्रि में न सूखे तो उसे प्राणिगर्भा शिला जानकर छोड़ देना चाहिये ।[३] काशीश, पतिकाशीश शिला पर गाय के दूध का लेप करने से यदि शिला अनेक वर्ण वाली प्रतीत होने लगे तो उसे भी सगर्भा समझ कर नहीं लेना चाहिये ।[४] मुस्तक, करवीर, कुष्ठ, तालीसपत्र आदि पाषाण स्त्री के दुग्ध का लेप करने पर यदि चमक छोड़ने लगें (सिमसिमायते) तो उन शिलाओं के गर्भ में कालकूट विष विद्यमान समझकर हाथ से भी नहीं छूना चाहिये ।[५]

प्रशस्त शिला–विष्णुधर्मोत्तर श्वेतवर्ण की, कमल के समान वर्ण की, कुसुम (पीत वर्ण का विशिष्ट पुष्प) वर्ण की, काली मिर्च के समान काली, कपिल वर्ण की, मूंग के वर्ण की, कबूतर के वर्ण की तथा भौंरे के समान काली इन आठ प्रकार की शिलाओं को उत्तम शिलाएँ बतलाता है––

श्वेतश्च पद्मवर्णश्च कुसुमोषरसन्निभम् ।
पाण्डुरो मुद्गवर्णश्च कापोतो भृङ्गसन्निभः ।।
ज्ञेयाः प्रशस्ताः पाषाणाः अष्टावेते न संशयः ।[६]

इसके अतिरिक्त बिल्कुल काली और हीरे के समान श्वेत शिला धन-सम्पत्ति ,पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करने वाली है।[७] श्वेत वर्ण की शिला में यदि कृष्ण वर्ण के अथवा रत्नवर्ण

---

१. वि० धर्मो० ९०।११-१३.
२. आपो निस्त्रिंशवर्णाभेभस्मवर्णे तु बालुका । वि० ध० ९०।१३.
३. वि० ध० ९०।१५-१६.
४. वि० ध० ९०।१७-१८.
५. मुस्तकं करवीरं च कुष्ठं तालीसपत्रकम् ।
स्त्रीस्तन्यमिष्टैरेतैस्तु पाषाणं लेपयेद् बुधः ।।
एभिर्लेपितमश्मानं यदा सिमसिमायते ।
कालकूटं विषं तत्र न तं हस्तेन संस्पृशेत् ।। वि० ध० ९०।१९-२०.
६. वि० ध० ९०।२१-२२.
७. कृष्णवर्णा शिला या तु शुक्लां हीरकसंयुता ।
सा शिला श्रीकरी ज्ञेया पुत्रपौत्रविवर्धिनी ।। वि० ध० ९०।२२-२३.

के चिह्न हों तो वह दोषयुक्त शिला है।[1] श्वेत वर्ण की सभी शिलाओं में हीरे के समान वर्ण वाली शिला बहुत अच्छी मानी गयी है--

सर्ववर्णेषु शुक्लेषु प्रशस्तं हीरकं स्मृतम्।[2]

शिला की परीक्षा कर लेने पर शुभ दिन, शुभ मुहूर्त में जाकर स्थपति शिला को दुग्ध आदि से स्नान कराके पुष्प तथा दर्भ से पूजा करता था। रात्रि में उसी शिला के पास सोता था। यदि रात्रि में वह सुन्दर स्वप्न देखता था तो प्रातःकाल पूजादि सम्पन्न करके उसे ले आता था।[3]

हरिभक्ति विलास में तीन प्रकार के पत्थरों का उल्लेख हुआ है--

१. पुरुष पाषाण,

२. स्त्री पाषाण तथा

३. नपुंसक पाषाण।

देव प्रतिमा के निर्माण के लिए पुरुष पाषाण, पीठ के लिए स्त्री पाषाण तथा नीचे के भाग को बनाने के लिए नपुंसक पाषाण का प्रयोग करना चाहिये--

पुल्लिङ्गैः प्रतिमाकर्य्या स्त्रीलिङ्गैः पादपीठिका।

पिण्डिकार्थं तु सा ग्राह्या दृष्ट्वा या षड्लक्षणा॥[4]

शिल्परत्न भी इसी मत का अनुमोदन करता है।[5] इसके अतिरिक्त शिल्पग्रन्थों के आधार पर बैनर्जी महोदय ने चार प्रकार की शिलाओं[6] का उल्लेख किया है--

१. युवा, २. मध्या, ३. बाला तथा ४. वृद्धा।

इनमें से पूर्व की दो युवा तथा मध्या शिलाएँ प्रतिमाकरण के लिए उपयुक्त हैं। अन्य दोनों हानिकारी शिलाएँ हैं। जिन शिलाओं में पेबन्द-से रहते हैं वे भी आपत्ति को बढ़ाने वाली हैं।[7]

---

१. वि० ध० ९०।२३-२४.
२. वि० ध० ९०।२४.
३. स्वप्नार्थं च स्वपेत्तत्र दैवज्ञः स्थपतिस्तथा
 ....वि० ध० ९०।२५-२८.
४. हरिभक्ति विलास वि० १८.
५. बिम्बार्थं पुंशिला ग्राह्या पीठार्थं स्त्रीशिला तथा॥
 नपुंसकशिलापाद शिलार्थमखिले मता॥ शिल्परत्न १।२५-२६.
६. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ०, पृ० २१९.
७. वही।

कलाकारों द्वारा अनेक प्रकार के पाषाण प्रतिमा निर्माण में प्रयुक्त हुए। वे पाषाण निम्न प्रकार के हैं—

१. काला चिकना पत्थर,

२. लाल बालूदार मुलायम पत्थर,

३. चुनार का पत्थर,

४. भूरे रङ्ग का पत्थर,

५. राजमहल की पहाड़ियों से प्राप्त पत्थर तथा

६. बालूदार पत्थर ।

काला, चिकना पत्थर अत्यन्त चिकना, चमकदार होता है और इसी कारण गान्धार के कलाकारों द्वारा प्रतिमा निर्माण के लिए इसका प्रयोग हुआ है । यह सम्भवत: विष्णु-धर्मोत्तर का "भृङ्गसन्निभ:" कहा जाने वाला एकदम काला पत्थर है । इसके दो रूप प्राप्त होते हैं—

१. जो खूब काला और चिकना होता है तथा

२. जो पत्थर कुछ कम काला तथा कुछ-कुछ कपिल वर्ण का होता है ।

पहले प्रकार का पत्थर अधिक चिकना होता है। प्राचीन गान्धार पर्वत पर महेश्वर के साथ बैठी हुई भीमादेवी की प्रतिमा प्राप्त होती है ।[1] वाटर्स महोदय का मत है कि यहाँ पर उल्लिखित भीमादेवी की प्रतिमा पर्वत की काली चट्टान ही है जो देवी के वर्ण से बहुत कुछ मिलती है ।[2]

यह प्रसङ्ग गान्धार के सुन्दर काले, चिकने पत्थर की ओर सङ्केत करता है । मथुरा तथा सारनाथ में भूरे वर्ण के पत्थर का प्रयोग अधिक हुआ है । विष्णुधर्मोत्तर पाण्डुर वर्ण की तथा कृष्ण वर्ण की शिला को प्रशस्त बताता है । यही लाल मुलायम पत्थर तथा चुनार का काला पत्थर है । इन तीनों ही प्रकार के पत्थर का प्रयोग कलाकार अन्य वस्तुओं के साथ-साथ करते थे ।[3] कपिल वर्ण के पत्थर की अनेक प्रतिमाएँ भवानीपुर में प्राप्त होती हैं ।[4]

चूने का पत्थर दो प्रकार का है:—

१. श्वेत वर्ण का तथा

---

१. बैनर्जी जे० एन०—डे० हि० आ०, पृ० ८३.
२. वाटर्स—"ऑन युवान्च्वाँग" सं० १ पृ० २२१-२२२.
३. बैनर्जी जे० एन०—डे० हि० आ०, पृ० २१२.
४. आई० बु० ब्र० स्क०, पृ० १८-१९.

२. कपिल वर्ण का ।

विष्णुधर्मोत्तर में 'सर्ववर्णेषु शुक्लेषु प्रशस्तं हीरकं स्मृतम्' कहा गया है । सम्भवतः यही चमकने वाला श्वेत पत्थर है ।

राजमहल की पहाड़ियों से प्राप्त हुआ पत्थर राजमहल पत्थर कहलाता है । इस पत्थर की बनी हुई अनेक प्रतिमाएँ बङ्गाल में प्राप्त हुई हैं । इस पत्थर पर अनेक रेखाएँ होती हैं । यह ऊपर से चिकना तथा नीचे खुरदरा होता है । इस पत्थर में एक विशेषता है कि बालू का अंश नहीं होता । वह मुलायम तथा एक वर्ण का होता है । बङ्गाल के कलाकारों द्वारा विशेषरूप से इस पाषाण का प्रयोग किया गया । ढाका म्यूजियम में अब भी इस पत्थर की बनी अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं ।[1] विष्णुधर्मोत्तर भी कोमल, बालू शून्य, प्रिय, देखने में अच्छी, एक वर्ण की, चिकनी शिला को उत्तम बताता है ।[2] बालुका मिश्रित पत्थर का प्रयोग प्रतिमा निर्माण के लिए बहुत कम होता है । मिट्टी के समान प्रतीत होने वाला पत्थर देखने में सूर्य की किरणों से सूखी हुई काली मिट्टी के समान प्रतीत होता है । यह पत्थर सब से अधिक मुलायम होता है जिससे कलाकार को अपनी कला प्रदर्शित करने में सरलता होती है ।

प्रतिमा कला के क्षेत्र में जितनी भी प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं उनमें पत्थर का ही प्रयोग अधिक हुआ है ।

धातु—धातु की प्रतिमा के लिए श्रीमद्भागवत में केवल "लौही"[3] शब्द का प्रयोग हुआ है । किन्तु यत्र-तत्र देवों के रूप के सम्बन्ध में सोना, चाँदी आदि का भी प्रसङ्ग प्राप्त होता है । अतः लौही से तात्पर्य उन सभी धातुओं से है जिन्हें स्पष्ट नहीं किया गया है । शिल्परत्न में आठ प्रकार की धातुओं का वर्णन हुआ है जिनसे प्रतिमाएँ बन सकती हैं—

सौवर्णं राजसं ताम्रं पैत्तलं कांस्यमायसम् ।
सैसकं त्रापुपुषं चेति लौहं बिम्बं तथाष्टधा ।।[4]

प्रतिमा निर्माण के लिए सोने और चाँदी का प्रयोग अतीत काल से होता रहा है किन्तु इनकी बनी प्रतिमाएँ बहुत कम हैं । तैत्तिरीय संहिता[5] में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता

---

१. आइ० बु० ब्र० स्क०, पृ० ११.
२. वि० ध० ९०।३-४.
३. श्रीमद्भा० ११।२७।१२.
४. शिल्परत्न १।३८.
५. तैत्ति० सं० ५।२-६९.

है कि यज्ञ वेदी की नींव में अन्य अनेक वस्तुओं के साथ एक हिरण्यमय पुरुष को भी रखा जाता था। यह प्रथा अनेक स्थानों पर अब भी है कि भवन बनाने के समय एक ऐसा संस्कार किया जाता है जिसमें नींव के नीचे सिन्दूर से एक पुरुष की प्रतिमा बनाई जाती है। यह वास्तु पुरुष कहे जाते हैं। इनकी अनेक वस्तुओं द्वारा पूजा की जाती है।[१] शतपथ ब्राह्मण[२] के प्रसङ्ग के अनुसार आर० पी० चन्द महोदय ने इस स्वर्ण-पुरुष को प्रजापति बताया है।[३]

टी० ब्लोच महोदय ने लौरिया नन्दघर के समीप के श्मशान टीले की खुदायी के समय अन्य वस्तुओं के साथ एक छोटा स्वर्णपत्र भी प्राप्त किया जिस पर एक स्त्री की प्रतिमा बनी है। ब्लोच महोदय ने इस प्रतिमा का सम्बन्ध वैदिक काल से बताकर इसे पृथ्वी माता की प्रतिमा बताई है।[४] कुमारस्वामी ने भी इस स्वर्ण पत्र की प्रतिमा का उल्लेख किया है और पृथ्वी की प्रतिमा बता कर पिपरावा स्थान में प्राप्त होने वाले स्वर्णपत्र की स्त्री प्रतिमाओं के समान बताया है।[५] बैनर्जी महोदय ने स्वर्णपत्र पर बनी हुई शिव की लिङ्ग प्रतिमा का उल्लेख किया है जिस पर तीन आँखें अथवा केवल तीसरी आँख बनी रहती थी।[६] प्रतिमा के ऊपर सोने के पत्र चढ़ाने की प्रथा तो रही है किन्तु पूरी सोने की ठोस बनी हुई प्रतिमा प्राप्त नहीं हुई है। हाँ, विष्णु की एक ऐसी प्रतिमा का उल्लेख हुआ है जो चाँदी की बनी हुई है। यह प्रतिमा ढाका जिले में चुराइन नामक स्थान से प्राप्त हुई और इण्डियन म्यूज़ियम की आर्ट गैलरी में रखी हुई है। प्रतिमा एक शीशे के बने हुए केस में बन्द कर रखी हुई है और उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे अभी बनी हो। काँसे की बनी हुई बुद्ध की प्रतिमा सुल्तानगञ्ज से प्राप्त हुई है और अब बरमिंघम म्यूज़ियम में है।[८] इसी धातु की मञ्जुश्री की प्रतिमा बलाथम टीले पर मिली है और राजशाही म्यूज़ियम में है[९]। काँसे की प्रतिमाएँ नालन्दा, कुरकिहर, झवेरी, (पूर्वी स्थानों में), चम्ब, राजपूताना (उत्तरी भारत) तथा नागपट्टम्, मदुरा (दक्षिण भारत) आदि स्थानों में प्राप्त होती हैं।[१०]

---

१. बैनर्जी– जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ६१.
२. शतपथ ब्रा० ७।४।१।१५.
३. बैनर्जी– जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ६२.
४. जर्नल ऑफ बि० एण्ड उ० रिसर्च सोसाइटी भाग १३ पृ० १३०-१३२.
५. कुमारस्वामी– हि० आफ़ इण्डिया एण्ड इण्डो० आर्ट पृ० ४२.
६. बैनर्जी–जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ३६.
७. आ० बु० ब्र० स्क०, पृ० ८४.
८. बैनर्जी–जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २१२.
९. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २१३.
१०. वही।

काँसा कोई विशेष धातु नहीं है वरन् अनेक धातुओं को मिलाकर इसे बनाया जाता है। इसी कारण ऐसा कहा जाता है कि भारतीय कलाकार दसवीं शताब्दी के पूर्व इस धातु से परिचित नहीं थे क्योंकि उन्हें धातु गलाना नहीं आता था। इस कला को उन्होंने यूरोप से सीखा। किन्तु यह निराधार शङ्का भारतीय कलाकारों के मस्तक पर झूठा कलङ्क है। आगम ग्रन्थों[1] तथा विष्णुसंहिता[2] में इसका उल्लेख है। इसे मधुच्छिष्ट विधि कहते थे। इसके अतिरिक्त एक अष्टधातु नाम की विशिष्ट धातु का भी प्रयोग प्रतिमाकरण में होता है। यह पीतल की तरह होता है और सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँस्य, शीशा, टीन, त्रपुष इन आठ धातुओं को मिलाकर बनाया जाता है।[3] इस धातु की अनेक प्रतिमाएँ रङ्गपुर जिले में प्राप्त होती हैं। डा० स्पूनर[4] का इस विषय में कथन है कि अष्टधातु में इन्हीं आठ धातुओं के अंश रहते हैं। यह धातु देखने में भी सुन्दर लगती है। अत: इसी का प्रयोग प्रतिमाकरण के लिए होता होगा क्योंकि सोने, चाँदी का प्रयोग तो बहुत कम होता था।

फरीदपुर जिले में माजबाड़ी स्थान में एक इसी धातु का बना हुआ कमल प्राप्त हुआ है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कभी-कभी पीतल का अंश इस धातु में अधिक हो जाता था।[5] तिपरा जिले में एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जो पीतल की बनी हुई है।[6]

मणि–श्रीमद्भागवत् द्वारा कथित मणिमयी[7] प्रतिमाएँ बहुमूल्य मणियों से बनती थीं। शिल्परत्न में आठ प्रकार की मणियों का उल्लेख किया है जिनसे प्रतिमाकरण होता था––

स्फटिकं पद्मरागं च वज्रं नीलं हिरण्मयम्।
वैडूर्यं विद्रुमं पुष्यं रत्नविम्बं तथाष्टधा॥[8]

---

१. लोहजत्वे मधुच्छिष्टमग्निनाद्रिकृतं तु यत्। ––भू० कारणागम ११।५।४१.
लोह्यं च विशेषेण मधुच्छिष्टेन निर्मितम्॥ ––सुप्रभेदागम ३४।२१.
२. लोहे सिक्थमयीमर्चा............
सुवर्णादीनि संशोध्यविद्राण्याङ्गारवत्पुनः॥ वि० सं० पटल १४.
३. आ० ब० ब्र०स्क०, भूमिका पृ० २०.
४. स्पूनर––विष्णु इमेजेज़ फ्राम रङ्गपुर ऐ० रि० आ० अ० स० आफ़ इं० १९११-१२.
५. आ० बु० ब्र० स्क०, भूमिका पृ० २०-२१.
६. वही।
७. श्रीमद्० ११।२७।१२.
८. शिल्प र० १।३२.

राव महोदय ने इन्हीं मणियों का उल्लेख करते हुए स्फटिक दो प्रकार[1] का बतलाया है––

१. सूर्यकान्त तथा

२. चद्रकान्त ।

वैष्णव पुराणों में अनेक मणियों के प्रसङ्गों के साथ स्यमन्तक मणि का उल्लेख हुआ है। महाराजा सत्राजित् की भक्ति से प्रसन्न होकर सूर्यदेव ने उन्हें यह स्यमन्तक मणि प्रदान की थी।[2] यह मणि प्रकाश में दूसरे सूर्य के समान थी। उसे गले में धारण कर सत्राजित् भी सूर्य के समान प्रतीत होते थे। उनके सम्मुख कोई देख न सकता था।[3] जिस स्थान पर यह मणि रहती थी उस प्रदेश में दुर्भिक्ष, महामारी, ग्रह-पीड़ा, सर्प-भय नहीं रहता था। यह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी।[4] भवन निर्माण में भी वैदूर्य, पन्ना, पद्मराग, नीलमणि, मरकत, विद्रुम, स्फटिक आदि बहुमूल्य मणियों का प्रयोग होता था। द्वारका के भवनों की शोभा तो दर्शनीय थी। द्वारका में स्फटिक मणि तथा चाँदी के बने हुए नौ लाख महल थे। फ़र्श महामरकत मणि जटित थी।[5] कर्दम मुनि ने जिस विमान का अपनी स्वेच्छा से निर्माण किया था वह भी सब प्रकार के रत्नों की कला से पूर्ण था।[6] इसका विशेष उल्लेख आगे होगा। बर्मा के राजा थीबा के प्रासाद में लाल मणि की बनी हुई विशाल बुद्ध की प्रतिमा बनी है।[7] चिदम्बरम् में प्राप्त हुआ शिवलिङ्ग स्फटिक मणि का है और ९ इञ्च ऊँचा है।[8] डॉ० बैनर्जी का कथन है कि सब मणियों एवं रत्नों में स्फटिक ही ऐसी मणि है जिसका प्रयोग प्रतिमाओं में बड़ी चतुराई से किया गया है।[9]

प्रतिमा भेद

श्रीमद्भागवत में चल तथा अचल के भेद से प्रतिमाएँ दो प्रकार की बतायी गयी हैं––

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्।।[10]

---

१. राव० गो० ना०–ए० हि० आ० सं० १ भा० १ भूमिका पृ०, ४८.
२. श्रीमद्भा० १०।५६।३.
३. स तं विभ्रन् मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।। श्रीमद्भा० १०।५६।४.
४. श्रीमद्भा० १०।५६।११.
५. प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ।। श्रीमद्भा० १०।६९।६.
६. श्रीमद्भा० ३।२३।१३-१८.
७. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं०, १ भा० १ भूमिका, पृ० ४८.
८. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं०, १ भा० १ भूमिका, पृ० ४९.
९. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० २२३-२४.
१०. श्रीमद्भा० ११।२७।१३.

अचल प्रतिमा का नित्य आवाहन तथा विसर्जन नहीं करना चाहिये ।[1] चल प्रतिमाओं की पूजा-विधि में भी कुछ अन्तर एवं विकल्प है । इनका स्थान परिवर्तित होता रहता है और स्थायीपन नहीं होता।[2] बालू चन्दनादि की प्रतिमाएँ इसी प्रकार की हैं। चल प्रतिमाओं के आवाहन-विसर्जन के विषय में दो मत हैं—

१. कभी-कभी प्रतिमाओं का नित्य आवाहन तथा विसर्जन किया जाता है।

तथा २. कभी-कभी आवाहन-विसर्जन नित्य नहीं किया जाता ।

अतः यह उपासक के मन के आधीन है।[3] किन्तु बालुकामयी प्रतिमाओं का तो नित्य आवाहन तथा विसर्जन कर देना चाहिये, ऐसा आवश्यक आदेश है।[4] मिट्टी और चन्दन की चित्रमयी प्रतिमाओं को नित्य स्नान करवाना वर्जित है। उनको स्नान न करवा कर नित्य उनका मार्जन कर देना श्रेष्ठ है, परन्तु अन्य प्रतिमाओं को स्नान अवश्य करवाना चाहिये—

स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ।।[5]

मिट्टी की वेदी अथवा बालुकामयी प्रतिमा की पूजा करते समय मंत्रों द्वारा सब अङ्ग तथा उसके प्रधान देवताओं की यथास्थान स्थापना कर पूजा करनी चाहिये।[6]

अतः इन सभी चल प्रतिमाओं को ४ भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. वे प्रतिमाएँ जिनका नित्य आवाहन तथा विसर्जन करना उपासक की इच्छा पर निर्भर है। इसके अन्तर्गत चन्दन, मिट्टी की बनी हुई अथवा लिपी हुई प्रतिमाएँ आती हैं।

२. वे प्रतिमाएँ जिनका नित्य आवाहन तथा विसर्जन करना आवश्यक है। ऐसी प्रतिमाओं में बालुकामयी प्रतिमाएँ आती हैं। अतः यही सबसे अस्थायी एवं क्षणिक प्रतिमाएँ होती हैं।

३. वे प्रतिमाएँ जिनको स्नान कराया जा सकता है, जैसे—मिट्टी की आकार पूर्ण प्रतिमाएँ ।

---

१. उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ।। श्रीमद्भा० ११।२७।१३.
२. अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ।।
 श्रीमद्भा० ११।२७।१४.
३. श्रीमद्भा० ११।२७।१४.
४. वही ।
५. श्रीमद्भा० ८।१२।१४.
६. श्रीमद्भा० ८।१२।५६-५९.

५. वे प्रतिमाएँ जिनका केवल मार्जन ही हो सकता है। उनको स्नान कराना वर्जित है। इसमें मिट्टी एवं चन्दन की चित्रित प्रतिमाएँ आ सकती हैं इस प्रकार की ये सभी चल प्रतिमाएँ अस्थिर हैं।

अचल प्रतिमाएँ

इस प्रकार की प्रतिमाएँ स्थिर भी कही जाती हैं। इनका नित्य आवाहन तथा विसर्जन नहीं होता। उनकी स्थिति जैसी बन गयी वैसी ही सदैव बनी रहती है और उसी आकार एवं रूप में उनकी उपासना एवं अर्चना होती है––

उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥[१]

इसके अन्तर्गत पत्थर, लकड़ी, धातु तथा मणि की प्रतिमाएँ आ सकती हैं। इन प्रतिमाओं को नित्य प्रति स्नान करवाना आवश्यक होता है।[२] ये अचल प्रतिमाएँ भी चल और अचल के भेद से दो प्रकार की हो सकती हैं। पत्थर तथा धातु की कुछ प्रतिमाएँ मन्दिरों में स्थापित कर दी जाती हैं और वे वर्षों तक उसी स्थान पर उसी रूप में स्थिर रहती हैं। दूर दूर से चलकर व्यक्ति उनकी पूजा एवं उपासना करने आते हैं। ऐसी प्रतिमाएँ अचल होती हैं। किन्तु पत्थर, लकड़ी, धातु एवं मणि की बनी हुई कुछ प्रतिमाएँ ऐसी होती हैं, जिनके रूप, रङ्ग एवं आकार में तो साम्य होता है किन्तु वे एक स्थल पर स्थित नहीं रहतीं। उपासक इन्हें अपनी इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखकर तथा स्थापित कर पूजा कर सकते हैं। ये प्रतिमाएँ चल होती हैं और अधिक भारी नहीं होतीं।

राव महोदय के विचार से प्रतिमाएँ तीन प्रकार की होती हैं[३]––

१. चल, २. अचल और ३. चलाचल।

चल प्रतिमाएँ हल्की होती हैं और सरलता से सब स्थानों पर ले जाई जा सकती हैं। ये भी समय तथा आवश्यकता के अनुसार चार प्रकार की होती हैं––

१. कौतुक बेर––जिनकी नित्य अर्चना की जाती है।
२. उत्सव बेर––जिनकी किसी विशेष उत्सव के समय जनसमूह के बीच में पूजा की जाती है।
३. वलि बेर––जिनका नित्य भोग लगाया जाय।
४. स्नपन बेर––जिन्हें नित्य स्नान कराया जाय।

---

१. श्रीमद्भा० ११।२७।१३.
२. वही।
३. राव गो० नाथ ए० हि० आ० सं० १ भाग १ भूमिका भाग पृ० १७.

अचल प्रतिमाएँ मूल, विग्रह तथा ध्रुव बेर कहलाती हैं। यही श्रीमद्भागवत द्वारा कथित स्थिर अथवा अचल प्रतिमाएँ हैं। ये अधिकांशत: पत्थर की बनती हैं और मन्दिर के मध्य स्थान में स्थापित कर दी जाती हैं। ये विशाल तथा भारी होती हैं। राव महोदय ने ध्रुव बेर अथवा अचल प्रतिमाओं को तीन[1] प्रकार का बताया है--

१. स्थानक--खड़ी हुई प्रतिमा,

२. आसन--बैठी हुई प्रतिमा तथा

३. शयन—लेटी हुई प्रतिमा।

इनके विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत ही प्रतीत होता है। केवल वैष्णव प्रतिमाओं के अन्तर्गत इन तीनों के भी चार भाग हो जाते हैं--योग, भोग, वीर तथा आभिचारिक। इन सभी रूपों की विभिन्न उद्देश्यों से उपासना की जाती है।[2]

एक अन्य प्रकार से भी प्रतिमाओं का विभाजन राव महोदय ने किया है जिसके अन्तर्गत चित्र, चित्रार्ध तथा चित्राभास भेद आते हैं। जिसमें सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्पष्ट हैं वह चित्र, आधे अङ्गों का प्रदर्शन करने वाली चित्रार्ध तथा भित्ति, कपड़े एवं अन्य किसी वस्तु पर बनाई जाने वाली प्रतिमाएँ चित्राभास कहलाती हैं।[3] वैष्णव पुराणों में इन सभी प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है। सभी देवों की प्रतिमाएँ चित्र, शिव का पञ्चमुखी लिङ्ग[4] चित्रार्ध तथा बाणासुर की पुत्री उषा की सखी चित्रलेखा के द्वारा बनाये जाने वाले यदुवंशियों के चित्र[5] चित्राभास के उदाहरण हैं।

प्रतिमाओं को व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त रूपों में भी विभक्त किया जा सकता है। सम्पूर्ण प्रतिमा व्यक्त, केवल कुछ अङ्ग प्रदर्शन वाली व्यक्ताव्यक्त तथा शालग्राम एवं बाण लिङ्गादि अव्यक्त प्रतिमाएँ हैं।[6] आकार एवं रूप के आधार पर भी सौम्य तथा उग्र के भेद से दो प्रकार की प्रतिमाएँ हैं। सौम्य रूप वाली प्रतिमाएँ सुन्दर रूप वाली तथा सजी हुई होती हैं। उग्र रूप वाली प्रतिमाएँ लम्बी दाढ़ और नाखून वाली युद्ध के शस्त्रों को लिए हुए तथा गोल बड़ी खुली हुई भयानक आँखों वाली

---

१. राव गो० नाथ–ए० हि० आ० सं १ भाग १ भूमिका भाग पृ० १८.
२. वही।
३. वही।
४. वि० ध० ४८।२-६.
५. श्रीमद्भा० १०।६२।१८-२१.
६. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं० १ भाग १ भूमिका भाग पृ० १८.

होती हैं । उनके सिर के चारों ओर लपटें निकलती हुई होती हैं । कभी-कभी वे नर-मुण्ड की माला तथा अस्थियों से भी भूषित रहती हैं ।[1] विष्णु की विश्वरूप, नृसिंह आदि तथा शिव की कामसंहारक, गजहा तथा त्रिपुरान्तक मूर्तियाँ इसी प्रकार की हैं ।

आराधना एवं पूजा के विचार से प्रतिमाओं को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं——

१. उपकरण की आकाङ्क्षा रखने वाली तथा

२. उपकरण की आकाङ्क्षा न रखने वाली ।

कुछ प्रतिमाओं को सजाने के लिए अनेक प्रकार के उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है । स्नान, वस्त्र तथा आभूषण से कुछ प्रतिमाएँ सजाई जाती हैं किन्तु कुछ इस प्रकार की बनाई जाती हैं जो स्वतः सजी हुई होती हैं ।

मनोमयी प्रतिमा में प्रतीक की आवश्यकता होती है । सूर्यादि को प्रतीक मानकर जल-तर्पण द्वारा उपासना की जा सकती है जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं——

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ।।[2]

इस प्रकार पूजा की सामग्री द्वारा मूर्ति में, वेदी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में तथा हृदय आदि में भगवान् की पूजा हो सकती है ।

श्रीमद्भागवत में ऐसा प्रसङ्ग आया है कि मार्गशीर्ष मास में सभी व्रज की कुमारियाँ कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायनी देवी की उपासना करती थीं ।[3] प्रातःकाल होते ही यमुना में स्नान करने जाती थीं । स्नान करने के पश्चात् तट पर कात्यायनी देवी की बालुकामयी प्रतिमा बनाकर सुगन्धित पुष्पों के हार, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, अक्षत चढ़ाकर उस मूर्ति की उपासना करती थीं——

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्यां जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ।।
गन्धैर्माल्यैः सुरभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ।।[4]

---

१. राव गो० ना०–ए० हि० आ० सं० १ भाग १ भूमिका भाग पृ० १९.
२. श्रीमद्भा० ११।२७।१७.
३. हेमन्ते प्रथमे मासे नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ।। श्रीमद्भा० १०।२२।१.
४. श्रीमद्भा० १०।२२।२–३.

इस समय में भगवती महामाया महायोगिनी कात्यायनी से वे कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करती थीं ।[1] एक मास तक इसी प्रकार व्रत किया जाता था——

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ।।[2]

सम्भवतः यह प्रतिमा निर्माण की क्रिया नित्य होती थी और नित्य ही इसका विसर्जन हो जाता था। यही क्रम एक मास तक चलता था ।

उद्धव कृष्ण के परम भक्त हैं । अतः जब वे पाँच वर्ष के थे तभी से कृष्ण की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उपासना किया करते थे——

तन्नेच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया ।[3]

इसी प्रकार कृष्ण मृण्मयी तथा शिलामयी प्रतिमाओं का प्रसङ्ग देते हैं ।[4] बालक द्वारा तोड़े जाने वाले खिलौनों की भाँति कृष्ण द्वारा छोटी अवस्था में दैत्यों के नाश का प्रसङ्ग प्राप्त होता है । यहाँ मिट्टी के खिलौनों की ओर ही सङ्केत हुआ है ।[5] एक बार अम्बिकावन में भगवान् पशुपति तथा अम्बिका देवी की प्रतिमा की उपासना करने के लिए नन्द गोपों के साथ शिवरात्रि के दिन गये थे ।

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ।।
तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ।।[6]

यह प्रतिमा भी शिलामयी प्रतिमा प्रतीत होती है । जब रुक्मिणी का हरण हो जाता है उस समय जरासन्ध शिशुपाल को समझाता हुआ कहता है कि मनुष्य ईश्वर की इच्छा से उसी प्रकार दुःख भोगता है जैसे व्यक्ति के हाथ की कठपुतली नचाने वाले की इच्छा से नाचती रहती है——

यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहलेच्छया[7]

---

१. कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।। श्रीमद्भा० १०।२२।४.

२. श्रीमद्भा० १०।२२।५. ३. श्रीमद्भा० ३।२।२.

४. न ह्यम्भयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।। श्रीमद्भा० १०।४८।३१.

५. लीलया व्यनुदत्तांस्तान् बालःक्रीडनकानिव ।। श्रीमद्भा० ३।२।३०.

६. श्रीमद्भा० १०।३४।१–२.

७. श्रीमद्भा० १०।५४।१२.

इन प्रतिमाओं के साथ-साथ मनोमयी प्रतिमाओं के भी प्रसङ्ग अनेक स्थल पर प्राप्त होते हैं। भगवान् उद्धव को अग्नि एवं अग्निकुण्ड में उपासना करते समय अपने स्वरूप की स्थापना करने की विधि बतलाते हुए कहते हैं कि व्यक्ति को अग्नि के बीच तपाये हुए सोने के समान चमकती हुई मेरी उस मूर्ति का ध्यान करना चाहिये जो चार भुजाओं वाली हो और शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हो। शरीर पर पीताम्बर सुशोभित हो रहा हो। किरीट, कुण्डल, कङ्कण आदि आभूषण तथा श्रीवत्स एवं वनमाला हृदय पर सुशोभित हो।[1] यह भगवान् का वर्णन उनकी मनोमयी मूर्ति को स्पष्ट करने के साथ ही साथ स्वर्णनिर्मित मूर्ति की ओर भी सङ्केत करता है। इसके अतिरिक्त कृष्ण ने मुमुक्षु व्यक्तियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले अपने सुकुमार रूप का चित्रण किया है—

वह्निमध्ये स्मरेद् रूपं ममैतद् ध्यानमङ्गलम्।
शमं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घं चारुं चतुर्भुजम्॥
सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम्॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम्।
हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सं श्रीनिकेतनम्॥
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम्।
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभयायुतम्॥
द्युमत्किरीटकटकं कटिसूत्राङ्गदायुतम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम्॥[2]

यह भी भगवान् की मनोमयी मूर्ति ही है। इसे मन में ध्यान करने का आदेश दिया गया है।[3]

जब गोपिकाएँ कृष्ण के साथ रासक्रीड़ा करने चली गयीं उस समय एक गोपी अपने घर से बाहर न जा पायी। उसने जैसा कृष्ण का रूप देखा तथा सुना था उसी प्रकार के रूप का ध्यान मन में किया। उसका ध्यान जम गया और वही रूप उसके हृदय में स्पष्ट हो गया।[4]

---

१. तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः॥ श्रीमद्भा० ११।२७।३८—३९.
२. श्रीमद्भा० ११।२७।३७—४१.
३. सुकुमारमारमभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनोदधत्॥
श्रीमद्भा० ११।२७।४१.
४. श्रीमद्भा० १०।२३।३४—३५.

असुरों के शिल्पी मयासुर ने सोने, चाँदी तथा लोहे के तीन सुन्दर विमान बनाये जो देखने में पुर जैसे लगते थे––

स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरोप्यायसीर्विभुः ।।[1]

इसी प्रकार बहुमूल्य मणियों का प्रयोग भी होता था । कर्दम ऋषि ने अपनी पत्नी के साथ रहने के लिए एक सुन्दर विमान का निर्माण अपने तपोबल से किया था । उस विमान के खम्भे मणिमय थे ।[2] दीवारों में जहाँ-तहाँ रत्नजटित शिल्पकारी बनी थी । उसमें पन्ने की फर्श बनी थी । बैठने के लिए मूँगे की वेदियाँ थीं । हीरक जटित द्वार थे । हीरों की दीवारों पर लाल जड़े हुए थे ।[3] विमान में जहाँ-तहाँ कृत्रिम हंस, कबूतर तथा पुत्तलिकाएँ बनी हुई थीं जो सजीव लगती थीं––

हंसपारावतव्रातैस्तत्र निकूजितम् ।
कृत्रिमान् मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ।।[4]

द्वारका के स्फटिक मणि तथा चाँदी के प्रासादों में मरकतमणि से जड़ी हुई फर्श थी । उसमें हीरे तथा सोने की बनी हुई अनेक वस्तुएँ थीं ।[5] सोने के बने हुए रत्नजटित देव-मन्दिरों के कारण द्वारका की शोभा और बढ़ गयी थी ।[6] यहाँ पर देवालयों में प्रतिमा का उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी स्पष्ट है कि स्वर्णनिर्मित रत्नजटित मन्दिरों में प्रतिमा भी स्वर्णनिर्मित तथा मणिमयी ही होंगी । अन्तःपुर की रत्नजटित भित्तियों पर बनी हुई इन्द्र-नीलमणि की पुत्तलियाँ शोभायमान हो रही थीं––

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैडूर्यफलकोत्तमैः ।
इन्द्रनीलमयैः स्त्रीभिर्जगत्या चाहतत्विषा ।।[7]

कृष्ण ने सुदामा के लिए जो महल बनवा दिया था उसमें मणियों के सैकड़ों खम्भे थे । हाथीदाँत के बने हुए सोने के पत्र से मढ़े हुए पलङ्ग थे ।[8] स्फटिक मणि की दीवारों

---

१. श्रीमद्भा० ३।२३।१२.
२. सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।
सर्वद्धर्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ।। श्रीमद्भा० ३।२३।१३.
३. महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ।
द्वाः सुविद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ।। श्रीमद्भा० ३ २३।१७–१८.
४. श्रीमद्भा० ३।२३।२०.
५. श्रीमद्भा० १०।६९।५–६.
६. श्रीमद्भा० १०।६९।६–७.
७. श्रीमद्भा० १०।६९।६.
८. श्रीमद्भा० १०।८१।२७–२८.

पर पन्ने की पच्चीकारी थी । रत्ननिर्मित स्त्री-प्रतिमाओं के हाथों में रत्नों के दीपक जगमगा रहे थे—

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामरकतेषु च ।
रत्नदीपा भ्राजमाना ललनारत्नसंयुता ॥[१]

हाथीदाँत के बने हुए अनेक आकार-प्रकार वाले आसन रत्नजटित होने के कारण अधिक सुन्दर प्रतीत होते थे ।[२] रात्र महोदय द्वारा बताया हुआ वही दन्त द्रव्य है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है । रङ्ग-बिरङ्गे मणिमय छज्जों पर बने हुए मोर अत्यन्त भले मालूम होते थे ।[३] मोर नीला होता है अतः अवश्य ही ये मोर इन्द्रनीलमणि अथवा मरकत के बने हुए होंगे जिसका यहाँ उल्लेख नहीं हुआ है । मथुरा में भी जिस दुर्ग का निर्माण कृष्ण ने सबकी रक्षा के लिए करवाया था उसमें सोने के बने हुए अनेक महल थे । उन पर सोने के नक्काशीदार कलश थे जो रत्नजटित थे ।[४] स्वर्णनिर्मित वास्तुदेवता के मन्दिर के छज्जे रत्नजटित थे—

रत्नकूटैर्गृहैर्मैर्महामरकतस्थलैः ।
वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥[५]

इसके अतिरिक्त चित्रलिखित प्रतिमाओं को आलेख्यमूर्ति[६] कहा गया है । इसका प्रमाण चित्रलेखा द्वारा चित्रित की जाने वाली प्रतिमाएँ हैं ।[७] गोपियाँ अपने घरों में वास्तुदेवता की पूजा करती थीं ।[८] ये सम्भवतः चन्दन, पिष्ट, मिट्टी अथवा बालू द्वारा बनी हुई प्रतिमा ही होंगी ।

जिस समय दिति ने हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया उस समय सब स्थानों पर अपशकुन एवं अमङ्गल होने लगे । गायें इतनी डर गयीं कि उनके थनों से दुग्ध के स्थान पर रक्त निकलने लगा । बादल पीब की वर्षा करने लगे तथा देवमूर्तियों की आँखों से आँसू बहने लगे ।[९] भगवान् ने अपनी मूर्ति

---

१. श्रीमद्भा० १०।८१।३१.
२. दान्तैरासनपर्यङ्कैः.....श्रीमद्भा० १०।६९।१०.
३. श्रीमद्भा० १०।६९।१२.
४. श्रीमद्भा० १०।५०।५२-५३.
५. श्रीमद्भा० १०।५०।५४.
६. विस्रस्तवासः कबरवलयालेख्यमूर्त्तयः ॥ श्रीमद्भा० १०।४२।१४.
७. श्रीमद्भा० १०।६८।१८–२२.
८. गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान्
वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन ॥ श्रीमद्भा० १०।४६।४४.
९. व्यरुदन्देवलिङ्गानि......श्रीमद्भा० ३।१७।१३.

के दर्शन, पूजन, एवं सेवा, शुश्रूषा तथा स्तुति करने का आदेश दिया है[१] और मन्दिरों में प्रतिमा स्थापित करना उत्तम कार्य बतलाया है——

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चौद्यमः ।।[२]

इस प्रकार की प्रतिमाओं से युक्त मन्दिरों के निर्माण के साथ-साथ पुष्पवाटिका, बगीचा, क्रीड़ास्थल, नगर आदि बनवाने का आदेश दिया है ।[३] रुक्मिणी का जब विवाह सम्पन्न होने वाला था तो वे विवाह से पूर्व कुलदेवी की आराधना के लिए भगवती पार्वती के मन्दिर में अपनी सखियों के साथ गयीं ।[४] मन्दिर में जाकर वे अन्दर प्रवेश कर देवी के समीप गयीं[५] और वहाँ पर शङ्करजी, भगवती पार्वती तथा उनकी गोद में बैठे हुए गणेश को भी प्रणाम किया——

भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवमपत्नीं भवान्विताम् ।।
नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्यं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।[६]

यह शिव पार्वती की प्रतिमा थी और पार्वती की गोद में गणेश विराजमान थे ।

इन प्रतिमाओं के साथ ही साथ वैदिक, तान्त्रिक तथा मिश्रित अथवा क्रिया-योग इन तीन प्रकार की उपासनाओं का उल्लेख हुआ है ।[७] इन तीनों के द्वारा जो उपासना करता है उसे परलोक में अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति होती है । उपासक को सामर्थ्य के अनुसार सुदृढ़ मन्दिर बनवाकर उसमें भगवान् विष्णु की प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये । उसे नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा, बड़े-बड़े उत्सवों के समय होने वाली पूजा की व्यवस्था करानी चाहिये——

मदर्चा सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढ़म् ।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ।।[८]

यहाँ पर वर्णित प्रतिष्ठा, नित्यपूजा, यात्रापूजा, उत्सव पूजा के लिए प्रयुक्त प्रतिमाएँ ही राव महोदय द्वारा पूर्वकथित स्नपन बेर (नित्यपूजा की जाने वाली प्रतिमाएँ),

---

१. मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शमार्चनम् ।। श्रीमद्भा० ११।११।३४.
२. श्रीमद्भागवत ११।११।३८.
३. श्रीमद्भागवत ११।११।३९.
४. पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ।। श्रीमद्भा० १०।५२।५२.
५. आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।। श्रीमद्भा० १०।५३।४४.
६. श्रीमद्भा० १०।५३।४६.
७. वैदिकस्तान्त्रिकोमिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।। श्रीमद्भा० ११।२७।७.
८. श्रीमद्भा० ११।२७।५०.

उत्सव बेर (उत्सव के समय पूजी जाने वाली), कौतुक बेर (पूजा की जाने वाली), तथा ध्रुव बेर (मन्दिर में प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ) आदि हैं। मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का एकछत्र राज्य, मन्दिर की प्रतिष्ठा करने से त्रिलोकी का राज्य तथा पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इन तीनों कार्यों के सम्पादन द्वारा उपासक विष्णु की समानता को प्राप्त कर लेता है।[1]

———

१. प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ।।श्रीमद्भा० ११।२७।५३.

तृतीय परिच्छेद

प्रतिमा विज्ञान का विकास

मानव सभ्यता का इतिहास मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान एवं विचार-चिन्तन की कथा है। मानव विवेकी प्राणी है। वह सदा से अपने स्रष्टा तथा अपने हितैषियों के विषय में चिन्तन करता रहा। वह यह कभी न भूल सका कि देवों के साथ उसका ऐक्य है। मानव में विद्यमान मानवत्व उसी दैवतत्त्व का प्रतीक है। वह सदैव दैवतत्त्व से मिल जाने के लिए प्रयत्नशील रहा। इसी के फलस्वरूप उपनिषदों के "आत्मानं विद्धि" "तत् त्वमसि" सिद्धान्त प्रादुर्भूत हुए और मानव को दैवतत्त्व एवं आत्मतत्त्व का ज्ञान कराने में सहायक बने। मानव पूजा, उपासना, यज्ञ, भोग, तप आदि अनेक साधनों द्वारा परमतत्त्व को प्राप्त करने का सतत प्रयास करता रहा।

समाज में सभी व्यक्ति सदैव एक से नहीं रहे। कुछ ऐसे परम आध्यात्मिक व्यक्ति थे जो आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व तथा वास्तविक ज्ञान को समझ सकते थे। किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिनका खाना-पीना आनन्द मनाना ही जीवन का ध्येय था। वे अज्ञानी थे। उनका ध्यान इन पर न जम सका और उन्हें आत्मानुभूति के लिए किसी आधार की आवश्यकता हुई।

ध्यान को एकाग्र करने के लिए किसी न किसी आधार की अपेक्षा रहती ही है। प्रतिमा उसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। प्रतिमा का धर्म के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। धर्म मानव को लक्ष्य का बोध कराता है। लक्ष्य की सफलता उपयुक्त साधनों पर ग्राधारित रहती है। जब मनुष्य अपने मन को लक्ष्य पर केन्द्रित कर देता है, तभी साधन उसका मार्ग निश्चित करने में सहायक बनते हैं। आधारहीन विचार स्थायी नहीं हो पाते। इसी कारण प्रतिमाकरण की आवश्यकता हुई और अपने हृदय के विचार, उद्‌गार एवं भक्ति-भाव को इस केन्द्र पर केन्द्रित कर मानव आत्मविभोर हो उठा। इस प्रकार कला के सौन्दर्य के साथ-साथ प्रतिमा ध्यान को एकाग्र करने का भी आधार बनी। यही दो भावनाएँ मूलतः प्रतिमोपासना के मूल में निहित हैं।

प्रतिमा विज्ञान के लिए अंग्रेजी में "आइकोनोग्राफी" शब्द प्रयुक्त होता है। "आइकन" शब्द का तात्पर्य उस देवता अथवा ऋषि के रूप से है जो कला में चित्रित किया जाता है। ग्रीक भाषा में इसके लिए इकन (eikon) शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी अर्थ से समानता रखते हुए भारतीय अर्चा, बेर, विग्रह, तनु तथा रूप शब्द हैं। इन्हीं के माध्यम से भक्त एवं उपासक अपने भक्तिपूर्ण उद्‌गार अपने आराध्य देव

को समर्पित करता है। ग्रुण्डवेल (Griinwedel) महोदय ने इस कला का पूर्णत: सम्बन्ध धर्म से बतलाया है। उनका कथन है कि किसी भी कला का स्वच्छन्द विकास उस स्थान के व्यक्तियों की धार्मिक प्रवृत्ति पर आधारित है। भारतीयों के आचरण के मूल में धर्म विद्यमान है। अत: उसी की छाया कला पर भी दिखायी पड़ती है।[१] डेलासेता (Della Setta) ने अपने ग्रन्थ में इसी विषय पर विचार करते समय अनेक राष्ट्रों की कला का सम्बन्ध धर्म से बताया है।[२] फर्गुसन महोदय ने भरहुत, साँची तथा अमरावती के अवशेषों को देखकर कहा है कि इनके अधिकांश भाग धर्म पर आधारित हैं। वे प्राचीन समय में होनेवाली वृक्ष पूजा, प्रस्तर पूजा तथा सर्प पूजा की ओर सङ्केत करते हैं।[३] धर्म के साथ-साथ प्रतिमा कला, नीति, राजनीति तथा मनोरञ्जन से भी दूर न रह सकी। कालान्तर में सभी क्षेत्रों में इसकी अमिट छाप परिलक्षित होने लगी।

प्रतिमा कला के विकास की कथा भी अत्यन्त प्राचीन एवं रोचक है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के प्राप्त अवशेषों से इस विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्राप्त हुई प्रतिमाओं को देखकर विदित होता है कि उस समय कलाकारों का शरीर को सजाने की ओर अधिक ध्यान न था। धर्म के क्षेत्र में व्यक्ति अधिक व्यापक दृष्टिकोण वाले न थे। उस समय तक देवों के विविध अङ्ग-प्रत्यङ्ग, रूपों एवं आकारों का प्रसार न हुआ था। प्राप्त प्रतिमाओं एवं मुद्राओं के आधार पर ऐसा अनुमान किया गया है कि वे लोग पशुपति तथा देवी की पूजा करते थे। देवों की प्राप्त प्रतिमाओं में एक देवता की ऐसी प्रतिमा है जिसके सिर पर सींग हैं। उसका आकार तो मानव की भाँति है किन्तु मुख की मुद्रा कुछ भयानक है। उसके चारों ओर हाथी, गैंडा, चीता, वराह आदि अनेक पशु बैठे हैं। मार्शल महोदय ने इसे पशुपति शिव की प्रतिमा बतलायी है।[४] मजूमदार महोदय ने भी इस तीन सिर वाली प्रतिमा को शिव की प्रतिमा कहा है। वे अपने शिरों पर जो वस्त्र पहने हैं उनमें सींगें निकली हैं। शिव बीच में आसन पर पद्मासन मुद्रा में नेत्र बन्द किये बैठे हैं। उक्त विद्वान ने कहा है कि यह प्रतिमा शिव के तीन रूपों को प्रकट करती है––१. त्रिमुख, २. पशुपति तथा ३. महायोगी।[५] इन्होंने शिव की दो अन्य प्राप्त प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। दोनों प्रतिमाएँ नग्न हैं। एक प्रतिमा में शिव के तीन सिर हैं। वे शृङ्गयुक्त शिरोभूषण पहने हुए नीचे आसन पर बैठे हैं।[६] दूसरी प्रतिमा एक सिर वाली है। सिर

१. ग्रुण्डवेल –बु० आ० इण्डि० पृ० १–२.
२. डेला सेता–रेलि० एण्ड आर्ट पृ० १३.
३. फर्गुसन–ट्री एण्डस० इण्डि० पृ० १०४.
४. मार्शल–मो० एण्ड इण्ड० वै० सि० वा० १ पृ० ५९.
५. मजूमदार–वैदिक एज० पृ० १८६–८७.
६. मजूमदार–वैदिक एज० पृ० १८७.

पर पहने शिरोवस्त्र के सींगों के मध्य से फूल-पत्ती निकले हुए हैं। उनका कथन है कि यह शिव का दिव्य, शिकारी एवं किरात रूप है। सींगों के बीच से निकलती हुई फल-पत्तियाँ उनकी प्रजनन शक्ति की द्योतक हैं।[1] पुसालकर महोदय शिव को ही इस युग का प्रमुख देव स्वीकार करते हैं और उनका कथन है कि उनकी उपासना लिङ्ग तथा मानवीय दोनों रूपों में होती थी। अनेक ऊँचे लम्बे प्राप्त प्रस्तर इस बात की पुष्टि करते हैं।[2]

इस युग में देवी तत्व का भी प्राधान्य था ऐसा तत्कालीन प्राप्त प्रतिमाओं एवं मुद्राओं से अनुमान लगाया गया है। प्राप्त प्रतिमाओं में एक स्त्री प्रतिमा वृक्ष के नीचे बैठी है। उसके दोनों ओर दो पुरुष अञ्जलि बाँधे खड़े हैं। देवी का रूप सौम्य है। इसे विद्वानों द्वारा पृथ्वी देवी की प्रतिमा स्वीकार किया गया है।[3] यहाँ के प्राप्त खिलौनों में एक भयानक रूप वाली प्रतिमा है। उसके गले में मुण्डमाला है। अतः डॉ० अग्रवाल ने बाद में विकसित हुए काली अथवा चण्डिका रूप से इसकी समानता बतलायी है।[4] एक मुद्रा पर देवी की प्रतिमा बनी है उसके चारों ओर कुछ व्यक्ति अञ्जलि बाँधे हुए खड़े हैं, कुछ शिर झुकाये, हाथ जोड़े हुए झुके बैठे हैं। इसे मजूमदार महोदय ने ग्राम देवता की प्रतिमा बतलायी है। जिनकी उपासना प्रत्येक गाँव में होती थी।[5]

हड़प्पा की एक मुद्रा पर एक नग्न स्त्री की प्रतिमा बनी है। उसके उदर से एक वृक्ष निकला हुआ है। उसके समीप हाथ में खड्ग लिए हुए एक व्यक्ति खड़ा है और पास ही एक स्त्री ऊपर की ओर हाथ जोड़े सिर नीचा किये हुए बैठी है। मजूमदार महोदय ने इसे पृथ्वी देवी की प्रतिमा बतलायी है। जिन्हें बलि चढ़ाई जा रही है।[6] अतः स्पष्ट है कि संरक्षा, सुरक्षा, एवं कल्याण की भावना ही उपासना का उद्देश्य थी। इस काल के व्यक्तियों ने अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को विकसित मातृदेवी की उपासना प्रदान की। यह उसी क्षेत्र तक सीमित न रही वरन् बलूचिस्तान, पर्शिया, मोसोपोटामिया, एशिया माइनर तथा इजिप्त तक में फैल गयी। इन सभी संस्कृतियों में इसिस, इन्निमि (स्वर्ग की देवी) ईश्तर आदि नामों से अनेक देवियों की उपासना होती थी। इन्हीं के मध्य एक अह्निति नाम की देवी भी थी जो अदिति का ही दूसरा रूप थी।[7]

---

१. मजूमदार–वैदिक एज० पृ० १८७.
२. पुसालकर–प्राच्यवाणी–वा० १ पृ० २९–३१.
३. अग्रवाल–वा० श०–इण्डि० आर्ट पृ० २४.
४. वही पृ० २५.
५. मजूमदार–वैदिक एज० पृ० १८६.
६. वही पृ० १८६.
७. अग्रवाल–वा० श० इण्डि० आ० पृ० २५.

इस युग की वृक्ष पूजा भी अपनी अलग विशेषता रखती है जैसा कि प्राप्त हुई अनेक मिट्टी एवं ताँबे की मुद्राओं से स्पष्ट होता है। पूजा किये जाने वाले पशुओं को मजूमदार महोदय ने तीन भागों में विभक्त किया है[१]:—

१. धार्मिक पशु,

२. अर्धमानवीय पशु तथा

३. विशिष्ट पशु।

मोहन्जोदड़ो तथा हड़प्पा में प्राप्त हुई मुद्राओं पर अनेक पशुओं के आकार बने हुए हैं। अधिकांशतः मुद्राओं पर बैल के समान एक पशु की आकृति बनी है। उसके एक श्रृङ्ग है। उसके समक्ष पिंजड़े के समान बनी हुई वस्तु रखी है। स्टुअर्ट पिगॉट महोदय ने इसे रुद्र शिव का स्तम्भ होने का अनुमान किया है।[२] ऐसे बैल को श्रृङ्ग-वृष कहना अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार की मुद्राओं से यही अनुमान लगाया जा सकता है कि वृष ही रुद्र शिव का पवित्र पशु होगा। उसी ने कालान्तर में शिव के नन्दी का रूप धारण किया।

अनेक मुद्राओं पर हरिण का रूप भी चित्रित है साथ ही बैल की आकृति से मिलता हुआ रूप भी बना है। इन आकृतियों की पूजा भी व्यक्ति शुद्ध हृदय से करते थे। डॉ० अग्रवाल ने इस प्रकार की मुद्रा का सम्बन्ध शिव के कालान्तर में विकसित होने वाले मृगव्याध रूप में बतलाया है, क्योंकि इस रूप में वे हरिण को हाथ में धारण करते हैं।[३] कुछ मुद्राओं एवं बर्तनों पर छोटी-छोटी सींगों वाले मोटे स्वस्थ बैल की आकृतियाँ बनी हैं। बैठे हुए बैल की आकृतियाँ भी कुछ मुद्राओं पर बनी हैं। एक मुद्रा में तो खूब मोटे स्वस्थ बैल के समक्ष दो व्यक्ति अञ्जलि-बद्ध मुद्रा में बैठे हैं। इसके अतिरिक्त भैंसा, गैंडा तथा हाथी की आकृतियों वाली भी अनेक मुद्राएँ एवं खिलौने प्राप्त हुए हैं।[४]

यहाँ पर कुछ मुद्राएँ ऐसी प्राप्त हुई हैं जिन पर विशिष्ट आकृतियाँ बनी हुई हैं। एक मुद्रा पर एक मनुष्य की आकृति बनी है। उसके पैरों के स्थान पर खुर, सिर पर सींग हैं और भैंसे के समान उसके पूंछ है। वह एक दूसरे पशु से युद्ध कर रहा है जिसके शरीर का अधिकांश भाग चीते के समान है। उसके चारों ओर

---

१. मजूमदार—वै० ए० पृ० १८८.
२. स्टुअर्ट पिगॉट—प्री हि० इण्ड० पृ० १०२.
३. अग्रवाल वा० श० इण्डि० आर्ट पृ० ३६.
४. वही पृ० ३७.

अनेक पशु की आकृतियाँ बनी हैं ।[१] एक मुद्रा पर तीन सिर वाला एक पशु बना है । एक व्यक्ति उसके पास खड़ा है, एक हाथ जोड़े हुए झुका है । पशु का शरीर तीन पशुओं से मिलता है ।[२] उसका सिर और सींग हरिण (बारासिंघे) के समान है । ऊपर का शरीर बैल के समान है । नीचे का शरीर तथा पैर मनुष्य से मिलता है । मार्शल महोदय ने एक मुद्रा पर बनी हुई आकृति का तत्कालीन धार्मिक देवता होने का अनुमान लगाया है। मुद्रा पर अगूँठी की आकृति का गोल-गोल रूप बना है। उसके भीतर से छः सिर बाहर निकले हैं । सिर क्रमशः एक शृङ्ग, छोटे सींग वाले बैल, हरिण, चीता, गैंडा तथा हाथी के बने हैं । कुछ अस्पष्ट आकृतियाँ उसे चारों ओर से घेरे बैठी हैं ।[३] एक श्वेत पत्थर का बना हुआ पशु प्राप्त हुआ है । उसके भी एक सींग है। मजूमदार महोदय ने इसे कालान्तर में जाने वाले मत्स्यावतार का प्रतीक स्वीकार किया है ।[४] कुछ मुद्राओं पर मगर (घड़ियाल) की मुद्रा भी बनी है। सम्भवतः नदी की उपासना इसी रूप में होती थी। आज भी सिन्ध में प्रचलित घरियल सम्प्रदाय उसी का प्रतीक है। एक मुद्रा ऐसी प्राप्त हुई है जिस पर कोबरा सर्प बना है । उसके पास हाथ जोड़ कर बैठा हुआ एक व्यक्ति सर्प पूजा कर रहा है ।[५]

वृक्ष के नीचे खड़ी हुई, वृक्ष के बीच से निकलती हुई अनेक प्राप्त प्रतिमाएँ तत्कालीन वृक्ष पूजा की ओर सङ्केत करती हैं । एक मुद्रा पर एक वृक्ष बना है। उसके बीच से एक आकृति निकलती हुई है। समीप में दो व्यक्ति झुके बैठे हैं । डॉ० अग्रवाल ने इन्हें वृक्ष देवता स्वीकार किया है ।[६] कुछ मुद्राओं पर पीपल और बरगद के वृक्ष भी बने हुए हैं। इन दोनों ही वृक्षों को पवित्र एवं पूजनीय माना गया है । स्वस्तिक तथा एक पहिये के रूप में सूर्य की पूजा होती थी ।[७]

इस युग की उपासना के विषय में कीथ महोदय का कथन है कि यह युग कालान्तर में प्रादुर्भूत होने वाले सभी सम्प्रदायों की उपास्य प्रतिमाओं का मूल स्रोत एवं प्रारम्भिक अवस्था है ।[८] इनका यह कथन सत्य है क्योंकि इस युग की सभी प्रतिमाएँ एवं मुद्राएँ शैव, शाक्त सम्प्रदाय, वृक्ष-पूजा, सर्प-पूजा आदि को स्पष्ट करती है । आज भी शिव शक्ति की उपासना के साथ ही अश्वत्थ, बरगद, नीम,

१. अग्रवाल—वा० श० इण्डि० आर्ट पृ० ३७.
२. वही पृ० ३७.
३. मार्शल—मो० एण्ड इण्ड० वै० सि०—मुद्रा ३८३.
४. मजूमदार—वैदिक एज० पृ० १८८.
५. वही पृ० १८८–१८९.
६. अग्रवाल—वा० श० इण्डि आ० पृ० ३८.
७. मजूमदार—वै० ए० पृ० १८८.
८. कीथ—रे० एण्ड फि० वे०—वा० १ पृ० ५८.

आम्ल आदि वृक्षों की पूजा इसी युग का परिणाम प्रतीत होती है। मुद्राओं में चित्रित सभी पशु किसी न किसी देवता से सम्बद्ध हो गये हैं । मगर गङ्गा का वाहन बन गया है। अत: यह सभी धर्मों की शैशवावस्था थी जिसमें देवों को पाशवी एवं प्राकृतिक रूप प्रदान किया गया था। इस विषय में डॉ० चन्द महोदय का कथन है कि इस समय मनुष्यों की तथा मानवोत्तर प्रतिमाओं की उपासना खड़ी तथा बैठी हुई योग-मुद्रा में होती थी।[१] मैके महोदय ने इन प्रतिमाओं में से कुछ को साम्प्रदायिक देवता स्वीकार किया है।[२] किन्तु इन प्रतिमाओं को कोई साम्प्रदायिक देवता मानना मार्शल महोदय उचित नहीं मानते। उनका कथन है कि जब तक कोई पुष्ट प्रमाण, शिलालेख, लिपि आदि न प्राप्त हो तब तक अपना निश्चय बना लेना ठीक नहीं।[३] इण्डियन म्यूजियम में धातु के बने हुए कुछ अवशेष हैं जिनके विषय में कुछ विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि वे इसी युग के हैं किन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है।[४] अन्त में इस युग की उपासना के विषय में इतना ही कह देना उपयुक्त है कि धर्म के जिस बीज का वपन इस युग में हुआ कालान्तर में वही प्रतिफलित हुआ।

वैदिक काल आया। भारतीय आर्यों ने प्रकृति के विभिन्न अङ्गों में देव तत्त्व के दर्शन किये। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, सरिता, उषस् ये सब देवी-देवताओं के रूप में पूजे जाने लगे। जल के देवता के रूप में वरुण देव की उपासना होने लगी। इन्द्र अन्तरिक्ष के तथा अग्नि पृथ्वी के देवता स्वीकार किये गये। "सूर्यो आत्मा जगत: तस्थुशश्च"[५] के रूप में सूर्य जगत् की आत्मा बन गये। अनार्यों द्वारा पूज जाने वाले शिश्न देव की उपासना आर्यों को मान्य न हो सकी। इसी कारण अन्य देवों के साथ यज्ञ के समय शिश्नदेव का स्मरण वर्जित माना गया।[६]

वैदिक काल में प्रतिमोपासना होती थी अथवा नहीं इस विषय में अनेक मतभेद हैं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि वैदिक काल के व्यक्ति प्रतिमा पूजा नहीं करते थे। उनकी उपासना काल्पनिक एवं भावात्मक थी। प्रकृति के सौन्दर्य, वैभिन्य एवं वैचित्र्य से अभिभूत प्राणी भय एवं तन्मयता के कारण प्रकृति के विभिन्न रूपों की देवता के रूप में उपासना करने लगा। उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञ का आश्रय लिया गया। जिसमें आहुति देते समय वे उन विशिष्ट देवों के नाम से आहुति डालते

---

१. चन्द आर० पी०—मि० इण्डि० स्क० पृ० ९.
२. मैके—फ० एक्स० मो० वा० १ पृ० २५८–५९.
३. मार्शल—मो० एण्ड इण्ड० वै० सि० वा० १ पृ० ५९.
४. कै० हि० इण्डि० वा० १ पृ० ६१४ प्लेट १० आ० १७.
५. ऋ० वे० ६।७।१४, १।११५।१.
६. न यातव इन्द्र. . .शिश्नदेवापि गुऋतं न: ।। ऋ० वे० ७।२१।५.

थे। इस प्रकार यज्ञ की प्रधानता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । मैक्समूलर महोदय का कथन है कि वैदिक धर्म प्रतिमाओं से परिचित नहीं है। भारत में प्रतिमोपासना बाद में प्रारम्भ हुई।[1] विल्सन महोदय विष्णु पुराण की भूमिका में स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि वैदिककालीन उपासना काल्पनिक, भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थी। यज्ञ का प्राधान्य था। अतः सभी अपने घरों में यज्ञ कर आहुति देते थे। अतः उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर प्रार्थना एवं आहुति थी।[2] मेकडॉनल महोदय ने इस विषय पर विस्तृत अध्ययन एवं गहन चिन्तन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कह दिया है कि वैदिक काल के प्रारम्भ में प्रतिमोपासना का ज्ञान भारतीयों को नहीं था। देवों का स्वरूप काल्पनिक, एवं छायामात्र था। उनकी प्राकृतिक शक्तियों एवं कार्यों के आधार पर उन्हें मूर्त रूप दिया गया, जैसे-सूर्य के हाथ उनकी किरणें तथा आँखें भौतिक रूप हैं। अग्नि की जिह्वा, उनकी लपटों की प्रतीक हैं और किसी भी प्रकार की प्रतिमा का उदाहरण ऋग्वेद में प्राप्त नहीं होता है।[3] अपने इसी मत का स्पष्टीकरण उक्त विद्वान् ने अन्य अनेक स्थलों पर किया है। दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का प्रचार करने के साथ ही साथ मूर्तिपूजा का कट्टरता के साथ विरोध किया है। मूर्तिपूजा उन्हें भी मान्य न थी। उपासना के प्राकृतिक आधार को देखकर मजूमदार महोदय ने इसे प्रकृतिवाद के विकास का युग माना है और प्रतिमोपासना की भावना उन्हें भी मान्य नहीं है।[4] ब्लूमफील्ड महोदय कहते हैं कि वैदिककालीन व्यक्ति कलाकार की अपेक्षा तार्किक अधिक थे। इसी कारण तर्क के आधार पर उन्होंने देवों के रूप की अनेक प्रकार से कल्पना अवश्य की, किन्तु वे प्रतिमा की उपासना नहीं करते थे।[5]

उपर्युक्त मत से कुछ विद्वान् सहमत नहीं हुए। उन्हें ये मत मान्य न हो सके और उन्होंने इनका खण्डन किया। ऋग्वेद में देवों के लिए प्रयुक्त हुए दिवोनरस्[6] (अर्थात् आकाश के मानव) तथा नृपेशस्[7] (मानव के आकार वाले) शब्द उनके काल्पनिक रूप को नहीं प्रकट करते वरन् यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय अपने देवों को मानवीय आकार में स्थापित करते थे। ऋग्वेद में एक स्थल पर रुद्र की रँगी हुई प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। जिसमें वे शक्तिपूर्ण गठे अङ्गों वाले भूरे

---

१. मैक्समूलर—चि० ज० व० वा० १ पृ० ३८.
२. विल्सन, एच० एच०—वि० पु० भूमिका पृ० २.
३. मेकडॉनल—वैदिक माइथालोजी पृ० १७–१८.
४. मजूमदार—वै० ए० पृ० १११.
५. ब्लूमफील्ड—रे० आ० दि वेद पृ० ८९.
६. ऋ० वे० ३।४।५.
७. ऋ० वे० ३।४।६.

वर्ण के होने के कारण सुनहरे रँग से रंगे हुए हैं ।[१] वरुण को सुनहला कवच पहने हुए अपने आसन पर बैठे दिखलाया है । सभी अनुचर उनके चारों ओर बैठे रहते हैं—

विभ्रद्द्रापिं हिरण्यं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परिस्पश्शो निषेदिरे ।।[२]

यह प्रसङ्ग वरुण की प्रतिमा की ओर सङ्केत करता है । मरुत् की उपासना करते समय 'नु मन्वानः एषां देवान् अच्चर्ा'[३] कहकर मरुत् की अर्चा अर्थात् प्रतिमा का प्रसङ्ग दिया गया है । इसके अतिरिक्त वपुः तनुः रूप आदि अनेक प्रयुक्त हुए शब्द तत्कालीन प्रतिमोपासना की ओर सङ्केत करते हैं ।

इन्हीं आधारों पर डॉ० बोल्लेनसेन का यह निश्चय है कि वैदिककालीन व्यक्ति प्रतिमाओं से परिचित ही न थे वरन् उनकी पूजा भी करते थे ।[४] वेङ्कटेश्वर महोदय ने मैकडॉनल महोदय के मत का खण्डन बड़े विस्तार से किया है । उन्हें मेकडॉनल का मत मान्य नहीं है। उन्होंने अनेक विचार प्रस्तुत किये हैं ।[५] ऋग्वेद में कहा गया है कि पूजा के समय व्यक्ति इन्द्र और अग्नि को सजाते थे ।[६] एक अन्य स्थल पर प्राप्त "सूर्मयं सुषिरामिव"[७] प्रसङ्ग का अर्थ एक लम्बी नली है । बल्लन्त्यन (Ballantyne) महोदय ने महाभाष्य के अनुवाद में इसका तात्पर्य एक सुन्दर लौह प्रतिमा से बतलाया है ।[८] इसके अतिरिक्त इन्द्र, सुशिप्र, रुद्र, कपर्दिन् तथा वायु दर्शन योग्य कहे गये हैं । इन्द्र के लिए यह भी कहा गया है––

क इमाम् दशभिर्ममेन्द्रमं क्रीणाति धेनुभिः।
यदावृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ।।[९]

अर्थात् कौन मेरे इन्द्र को दस गायों में खरीदेगा । जब ये इन्द्र अपने वृत्र शत्रुओं को नष्ट कर देंगे तब हमें इन्द्र को फिर दे देवें । यह प्रसङ्ग बतलाता है कि शत्रुओं पर

---

१. स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूपउग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।।
ऋ० वे० २।३३।९.
२. ऋ० वे० १।२५।१३.
३. ऋ० वे० ७।६।१६.
४. मूर––ओरिजिनल संस्कृत टेक्सट वा० ५ पृ० ४५३–५४.
५. जरनल ऑफ आर० ए० यस० १९१६, १७, १८.
६. ऋ० वे० १।१२१।३.
६. ऋ० वे० ८।६९।१२.
७. बल्लन्त्यन––महाभाष्य अनुवाद पृ० २७.
८. ऋ० वे० ५।५२।१५.

विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्र की प्रतिमा की पूजा होती थी। सम्भवत: उस समय इन्द्र के लिए कोई उत्सव होता होगा जिसमें इन्द्र की प्रतिमा कुछ देकर किराये पर ली जाती होगी। मन्त्र का 'वृत्राणि' पद उन अनेक वृत्रों की ओर सङ्केत करता है जिन्हें इन्द्र मारते होंगे। इस प्रकार की प्रतिमाएँ इन्द्र की अत्यन्त प्रसिद्ध वृत्र-वध की कथा के आधार पर बनती होंगी। इस प्रसङ्ग के विषय में डॉ० कुमारस्वामी का कुछ भिन्न मत है। उनका कथन है कि 'वृत्राणि' पद का अर्थ उन अनेक शत्रुओं से है, जिनको मारने की इच्छा से इन्द्र के रूप का द्योतक कोई प्रतीक था उसकी पूजा की जाती थी। जिस प्रकार भरहुत में बोधिवृक्ष तथा पादुका बुद्ध की प्रतीक मानी जाती है उसी प्रकार यह प्रतीक भी इन्द्र का द्योतक था।[१] किन्तु वेङ्कटेश्वर महोदय इन्द्र की प्रतिमा को ही स्वीकार करते हैं।[२] यह प्रसङ्ग यद्यपि प्रतिमोपासना पर प्रकाश नहीं डालता किन्तु देवों की प्रतिमाएँ थीं यह अवश्य सिद्ध करता है।

यजुर्वेद[३] तथा अथर्ववेद[४] में देवताओं के दो रूपों का वर्णन हुआ है:—

१. अलौकिक एवं वास्तविक रूप तथा

२. शारीरिक आकार अर्थात् प्रतिमारूप।

कोई व्यक्ति पूजा करते समय किसी देव की प्रतिमा के समक्ष कहता है कि तुम अपने वास्तविक रूप से इसमें प्रवेश करो।[५] कोई कहता है कि इन्द्र को बनाने वाला कोई चतुर कारीगर होगा।[६] ये प्रसङ्ग इन्द्र के वास्तविक रूप को न बताकर प्रतिमा की ओर ही सङ्केत करते हैं। इस युग में कोई विशिष्ट प्रमुख देवता नहीं था जिसकी उपासना मन्त्रदृष्टा ऋषियों द्वारा हर समय होती हो। एक देवता जो एक मन्त्र में अत्यधिक शक्तिशाली बताया गया है दूसरे मन्त्र में उसे उतना शक्तिशाली नहीं बताया गया। यज्ञ की प्रधानता का युग था अतः सभी (क्रिया विशेष बहुल) अनेक क्रिया-कलापों द्वारा सांसारिक ऐश्वर्य-सुख-भोग की प्राप्ति की इच्छा करते थे (भोगैश्वर्य गतिं प्रति)। उपासकों में ध्यान समाधि की भावना न थी और न उनके देवता ही ध्यान योग का विषय थे।[७]

ब्राह्मण काल आया पूर्णतः यज्ञ को महत्ता दी जाने लगी। सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य यज्ञों के प्रकार, विधि, कार्य एवं उद्देश्यों से भरा है। यज्ञों के समय कुछ

---

१. कुमारस्वामी—हि० आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट पृ० ४२.
२. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ६६–६७.
३. यजु० वे० तै० सं० १।७।१२.
४. अथर्व वे० ७।३१.
५. स्वया तन्वा तनुमैरायात् तै० सं० १।७।१२.
६. इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भत–ऋ० वे० ४।१७।४.
७. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ५३.

देवों के चिह्न प्रतीक रूप में रखे जाते थे। मैकडॉनल महोदय ने कहा है कि अपने रूप तथा आकार के साम्य के कारण पहिया सूर्य का प्रतीक माना जाता था। बाजपेय यज्ञ के समय सूर्य के प्रतीक के रूप में सोने की तश्तरी रखी जाती थी।[१] यही सूर्य का तश्तरी एवं पहिये का मूल रूप कालान्तर में विष्णु का चक्र और बौद्धों का धर्मचक्र बना। यज्ञ के समय अग्नि की वेदी के पीछे स्वर्ण तश्तरी अथवा चक्र रखने की प्रथा ने ही कालान्तर में देवों के पीछे बनने वाली प्रभावली एवं शिरश्चक्र को जन्म दिया।[२] धीरे-धीरे याज्ञिक कर्मकाण्ड से व्यक्तियों का मन ऊबने लगा। वे यज्ञ में किये जाने वाले प्रपञ्च से सन्तुष्ट न हो सके और उन्होंने अपने को अन्य साधनों द्वारा सन्तुष्ट करना चाहा। अपने गृहस्थ जीवन के कार्यों को समाप्त कर वन में जाकर आरण्यक पढ़ने लगे। उपनिषदों का अध्ययन होने लगा। सभी ब्रह्मन् एवं आत्मन् का चिन्तन करने में लग गये। उपनिषदों में कहा गया है "न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।"[३] अर्थात् ब्रह्म की न कोई प्रतिमा है न रूप है और न इसे कोई नेत्रों से देख पाता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् का कथन है कि जिसका यश तथा नाम होता है उसकी प्रतिमा की आवश्यकता नहीं होती।[४] यद्यपि किसी देवता विशेष के नाम का यहाँ पर उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी सदृश शब्द का तात्पर्य प्रतिमा से ही है। ग्रुण्डवेल महोदय ने तो यहाँ तक कह दिया है कि ब्राह्मण एवं उपनिषद् साहित्य की भूमि कला के लिए बंजर है।[५] इस काल के धर्म को देखते हुए उनका कथन केवल कुछ अंश तक सत्य है. क्योंकि प्रतिमाओं की उपासना चाहे होती हो या न होती हो किन्तु इस साहित्य में प्रतिमाओं की ओर सङ्केत अवश्य हुआ है। षड्विंश ब्राह्मण में देवी प्रतिमाओं के रोने, हँसने, नृत्य करने, नेत्र खोलने तथा बन्द करने के प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं:—

देवायतनं कम्पन्ते दैव प्रतिमा हसन्ति।
रुदन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्ति उन्मीलन्ति च ॥[६]

भट्टाचार्य महोदय भी इन्हीं प्रसङ्गों के आधार पर उस युग में होने वाली प्रतिमा पूजा को स्वीकार करते हैं।[७] वैदिक प्रसङ्गों एवं सभी उक्त विद्वानों के मत-वैभिन्य को दृष्टि में रखते हुए राव महोदय ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि वैदिक काल में

---

१. मैकडॉनल—वैदिक माइथालोजी पृ० १५५.
२. कुमारस्वामी—हि० ऑफ इण्डिया एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट पृ० ४१.
३. कठ० उ० २।३।९.
४. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।। श्वे० उ० ४।१९.
५. ग्रुण्डवेल—बु० आ० पृ० १२.
६. षड० ब्रा० १०।५.
७. भट्टाचार्य बी० सी—इण्डि० इमे० वा० १ पृ० २९.

किसी न किसी अंश में प्रतिमोपासना विद्यमान थी और प्रतिमा निर्माण का आधार विभिन्न देवों में विद्यमान शक्ति एवं यश था।[१] यही सत्य भी है।

यास्क ने निरुक्त में इस विषय पर अधिक प्रकाश डाला है। वे देवों की प्रतिमा पर विचार करते हुए कहते हैं "आकार चिन्तनं देवतानाम्"[२] उन्होंने देवों का आकार दो प्रकार का बतलाया है।[३]

१. **पुरुषविधाः**—मनुष्यों के आकार से साम्य रखते हुए देव उनके कृत्य भी मनुष्यों से मिलते हैं। उनकी प्रशंसा अनेक मन्त्रों में हुई है।

२. **अपुरुष विधाः**—वे देवता जो मनुष्य के आकार अङ्ग-प्रत्यङ्ग से नहीं मिलते, जैसे–अग्नि, मरुत्, आदित्य, पृथ्वी, चन्द्रमस् आदि।

इस प्रसङ्ग के आधार पर चाँदा महोदय ने बीच का मत स्वीकार किया है, अर्थात् देवता मनुष्यों से मिलते भी हैं और साथ-साथ भिन्न भी हैं।[४] इस विषय में राव महोदय ने कहा है कि यह प्रसङ्ग इस वात को बतलाता है कि यास्क के समय में प्रतिमोपासना अधिक बढ़ गयी थी और देवों के अनेक रूप एवं आकार होने लगे थे।[५] फिर भी चाँदा महोदय का कथन है कि वैदिककाल के अन्त तक देवों ने वह रूप नहीं प्राप्त कर पाया था जो रूप रामायण, महाभारत तथा पुराणकाल में विकसित हुआ।[६]

सूत्रकाल में यज्ञ का महत्त्व कम होने लगा और मनुष्य के संस्कारों पर अधिक बल दिया जाने लगा। पूजा का महाव बढ़ा। वैदिक देवों के साथ-साथ अन्य देवों की उपासना प्रारम्भ हो गयी। इसी कारण अपेक्षाकृत इस युग में प्रतिमा की उपासना अधिक बढ़ गयी। पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा गया है कि देव प्रतिमाओं की ओर जाने पर वहाँ पहुँचने से पूर्व ही स्नातक को उतर पड़ना चाहिए।[७] यहाँ पर किसी विशिष्ट देवता के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। यदि कोई गृहस्थ अपनी कुटिया में ईशान, मीढुषी तथा जयन्त आदि देवों की प्रतिमाएँ स्थापित करे तो उसे स्थालीपाक विधि से नित्य पके हुए चावलों की हव्य देनी चाहिए। ऐसा

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० पृ० ५.
२. निरुक्त दैवतखण्ड ५।७.
३. वही ५।८–११.
४. चाँदा आँर० पी०–दी० वि० आफ आर्ट इन ईस्टर्न इण्डिया यम० ए० यस० आई० नं० ३० पृ० १–२.
५. राव गा० ना० ए० दि० आ० वा० १ भ० पृ० ५.
६. चाँदा आ० पी० यम० ए० यस० आई० नं० ३० पृ।२.
७. पार० गृ० सूत्र ३।१४।८.

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में आदेश दिया गया है।[१] हिरण्यकेशिन्[२] तथा शांख्यायन गृह्यसूत्र[३] भी इसी मत का अनुमोदन करते हैं। इस प्रकार पूरे वैदिककाल पर विचार करके हाप्किंस महोदय वैदिककाल के अन्त में प्रतिमा पूजा स्वीकार करते हैं।[४] अतः यह स्पष्ट है कि इस काल के प्रारम्भ में तो अवश्य प्रतीक रूप में देवोपासना होती थी किन्तु इस काल का अन्त होने तक प्रतिमोपासना से भारतीय आर्य पूर्णतः परिचित हो गये थे।

शनैः-शनैः याज्ञिक कर्मकाण्ड की महत्ता समाप्त भी होने लगी। यज्ञ करना अथवा करवाना सभी के लिए सरल न था। धन की न्यूनता के कारण सभी यज्ञ नहीं करवा पाते थे। धनाढ्य एवं सम्पन्न व्यक्ति ही यज्ञ द्वारा उपासना कर सकते थे। इसके साथ ही साथ जो उपनिषदों के आत्मचिन्तन का सिद्धान्त था वह भी सर्व-साधारण व्यक्ति नहीं कर सकते थे। अतः मोक्ष प्राप्ति की वह व्यवस्था भी सबको मान्य न हो सकी। वैदिक कर्मकाण्ड की हिंसा को समाप्त करने के लिए अहिंसा के पुजारी बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रसार हुआ। यद्यपि हिंसा से ऊबी हुई अधिकांश जनता इससे प्रभावित अवश्य हुई किन्तु उसे किसी आधार की आवश्यकता थी अतः उसका ध्यान जम न सका।

शीघ्र ही समाज में भक्ति की लहर फैलने लगी। भक्ति उपासना का माध्यम बनने लगी। भक्ति के लिए किसी आधार की आवश्यकता थी। अतः प्रतिमा उसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन बनी। सभी एकात्मिका भक्ति का आधार लेकर अनेक उपादानों एवं उपकरणों द्वारा मूर्त रूप में विद्यमान अपने देवों की उपासना करने लगे। यही प्रतिमा का मुख्य उद्देश्य बन गया। गौण रूप से अभिचार आदि कृत्यों के लिए भी प्रतिमा का प्रयोग होता था ऐसा राव महोदय का मत है।[५] किन्तु बैनर्जी महोदय उनके इस मत से सहमत नहीं, वे प्रतिमा को पूजा का मुख्य साधन मानते हैं।[६] प्रतिमा-करण में योग को भी अधिक महत्त्व दिया गया। योग की अनेक मुद्राएँ प्रतिमाओं में प्रदर्शित की गयीं। शुक्र नीतिसार में कहा गया है कि कलाकार को प्रतिमा ध्यानयोग की सफलता के अनुकूल बनाना चाहिए—

ध्यानयोगस्य संसिद्धैः प्रतिमालक्षणं स्मृतम्।
प्रतिमाकारकोमर्त्यो यथा ध्यानरतो भवेत्॥[७]

---

१. आप० गृ० सूत्र ७।१०।१३.
२. हि० गृ० सू० २।३।८।२–४.
३. शां० गृ० सू० २।१४।१४।१७.
४. हाप्किंस—रेलिजन ऑफ इण्डिया पृ० १५०.
५. राव० गो० नाथ० ए० हि० आ० वा १ भा० १ पृ० ८८.
६. वैनर्जी जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ८७.
७. शुक्रनी० ४।४.

इसी दृष्टि से कालान्तर में अनेक प्रतिमाएँ योग-मुद्रा में बनायी गयी। ध्यानी बुद्ध, ध्यानी जिन, योगासन विष्णु तथा शिव की योग दक्षिणामूर्ति इसी भावना के फली-भूत दृष्टान्त हैं।

भक्ति भावना की तन्मयता एवं एकाग्रता ने देवों का रूप बदल दिया। इन्द्र, वरुण, मित्र, यम, अग्नि आदि देव साम्प्रदायिक देव न बन सके। उनका महत्त्व भी कम हो गया और वे लोकपाल के रूप में माने गये। उनकी महत्ता का क्षेत्र सीमित हो गया।

रामायण के प्रसङ्गों से विदित होता है कि उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत में मन्दिरों की संख्या अधिक थी और प्रतिमोपासना भी अधिक होती थी। लङ्का के मन्दिरों की प्रतिमाएँ अपार सौन्दर्यपूर्ण थीं।[1] रावण स्वयं शिव भक्त था। वह सदैव अपने साथ शिव का स्वर्ण-लिङ्ग रखता था और किसी उपयुक्त स्थान पर रख-कर उसकी पूजा कर लेता था।[2] अश्वमेघ-यज्ञ के समय राम के द्वारा स्थापित की हुई सीता की सोने की प्रतिमा वैदिक धर्म के साथ-साथ प्रतिमा के महत्त्व की परि-चायिका है।[3]

महाभारत काल ऐसा आया जिसमें प्रतिमापूजा पर अत्यधिक बल दिया गया। तीर्थों के सम्बन्ध में अनेक प्रतिमाओं का वर्णन किया गया। सभी देवों से सम्बद्ध पवित्र तीर्थों का दर्शन कर वहाँ पर स्थित प्रतिमा की पूजा करने का आदेश दिया गया है। प्रतिमोपासना के महत्त्व को बढ़ाने के लिए अनेक यज्ञों का फल प्राप्त किये जाने का भी साथ-साथ उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ–पुण्डरीक तीर्थ में स्थित विष्णु की शालग्राम मूर्ति की पूजा करने से व्यक्ति पुण्य को प्राप्त करता है।[4] ज्येष्ठिल तीर्थ में विश्वेश्वर तथा उनकी पत्नी की प्रतिमा है जिसके दर्शन से मित्र वरुण के लोक की प्राप्ति होती है।[5] नन्दीश्वर की प्रतिमा के दर्शन करने से मनुष्य के सब पाप छूट जाते हैं–

नन्दीश्वरस्य मूर्तिं तु दृष्ट्वा मुच्यते किल्विषैः ॥[6]

---

१. वा० रा० ६।३९।४१.
२. यत्र यत्र च यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः
   जाम्बूनदमयं लिङ्गं स्थाप्य........
   रावणः अर्चयामास गन्धैश्चामृतगन्धिभिः ॥ वा० रा० उ० ७३।२९–३.
३. काञ्चनीं मम पत्नीं वा० रा० उ० ९१।५।१५.
४. शालग्राम इति ख्यातो विष्णुरद्भुतकर्मकः ॥ महा० ३।८४।१३४.
५. तत्र विश्वेश्वरं दृष्ट्वा देव्या सह महाद्युतिम् ।
   मित्रावरुणयो लोकानाप्नोति पुरुषर्षभ ॥ महा० ३।८।१३४.
६. महा० १३।२५।२१.

धर्मप्रस्थ के समीप मतङ्गाश्रम में स्थित धर्म की प्रतिमा का स्पर्श करने से वाजिमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है।[१] ब्रह्मा की प्रतिमा के दर्शन करने से राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है–

ततो गच्छेत् राजेन्द्र ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ।
तत्राभिगम्य राजेन्द्र ब्रह्माणं पुरुषर्षभ ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दति मानवः ।।[२]

इस प्रकार वैदिक धर्म के देवता तथा यज्ञ के फल की प्राप्ति सभी को अभीप्सित है। प्रतिमा के दर्शन, स्पर्श, उपासना से मित्र वरुण लोक की तथा अश्वमेधादि यज्ञों के फल की प्राप्ति इस बात को स्पष्ट करती है कि वैदिक धर्म के साथ-साथ समाज में प्रतिमा की उपासना अति महत्त्वपूर्ण होती जा रही थी। अन्य कालों में तो प्रतिमा की उपासना इच्छा का विषय बनी रही किन्तु इस काल में धर्म प्राप्ति का साधन मानी गयी। इससे सभी प्रतिमाओं एवं तीर्थों की पवित्रता एवं महत्ता का प्रसार हो गया। युधिष्ठिर द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में श्रीकृष्ण की पूजा इस बात को स्पष्ट करती है कि वैदिक यज्ञों का पूर्ण ज्ञान रखते हुए भी वे कृष्ण को अपना उपास्य देव मानते थे। महाभारत में ध्यानयोग पर अधिक बल दिया गया। नर-नारायण को तपस्या में रत देखकर नारद ने उनसे प्रश्न किया कि वे किसकी उपासना कर रहे हैं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि वे अपने प्रकृत रूप की उपासना कर रहे हैं।[३] यह अवतरण कृष्ण के ध्यानावस्थित रूप का द्योतक है। इस रूप में भक्त को प्रेरणा मिली और बाद में कलाकारों के द्वारा प्रदर्शित किये जाने वाले देवों के ध्यान रूप का माध्यम बना।

पाणिनि के समय से वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों का महत्त्व बढ़ गया। वैष्णवों के विष्णु और शैवों के शिव पूज्य देव माने गये। अपने-अपने सम्प्रदाय के विशिष्ट देवों के रूप में अनेक प्रतिमाओं की उपासना होने लगी।[४] प्रतिमाओं को सुन्दर एवं विशिष्ट बनाने के लिए उन्हें अनेक सिर, नेत्र तथा हाथों वाला प्रदर्शित किया जाने लगा। उनके मूल दो हाथ वरद तथा अभय मुद्रा में दिखाये जाने लगे। अन्य हाथों में अनेक आयुध प्रदर्शित किये जाने लगे जो उनकी शक्ति एवं व्यापकता के प्रतीक थे। राव महोदय का कथन है कि देवता के सभी आयुध किसी न किसी विशिष्ट शक्ति के द्योतक हैं।[५]

---

१. महा० ३।८४।१०२.
२. महा० ३।८४।१०३-१०४.
३. महा० स्त्री० ३३४।१४-४५.
४. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ भू० पृ० २५.
५. वही पृ० २६.

जिस प्रकार बुद्ध की पूजा बोधि वृक्ष, स्तूप द्वारा व्यक्त की गयी। उसी प्रकार ब्राह्मण प्रतिमाएँ भी शालग्राम, बाण, लिङ्ग तथा यन्त्र के रूप में प्राप्त होती हैं। धर्म तथा भक्ति के बढ़ने के साथ ही साथ इनका भी विविध प्रकार से निर्माण किया जाने लगा।[१] शालग्राम, वाण लिङ्ग तथा यन्त्र क्रमशः वैष्णव, शैव तथा शाक्त सम्प्रदायों से सम्बद्ध है। ऐल्लेन महोदय का कथन है कि भारत के विभिन्न भागों में फैले हुए पवित्र पत्थर साम्प्रदायिक देवताओं के रूप में पूजे जाने लगे और शनैः शनैः अनेक कथाओं एवं व्यापकता के आधार पर उन्हें अनेक नाम दिये जाने लगे।[२] पवित्र पत्थरों को पूजी जाने वाली प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रारम्भ होकर अब तक उसी रूप में बनी हुई है। शाक्तों का विश्वास है कि देवी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग भारत के विभिन्न भागों में जहाँ-जहाँ गिरे वहीं-वहीं पवित्र पीठस्थान बन गये। अब भी बहुत से पीठ-स्थानों में लाल वस्त्र से ढके हुए पवित्र पत्थर की पूजा देवी का कोई न कोई अङ्ग मानकर की जाती है। ह्वेनसाँग ने 'सियूकी' नामक ग्रन्थ में गान्धार के एक विशाल पर्वत का प्रसङ्ग दिया है। गहरा नीले वर्ण का पत्थर महेश्वर की पत्नी भीमादेवी की प्रतिमा के समान प्रतीत होता है। वहाँ के व्यक्तियों द्वारा यह उन्हीं की प्रतिमा मानी जाती है। इसी भावना से भारत के अन्य भागों के व्यक्तियों द्वारा भी इनकी पूजा की जाती है। इस पर्वत के नीचे महेश्वर का मन्दिर है। वाटर्स महोदय इस भावना में देवी के वर्ण से मिलते हुए पत्थर को ही कारण बतलाते हैं और इस साम्य को अधिक महाव न देकर इसे वे देवी की स्वयम्भूमूर्ति की उत्पत्ति अवश्य बतलाते हैं।[३] महाभारत में भीमादेवी का उल्लेख पञ्चनद प्रदेश में स्थित भीमास्थान के अन्तर्गत हुआ है।[४] राव महोदय ने इसी आधार पर शिव के स्वयम्भू लिङ्ग की उत्पत्ति बतलायी है। वृक्ष भी इस प्रभाव से न बच सके। बेल, निम्ब, आम, तथा तुलसी वृक्षों आदि की शैव तथा वैष्णवों द्वारा पूजा होने लगी।[५]

साम्प्रदायिकता एवं भक्ति के प्राबल्य की वृद्धि एवं विस्तार के साथ-साथ प्रतिमाएँ व्यक्तियों की जीविका का साधन बन गयीं। यह पाणिनि के "जीविकार्थे चाण्णे" सूत्र से सिद्ध हो जाता है। इस सूत्र के आधार पर ए० सी० कुमारस्वामी का मत है कि ये कोई कट्टर वैदिक देवों की प्रतिमाएँ नहीं थीं वरन् पूजा किये जाने वाले यज्ञ, नाग, वासुदेव, अर्जुन, कुबेर, धृतराष्ट्र, विरुपाक्षाव आदि की प्रतिमाएँ थीं।[६] पतञ्जलि ने पाणिनि के इसी सूत्र पर लिखे भाष्य में कहा है– अपण्य इति उच्यति

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ भू० पृ० २८-२९.
२. ग्रण्ट ऐल्लेन– दि इवो० आ० दि० आइ० आ० गा० पृ० ६८.
३. वाटर्स– आ० युवा० च्वां० वा० १ पृ० २२१-२.
४. महा० वन० ८२।८४-८५.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ वा० भू० पृ० २६.
६. बैनर्जी–जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ९४.

तत्रैदं न सिद्धयति । शिवः स्कन्दः विशाखः इति किं कारणम् मौर्यैहिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः । भवेत्तरसु नस्यात् ।[१] अर्थात् धन एवं स्वर्ण की इच्छा से प्रतिमाएँ बनती थीं ।

कौटिल्य के समय तक प्रतिमा का महत्त्व हर क्षेत्र में बढ़ गया था । कौटिल्य ने नगर के मध्य अपराजित, अप्रतिदन्त, जयन्त, वैजयन्त, शिव, वैश्रवण अश्विन् आदि देवों की तथा मदिरादेवी की मूर्तियाँ स्थापित करने का आदेश दिया है ।[२] पूजा के साथ साथ प्रतिमाएँ सुन्दरता एवं आकर्षण का भी साधन बनीं । ऐसी प्रतिमाएँ राजप्रासादों के अन्तःपुर के द्वार के चौखटों पर खुदी रहती थीं । इनकी पूजा नहीं होती थी वरन् ये सुन्दरता को बढ़ाने की माध्यम थीं ।[३] प्रतिमाएँ राजनीति से भी दूर न रह सकीं और शत्रुओं को पराजित करने का भी साधन बनीं । कौटिल्य ने ऐसी प्रतिमाओं तथा देवों की ध्वजाओं का (देवध्वजप्रतिमाभिर्वा) उल्लेख किया है जिनके रूप में शस्त्र, प्रणिधियों के द्वारा बाहर के तथा शत्रु-दुर्ग के अन्दर के जासूसों को दिये जाते थे । देव प्रतिमाओं का जुलूस भी निकलता था (दैवतप्रेत कार्योत्सवेषु) जिसके द्वारा शत्रु को हानि पहुँचायी जाती थी ।[४]

स्मृति काल में प्रतिमाओं का महत्त्व और अधिक बढ़ गया । प्रतिमाओं को हानि पहुँचाना पाप समझा जाने लगा । मनु ने पुल, मन्दिर की ध्वजा, स्तम्भ तथा प्रतिमाओं को नष्ट करने वाले व्यक्ति को सब ठीक करवाने तथा ५०० पण दण्ड देने का आदेश दिया है ।[५] वे देवताओं की छाया भी लाँघना पाप बताते हैं ।[६] यद्यपि प्रतिमाओं का आधिक्य था फिर भी देवालय में प्रत्येक पुजारी का यह धर्म था कि वह प्रतिमा की रक्षा करे । एक स्थान पर मनु कहते हैं:—

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तोवर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ।।[७]

अर्थात् वैद्य, देवताओं के पुजारी, माँस बेचने वाले व्यापारी, ब्राह्मण हव्यकव्य से वर्जित हैं । यहाँ पर जीविका के लिए देव-प्रतिमाओं की पूजा करने का निषेध किया गया है । यह इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यक्तियों के हृदय में देव प्रतिमाओं

१. महाभाष्य पृ० २३.
२. अपराजिताप्रतिहतो · · · · शिववैश्रवणाश्विश्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत् ।। कौटिल्य अर्थशास्त्र दुर्गनिवेश अध्याय
३. कौटिल्य अर्थशास्त्र अपसर्पप्रणिधि अध्याय २५.
४. वही अपसर्पप्रणिधि अध्याय. २८-३२.
५. मनु० ९। २८५.
६. मनु० ४।१३०.
७. मनु० ३।१५२.

के लिए अधिक सम्मान आता जा रहा था। प्रत्येक संस्कार के सम्पन्न होने के बाद देव-दर्शन आवश्यक था। इस प्रकार इस काल में भी वैदिक धर्म को मान्यता प्राप्त थी। साथ ही साथ प्रतिमोपासना भी होती थी। यति अथवा सन्यासी के लिए स्वाध्याय, यज्ञ, हवन तथा प्रतिमोपासन आदि की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। वह समस्त जीवों में परम तत्त्व को व्याप्त पाता है। उसे अपने विचारों को स्थिर करने के लिए किसी मूर्तरूप की आवश्यकता नहीं होती। वह ध्यान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है।

यद्यपि स्मृतियों ने वेदोक्त धर्म का ही आचरण करने का आदेश दिया है किन्तु साथ ही साथ प्रतिमा की उपासना द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति बतलायी है। इस युग में वैदिक यज्ञों को मानने का विश्वास समाप्त नहीं हुआ फिर भी संस्कारों एवं वर्णाश्रम-धर्म के समक्ष कम अवश्य हो गया। प्रतिमाओं का धार्मिक दृष्टिकोण से महत्त्व बढ़ गया और प्रतिमाएँ मानव के सत्पथ प्रदर्शन का हेतु बन गयीं।

पुराण काल आया। बादरायण व्यास ने अपनी मानसिक, आध्यात्मिक एवं कुशाग्र बुद्धि के आधार पर सम्पूर्ण वैदिक धर्म को एक नया रूप दिया। यह धर्म अन्दर से एक होते हुए भी बाहर से भिन्न प्रतीत होता था। समाज में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का महत्त्व अत्यन्त व्यापक हो गया। यही हिन्दुओं के त्रिदेव स्वीकार किये गये। इनमें से कोई देव किसी से कम न था। इस कारण अपनी प्रवृत्तियों एवं विषयसामग्री के आधार पर पुराणों का भी विभाजन हो गया। इसका पूर्व में कथन हो चुका है।

अवतारवाद पुराणों का प्रमुख वर्ण्य-विषय है। इसके द्वारा अन्य अनेक देवों का महत्त्व कम हो गया। बुद्ध को विष्णु का अवतार मानकर पुराणों ने बढ़ते हुए बौद्ध धर्म को समाप्त कर दिया। बुद्ध ने जहाँ एक नया धर्म बतलाकर सबको संसार में मध्यम मार्ग अपनाने का आदेश दिया वहाँ व्यासदेव ने भी वैदिक धर्म की रक्षा के लिए कम प्रयास नहीं किया। बुद्ध की विष्णु के अवतारों में गणना होने से पतित होते हुए वैदिक धर्म को बड़ा प्रोत्साहन मिला। वैदिक काल के व्यक्तिगत यज्ञ ने तीर्थों में होने वाली सामूहिक उपासना का रूप धारण कर लिया। तीर्थों के बढ़ते हुए महत्त्व से विविध मन्दिरों एवं प्रतिमाओं का अनेक प्रकार से निर्माण हुआ। किन्तु मुख्यत: हिन्दू त्रिदेववाद का पुराणों द्वारा यशोगान हुआ है। पुराण धर्म ने मुख्यत: वैष्णव सम्प्रदाय को जन्म दिया। वैष्णव धर्म शीघ्र ही उत्तरापथ आर्यावर्त तथा सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गया। आगमों में शिव के महत्त्व का वर्णन होने से दक्षिण भारत में शैव-सम्प्रदाय फैल गया। तन्त्रों के आधार पर शक्ति-धर्म प्रसारित हुआ। इस प्रकार पुराण,

---

१. मनु १२।१२१–११५.

आगम तथा तन्त्र साहित्य ने शक्तिशाली वैष्णव, शैव तथा शक्ति सम्प्रदायों को फैलाया और अनेक देव प्रतिमाओं की उपासना होने लगी।

पुराणों का मुख्य उद्देश्य देवोपासना है। यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति, सूर्य तथा गणेश आदि देवों की उपासना प्रचलित हो गयी। किन्तु प्रधानता ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को ही प्राप्त थी। पूर्व के बृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में वर्णित कमण्डलुधारी दो भुजा वाले चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में भिन्नता आ गयी। दो के स्थान पर उनके चार हाथ हो गये और उनमें दण्ड, स्रुव, स्रुक, पुस्तक, अक्षमाला आदि अनेक वस्तुएँ धारण करायी गयीं। विभिन्न पुराणों के इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। ब्रह्मा का यह ऐश्वर्य अधिक समय तक न रह सका। उनकी उपासना की समाप्ति के लिए शिव तथा सावित्री का शाप प्रमाण है। इन दोनों के द्वारा दिये शाप के फलस्वरूप ब्रह्मा की उपासना मन्दिरों में न हो सकी और ब्राह्म सम्प्रदाय शनैः शनैः समाप्त प्राय होगया।

इस युग में विष्णु का भी रूप बदल गया। वे दो, चार, आठ, सोलह, बीस तथा सहस्र भुजा वाले बताये जाने लगे। भुजाओं के आधार पर उनके आयुधों में भी वृद्धि हो गयी। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म के साथ-साथ शार्ङ्ग, धनुष, वाण, खडग, खेटक, आदि अनेक आयुध उनके हाथों में रहने लगे। उनके अनेक रूप हो गये। वेदों का सुपर्ण गरुत्मान् उनका प्रिय वाहन बना। खड़े, बैठे, लेटे अनेक रूपों में उनके दर्शन किये गये। भण्डारकर महोदय का मत है कि इन रूपों का आधार उपनिषद् के कुछ तत्त्व, गीता, सांख्य, योगादि दर्शन हैं।

शिव भी पुराणों की बढ़ती हुई भक्ति भावना से अलग न रहे। उनके सकल, निष्कल तथा मिश्रित ये तीनों रूप खूब पूजे गये। सकल अथवा लिङ्ग रूप के अन्तर्गत अनेक प्रकार के लिङ्गों का वर्णन हुआ। उनके शिव तथा अशिव दोनों रूपों के आधार पर शिव के अनेक रूप प्रतिमा में ढाले गये। सद्योजात, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और ईशान ये पाँचों मुख कला के अन्तर्गत शिव के प्रदर्शित किये गये। उनकी भुजाओं में भी वृद्धि हो गयी। उनके दो, चार, आठ, दस भुजाएँ बनायी गयीं शिव-शक्ति तथा हरिहर की एकता के आधार पर अर्धनारीश्वर तथा हरिहर प्रतिमाओं का रूप प्रस्तुत हुआ। इन सबके रूपों के साथ साथ पुराणों की विशिष्ट देवसम्बन्धी अनेक धार्मिक कथाओं ने भी प्रतिमा का रूप धारण कर लिया। सम्पूर्ण भारत में इन्हीं आधारों पर अनेक प्रतिमाएँ बनी, जो अभी तक भारतीयों की उपासना का माध्यम बनी हुई हैं। इन्हीं प्रतिमाओं का अध्ययन आगे के पृष्ठों में किया गया है।

---

१. भण्डारकर –वैष्ण०ए०शै०पृ० १०१.

चतुर्थ परिच्छेद

त्रिमूर्ति

त्रिमूर्ति की कल्पना अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक साहित्य से विदित होता है कि सृष्टि की प्राक्कालीन अवस्था में केवल जल ही था। उसी को जल, सलिल तथा आप् कहा गया। इसी आप् तत्त्व से प्रजा की उत्पत्ति हुई और वही विकसित होकर सृष्टि के रूप में परिणत हो गयी:-

आपो हवा इदमग्रे सलिलमेवास।
ता आकामयन्त कथन्नु प्रजाये महीति ।।[1]

साधारणतः आपः का अर्थ जलतत्त्व होता है किन्तु यहाँ पर आपः शब्द का वास्तविक अर्थ जलतत्त्व नहीं है, वरन् उस व्यापक तत्त्व से है जो सबके मूल में स्थित है। शतपथ ब्राह्मण ने इस तत्त्व की व्यापकता को पूर्णरूपेण स्पष्ट कर दिया है-

सा इदं सर्वमाप्नोद् यदिदं किञ्च यदाप्नोत् तस्मादापः ।।[2]

यह तत्त्व सब में व्याप्त है और सबको व्याप्त कर लेने के कारण इसे आपः कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसा ही उल्लेख हुआ है।[3]

सृष्टि में जिस स्वर्ण अण्ड की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई वह आपः तत्त्व की ही गर्भित अवस्था है और उसी के व्यक्त भाव का नाम हिरण्य है। वही स्वयम्भू है और महत् में वीर्य की स्थापना करने वाला है जिससे सत्य का जन्म होता है। इस सत्य को हिरण्यगर्भ सूर्य, त्रयी विद्या, याज्ञात्मिका विद्या अथवा सत्यनारायण आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है।[4] अतः सूर्य का तात्पर्य आकाश में स्थित स्थूल आग्नेय पिण्ड से न होकर विश्व के प्रथम अभिव्यक्त होने वाले तैजस् रूप से है। सूर्य, सृष्टि के अधिष्ठाता सत्यात्मक पुरुष का सर्वोत्तम प्रतीक है। विश्व में गुणातीत पुरुष का त्रिगुणात्मक रूप सूर्य कहा जाता है। वेदों में कहा गया है कि

---

१. शतपथ ब्रा० ११।१।६।१.
२. शतपथ ब्रा० ६।१।१।९.
३. गोपथ ब्रा० १।१२.
४. ऋ० वे० ४।५।७.

सूर्य के रूप में त्रयीविद्या तपती है ।[१] ऋक्, यजु: और साम ही त्रयी विद्या है और उस त्रयी विद्या के प्रतीक भूर्भुव: स्व: हैं—

भूर्भुवः स्वरिति सा त्रयी विद्या ।।[२]

इसी त्रयी विद्या की समष्टि को वैदिक भाषा में सत्य कहा गया है । सत्य ही सृष्टि का मूल है । सर्वत्र सत्य की महिमा परिलक्षित होती है । सत्य के बल से सूर्य तपता है । सत्य के बल से पृथ्वी स्थित है । सत्य परम धर्म है । स्वर्ग भी सत्य से अलग नहीं । वह सत्य के अधीन है । सहस्र अश्वमेघ यज्ञ के सम्पादन का पुण्य भी सत्य की समानता नहीं कर सकता ।[३] इसी सत्य की भावना का प्रदर्शन "सत्येनोत्त-मिताभूमिः सत्येनोत्तमिता द्यौ:"[४] मन्त्र करता है । यह सत्य ही स्थिति की सत्ता को व्यक्त करता है ।

प्रकृति की उपासना करने की प्रवृत्ति भारतीय आर्यों में वैदिक काल के प्रारम्भ से दिखायी देती है । मानव प्रकृति को सदा से अपने से अधिक शक्तिशाली मानता रहा और उसकी विचित्र शक्ति से अभिभूत हो गया । उसी के फलस्वरूप प्रकाश, विद्युत्, अग्नि, मेघ, वर्षा आदि प्रकृति के अनेक अङ्गों की उपासना का आरम्भ हुआ । शनैः शनैः इन सभी की देवी एवं देवता के रूप में उपासना होने लगी । मुख्यत: स्थानों के आधार पर तीन प्रकार के देवों की कल्पना हुई । पृथ्वी के देवता अग्नि, वायुमण्डल के इन्द्र तथा स्वर्ग के सूर्य माने गये । स्थान के आधार पर इन्हीं को प्रधानता दी गयी । इन तीनों में से प्रत्येक का सम्बन्ध ११ देवताओं से है ।[५] जो निम्नलिखित है—

पृथ्वी स्थानीय देवता[६]	अन्तरिक्ष स्थानीय देवता[७]	आकाश स्थानीय देवता[८]
१. अग्नि	१. इन्द्र	१. सूर्य
२. द्रविणोद	२. पर्जन्य	२. अश्विन्

१. सैषा त्रयी विद्या तपति ऋ० वे० ४।६।९.
२. जैमिनि उ० ब्रा० २।९।७.
३. सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी ।
सत्यञ्चोक्तं परमधर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।।
अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।। मार्क० पु० ९।४२-४८.
४. ऋ० वे० ९।५।११.
५. मैकडॉनल– बृहद्देवता (ह० ओ० सि०) अ० १-२.
६. बृ० दे० १।११९-१२०.
७. बृ० दे० १।१२१-२३.
८. बृ० दे० १।१२४-२६.

३. तनूनपात्	३. रुद्र	३. भग
४. नराशंस	४. वायु	४. पूषन्
५. इड़ा	५. मित्र	५. वृषाकपि
६. नक्त (रात्रि)	६. वरुण	६. विष्णु
७. उषा (प्रातः)	७. यम	७. अजैकपाद
८. त्वष्ट्र	८. अदिति	८. समुद्र
९. वनस्पति (अरण्य)	९. सवितृ	९. केशिन्
१०. स्वाहा कृति	१०. धातृ	१०. वसु
११. पृथिवी	११. इन्दु	११. संवत्सर

पृथ्वी स्थानीय सभी देवों की उपासना करने के लिए अग्नि का आश्रय लेना पड़ता था। इसी कारण सभी देवों के रूप में केवल अग्नि की उपासना प्रारम्भ हो गयी।[1] अन्तरिक्ष स्थानीय देवों में इन्द्र तथा आकाश स्थानीय देवों में सूर्य प्रमुख माने गये।

ब्राह्मण साहित्य में इन देवों का रूप पुनः बदल गया और उनका दूसरा नामकरण किया गया। सभी आकाश स्थानीय देवता आदित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए और उनकी संख्या १२ निश्चित की गयी। अन्तरिक्ष स्थानीय देवता रुद्र के नाम से विख्यात हुए और उनकी संख्या ११ बतायी गयी। पृथ्वी स्थानीय देवता वसु कहलाये और उनकी संख्या ८ कही गयी। इस प्रकार पूर्व के ३३ देवों की संख्या घट कर ३१ रह गयी और अग्नि तथा इन्द्र आदि देवों की महत्ता कम हो गयी। ३१ देवताओं की संख्या को कभी-कभी द्यौस् और पृथ्वी को मिलाकर तथा कभी वृषाकपि और प्रजापति अथवा अश्विन् को जोड़कर ३३ संख्या पूर्ण कर ली जाती थी।[2]

ब्राह्मण काल के आदित्य, रुद्र तथा वसु इन तीन देवों के समूह के आधार पर पौराणिक त्रिदेवों का स्वरूप निश्चित हुआ। यह कथा प्रसिद्ध है कि प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि को बढ़ाने की इच्छा से मरीचि आदि अपने छः मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। मरीचि के पुत्र कश्यप ने दक्ष की कन्याओं से विवाह करके आदित्य, दैत्य, दानव तथा पशु-पक्षियों को उत्पन्न किया। दक्ष की अन्य कन्याओं में से कुछ का विवाह अत्रि के पुत्र चन्द्रमा के साथ हुआ और शेष कन्याओं का विवाह धर्म के साथ हो

---

१. आइ० आ० ब्र० स्क० पृ० ७४.
२. आइ० आ० ब्र० स्क० पृ० ७५.

गया। रुद्र तथा वसु धर्म के पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार आदित्य, रुद्र और वसु की गणना विशिष्ट देवों में होने लगी।

पौराणिक काल आते-आते वैदिक आदित्य, रुद्र तथा वसु का महत्त्व कम हो गया। पुराणों के देवतावाद के समक्ष इन्होंने अपना अस्तित्व खो दिया। द्वादश आदित्यों में से केवल विष्णु और ११ रुद्र मिल कर एक शिव के रूप में प्रकट हो गये। आठ वसुओं का महत्त्व कम हो गया और वे प्रजापति ब्रह्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार पुराणों के त्रिदेववाद का प्रसार हुआ।

यह सृष्टि गतिपूर्ण है। गति का प्रादुर्भाव स्थिति के धरातल पर होता है। यदि स्थिति का भाव न हो तो गति की कल्पना भी असम्भव है। स्थिति और गति दोनों एक ही शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप हैं। शक्ति का उद्भव रूप स्थिति तथा क्रियाशील रूप गति है। इन दोनों रूपों के मिलने से स्पन्दन का प्रादुर्भाव होता है। यह स्पन्दन केन्द्र से परिधि की ओर तथा परिधि से केन्द्र की ओर होता रहता है। अतः यह क्रमशः गति और अगति इन दो रूपों में दिखायी पड़ता है। इन्हीं को वेदों में प्राण और अपान कहा गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से गति को प्रसारण तथा अगति को समञ्चन कहते हैं। जिसमें ये दोनों क्रियाएँ व्यक्त होती हैं उसे शक्ति अथवा प्राण कहा जाता है–

प्राणो वै समञ्चन प्रसारणम्[1]

इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि की तीन अवस्थाएँ एवं रूप दृष्टिगत होते हैं––१. स्थिति, २. गति तथा ३. अगति। शक्ति के इन्हीं रूपों को धारण कर सृष्टि का कार्य चलता है। रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण ही माया के द्वारा सृष्टि स्थिति तथा प्रलय के रूप में प्रकट होते हैं।

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः।
स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः॥[2]

परम पुरुष गुणों के इन तीन आवरणों से इस प्रकार ढके रहते हैं जिससे कि किसी को वास्तविक ज्ञान नहीं हो पाता।[3] उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की लीला करने के लिए रज, सत्त्व और तम रूप इन तीन गुणों के आधार पर परब्रह्म विराट पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का रूप धारण कर लेते हैं।[4]

---

१. शतपथ ब्रा० ८।१।४।१०.
२. श्रीमद्भा० २।५।१८.
३ श्रीमद्भा० २।५।२०.
४. श्रीमद्भा० २।४।१२.

सृष्टि में सर्वप्रथम हिरण्यमय अण्ड उत्पन्न होता है । उस अण्ड के गर्भ से जिस सृजनात्मक शक्ति का स्फुरण एवं जन्म होता है वही सर्वलोक पितामह ब्रह्मा हैं। ब्रह्मा फैलते, बढ़ते एवं व्याप्त होते हुए बल के उपलक्षण मात्र हैं । ये विष्णु और शिव के बिना अकेले नहीं रह सकते । उन दोनों के बिना इनकी सत्ता निराधार है । इन तीनों में न कोई बड़ा है न छोटा । जहाँ एक रहता है वहाँ अन्य दोनों भी उसके साथ ओतप्रोत रहते हैं । एक क्षण के लिए भी इन तीनों का वियोग नहीं होता ।[1] हाँ इतना अवश्य है साम्प्रदायिकता के आधार पर ब्राह्म उपासक ब्रह्मा को महत्ता देकर उन्हीं के ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये तीन रूप स्वीकार कर लेते हैं। जैसा कि मार्कण्डेय पुराण का कथन है–

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि ।
विष्णुत्वे चाप्युदानस्तिस्रोऽवस्था: स्वयम्भुव: ।।[2]

महाकवि कालिदास इसी भावना का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मा ही तीन गणों के अनुसार त्रिमूर्ति रूप में प्रकट होते हैं–

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टे: केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ।।
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेक: कारणतां गत: ।।[3]

इसी प्रकार वैष्णव विष्णु को तथा शैव शिव को प्रधान कारण मानते हैं । ब्रह्मा यदि सृष्टि की रचना करते हैं तो विष्णु पालन करते तथा शिव संहार करते हैं । परन्तु तीनों परस्पर मिली हुई शक्तियाँ हैं। इसी भावना के आधार पर पुराणों में त्रिदेववाद का जन्म हुआ ।

त्रिमूर्ति तथा आश्रम

भारत सदा से आचार एवं विचारप्रधान देश रहा है । परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति भारतीय संस्कृति का अन्तिम लक्ष्य रहा है । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये चार वर्ण तथा चार आश्रमों की व्यवस्था की गयी। त्रिमूर्ति का आन्तरिक सम्बन्ध आश्रमों से है । यह त्रिमूर्ति सिद्धान्त जहाँ जीवन की तीन अवस्थाओं बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था का प्रतीक है वहाँ यह भारतीय आर्यों के जीवन के ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा

---

१. अन्योन्यमिथुनाह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ।। मार्क०पु० ४६।१९.
२. मार्क० पु० ४६।१७.
३. कुमारसम्भवम् २।४-६.

सन्यास इन तीन आश्रमों को व्यक्त करता है । ब्रह्मा का कमण्डलु, कषायवस्त्र, अक्ष-माला, वेद ज्ञान ये सभी ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक हैं। अतः ब्रह्मा ब्रह्मचर्यावस्था के प्रतीक हैं । ब्रह्मा सृष्टि की रचना का कार्य करते हैं । ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याआश्रम में अपने आगामी जीवन की रचना करता है । विष्णु के कार्य एक आदर्श गृहस्थ से मिलते-जुलते हैं और वे गृहस्थाश्रम के प्रतीक हैं। इसी कारण वे एक आदर्श गृहस्थ की भाँति अच्छी वेशभूषा, आभूषण धारण करते तथा सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करते हुए प्रसन्नता से जीवन यापन करते हैं । विष्णु अपने ऐश्वर्य के कारण विशेषतः धनिक वर्ग के प्रिय आराध्य देव रहे हैं । शिव का आकार, वेशभूषा उनकी जटाएँ, भस्मलेप सब सन्यासाश्रम के प्रतीक हैं। भारतीय सन्यासी की भाँति वे बाघाम्बर पहनते, त्रिशूल धारण करते तथा जटाएँ अथवा बँधे बाल रखते हैं। योगी के समान वे अर्ध नग्नावस्था में रहते हैं। अतः शिव सन्यासाश्रम के प्रतीक हैं। भट्टाचार्य महोदय ने भी इस मत का अनुमोदन किया है ।[1]

पुराणों में त्रिदेव एवं त्रिमूर्ति की सत्ता का व्यापक एवं स्पष्ट उल्लेख हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव यही तीन मुख्यतः पुराणों के आराध्य देव हैं। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है ब्रह्मा सृष्टि की रचना करने वाले, विष्णु पालन करने वाले तथा शिव संहार करने वाले हैं। यद्यपि तीनों देवों के कार्य अलग-अलग हैं फिर भी वे तीनों एक हैं । पुराण साहित्य इन तीनों की एकता प्रदर्शित करने में अपनो सार्थकता मानता है । तीनों एक हैं अथवा एक ही तीन रूपों से वर्तमान हैं इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पुराणों में हुआ है । पुराणों का यही उद्घोष है कि एक ईश्वरी शक्ति तीन गुणों के रूप में प्रकट हो जाती है ।[2] विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि विष्णु की सृष्टि करने वाली ब्राह्मी मूर्ति राजसी, पालन करने वाली वैष्णवी मूर्ति सात्त्विकी तथा संहार करने वाली रौद्री मूर्त्ति तामसी कहलाती है—

ब्राह्मी तु राजसी मूर्तिस्तस्य सर्वप्रवर्तिनी ।
सात्त्विकी वैष्णवी ज्ञेया संसारपरिपालिनी ।।
तामसी च तथा रौद्री ज्ञेया संहारकारिणी ।[3]

भागवतों एवं वैष्णवों के विचार से स्वयं विष्णु त्रिदेव की सत्ता के मूल में स्थित हैं।[4] संसार उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है। वे ही इसकी स्थिति और लय के कर्त्ता हैं तथा जगत् का रूप हैं—

---

१. भट्टाचार्य वृन्दावन इण्डियन इमेजेज् पृ० ५.
२. वि० पु० १।६।३५-३७.
३. वि० ध० ४५।२-४.
४. संस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थिति संयमान् ।। वि० पु० १।७।४६.

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्त्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ।।[१]

इन त्रिदेवों में ब्रह्मा रजोगुण युक्त, शिव तमस् प्रधान और विष्णु सत्त्व गुण प्रधान हैं ।[२] विष्णु पुराण का कथन है कि स्वयं विष्णु रजोगुण रूप में ब्रह्मा बन जाते हैं, उन्हीं की सत्त्वगुणयुक्त मूर्ति विष्णु है और तामसी मूर्ति शिव अथवा रुद्र कहलाती है। अतः वे ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं ।[३] वे स्रष्टा होकर ब्रह्मा के रूप में अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक रूप में विष्णु बनकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते है और अन्त में स्वयं शिव के रूप में संहारक बनकर अपना ही संहार कर लीन हो जाते हैं--

स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
उपसंह्रियेत चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः ।।[४]

पृथ्वी, जल, तेज, आकाश तथा वायु ये पाँचों तत्त्व, इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण जगत् सब पुरुष रूप हैं क्योंकि वही अव्यय विष्णु विश्वरूप तथा सबकी अन्तरात्मा हैं ।[५]

विष्णु ही सृष्टि की रचना कर स्वयं रचे जाते, पालन कर पालित होते तथा संहार कर संहृत अर्थात् लीन होते हैं ।[६] श्रीमद्भागवत का कथन है कि योगमाया से अभिव्यक्त हुई अपनी सत्त्वादि शक्तियों द्वारा वे रचना, पालन एवं संहार का कार्य करते हैं [७] और माया का आश्रय लेकर सम्पूर्ण संसार का व्यवहार चलाते हैं ।[८]

---

१. वि० पु० १।३१.
२. वि० पु० १।२।६६.
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ।। वि० पु० १।२।६६.
३. सृष्टि स्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
४. वि० पु० १।२।६७.
५. वि० पु० १।२।६७-६८.
६. स एवसृज्यः स च सर्गकर्ता, स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्ति र्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ।।
वि० पु० १।२।७०
७. एकःस्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया ।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवान् स्वशक्तिभिः ।।
श्रीमद्भा० ३।२१।१९.
८. स्वमायया वर्तितलोकतत्रम् श्रीमद्भा० ३।२१।२१

क्षिति (पृथ्वी), जल, तेज, आकाश और वायु इन पञ्चभूतों में रचना करने की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। जब तक वे पाँचों तत्त्व एक में नहीं मिलते तब तक संसार की रचना होना असम्भव है। अतः एक दूसरे पर आश्रित रहने वाले महत् तत्त्व आदि प्रकृति के विकारों ने जब पुरुष के सम्पर्क को प्राप्त किया तब एक अण्ड की उत्पत्ति हुई।[१] जल के बुलबुले के समान, भूतों के द्वारा बढ़ाया हुआ वह अण्ड ब्रह्म स्वरूप विष्णु का आधार बना। अण्ड में व्यक्त होकर स्वयं ही विष्णु हिरण्यगर्भ रूप में स्थित हुए। हिरण्यगर्भ का उल्व (गर्भ को ढकने की झिल्ली) सुमेरु पर्वत, जरायु (गर्भाशय) अन्य पर्वत, एवं गर्भाशय में स्थित रस समुद्र था। उसी से सभी द्वीप, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र सहित समस्त लोक, देव, असुर, मनुष्य तथा अन्य प्राणि-वर्ग उत्पन्न हुए।[२] नारियल के फल के भीतर के बीज के समान यह अण्ड भी अनेक आवरणों से ढका हुआ था।[३] अण्ड में स्थित विष्णु रजोगुण के आश्रय से ब्रह्मा होकर सृष्टि की रचना करते हैं—

जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्ट्यै सम्प्रवर्तते ॥[४]

तत्पश्चात् सत्त्वगुण प्रधान विष्णु कल्पान्त पर्यन्त युग-युग तक सृष्टि का पालन करते रहते हैं।[५] कल्प का अन्त होने पर वे ही तमस् गुण का आश्रय लेकर अत्यन्त भयङ्कर रुद्र रूप धारण कर सबका भक्षण कर लेते हैं और सारा संसार जलमग्न हो जाता है।[६] संसार को जलमग्न करके शेष की शय्या पर लेटकर भगवान् विश्राम करते हैं—

नागपर्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ॥[७]

पुरुषोत्तम से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं और नार ही विष्णु का प्रथम अयन अथवा निवास स्थान है। इसीसे इन्हें नारायण कहा जाता है।[८] नारायण रूप

---

१. वि० पु० १।२।५१-५४.
२. वि० पु० १।२।५४-५९.
३. नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव ॥ वि० पु० १।२।६०.
४. वि० पु० १।२।६१.
५. सृष्टिं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
सत्त्वभृद्भगवान्विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥ वि० पु० १।२।६२.
६. तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः ।
भक्षयित्वा च भूतानि जगत्येकार्णवीकृते । वि० पु० १।२।६३-६४.
७. वि० पु० १।२।६४-६५.
८. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ वि० पु० १।४।६.

ब्रह्मा शेष की शय्या पर शयन करके रात्रि समाप्त होने पर पुनः संसार की सृष्टि करते हैं।[1] विष्णु पुराण में कहा गया है कि पृथ्वी ने भगवान् की स्तुति करते समय उन्हीं को उत्पत्ति, पोषण एवं प्रलय का कारण बतलाया है।[2] वह तीनों को एक रूप मानकर त्रिमूर्ति की वन्दना करता है:—

ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्तये ॥[3]

इस प्रकार जब परब्रह्म अपनी लीला के लिए एक से अनेक होने की इच्छा करते हैं तब सृष्टि को उत्पन्न करने की उसकी रजोमयी भावना ब्रह्मा का रूप धारण करती है और जब वे अनेक से एक होने की इच्छा करते हैं तब उनकी प्रलय करने की तमोमयी इच्छा रुद्र अथवा शिव का रूप धारण कर लेती है। सृष्टि के पालन हेतु सत्त्वगुण युक्त इच्छा करने पर विष्णु रूप में प्रकट हो जाते हैं। अतः तीनों गुण एवं रूप उसी की माया के विलास हैं।[4]

अप्रत्यक्ष रूप से एक होने पर भी प्रत्यक्ष रूप से तीनों रूपों के कार्य अलग-अलग हैं। भिन्न-भिन्न कार्य करने के कारण उनके नाम, रूप तथा कर्म भी बदलते रहते हैं। भेद केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिस समय सृष्टि की उत्पत्ति होती है उस समय परब्रह्म की वह शक्ति ब्रह्मा ही कहलायेगी। उसे विष्णु या शिव नहीं कहा जा सकता। जिस समय वही परमेश्वर सृष्टि के पालन का कार्य करते हैं वह रूप विष्णु ही कहा जायेगा उसे ब्रह्मा या शिव नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार वह विभु जब संहार करता है उस रूप को शिव अथवा रुद्र ही कहा जायेगा उसे कोई ब्रह्मा या विष्णु नहीं कहेगा, जैसे—बिल्लौर के बने हुए श्वेत स्वच्छ गोले के सामने जो रङ्ग आ जाता है वह गोला भी अपने पूर्व के स्वच्छ रूप में विद्यमान रहने पर भी उसी रङ्ग का हो जाता है। आकाश में स्थित एक ही मेघ भिन्न-भिन्न कारणों से विभिन्न रूप-रङ्ग को धारण कर लेता है। इन दोनों के परिवर्तन का कारण परिस्थिति ही है। यही स्थिति परमेश्वर के विभिन्न रूपों में है।[5] इसी के आधार पर विष्णु की ब्राह्मी, वैष्णवी एवं रौद्री ये तीन मूर्तियाँ हो गयी हैं।[6] यद्यपि वेद तथा धर्मशास्त्र सब

---

१. वि० पु० १।३।२४-२५.
२. त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ॥वि० पु० १।३।१५-१६.
३. वि० पु० १।१९।६६.
४. श्रीमद्भा० १।२।३१-३३.
५. वायु० ३।६६।९९-१००.
६. तिस्रः मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः।
कूर्म० पु० पूर्व अ० २२।२६.

इन्हें एक ही स्वीकार करते हुए कहते हैं[१] कि एक ही आत्मा तीन रूपों को धारण कर प्रजा को मोहित करती है ।[२] इस प्रकार इनके विषय में कुछ कहना, इनमें भेद स्थापित करना अथवा इन्हें समझना अत्यन्त कठिन है । केवल इतना ही कह कर सन्तोष कर लेना होगा कि हरि की प्रसाद-लीला की अभिव्यक्ति ब्रह्मा तथा क्रोध-लीला की अभिव्यक्ति रुद्र है ।[३]

विष्णु धर्मोत्तर में अनन्त, त्रिमूर्ति, सूक्ष्म, नीलकण्ठ, शिव, शिखण्डी, एकनेत्र, एक रुद्र इन आठ विद्येश्वरों (शिव के रूप) के मध्य त्रिमूर्ति का नाम लिया गया है ।[४] यह सभी विद्येशों को दिशाओं के वर्ण का जटायुक्त तीन नेत्र वाला, शर त्रिशूल धारण करने वाला, एक मुख वाला तथा पुटाकार अञ्जलि वाला बनाने का आदेश दिया गया है, किन्तु पृथक् रूप से त्रिमूर्ति के रूप का वर्णन नहीं हुआ है—

दिग्वर्णा जटिलस्त्र्यक्षाश्शरत्रिशूलधारिणः ।
पुटाञ्जलि करास्सर्वे विद्येशाश्चैकवक्त्रकाः ।।[५]

अंशुमद्भेदागम में त्रिमूर्ति को एक पाद, एक नेत्र तथा एक रुद्र रूप के समान माना गया है ।[६] उमाकामिकागम[७] त्रिमूर्ति को रक्तवर्ण, त्रिनेत्र, जटा मुकुटयुक्त, एकपाद वाला बतलाता है । इस ग्रन्थ के अनुसार त्रिमूर्ति को बनाते समय दाहिने से बायीं ओर शिव को ब्रह्मा तथा विष्णु के बीच में बनाये जाने का आदेश दिया गया है । ब्रह्मा तथा विष्णु अपने स्वाभाविक रूप में स्थित रहते हैं ।[८] राव महोदय[९] ने त्रिमूर्ति की प्रतिमा को ढालने के विविध प्रकारों का वर्णन किया है—

१. ब्रह्मा तथा विष्णु शिव के दोनों ओर से उठते हुए दिखाये जाते हैं ।

---

१. एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रे पुरातने ।। वायु० ३।६६।११०.
२. वायु० ३।६६।११७-१८.
३. यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रक्रोधसमुद्भवः ।। श्रीमद्भा० १२।५।१.
४. अनन्तश्च त्रिमूर्तिश्च सूक्ष्मः श्रीकण्ठ एव च ।
शिवश्शिखण्ड्येकनेत्र एकरुद्रश्च ते क्रमात् ।। वि० ध० १७३।५.
५. वि० ध० १७३।७.
६. एकरुद्रमिवाबैव त्रिमूर्ति चैव कारयेत् । अंश० अ० ३१.
७. रक्तवर्णः त्रिनेत्रश्च वरदाभयहस्तकः ।
कृष्णापरशुसंयुक्तो जटामुकुटमण्डितः ।।
ऋज्वागतस्तथैकेन पादेनापि समन्वितः ।।उ० कामिकागम ३८।१७-२१.
८. वही ।
९. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ४१-४३.

२. ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव अपने पूर्ण स्वाभाविक रूप में अलग-अलग पद्म पीठ पर खड़े हुए प्रदर्शित किये जाते हैं।

३. तीन अलग-अलग पीठ मन्दिर में स्थापित किये जाते हैं। मध्य के पीठ पर लिङ्ग बना होता है और दाहिने तथा बाएँ पीठों पर क्रमशः ब्रह्मा तथा विष्णु की मूर्तियाँ होती हैं।

४. एक अन्य प्रकार से भी त्रिमूर्ति का चित्रण होता है, जिसमें पूर्व की भाँति प्रदर्शन रहता है। अन्तर केवल इतना होता है कि बीच के पीठ पर शिव का लिङ्ग रूप न होकर उनकी नृत्य मुद्रा अथवा कोई अन्य रूप रहता है।[१]

राव महोदय के कथन से स्पष्ट होता है कि उन्हें दो प्रकार की त्रिमूर्ति प्रतिमाएँ मान्य हैं–

१. वैष्णव त्रिमूर्ति तथा

२. शैव त्रिमूर्ति।

जिस प्रतिमा के मध्य में शिव तथा दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु रहते हैं वह शैव त्रिमूर्ति है किन्तु जिस प्रतिमा में विष्णु मध्य में रहते हैं और ब्रह्मा तथा शिव उनके दोनों ओर रहते हैं वह वैष्णव त्रिमूर्ति है।[२] वैष्णव पुराणों में इसी त्रिमूर्ति की प्रधानता है।

त्रिमूर्ति के अन्तर्गत हरि, हर तथा पितामह के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा को तथा कुछ सूर्य, हर तथा हिरण्यगर्भ को स्वीकार करते हैं। हरि, हर तथा पितामह का त्रिमूर्तिरूप तो प्रसिद्ध ही है। दूसरा चन्द्र, सूर्य तथा ब्रह्मा के त्रिमूर्ति का प्रसङ्ग अपराजितपृच्छ नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है किन्तु इसकी एक भी

---

१. दक्षिणोत्तरयोश्चैव पार्श्वयोरुभयोरपि।
कटिप्रदेशादूर्ध्वं तु ब्रह्माविष्णूर्ध्वकायुक्।।
....

कृताञ्जलिपुटावेक पादयुक्तौ च वा मतौ।
अथवा शिवलिङ्गस्य पार्श्वयोन्तर्गतौ कृतौ।।
अथवा तौ पृथक् स्थाप्यावेकविष्टरमास्थितौ।
अथवा मध्यमे लिङ्गं पृथगालयसंस्थितम्।
तस्यसव्येऽप्यसव्ये च ब्रह्माविष्णु तथा मतौ।।
....

भिन्न प्राकारगावापि एकप्राकारसंस्थिताः।
नृत्तमूर्त्यादिदेवा वा स्थापनीयास्तु मध्यमे।। उ०काम० ३८।२२-३२

२. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ४३-४५.

प्रतिमा का उदाहरण अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। त्रिमूर्ति का यह असम्भावित उदाहरण असम्भावित विचारों एवं उत्पत्तियों का ही प्रतिफल है। सूर्य, हर एवं हिरण्यगर्भ त्रिमूर्ति रूप में स्थित होने में सत्यता का कुछ अंश है और इनके उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। सूर्य का विष्णु के साथ सम्बन्ध वैदिक काल से ही प्रसिद्ध है। इस प्रकार का उदाहरण प्राचीन पन्ना राज्य के मघिया नामक स्थान से प्राप्त होता है जिसमें सूर्य, शिव तथा ब्रह्मा का चित्रण है।[१] चिदम्बरम् के मन्दिर में एक तीन सिर वाली मूर्ति है जिसके आठ हाथ हैं। यह खड़ी प्रतिमा है जो सूर्य की कही जाती है।[२] खजुराहो के दुलादेव नामक शिव मन्दिर में तीन सिर तथा आठ हाथ वाली बैठी प्रतिमा प्राप्त होती है।[३] उदयपुर राज्य के चित्तौड़गढ़ नामक स्थान में भी प्राप्त हुई त्रिमूर्ति की प्रतिमा राव महोदय द्वारा महेश मूर्ति ही सिद्ध की गयी है।[४] भट्टाचार्य महोदय ने एक त्रिमूर्ति की प्रतिमा का उल्लेख किया है। वह मूर्ति तीन सिर वाली है और तीनों की वेशभूषा से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का रूप स्पष्ट होता है। यह प्रतिमा विष्णु धर्मोत्तर के रूप से मिलती-जुलती है और अब पेशावर म्यूजियम में है।[५]

एलिफेण्टा की गुफा में एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त होती है जिसके तीन मुख हैं। बीच वाला मुख अत्यन्त सौम्य तथा शान्त है। दाहिनी ओर का मुख सुन्दर है किन्तु बायीं ओर का मुख अत्यन्त भयङ्कर है। इस तीन सिर वाली मूर्ति को राव महोदय ने महेश मूर्ति माना है। उनके विचार में ये तीनों मुख शिव के मुखों के प्रतीक हैं।[६] स्टीला क्रैमिश महोदय ने इसे द्वारपालों के साथ स्थित हुए एलिफेण्टा द्वीप के महादेव कहा है और इन तीनों मुखों को शिव के तत्पुरुष वामदेव तथा अघोर मुख स्वीकार किया है।[७] बैनर्जी महोदय का इस प्रतिमा के विषय में बिल्कुल भिन्न मत है। उनका कथन है कि इस प्रतिमा के दाहिने मुख को कोई समझा ही नहीं है। इस मुख की आँखें तथा भौहें अत्यन्त सुन्दर हैं। सिर पर घुँघराले बाल हैं जिन पर जड़ाऊ पट्टियाँ बनी हुई हैं। यह मुख दोनों मुखों से विभिन्नता ही नहीं रखता वरन् यह स्त्री का मुख है।[८] अतः यह प्रतिमा शिव और शक्ति का सम्मिलित रूप है, जिसमें शिव अपने सुन्दर तथा भयङ्कर रुद्र दोनों रूपों में स्थित हैं।

---

१. बैनर्जी जे० एन०–डे० दि० आ० पृ० ४७५.
२. राव गो०ना०ए०हि०आ० वा० २ भा० १ पृ० ३८३.
३. वही वा० १ भा० १ पृ० ३८४.
४. राव–एलिमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्रेफी वा० २ भा० २ पृ० ३८५.
५. बृन्दावन भट्टाचार्य-इण्डियन इमेजेज पृ० १७.
६. राव गो०ना०ए०हि०आ० वा० २ पृ० ३८२-८५.
७. क्रैमिश–एस० ए० इण्डि० नं० २ १९४६ पृ० ४-८ प्ले० १-७.
८. बैनर्जी डे० हि० आ० पृ० ४७६.

प्रतिमा के तीनों मुखों में दो-दो नेत्र हैं। शिव के सद्योजात वामदेव अघोर, तत्पुरुष और ईशान इन पाँचों में से केवल बामदेव मुख दो नेत्रों वाला है और शेष चारों मुख तीन नेत्र वाले हैं—

त्रिलोचनानि सर्वाणि बामदेवं द्विलोचनम् ॥[1]

किन्तु प्रतिमा में तीन नेत्र किसी मुख में नहीं हैं। अत: स्टीला क्रैमिश का मत उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। यह त्रिमूर्ति की प्रतिमा है। बीच का मुख बड़ा ही सौम्य तथा शान्त है और ब्रह्मा को सौम्य रूप वाला बनाने का आदेश दिया गया है—

ब्रह्माणं कारयेद्विद्वान्देवं सौम्यं.....॥[2]

बायीं ओर का मुख विष्णु का रूप है जो अत्यन्त सुन्दर घुँघराले केश विन्यास वाला किरीट युक्त है। तीसरा दक्षिण की ओर का भयङ्कर मुख शिव के रुद्र रूप का द्योतक है और वह शिव का भैरव मुख है जो बड़ा भयानक है—

दक्षिणं तु मुखं रौद्रं भैरवं तत्प्रकीर्तितम् ॥[3]

अत: यह प्रतिमा त्रिमूर्ति की ही हो सकती है।

मध्य भारत में पढ़ुली नामक स्थान में एक और मूर्ति प्राप्त हुई है जो अब ग्वालियर म्यूजियम में है। इस प्रतिमा में तीन मुख हैं। बीच का मुख आकर्षक तथा सुन्दर है। दाहिनी ओर का मुख भयङ्कर है और पुरुष के समान है। किन्तु बायीं ओर का मुख अधिक सुन्दर बना है। बैनर्जी महोदय ने बाएँ मुख को स्त्री का मुख कहा है क्योंकि इसके सिर पर पुष्प लगा हुआ है, केश विन्यास सुन्दर है, कानों में सुन्दर कुण्डल तथा हाथ में शीशा है। इस प्रकार पूरी प्रतिमा को उन्होंने शिवशक्ति की प्रतिमा माना है जिसमें शिव अपने कल्याणकारी एवं रुद्र रूप में विद्यमान हैं।[4]

संस्कृत के शिल्प ग्रन्थों के आधार पर इसे त्रिमूर्ति की प्रतिमा भी माना जा सकता है। बीच का सौम्य तथा शान्त मुख ब्रह्मा का है। दाहिनी ओर का भयङ्कर मुख रुद्र का हो सकता है, बायीं ओर का मुख स्त्री का न होकर विष्णु अर्थात् वासुदेव का है क्योंकि वासुदेव के मुख के आकर्षक, सुन्दर केश-विन्यास वाला तथा सिर पर बालों में सुन्दर पंखुड़ियों से युक्त कमल बनाने का आदेश दिया गया है—

शिरः पद्मस्तथैवास्य कर्त्तव्यः चारुकर्णिकः ।[5]

---

१. वि० ध० ४८।७.
२. वि० ध० ४४।५.
३ वि० ध० ४८।५.
४. बैनर्जी, जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ४७७.
५. विष्णु ध० ८५।५.

इस प्रतिमा में भी जो बायीं ओर का सुन्दर तथा आकर्षक मुख है उसके सिर पर केशों में पुष्प लगा हुआ है अतः यह वासुदेव का मुख है। इस आधार पर यह शिव शक्ति की प्रतिमा न होकर त्रिमूर्ति की ही प्रतिमा है।

नागलापुरम् में प्राप्त हुई एक त्रिमूर्ति की प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय ने किया है। इस पत्थर की प्रतिमा के मध्य में विष्णु स्थित हैं और उनकी दाहिनी ओर से ब्रह्मा तथा बायीं ओर से शिव निकलते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। यह प्रतिमा विष्णु को प्रमुख देव मानती है और वैष्णव त्रिमूर्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।[१] इसके साथ एक शैव त्रिमूर्ति का प्रसङ्ग राव महोदय के ग्रन्थ में मिलता है। उसमें शिव मध्य में स्थित हैं और दोनों ओर से ब्रह्मा और विष्णु निकल रहे हैं। यह त्रिमूर्ति शैवों द्वारा मान्य है। दोनों प्रतिमाओं में दो ही चरण हैं।[२] कटि के ऊपर दोनों ओर से देव निकलते हुए प्रदर्शित किये गये हैं।

ब्रह्मा

हिन्दू त्रिमूर्ति के अन्तर्गत ब्रह्मा का सर्वप्रथम स्थान है। वे सृष्टि के निर्माता तथा सभी देवों के नेता हैं। यद्यपि वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय की भाँति उनका कोई पृथक् सम्प्रदाय न बन सका, विष्णु तथा शिव की भाँति अधिकांशतः मन्दिरों में इनकी प्रतिमाओं की स्थापना न हो सकी, तथापि इनकी प्रतिष्ठा एवं व्यापकता सर्वत्र दर्शनीय है।

वैदिक साहित्य में सृष्टि करने वाले देवता के लिए विश्वकर्मन्, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं।[३] इनमें से प्रजापति का सम्बन्ध सृष्टि रचना के साथ-साथ यज्ञ से भी है।[४] मैकडॉनल महोदय का कथन है कि प्रजापति आकाश तथा पृथ्वी की रचना करने वाले हैं। इस सृष्टि में जितने भी जड़ तथा चेतन पदार्थ हैं सबके स्वामी प्रजापति हैं। उनकी आज्ञा सब देवता मानते हैं। उन्हें परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है।[५] इसी प्रकार उपनिषद्[६] तथा ब्राह्मण साहित्य में प्रजापति प्रमुख देवता के रूप में स्वीकार किये गये हैं और उनकी उत्पत्ति सभी देवों के पूर्व बतलायी गयी है। महाभारत में प्रजापति की तीन अवस्थाओं

---

१. राव, गो० ना०–ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ४४-४५.
२. वही पृ० ४५-४६.
३. ऋ० वे० १०।७२, ८१, ८२, १२१ तथा शतपथ० ब्रा० १०।६।५।९, ११।२।३।१.
४. ऋ० वे० १०।१२१.
५. मैकडॉनल–वै० माइ० पृ० ११८-११९.
६. ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता– मुण्डकोपनिषद् ३।१५.

का वर्णन हुआ है जिनका आश्रय लेकर वे सम्पूर्ण सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करते हैं । वे ही इन सब का कारण हैं --

सृज्यते ब्रह्ममूर्तिस्तु रक्ष्यते पौरुषी तनुः ।
रौद्री भावेन शमयेत् तिस्रोऽवस्थाः प्रजापते : ।।[१]

महाभारत में वे प्रजापति, धाता, विधाता, पितामह, विश्वेश, सृष्टा, लोकवृद्ध, सुरगुरु, लोकभावन, लोकादिनिधनेश्वर, आदिदेव तथा भूतात्मन् नाम से प्रसिद्ध हुए।

ब्रह्म पुराण ब्रह्मा को सृष्टि का रचने वाला, पालन करने वाला तथा संहार करने वाला मानता है । वैष्णव पुराणों में प्राप्त ब्रह्मा के प्रसङ्ग इस बात को स्पष्ट करते हैं कि शनैः शनैः ब्रह्मा की प्रधानता एवं महत्ता समाज में कम होती जा रही थी। इन पुराणों में उनका उल्लेख सृष्टि के रचयिता के रूप में है । उनका जन्म नारायण की नाभि से उत्पन्न कमल से हुआ। उसी कमल के बीच में वे विराजमान रहते हैं । कर्मशक्ति को जागृत करने वाले काल के द्वारा शेषशायी विष्णु की नाभि से एक कमल सहसा ऊपर उठा । उसने अपने तेज से सब ओर फैले हुए अन्धकार को नष्ट कर दिया । उस कमल में स्वयं ही विष्णु अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् बिना पढ़ाये ही स्वयं सब वेदों को जानने वाले साक्षात् वेदमूर्ति ब्रह्मा प्रकट हुए । अपने आप ही उत्पन्न होने के कारण वे स्वयम्भू कहलाये ।[२] कमल के ऊपर बैठे हुए ब्रह्माजी अपने तथा कमल के विषय में कुछ भी न जान सके। वे कमल का आधार खोजने के लिए कमल नाल के सूक्ष्म छिद्रों से होकर जल में घुसे । उस अन्धकार में भटकते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। अन्त में हारकर वे समाधिस्थ हो गये । भगवान् ने उनके अन्तःकरण में अपने रूप को प्रकट कर दिया । तब ब्रह्मा ने उनकी स्तुति की और सृष्टि रचना के लिए पुनः कमल पर आकर विराजमान हो गये।[३]

विविध शिल्प ग्रन्थों में ब्रह्मा के स्वरूप सम्बन्धी प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। बृहत्संहिता ब्रह्मा को कमलासन पर स्थित कमण्डलु लिए हुए दो भुजा तथा चार मुख वाला बतलाती है ।[४] पुराणों में दो भुजाओं के स्थान पर उन्हें चार भुजाओं वाला बतलाया गया है और हाथ में धारण किये जाने वाले दण्डकमण्डलु के साथ अक्षमाला, वेद, स्रुक, स्रुव, कुश, आज्यस्थाली आदि उपकरणों की वृद्धि हो गयी । इस विषय में विविध

१. महा० वन प० २७२।४७.
२. तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता, स्वयम्भुवं यं स्मवदन्ति सोऽभूत् ।।
श्रीमद्भा० ३।८।१५.
३. श्रीमद्भा० ३।८।१६-३३.
४. बृ० सं० ५८।४१.

पुराणों के भिन्न-भिन्न मत हैं। वैष्णव पुराणों में वे कमण्डलु अक्षमाला धारण किये हुए चार भुजा वाले कहे गये हैं।[१] इन पुराणों में ब्रह्मा के जिन मुख्य-मुख्य रूपों का वर्णन हुआ वे निम्नलिखित हैं –

१. ब्रह्मा का चतुर्मुख रूप,
२. ब्रह्मा का कमलासन रूप,
३. ब्रह्मा का हंसवाहन रूप,
४. ब्रह्मा का रथारूढ़ रूप तथा
५. ब्रह्मा का प्रजापति रूप।

विष्णुधर्मोत्तर चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति को कमल के आसन पर बैठी हुई बनाने का आदेश देता है —

पद्मपत्रासनस्थस्तु ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।।[२]

वे ध्यान लगाये उसी कमल पर बैठे रहते हैं। उनके शरीर पर कृष्णाजिन् रहता है। चारों भुजाओं में से दो पीछे की भुजाओं में अक्षमाला तथा कमण्डलु रहता है। आगे के दोनों में से दाहिना हाथ बाएँ हाथ की हथेली पर रखा रहता है। सिर पर जटाएँ होती हैं। वे पद्मासन लगाकर रथ पर भी बैठे दिखाये जाते हैं। उस रथ में सात हंस जुते रहते हैं।[३]

श्रीमद्भागवत में ब्रह्मा के हंस का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। श्रीकृष्णजन्म के अवसर पर वे हंस पर चढ़कर आये[४] अथवा कृष्ण के रूप को देखकर उनकी माया से मोहित होकर हंस से कूद पड़े और अपने चारों सिरों के ऊपर लगे हुए मुकुटों को पृथ्वी पर घिसकर प्रणाम करने लगे।[५] विष्णु पुराण में भी नाभि से उत्थित

---

१. वि० ध० ४४।४.
२. वि० ध० ४४।३.
३. बद्धपद्मासनं तोष्यं तथा कृष्णाजिनाम्बरम् ।।
जटाधरं चतुर्बाहुं सप्तहंसे रथे स्थितम् ।।
वामे न्यस्तं करतले तस्यैकं दोर्युगं भवेत् ।।
एकस्मिन्दक्षिणे पाणावक्षमाला तथा शुभा ।
कमण्डलुर्द्वितीये च सर्वाभरणधारिणः ।।
सर्वलक्षणयुक्तस्य शान्तरूपस्य पार्थिव ।
पद्मपत्रदलाग्रामं ध्यानसंमीलितेक्षणम् ।। वि० ध० ४४।५-८.
४. श्रीमद्भा० १०।१२।२४.
५. श्रीमद्भा० १०।२१।१०.

कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा के रूप का वर्णन है।[1] अग्नि पुराण में ब्रह्मा को चतुर्मुख, चतुर्भुज एवं हंस पर आरूढ़ बताया गया है। उनका लम्बी दाढ़ी वाले, जटायुक्त, बड़े उदर वाले, अक्ष सूत्र, स्रुव लिए हुए रूप में वर्णन हुआ है--

चतुर्मुखश्चतुर्बाहुर्बृहज्जठरमण्डलः।
लम्बकूर्चो जटायुक्तो........
दक्षिणे चाक्षसूत्रञ्च स्रुवं वामे तु कुण्डिकाम्॥[2]

मत्स्य पुराण में ब्रह्मा के समस्त रूपों को स्पष्ट किया गया है। वे कमण्डलु तथा स्रुव धारण करने वाले हैं। कभी हंसारूढ़ तथा कभी कमलासन रूप में रहते हैं। उनके वामपार्श्व में सावित्री तथा दक्षिण में सरस्वती विराजमान रहती हैं।[3] आगम ग्रन्थों में वे चार भुजा, चार मुख, यज्ञ सूत्र, कृष्णाजिन्, श्वेतवस्त्र, श्वेतमाला, कुण्डल धारण किये हुए बतलाये गये हैं।[4] मानसार ग्रन्थ में उनकी आठ आँखों तथा आठ कानों का उल्लेख हुआ है, उनमें मकर लाञ्छित अथवा पुष्प कुण्डल रहते हैं।[5] बैनर्जी महोदय ने उत्पल के द्वारा कहे हुए कश्यप के किसी पुराने ग्रन्थ का उल्लेख किया है जिसमें ब्रह्मा दण्डधारी कृष्णाजिन को उत्तरीयरूप में धारण किये हुए बतलाये गये हैं।[6] वैसे तो सभी ग्रन्थों में कहे हुए ब्रह्मा के रूप समान हैं किन्तु सात हंसों के रथ पर आरूढ़ 'सप्तहंसरथेस्थितम्'[7] तथा किरीट मुकुटशोभित रूप प्रदर्शित करना वैष्णव पुराण की अपनी अलग विशेषता है।

इन सभी रूपों में ब्रह्मा चतुर्भुज, चतुर्मुख, जटायुक्त, अक्षमाला, कमण्डलु आदि धारण करने वाले हैं।[8] इन रूपों के अतिरिक्त वैष्णव पुराणों में कुछ अन्य रूपों का

---

१. वि० पु० ३।१।६-८.
२. अग्नि पु० १४९।३-५.
३. ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्त्तव्यः स चतुर्मुखः।
हंसारूढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः।
कमण्डलं वामकरे स्रुवं हस्ते च दक्षिणे।
वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुवश्चापि प्रदर्शयेत्॥
आज्यस्थाली न्यसेत्पार्श्वे वेदाश्च चतुरः पुनः।
वामपार्श्वे तु सावित्री दक्षिणे च सरस्वती॥ म० पु० २४९।११-१५.
४ अंशुमद्भेदागम ४९।१३-१९.
५. चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं द्विपादं चाष्टलोचनम्।
अष्टकर्णसमायुक्तं तनुश्चैकाकृतिस्तथा॥
....
मकरेणलाञ्छितं पुष्पं कुण्डलं वाथ कर्णयोः॥ मानसार ५१।२२-२७.
६. बैनर्जी –जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ५१६.
७. वि० ध० ४४।६.
८. श्रीमद्भा० १०।१३।६२.

भी चित्रण हुआ है, जिनमें प्रजापति रूप विशिष्ट है। यद्यपि यह ब्रह्मा का ही दूसरा रूप है तथापि इस रूप में और ब्रह्मा के रूप में कुछ अन्तर है। प्रजापति रूप में और सब वस्तुएँ, अङ्ग-प्रत्यङ्ग तो ब्रह्मा के समान ही होते हैं किन्तु उन्हें चतुर्मुख रूप में प्रदर्शित नहीं किया जाता और न उनके वाहन हंस का ही प्रदर्शन होता है।[१]

ब्रह्मा के इन रूपों ने कालान्तर में शिल्प कला के क्षेत्र में प्रवेश कर प्रतिमा का रूप धारण कर लिया। कुषाण काल की पत्थर की मूर्तियों में ब्रह्मा ऋषि के रूप में प्राप्त होते हैं। उनके चार मूख हैं, बड़ा उदर है। उनके हाथों में सृक्, स्रुव, अमृत, कमण्डलु एवं वेद रहते हैं।[२] पाञ्चाल सिक्कों में प्रजापतिमित्र ने एक ओर प्रजापति अथवा ब्रह्मा की प्रतिमा बनवायी है। इसमें ब्रह्मा एक सिर तथा चार भुजाओं वाले हैं। मथुरा कला में ब्रह्मा की प्रतिमा चार मुख वाली बनायी गयी। कभी-कभी किसी प्रतिमा में केवल तीन सिर ही बने हुए प्राप्त होते हैं जो केवल सामने से देखने में हैं। इसमें ब्रह्मा का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। वे गोल उदर वाले जटाओं से युक्त तथा चार हाथों वाले हैं।[३] मथुरा म्यूजियम में ब्रह्मा की एक ऐसी प्रतिमा रखी है जिसमें तीन सिर एक साथ प्रदर्शित किये गये हैं और चौथा सिर तीनों सिरों के ऊपर बना है। यह प्रतिमा भी कुषाण काल की बतायी गयी है।[४] सम्भवतः ब्राह्मण वर्ग के सभी देवता मूंछ, दाढ़ी, जटा तथा गोल उदर वाले दिखलाये जाते हैं। गुप्तकाल में ब्रह्मा की प्रतिमाओं की पूजा होती थी, क्योंकि इस समय की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। ब्रह्मा के अनेक मन्दिरों में ब्रह्मा की कमलासन मुद्रा बनायी गयी। दशावतार मन्दिर के शिलापट्ट पर ब्रह्मा की कमलासन प्रतिमा बनी हुई है।[५] ब्रह्मा की इसी प्रकार की कमलासन एवं ललितासन प्रतिमा चालुक्य राजाओं के समय में बनी। इस प्रतिमा में ब्रह्मा चार मुख वाले, हाथों में दण्ड, कमण्डलु धारण किये, वरद मुद्रा में दिखाये गये हैं।[६] चालुक्य नरेशों के समय की बनी हुई एक और प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें ब्रह्मा चार मुख वाले तथा चार भुजा वाले हैं और पुस्तक तथा कमण्डलु लिये हुए हैं।[७] बैनर्जी महोदय ने ब्रह्मा की एक ऐसी प्रतिमा का वर्णन किया है जो पत्थर में कटी हुई है। ब्रह्मा विश्वपद्म पर विराजमान हैं और ललिताक्षेप मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा राजशाही

---

१. हंसयाने न कर्त्तव्यो न च कार्यश्चतुर्मुखः ।
ब्रह्मोक्तमपरं रूपं सर्वं कार्यं प्रजापतेः।। वि० ध० ७१।१२.
२. अग्रवाल—वा० श०, इण्डि० आ० पृ० ३३३.
३. अग्रवाल—वा० श०, इण्डि० आ० पृ० २५४.
४. वाजपेई—के० डी०, ब० स्टे० म्यू० न० ५ पृ० १८.
५. अग्रवाल—वा० श०, हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १२.
६. राव—गो० ना०, ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० ५०६.
७. वही.

म्यूजियम में रखी हुई है।[१] ब्रह्मा की एक और तीन मुख वाली हंस पर आरूढ़ प्रतिमा दुदाही के मन्दिर में है। किन्तु इसी के पास एक शिलालेख है जिसमें ब्रह्मा के चार मुख होने की ओर सङ्केत किया गया है।[२]

ब्रह्मा का चौथा सिर पीछे होने के कारण प्रतिमाओं में नहीं दिखाया जा सकता अतः तीन ही सिर अधिकांशतः प्रदर्शित किये जाते हैं। मथुरा संग्रहालय में तीन सिर वाली ब्रह्मा की प्रतिमा के पीछे चौथा सिर चक्र के रूप में सूचित किया गया है ऐसा डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है।[३] मध्य युग तक ब्रह्मा की प्रतिमाएँ सावित्री के साथ समाज में खूब पूजी जाती रहीं, किन्तु मुसलमान काल के अन्त तक ब्रह्मा की उपासना कम होने लगी। मद्रास म्यूजियम में सुरक्षित ब्रह्मा की प्रतिमा वैष्णव पुराणों के "चतुरमुकुटकोटिभिः"[४]...वर्णन से कुछ मिलती-जुलती है क्योंकि इसमें ब्रह्मा के सिर पर जटाओं के स्थान पर किरीट मुकुट है। अन्य सभी उपकरण समान हैं। यह प्रतिमा कांस्य धातु की बनी हुई है।[५] ऐहोल में प्राप्त हुई ब्रह्मा की प्रतिमा हंसारूढ़ तथा अन्य अनेक ऋषियों से घिरी हुई है। यह मूर्ति पत्थर की है।[६] ऐहोल के शिव मन्दिर में पद्मासन में स्थित ब्रह्मा की मूर्ति है।[७]

वैष्णव चतुर्व्यूह अथवा चतुर्मूर्ति

वैष्णव पुराणों के प्रमुख आराध्य देव विष्णु हैं। वे सृष्टि का पालन करने वाले हैं। श्रीमद्भागवत का कथन है कि पाञ्चरात्र विधि से उपासना करने वाले भक्त चतुर्व्यूह के रूप में विष्णु की उपासना करते हैं।[८]

ईश्वर की पर और अपर दो मूर्तियाँ हैं।[९] पर ईश्वर का सर्वोत्तम रूप तथा मूल कारण है। संसार के समस्त पदार्थों का यही लय स्थान है। इनकी दैवी इच्छा जब अपनी आत्मा लक्ष्मी की ओर प्रवृत्त होती है उस समय लक्ष्मी इस इच्छा को भूति

---

१. बैनर्जी, जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ५१९.
२. कनिंघम—आर्क० सर्वो० रि० ओ० सी० वा० १० पृ० ९३—९४.
३. अग्रवाल, वा० श०—ए० कै० आ० इ० आ० ब्र० कि० ए० शि० इ० म० आ० ज० आ० हि० यू० पी० सो० वा० २२ पृ० १०२.
४. श्रीमद्भा० १०।२१।१०.
५. बैनर्जी, जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ५१९.
६. वही पृ० ५२०.
७. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ पा० १ पृ० ५९.
८. यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भि।
व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ।। श्रीमद्भा० ११।६।१०.
९. देवस्य द्विविधा मूर्तिः पराचैव तथा परा।।
परायाः पौरुषी मूर्तिः पञ्चभूतविवर्जिताः ।। वि० ध० १०८

तथा क्रिया इन दो रूपों में ग्रहण करती है। जब इन दोनों की इच्छा, भूति तथा क्रिया ये तीनों शक्तियाँ परस्पर मिलती हैं तब उनके सम्मिश्रण से ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेज इन छः गुणों का प्रादुर्भाव होता है। छः गुणों के सम्मिश्रण से वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चार रूपों का निर्माण होता है। ये ही चतुर्व्यूह अथवा चतुर्मूर्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन चारों में वासुदेव रूप सर्वप्रमुख है। इसमें ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तथा तेज ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं। वासुदेव से ज्ञान तथा बल इन दो गुणों को लेकर सङ्कर्षण का रूप बना। सङ्कर्षण से ऐश्वर्य तथा वीर्य गुण लेकर प्रद्युम्न का रूप बना और प्रद्युम्न के शक्ति और तेज गुण के आधार पर अनिरुद्ध का रूप बना। इस प्रकार छः गुणों में दो गुणों के सम्मिश्रण से तीन रूप बने।[१]

वासुदेव––यह विष्णु का सर्वप्रमुख रूप है। वासुदेव सर्वव्याप्त हैं और सम्पूर्ण विश्व इनमें व्याप्त है। इसीलिए इनका नाम वासुदेव है—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥[२]

राव महोदय के ग्रन्थ से स्पष्ट होता है कि इन्होंने वासुदेव के कृष्ण वासुदेव अर्थात् मानवी रूप का वर्णन किया है।[३] किन्तु बैनर्जी महोदय ने वासुदेव के दैवी रूप को सर्वप्रमुख माना है।[४] अतः वासुदेव के दो रूप सिद्ध होते हैं––

१. दैवी रूप तथा

२. लौकिक एवं मानवी रूप।

वासुदेव के ये दोनों रूप मूर्तिकला तथा चित्रकला के उपादान के रूप में सबसे अधिक भव्य, सुन्दर, आकर्षक तथा उपयुक्त माने गये हैं। महाभारत वासुदेव को नारायण का मानवी रूप स्वीकार करता है––

यस्य नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो मानुषेष्वासीद् वासुदेवः प्रतापवान् ॥[५]

यही मानवी वासुदेव, कृष्ण द्वापर के पूर्णावतार हैं। महाभारत ने दैवी वासुदेव की भी उपेक्षा नहीं की है। उसमें भी नारायण के वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध

---

१. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भाग १ पृ० २१५–१७.
२. वि० पु० १।२।१२.
३. राव० गो० ना० ए० हि० आ० स० १ भाग १ पृ० २१९.
४. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २९६.
५. महा० आदि० ६७।५१.

इन चार रूपों को स्वीकार किया गया है।[1] वासुदेव सर्वप्रमुख तथा प्राचीन मूर्ति होने के कारण आदि मूर्ति है।[2] इस परम तत्त्व रूप में वे सभी प्राणियों में विद्यमान रहते हैं[3] किन्तु अपने रूप में वे वसुदेव के पुत्र, राजा, कूटनीतिज्ञ, वीरशिरोमणि, योद्धा, मित्र, सहायक, पथप्रदर्शक तथा दार्शनिक, उपदेशक एवं सुधारक हैं। यही कारण है कि विष्णु का वासुदेव कृष्ण रूप जितना विस्तार से पूजा गया उतना अन्य रूप ख्याति न पा सका।[4] जितने भी वैष्णव रूप हैं सभी वासुदेव रूप की विशेषताओं से पूर्ण हैं। वासुदेव अजन्मा, अक्षय, अव्यय तथा एक रूप हैं।[5]

भागवत पुराण में वासुदेव के मानवी रूप कृष्ण को भी इस चतुर्व्यूह में स्वीकार किया गया है। जिस समय कृष्ण कालिय नाग पर चढ़कर नृत्य करने लगे और उनके भार को सहन न कर सकने के कारण नाग अपने फणों से रक्त वमन करने लगा, उस समय व्याकुल हुई नागपत्नियों ने कृष्ण की जो स्तुति की वह चतुर्व्यूह एवं चतुर्मूर्ति का ही प्रकटीकरण है। उन्होंने कहा--

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥[6]

यहाँ पर सर्वप्रथम कृष्ण का नाम लिया गया है क्योंकि वही उस समय फणों पर नृत्य कर रहे थे। तत्पश्चात् बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन सबको वसुदेव का पुत्र स्वीकार किया गया है, क्योंकि 'सुत' और 'पति' शब्द एक ही वचन में है और वे सात्वतों के स्वामी कृष्ण के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। अतः ये चारों एक रूप हैं, अनेकता में एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं।

वासुदेव के रूप में विष्णु एक मुख वाले तथा देखने में अत्यन्त सुन्दर हैं। इनकी चार भुजाएँ हैं। जल से भरे हुए मेघ के समान श्याम (नीला) वर्ण के शरीर पर सभी प्रकार के सुन्दर आभूषण से भूषित रहते हैं--

एकवक्त्रश्चतुर्बाहुः सौम्यरूपः सुदर्शनः।
सलिलाध्मातमेघाभः सर्वाभरणभूषितः ॥[7]

शङ्ख के समान उतार-चढ़ाव वाले इनके कण्ठ पर शुभ रेखाएँ अङ्कित रहती हैं। उनके

---

१. महा० शां० ३३९।४०–४२.
२. महा० अनु० १४९।४९.
३. वसनात् सर्वभूतानां....महा० उद्यो० ७०।३.
४. राव० गो० वा० ए० हि० आ० १ भा० १ ८ २००.
५. वि० पु० १।२।१३–१५.
६. श्रीमदभा० १०।१६।४५.
७. वि० ध० ८५।२.

कानों में कुण्डल, हाथों में अङ्गद तथा केयूर, गले में सुन्दर वनमाला, हृदय पर कौस्तुभ मणि और सिर पर किरीट मुकुट शोभित रहता है—

> कण्ठेन शुभदेशेन कम्बुतुल्येन राजता ।
> वराभरणयुक्तेन कुण्डलोत्तरभूषिणा ।।
> अङ्गदी बद्धकेयूरो वनमाला विभूषणः ।
> उरसा कौस्तुभं बिभ्रत्किरीटं शिरसा तथा ।।[1]

इनके सिर पर सुन्दर आर्कषक पंखुड़ियों वाला कमल पुष्प बना होना चाहिये । चिकनी, मोटी सुन्दर भुजाएँ तथा अंगुलियों के ताम्र वर्ण के लाल नख होने चाहिये ।[2]

वासुदेव की प्रतिमा का निर्माण करते समय उनके पैरों के बीच में एक सुन्दर स्त्री के रूप में पृथ्वी की स्थापना होती है और उसके हाथों में भगवान् के चरण रहते हैं। वह विस्मित दृष्टि से उनकी ओर देखती रहती है ।[3] वासुदेव का कटि प्रदेश से नीचे वस्त्र घुटनों तक लम्बा, यज्ञोपवीत नाभि प्रदेश तक फैला हुआ तथा वनमाला घुटनों तक लम्बी होनी चाहिये—

> देवश्च कटिवासेन कार्यो जान्ववलम्बिना ।
> वनमाला च कर्त्तव्या देवजान्ववलम्बिनी ।।
> यज्ञोपवीतः कर्त्तव्यः नाभिदेशमुपागतः ।[4]

वासुदेव अपने दाहिने हाथ में खिला हुआ कमल और बाएँ हाथ में शङ्ख धारण करते हैं। उनके दाहिनी ओर गदा, सुन्दर कटिप्रदेश एवं सुन्दर नेत्रों वाली एक स्त्री के रूप में प्रदर्शित की जाती है । वह सभी आभूषणों से सुसज्जित रहती हो और अपने हाथ में चँवर लेकर प्रभु की ओर देखती रहती हो । वासुदेव का दाहिना हाथ उसके सिर पर रखा होता है। उसके बायीं ओर चक्र मूर्त्त रूप धारण कर विद्यमान

---

१. वि० ध० ८५।३–४.
२. शिरः पद्मस्तथैवास्य कर्त्तव्यः चारुकर्णिकः ।
मुष्टिश्लिष्टायतभुजस्तनुस्ताम्रनखाङ्गुलिः ।। वि० ध० ६५।५.
३. मध्येन त्रिवलिभङ्गशोभितेन सुचारुणा ।
स्त्रीरूपधारिणी क्षोणी कार्या तत्पादमध्यगा ।।
तत्करस्थाङ्घ्रियुगलो देवः कार्यो जनार्दनः ।।
तलान्तरपदन्यासः किञ्चिन्निष्क्रान्तदक्षिणः ।
अन्तर्दृशा महीकार्या देवदर्शनविस्मिता ।। वि० ध० ६५।६–८.
४. वि० ध० ८५।८–९.

रहता है । चक्र का सुन्दर रूप, लम्बा उदर तथा खुले हुए बड़े-बड़े नेत्र होते हैं ।[१] वह सभी आभूषणों से सुसज्जित रहता है और हाथ में चँवर लेकर वासुदेव की ओर देखने में संलग्न रहता है । उनका बाँया हाथ चक्र पुरुष के सिर पर रखा रहता है । इस प्रकार सभी आयुध मूर्त्तमान् होकर वासुदेव के समीप विद्यमान रहने चाहिये । अग्नि पुराण ने वासुदेव रूप का लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात्पद्ममेव च ।
वामे शङ्खं गदावस्ताद्वासुदेवस्य लक्षणम् ।।[२]

अर्थात् उनके दाहिनी ओर के दोनों हाथों में ऊपर चक्र, नीचे पद्म रहता है और बायीं ओर की भुजाओं में ऊपर शङ्ख तथा नीचे गदा रहती है ।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की बेसनगर के समीप उदयगिरि की गुफा में एक विष्णु की मूर्ति है, जो विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित वासुदेव के रूप से कुछ मिलती है ।[३] यह प्रतिमा अत्यन्त जीर्ण अवस्था में है और टूट भी गयी है । प्रतिमा की चार भुजाएँ हैं । शरीर पर सभी आभूषण यथास्थान शोभित हैं । पीछे का बायाँ हाथ चक्र पुरुष तथा दाहिना हाथ गदा देवी के सिर पर रखा है । चक्र तथा गदा दोनों सुन्दर पुरुष एवं सुन्दरी स्त्री के रूप में उनके समीप उपस्थित हैं । आगे के बाएँ हाथ में शङ्ख है और दाहिना हाथ टूटा हुआ है । डा० बैनर्जी ने इस टूटे हुए हाथ को अभय मुद्रा में बतलाया है किन्तु "उत्फुल्लकमलं पाणौ कुर्याद्देवस्य दक्षिणे"[४] के अनुसार इस हाथ में कमल पुष्प होना चाहिये (हाथ टूटा हुआ है) उस पर कुछ टूटी रेखाएँ भी दिखाई पड़ती हैं अतः उन्हें कमलदण्ड की रेखा मानना अधिक उपयुक्त

---

१. उत्फुल्लकमलं पाणौ कुर्याद्देवस्य दक्षिणे ।
वामपाणिगतं शङ्खं शङ्खाकारं तु कारयेत् ।।
दक्षिणे तु गदादेवी तनुमध्या सुलोचना ।
स्त्रीरूपधारिणी मुग्धा सर्वाभरणभूषणा ।।
पश्यन्ती देवदेवेशं कार्याचामरधारिणी ।
कार्यं तन्मूर्ध्नि विन्यस्तं देवहस्तं तु दक्षिणम् ।।
वामभागगतं चक्रः कार्यो लम्बोदरस्तथा ।
सर्वाभरणसंयुक्तो वृत्तविस्फारितेक्षणः ।।
कर्त्तव्यश्चामरकरो देववीक्षणतत्परः ।
कार्यो देवकरो वामो विन्यस्तस्तस्य मूर्धनि ।।
वि० ध० ८५।११–१४.

२. अग्नि पु० ४८।६.
३. बैनर्जी० जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४०० ।
४. धवि०० ८५।११.

होगा। इस प्रकार यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित वासुदेव प्रतिमा का ही प्रत्यक्ष रूप है।

सङ्कर्षण—देवकी ने जब अपने सातवें गर्भ में विष्णु के अंशस्वरूप शेष अथवा अनन्त को धारण किया उस समय विष्णु ने अपनी योगमाया को यह आदेश दिया कि इस समय जो शेष नामक उनका अंश देवकी के गर्भ में स्थित है उसे वह वहाँ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दे।[१] देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण ये सङ्कर्षण, लोकरञ्जन करने के कारण राम तथा बलवानों में अत्यधिक श्रेष्ठ होने के कारण बलभद्र भी कहे जाने लगे –

> गर्भसङ्कर्षणात् तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ।
> रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात् ।।[२]

वैष्णव पुराणों में सङ्कर्षण के दो रूपों का चित्रण हुआ है।

१. सङ्कर्षण का बलराम रूप तथा

२. सङ्कर्षण का अनन्त रूप।

बलराम रूप—बलराम विष्णु के अवतारों में गिने जाते हैं। ये श्वेत वर्ण वाले हैं तथा नीले वस्त्र पहनते हैं। हाथों में गदा के स्थान पर मूसल तथा चक्र के स्थान पर लाङ्गल (हल) धारण करते हैं इनका ऐसा ही रूप बनाने का आदेश दिया गया है –

> स तु शुक्लवपुः कार्यो नीलवासा यदूत्तः ।
> गदास्थाने च मुसलं चक्रस्थाने च लाङ्गलम् ।।[३]

इनके सुभद्र और वसुभद्र नाम के नीले वर्ण के दो प्रतिहारी हैं जो मुद्गर धारण करते हैं।[४]

---

१. सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ।।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ।
....
देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाममामकम् ।
तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ।। श्रीमद्भा० १०।२।६८.

२. श्रीमद्भा० १०।२।१३.

३. विष्णु० ध० ८५।२२.

४. विष्णु० ध० ८५।३०-३१.

शेषजी के अवतार माया मानव रूप बलराम एक दिन गोपों के साथ वन में विचरण कर रहे थे। मदिरा के अत्यन्त प्रेमी होने के कारण वरुण ने वारुणी मदिरा को इनकी सेवा में भेजा। अत्यधिक मदिरा पान कर इन्होंने अपने श्रम को मिटाने के लिए यमुना में स्नान करना चाहा। मदोन्मत्त बलराम से यमुना डर गयी। तब उन्होंने हल की नोक से यमुना को पकड़ कर खींच लिया। उसी क्षण यमुना ने अपना मार्ग छोड़ दिया और जहाँ वे खड़े थे उसी दिशा में बहने लगीं। प्रसन्न होकर उन्होंने यमुना को छोड़ दिया।[१] यमुना में स्नान कर लेने के पश्चात् लक्ष्मीजी ने स्वयं प्रकट होकर उन्हें एक सुन्दर कर्णफूल, एक कुण्डल, वरुण की भेजी हुई कभी न मुरझाने वाली एक कमल पुष्पों की माला तथा समुद्र के समान कान्ति वाले सुन्दर दो नीले वस्त्र प्रदान किये।[२] कर्णफूल, सुन्दर कुण्डल, नीले वस्त्र एवं पुष्पमाला को धारण कर बलरामजी अत्यन्त शोभायुक्त हो गये –

कृतावतंसस्स तदा चारुकुण्डलभूषितः।
नीलाम्बरधरःस्रग्वी शुशुभे कान्तिसंयुतः।।[३]

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि उनके नेत्र सैदव मद से चञ्चल और विह्वल रहते हैं। उनके चरणों के गोल-गोल और स्वच्छ अरुण वर्ण के नख मणियों के समान दैदीप्यमान रहते हैं।[४] अङ्ग पर नीलाम्बर और कानों में एक कुण्डल दैदीप्यमान रहता है। उनका हाथ हल की मूठ पर रखा रहता है। वे गले में कभी न मुरझाने वाली वैजयन्ती माला धारण करते हैं।[५]

बलराम के युद्ध वेषधारी रूप का वर्णन भी वैष्णव पुराण में हुआ है। इस रूप में वे युद्ध के आयुधों से सुसज्जित होकर अपना हल-मूसल लेकर तालध्वज चिह्नित रथ पर आरूढ़ रहते हैं।[६] युद्ध में ये अपने हल की नोक से शीघ्र ही सब शत्रुओं का संहार कर देते हैं।[७] हाथ में लाङ्गुल और मूसल लेने वाले बलराम की उपासना शोभा तथा वारुणी देवी स्वयं मूर्त्तिमती होकर करती हैं –

---

१. वि० पु० ५।२५।११-१४.
२. अवतंसोत्पलं चारु गृहीत्वैकं च कुण्डलम्।।
वरुणप्रहितां चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम्।
समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत।। वि० पु० ५।२५।१५-१६.
३. वि० पुराण ५।२५।१७.
४. श्रीमद्भा० ५।२५।४.
५. श्रीमद्भा० ५।२५।७-८.
६. श्रीमदभा० १०।५०।२२.
७. श्रीमद्भा० १०।५०।१८.

लाङ्गूलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुसलमुत्तमम् ।
उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया ।।[१]

विष्णुधर्मोत्तर सङ्कर्षण को शत चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाला जल से भरे हुए मेघों के समान नील वर्ण वस्त्र को धारण करने वाला कहता है । उनको हल के अग्र भाग से दैत्य को खींचते हुए और मूसल के अग्र भाग से उसे छिन्न-भिन्न करते हुए दिखाना चाहिये। दैत्य उनकी ओर दीन दृष्टि से देखता रहता है ।[२]

मृत्यु के समय कृष्ण ने देखा कि वे एक वृक्ष के नीचे समाधि लगाये बैठे हैं और उनके मुख से सहस्र फणों को धारण करने वाला एक श्वेत सर्प निकल कर सिद्ध-चारणों से वन्दित होता हुआ समुद्र में घुस गया ।[३]

अनन्त रूप––बलराम का दूसरा अनन्त रूप भगवान् की तामसी कला है । यह अहङ्कार रूपा है और भक्तजन इसे सङ्कर्षण कहते हैं।[४] गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, नाग आदि कोई भी इनके गुणों का अन्त नहीं पा सकते । ये उद्‌भव, स्थिति तथा प्रलय के कारण कहे जाते हुए भी उससे परे हैं इसी से इन्हें अनन्त नाम से विभूषित किया गया है ।[५] । पाताल लोक के नीचे तीस हजार योजन की गहराई पर विष्णु का यह शेष नामक तमोमय विग्रह विद्यमान है । देवता तथा दानव सभी इनके गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हैं––

पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्यातामसी तनुः ।
शेषाख्या यद्‌गुणान्वक्तुं न शक्याः दैत्यदानवाः ।।[६]

अनन्त अतिनिर्मल एवं स्वस्तिक चित्रों से विभूषित हैं। इनके सहस्र सिर हैं । प्रत्येक सिर में दैदीप्यमान मणि से वे दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। मद के कारण नेत्र लाल

---

१. वि० पु० २।५।१८-२०.

२. शशाङ्कशतसङ्काशं सतोयाम्बुदवाससम् ।
....
एहिसङ्कर्षणाचिन्त्य देवभक्तजनप्रिय ।
लाङ्गूलाकृष्टदैत्येन्द्र दीनेक्षण निरीक्षण ।।
मुसलाग्रविनिर्भिन्नतमोर्मूर्तिविनाशन ।।वि० ध० १०३।१४-१७.

३. निष्क्रम्य स मुखात्तस्य महाभोगो भुजङ्गमः ।
प्रययावर्णवं सिद्धैः पूज्यमानिस्तथोरगैः ।। वि० पु० ५।३७।५५.

४. भगवतस्तामसी समाख्यातांगत इति दृष्टदृश्ययोः
सङ्कर्षणमह मित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ।।
श्रीमदभा० ५।२५।१.

५. गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः ।
नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्ययः ।। वि० पु० २।५।२४.

६. वि० पु० २।५।१३.

रहते हैं । कानों में सदैव एक कुण्डल पहनते हैं । सभी सिरों पर मुकुट तथा गले में माला रहती है जिससे ये अग्नियुक्त श्वेत पर्वत के समान प्रतीत होते हैं । शरीर पर नीला वस्त्र तथा श्वेत हारों को पहनने से दूसरे कैलाश पर्वत के समान शोभित होते हैं ।[1] कल्पान्त के समय इनके मुख से विषाग्नि के समान भयङ्कर सङ्कर्षण नामक रुद्र निकल कर तीनों लोकों को भक्षण कर जाता है ।[2] शेष सम्पूर्ण भूमण्डल को मुकुट के समान अपने सिर पर धारण करते हैं । इनके जम्हाई लेने पर पृथ्वी विचलित हो जाती है । फणों की मणियों की आभा से अरुण वर्ण की बनी हुई पृथ्वी फूलों की माला के समान इनके सिर पर रखी है ।[3]

श्रीमदभागवत् शेषजी को सहस्र सिर वाला कमल नाल के समान उज्ज्वल शरीर वाला बतलाता है । वे नीला वस्त्र धारण किये हुए श्वेत शिखर के समान प्रतीत होते हैं । प्रत्येक फण मुकुट से सुशोभित रहता है —

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं बिसश्वेतं श्रृङ्गैः श्वेतमिवस्थितम् ।।[4]

एक अन्य स्थल पर उन्हें अत्यन्त भयानक और अद्‌भुत शरीर वाला कहा गया है । सहस्र सिरों पर मणियाँ हैं । प्रत्येक सिर में दो बड़े भयानक नेत्र हैं । इनका पूरा शरीर कैलाश के समान श्वेत है किन्तु गला और जीभ नीली है ।[5] विष्णुधर्मोत्तर में अनन्त नागों के ईश्वर, पृथ्वीमण्डल को धारण करने वाले एक हाथ में लाङ्गल

---

१. योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवो देवर्षिपूजितः ।
ससहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः ।।
फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन्दिशः ।
सर्वान्करोतिनिर्वीर्यान् हितायजगतोऽसुरान् ।।
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ।
किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निः श्वेतइवाचलः ।।
नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ।
साभ्रगङ्गाप्रवाहोऽसौकैलासाद्रिरिवापरः ।। वि० पु० २।५।१४-१७.

२. वि० पु० २।५।१९.

३. यः बिभ्रच्छेखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम् । ......
यस्यैषां सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा ।
आस्ते कुसुममालेव कस्ते वीर्यं वदिष्यति ।। वि० पु० २।५।२०-२२.

४. श्रीमद्‌भा० १०।३९।४५.

५. तस्मिन्महाभीममनन्तमद्‌भुतं
सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युतिः ।
विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं
सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ।। श्रीमद्‌भा० १०।८९।५४.

लिए हुए, दूसरे हाथ से मूसल उठाये हुए, सौ चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण वाले और उसी के समान वस्त्र धारण करने वाले, ताल चिह्न से सुशोभित बतलाये गये हैं—

आवाहयिष्ये वरदं चानन्तं दीप्ततेजसम् ।
नागानामीश्वरं शेषं महीमण्डलधारिणम् ।।
लाङ्गलालिङ्गितकरं मुसलोद्योतहस्तकम् ।।
महोच्छ्रितेन तालेन तथा चिह्नेन राजितम् ।।
....
शशाङ्कशतसंकाशं तथाम्बरनिभाम्बरम् ।।[1]

प्रद्युम्न—कामदेव वासुदेव के अंश हैं। वे पहले शङ्कर की क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो गये थे। पुनः शरीर प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने अंशी वासुदेव का ही आश्रय लिया और रुक्मिणी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न होकर प्रद्युम्न नाम से विख्यात हुए।[2] प्रद्युम्न का शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामवर्ण का है। वे रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं और घुटनों तक लम्बी भुजाएँ हैं। मन्द मन्द मुस्कान से उनका मुख और भी अधिक सुन्दर लगता है। घुँघराली और काली अलकें उनके मुख पर छिटकी रहती हैं –

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
स्वलङ्कृतमुखाम्बोजं नीलवक्रालकालिभिः ।।[3]

उनकी रूप-रेखा, आकार, अङ्गों की गठन, चाल-ढाल, मुस्कान, चितवन सब अपने पिता श्रीकृष्ण के समान है। क्योंकि बचपन में शम्बरासुर के द्वारा सूतिकागृह से चुरा लिए गये थे जब रुक्मिणी ने प्रद्युम्न को अपनी पत्नी के साथ आते हुए देखा तो वे चकित हो गयीं। कृष्ण के रूप की समानता से उन्हें भ्रम हो गया और वे सोचने लगी –

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ।।[4]

---

१. वि० ध० १०६।२६-२८.
२. कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तयेभूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ।।
स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोनवमः पितुः ।। श्रीमद्भा० १०।५५।१-२.
३. श्रीमद्भा० १०।५५।२७-२८.
४. श्रीमद्भा० १०।५५।३३.

विष्णुधर्मोत्तर में प्रद्युम्न के रूप का जो वर्णन हुआ है वह श्रीमद्भागवत में कहे हुए रूप से कुछ भिन्न है । इसमें वे दूर्वा के अङ्कुर के समान श्याम वर्ण वाले कहे गये और पीताम्बर के स्थान पर वे श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। अपने हाथों में चक्र के स्थान पर चाप (धनुष) रखते हैं और वासुदेव के जिस हाथ में गदा रहती है उस हाथ में प्रद्युम्न के शर (वाण) रहते हैं—

वासुदेवस्य रूपेण प्रद्युम्नो तथा भवेत्
स तु दूर्वाङ्कुर श्यामः सितवासा विधीयते ।
चक्रस्थाने भवेच्चापं गदास्थाने तथा शरम् ।।[1]

जन्म होते ही शम्बरासुर सूतिकागृह से इन्हें चुरा ले गया और समुद्र में डाल दिया । वहाँ इन्हें मच्छ निगल गया । उसी के पेट से ये निकले और रसोइये ने उन्हें शम्वरासुर की दासी मायावती को दे दिया। मायावती कामदेव की यशस्विनी पत्नी रति ही थी । अतः उसने इनका लालन-पालन किया । जब बड़े हुए तो मायावती ने इन्हें महामाया नाम की विद्या सिखा दी ।[2] शीघ्र ही प्रद्युम्न गदा लेकर शम्बरासुर से लड़ने चले । अन्त में अनेक मायाओं का प्रयोग करके उन्होंने तलवार से शम्बरासुर का सिर काट लिया ।[3]

विष्णुधर्मोत्तर में प्रद्युम्न का आवाहन करते समय उन्हें दूर्वाङ्कुर दल के समान श्याम वर्ण वाला तथा चन्द्रमा के समान श्वेत वस्त्र को धारण करने वाला, कामदेव के समान शान्त तथा कमनीय कलेवर वाला बतलाया गया है ।[4]

अनिरुद्ध—श्रीमद्भागवत में चित्रलेखा के द्वारा बनाये हुए अनिरुद्ध के चित्र का उल्लेख हुआ है। कामावतार प्रद्युम्न के पुत्र होने के कारण उनके समान सुन्दर संसार में कोई नहीं था । उनके शरीर का वर्ण श्यामल था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनकी आँखें, कमल दल के समान सुन्दर बड़ी-बड़ी भुजाएँ लम्बी, अलकें घुँघराली थीं। कानों के कुण्डल की ज्योति कपोलों पर पड़ती थी । होठों की मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रेमभरी दृष्टि से उनकी शोभा और बढ़ जाती थी । गले में बसन्ती

---

१. वि० ध० ८५।२३–२४.
२. श्रीमद्भा० १०।५५।१२–१६.
३. श्रीमद्भा० १०।५५।१८–२६.
४. देवमावाहयिष्यामि प्रद्युम्नमपराजितम् ।
दूर्वाङ्कुरदलश्यामं शशाङ्कांशुसमाम्बरम् ।।
कामं कामप्रदं शान्तं कमनीयं कलेवरम् ।।
. . . .
चापयष्टिविनिर्मुक्तशराहतजगत्रय । वि० ध० १०६।१८-२१.

बेला की बनी माला पहने हुए थे[1]। इस रूप में उषा के सम्मुख बैठे हुए अनिरुद्ध का पाँसे खेलते हुए चित्रण है।[2]

अनिरुद्ध की मूर्ति श्वेत द्वीप में स्थित है।[3] विष्णुधर्मोत्तर में अनिरुद्ध को कमलपत्र की आभा के समान वर्ण वाला, रक्त वस्त्र पहने हुए कहा गया है। इनके हाथों में चक्र के स्थान पर चर्म तथा गदा के स्थान पर तलवार कही गयी है। उनका चर्म चक्र के आकार का तथा तलवार खड्ग की भाँति होती है—

पद्मपत्राभवपुषो रक्ताम्बरधरस्य तु।
चक्रस्थाने भवेच्चर्म गदास्थानेऽसिरेव च ॥
चर्मस्याच्चक्ररूपेण प्रांशुः खड्गो विधीयते ॥[4]

भागवत् धर्म में विष्णु वासुदेव के रूप में अथवा सङ्कर्षण के साथ पूजे जाते रहे। यही कालान्तर में कृष्ण तथा बलराम के रूप में प्रसिद्ध हुए। अतः वासुदेव भगवान् विष्णु की आदि मूर्ति है। ऐसी आदिमूर्ति नागहेली के विष्णु मन्दिर में प्राप्त होती है। यह लाल पत्थर की चतुर्मुखी प्रतिमा एक वृक्ष के नीचे है, इसके हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म है[5] बलराम की अलग प्रतिमाएँ अधिक नहीं प्राप्त होती हैं। मथुरा के पास बलराम की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इस में बलराम खड़े हैं। सर्पों के फणों का छत्र उनके सिर पर है। उनकी पीठ पर सर्पों के गोल चक्र बने हुए हैं। वे अपने दाहिने हाथ में मूसल तथा बाएँ हाथ में हल लिये हैं। कानों में कुण्डल, शरीर पर धोती तथा उत्तरीय वस्त्र है। यह प्रतिमा कुषाणकाल की बतायी गयी है।[6] प्रतिमा पौराणिक वर्णन से कुछ समता रखती है और इस समय लखनऊ म्यूजियम में रखी हुई है। बलराम की प्रतिमाएँ कुषाण तथा गुप्त काल तक बनती रहीं परन्तु इस काल में सर्प छत्र पर विशेष बल नहीं दिया गया। बलराम की दूसरे प्रकार की भी प्रतिमाएँ बनीं जो पुराणों में वर्णित उनके मन्द विह्वल रूप को प्रकट करती हैं। इस रूप में वे बाएँ हाथ में मदिरा पात्र लिए रहते हैं। गुप्त काल आते-आते इनके गले में लम्बी

---

१. कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम्।
बृहद्भुजं कुण्डल कुन्तलत्विषा।
स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ श्रीमद्भा० १०।६२।३१.
२. श्रीमद्भा० १०।६३।३२.
३. श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् श्रीमद्भा० १०।८७।१०.
४. वि० ध० १०६।२२-२४.
५. राव गोपीनाथ ए० आ० हि० आ० भा० १ खं० १ पृ० २६१-६२.
६. अग्रवाल-वा० श०-इ० आ० पृ० २५६.

वनमाला तथा हार आदि चित्रित किये जाने लगे और बलराम चार भुजाओं वाले बनाये जाने लगे ।[१]

विष्णुधर्मोत्तर में विष्णु की चतुर्मूर्ति का वर्णन हुआ है। विष्णु के चारों मुख वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के द्योतक हैं। इनके चारों मुख तथा नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। उनका पूर्व का मुख सौम्य है और मनुष्य के आकार का है। दक्षिण की ओर का मुख सिंह की भाँति है और नरसिंह मुख कहलाता है। पश्चिम की ओर का मुख कापिल तथा उत्तर की ओर का मुख वराह के आकार का होने के कारण वाराह कहा जाता है—

मुखाश्च कार्याश्चत्वारो बाहवो द्विगुणास्तथा ।
सौम्यं तु वदनं पूर्वं नारसिंहं तु दक्षिणम् ॥
कापिलं पश्चिमं वक्त्रं तथा वाराहमुत्तरम् ।[२]

इस मूर्ति में हाथ मुख के दुगुने अर्थात् आठ होते हैं और उनके हाथों में बाण, अर्चा, मूसल, चर्म, चीर, इन्द्रचाप आदि रहते हैं ।[३] इस मूर्ति में सिंह और वराह के मुख विष्णु के नृसिंह एवं वराह अवतारों की ओर सङ्केत नहीं करते वरन् बल एवं ऐश्वर्य के प्रतीक हैं ।[४]

विष्णु की एक चतुर्मूर्ति का उल्लेख बेनर्जी महोदय ने किया है। काश्मीर में प्राप्त हुई यह प्रतिमा[५] विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कथित विष्णु की चतुर्मूर्ति से बिल्कुल मिलती है। प्रतिमा में तीन मुख तो आगे बराबर से बने हुए हैं जो दिखायी पड़ते हैं। चौथा मुख पीछे बना होनेके कारण दिखायी नहीं पड़ता। आगे के तीन मुखों में बीच का मुख शान्त तथा मनुष्य के समान है। यही विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कहा गया विष्णु का सौम्य मुख है। दाहिनी ओर का मुख सिंह के समान तथा बायीं ओर का मुख वराह के समान हैं। पीछे का मुख भयङ्कर बना हुआ है जो कापिल अथवा रौद्र मुख हो सकता है। चारों मुख वासुदेव (सौम्य), सङ्कर्षण (सिंह वाला), प्रद्युम्न (वाराह मुख) तथा अनिरुद्ध (कापिल मुख) के ही रूप हैं।

---

१. अग्रवाल—वा०श०-इ० आ० पृ० २५७.
२. वि० ध० ४४।११-१२.
३. तस्य दक्षिणहस्तेषु बाणाक्षमुसलादयः ॥
चर्मचीरं धनुश्चेन्द्र चापेषु वनमालिनः ॥
वि० ध० ४४।१३-१४.
४. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २६३.
५. बैनर्जी डे०-आ० हि० आ० पृ० ४०८-९.

विष्णु की चौबीस मूर्तियाँ

विष्णु के चतुर्व्यूह के आधार पर उनकी २४ मूर्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। महाभारत के अनुशासन पर्व में विष्णु के सहस्र नामों का उल्लेख हुआ है।[१] इन सभी नामों में २४ नाम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे नाम क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, उपेन्द्र, हरि तथा कृष्ण हैं। ये सभी खड़ी प्रतिमाएँ हैं। शरीर का कोई अङ्ग झुका नहीं है। सभी मूर्तियाँ चार भुजा वाली, किरीट, मुकुट तथा अन्य सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित पद्मासन पर स्थित हैं। इन सब में समानता होते हुए भी कुछ भिन्नता है और वह भिन्न-भिन्न हाथों द्वारा धारण किये जाने वाले आयुधों की है। मूर्तियों में अन्तर केवल शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म का विभिन्न हाथों द्वारा धारण किये जाने का है। आयुधों के धारण करने का क्रम ऊपर के दाहिने हाथ से प्रारम्भ होकर ऊपर के बाएँ हाथ की ओर जाकर नीचे के बाएँ हाथ से आकर नीचे के दाहिने हाथ पर गोलाकार रूप में आकर समाप्त हो जाता है। जैसा केशव की मूर्ति का लक्षण है—

ॐ रूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः [३]

अर्थात् केशव के रूप में विष्णु अपनी ऊपर की दाहिनी भुजा में कमल, बायीं भुजा में शङ्ख धारण करते हैं और नीचे की बायीं में चक्र तथा दाहिनी भुजा में उनके गदा रहती है। गरुड़ पुराण के अनुसार वे ऊपर की दोनों भुजाओं में क्रम से शङ्ख, चक्र तथा नीचे की भुजाओं में गदा तथा कमल धारण करते हैं।[४] अग्नि पुराण के अनुसार नारायण की मूर्ति में शङ्ख, पद्म, गदा, चक्र रहता है।[५] गरुड़ पुराण इसी क्रम को कमल, गदा, चक्र, शङ्ख के रूप में बताता है।[६] इस प्रकार आयुधों का क्रम अनेक ग्रन्थों में दिया हुआ है। रूपमण्डन[७] में इन सबका क्रम निम्न प्रकार से है—

---

१. महा० अनु० १४९।१२–१११.
२. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भाग १ पृ० २४२–४३.
३. अग्नि पु० ४६।१.
४. ग० पु० ४५।४.
५. अग्नि पु० ४८।६.
६. ग० पु० ४५।६.
७. रूपमण्डन अ० ३६।२१–२८.

मूर्तियों के नाम	ऊपर का दाहिना हाथ	ऊपर का बायाँ हाथ	नीचे का बायाँ हाथ	नीचे का दाहिना हाथ
१. केशव	शङ्ख	चक्र	गदा	पद्म
२. नारायण	पद्म	गदा	चक्र	शङ्ख
३. माधव	चक्र	शङ्ख	पद्म	गदा
४. गोविन्द	गदा	पद्म	शङ्ख	चक्र
५. विष्णु	पद्म	शङ्ख	चक्र	गदा
६. मधुसूदन	शङ्ख	पद्म	गदा	चक्र
७. त्रिविक्रम	गदा	चक्र	शङ्ख	पद्म
८. वामन	चक्र	गदा	पद्म	शङ्ख
९. श्रीधर	चक्र	गदा	शङ्ख	पद्म
१०. हृषीकेश	चक्र	पद्म	शङ्ख	गदा
११. पद्मनाभ	पद्म	चक्र	गदा	शङ्ख
१२. दामोदर	शङ्ख	गदा	चक्र	पद्म
१३. सङ्कर्षण	शङ्ख	पद्म	चक्र	गदा
१४. वासुदेव	शङ्ख	चक्र	पद्म	गदा
१५. प्रद्युम्न	शङ्ख	गदा	पद्म	चक्र
१६. अनिरुद्ध	गदा	शङ्ख	पद्म	चक्र
१७. पुरुषोत्तम	पद्म	शङ्ख	गदा	चक्र
१८. अधोक्षज	गदा	शङ्ख	चक्र	पद्म
१९. नृसिंह	पद्म	गदा	शङ्ख	चक्र
२०. अच्युत	पद्म	चक्र	शङ्ख	गदा
२१. जनार्दन	चक्र	शङ्ख	गदा	पद्म
२२. उपेन्द्र	गदा	चक्र	पद्म	शङ्ख
२३. हरि	चक्र	पदम	गदा	शङ्ख
२४. श्रीकृष्ण	गदा	पद्म	चक्र	शङ्ख

इन मूर्तियों की उत्पत्ति बड़ी रोचक है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि वासुदेव में ६ गुण हैं–ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति एवं तेज। वे पूर्णतः निर्दोष हैं। इन्हीं से सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन तीन देवों का प्रादुर्भाव होता है, जिनमें सङ्कर्षण ज्ञान तथा बल युक्त हैं, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य गुण है तथा अनिरुद्ध शक्ति एवं तेजपूर्ण हैं। ये ही चारों मिलकर चतुर्व्यूह की रचना करते हैं।

अहिर्बुध्न्य संहिता का कथन है कि इन्हीं चारों से अन्य रूप उत्पन्न होते हैं[1], जैसे–

पर वासुदेव से—केशव, नारायण और माधव,

सङ्कर्षण से—गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन,

प्रद्युम्न से—त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर तथा

अनिरुद्ध से—हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर।

इस प्रकार चतुर्व्यूह से १२ रूप हो गये। तत्पश्चात् चतुर्व्यूह में कथित चारों देव अपने अन्य चार रूप और धारण करते हैं जो क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के ही नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें वासुदेव से पुरुषोत्तम, सङ्कर्षण से अधोक्षज, प्रद्युम्न से नृसिंह तथा अनिरुद्ध से अच्युत उत्पन्न होते हैं। बाद में पुरूषोत्तम से जनार्दन, उपेन्द्र, हरि तथा कृष्ण ये चारों देव और उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार २४ की संख्या पूर्ण हो जाती है।[2]

विष्णुधर्मोत्तर में ऐसा उल्लेख हुआ है कि इन विभिन्न मूर्तियों की भिन्न-भिन्न इच्छाओं की पूर्ति हेतु उपासना की जाती है। धर्म की इच्छा करने वाला व्यक्ति अनिरुद्ध की, अर्थ के लिए सङ्कर्षण की, काम की प्राप्ति के लिए प्रद्युम्न की तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए वासुदेव की आराधना करते हैं। ये चारों मूर्तियाँ सभी प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति करती हैं।[3] रूपमण्डन में कहा गया है कि ब्राह्मण केशव, नारायण, माधव और मधुसूदन की आराधना द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। क्षत्रिय मधुसूदन तथा विष्णु की पूजा करके अपना इष्ट प्राप्त कर लेते हैं। वैश्य सुख को प्राप्त करने के लिए त्रिविक्रम तथा वामन की आराधना करते हैं। शूद्र के लिए श्रीधर की पूजा कल्याणकारिणी बतलायी गयी है। मोची, धोबी, नाचने-वाले, बहेलिये, भिल्ल और करद आदि के इष्टदेव हृषीकेश हैं। कुम्हार, व्यापारी तथा तेली आदि

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २३३–३४.
२. वही पृ० २३६–३७.
३. वि० ध० ११८।२–४.

के प्रमुख देव पद्मनाभ हैं। यति और ब्रह्मचारी को दामोदर की उपासना अपेक्षित है। नृसिंह वराह, अच्युत आदि की उपासना सभी कर सकते हैं।[१]

इन चौबीस रूपों में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध मुख्य हैं क्योंकि ये ही शक्तिमय व्यूह की रचना करते हैं। आगम ग्रन्थ इन्हें दशावतारों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।[२] मैसूर के बेलूर स्टेट के छत्रकेशवस्वामिन् के मन्दिर में केशव, माधव, गोविन्द, मधुसूदन, हरि और कृष्ण इन छः की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें केशव की मूर्ति अच्छी दशा में है और होयसल संस्था की कला का सर्वोत्तम नमूना है। इसे होयसल साम्राज्य के महाराज विष्णुवर्धनदेव की महारानी शान्तल-देवी ने बनवाया थी। प्रतिमा के नीचे संस्कृत में एक शिलालेख है। उससे यह स्पष्ट होता है कि यह सृष्टि के सभी जीवों को शान्ति देने वाले छत्रकेशव की प्रतिमा है। प्रतिमा की प्रभावली में विष्णु के दशावतार तथा आगे दिक्पाल बने हैं। अन्य पाँच प्रतिमाएँ मन्दिर के मध्य की दीवाल पर बनी हैं। ये सभी सुन्दर एवं भव्य प्रतिमाएँ मकर कुण्डल पहने हैं।[३] विष्णु की अष्ट धातु की बनी हुई एक प्रतिमा है जिसमें वे कमलासन पर खड़े हैं। उनके बाल बँधे हुए हैं और सिर पर मुकुट बँधा हुआ है। उनके चारों हाथों में क्रम से गदा, चक्र, शङ्ख तथा पद्म है। आयुधों के क्रम से यह श्रीधर की प्रतिमा सिद्ध होती है जो कुछ वर्ष पूर्व तिपरा जिले में लाक्साम स्थान में बाबू अतुलचन्द बागची द्वारा ढूँढी गयी है।[४] विक्रमपुर में किसी स्थान से प्राप्त गोविन्द रूप की प्रतिमा ढाका के स्वामीबाग मन्दिर के अन्दर रखी हुई है। यह काले पत्थर की बनी हुई गोविन्द की प्रतिमा कला का उत्कृष्ट नमूना है।[५] ढाका जिले के धामारी स्थान में विष्णु की लकड़ी की बनी हुई प्रतिमा है और यशोमाधव नाम से इसकी पूजा होती है। जुलाई मास में अनेक यात्री रथोत्सव के समय इसके दर्शन करने आते हैं। यशोमाधव की प्रतिमा पर खूब मोटी रङ्ग की पर्त है जिससे कला का चातुर्य नहीं दिखायी देता।[६] ढाका कलेक्टरी के कम्पाउण्ड में विक्रमपुर से प्राप्त हुई एक विष्णु की प्रतिमा है। प्रतिमा आभूषणों से खूब सजी है। ऊपर के दाहिने हाथ में गदा तथा बाएँ में चक्र है। नीचे के दाहिने हाथ में शङ्ख है और बाँया हाथ टूटा हुआ है।[७] यद्यपि इस प्रतिमा का विशेष

---

१. राव० गो० ना० ए० हि० आ० से १ मा० १ पृ० २३८.
२. वही पृ० २३९.
३. वही पृ० २४३–४४.
४. आइ० आ० बु० ए० ब्रा० स्क० पृ० ८२.
५. वही पृ० ८६.
६. वही पृ० ८६.
७. वही पृ० ८८.

नाम नहीं दिया गया फिर भी गदा, चक्र, पद्म तथा शङ्ख[1] के अनुसार यह उपेन्द्र की प्रतिमा सिद्ध होती है। अतः टूटे हुए बाएँ हाथ में अवश्य ही पद्म होगा।

विष्णु

वैष्णव पुराणों में विष्णु के विविध रूपों का वर्णन हुआ है। कहीं पर वे दो भुजा वाले, कहीं चार भुजा वाले तथा कहीं आठ भुजा वाले चित्रित किये गये है। कहीं पर उनकी मूर्ति अनेक भुजा वाली हो जाती है। कहीं पर वे अकेले रहते हैं। किसी समय लक्ष्मीजी इनके साथ रहती हैं। सुन्दर वस्त्राभूषणों को धारण करने वाले विष्णु के रूप का ज्ञान करने के लिए निम्नलिखित विषय विचारणीय हैं–

१. भुजाएँ एवं आयुध,
२. वस्त्र,
३. आभूषण,
४. वाहन तथा
५. देवी।

भुजाएँ एवं आयुध–वैष्णव पुराणों में वर्णित विष्णु के विभिन्न रूपों का आधार उनकी भुजाएँ हैं। भुजाओं की संख्या के आधार पर उनका रूप तीन प्रकार का कहा जा सकता है–

१. द्विभुजा रूप,
२. चतुर्भुज रूप तथा
३. अष्टभुज रूप।

बृहत्संहिता का विष्णु की भुजाओं के विषय में निम्न आदेश है––

कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः।[2]

अर्थात् उन्हें दो भुजा, चार भुजा अथवा आठ भुजा वाला बनाया जा सकता है।

विष्णु का दो भुजा वाला रूप सर्वसाधारण है। दो भुजाओं वाले रूप को बृहत्संहिता ने निम्न प्रकार से बनाने का आदेश दिया है––

---

१. ग० पु० ४५।११.
२. बृ० सं० ५८।३१.

द्विभुजस्य तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तो परश्च शङ्खधरः।।
एवं विष्णोः प्रतिमाकर्त्तव्याभूतिमिच्छद्भिः ।।[१]

अर्थात् दाहिना हाथ शान्तिकर मुद्रा में रहता है और बाएँ हाथ में वे शङ्ख धारण करते हैं । वैष्णव पुराणों में उनकी दो भुजा वाली मूर्ति का चित्रण हुआ है किन्तु भिन्न रूप में । कहीं पर एक हाथ में चक्र उनके और एक में गदा रहती है ।[२] कभी एक हाथ में गदा रहती है और एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है ।[३] कहीं पर उनका बायाँ हाथ गरुड़ के स्कन्ध पर रखा रहता है और दाहिने हाथ में वे लीला-कमल घुमाया करते हैं–

वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ।।[४]

दो भुजा वाले उनके ऐसे भी रूप का वर्णन हुआ है जिसमें उनके शरीर पर न कोई आभूषण रहता है न कोई आयुध । अपनी दोनों भुजाओं में से वे एक में स्फटिक मणि निर्मित अक्षमाला धारण करते हैं । स्कन्ध पर उनके यज्ञोपवीत पड़ा रहता है । शिर पर मुकुटादि नहीं रहता–

ततः शङ्खगदाचक्रशार्ङ्गादिरहितं बुधः ।
चिन्तयेद्भगवद्रूपं प्रशान्तं साक्षसूत्रकम् ।।
....
किरीटकेयूरमुखैर्भूषणैःरहितं स्मरेत् ।।[५]

विष्णु पुराण में कहा गया है कि लम्बी-लम्बी चार अथवा आठ भुजा वाले विष्णु का ध्यान करना चाहिये ।[६] अपनी इन भुजाओं की संख्या के अनुसार विष्णु उनमें भिन्न-भिन्न आयुध धारण करते हैं । यद्यपि चार भुजाओं में धारण किये जानेवाले शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मादि के क्रम का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है किन्तु इन चारों आयुधों से भिन्न आयुध भी वे भुजाओं में धारण करते हैं । बृहत्संहिता का कथन है कि विष्णु यदि चार भुजा वाले हों तो उनके तीन हाथों में शङ्ख, चक्र तथा गदा रहती

१. बृ० सं० ५८।३५.
२. वि० पु० ३।११।१३.
३. वि० पु० ८।१२।२१.
४. श्रीमद्भा० ३।१५।४०.
५. वि० पु० ६।७।८८–८९.
६. प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ।। वि० पु० ६।७।८२.

है और चौथा हाथ शान्ति मुद्रा में रहता है ।[१] वैष्णव पुराण में कहीं-कहीं आयुधों का क्रम भिन्न है। देवों के समक्ष जब विष्णु प्रकट हुए तो वे अपने तीन हाथों में शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण किये हुए थे–

तं दृष्ट्वा वै तदा देवाः शङ्खचक्रगदाधरम् ।[२]

यहाँ पर चौथी भुजा के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। वह शान्ति अथवा अभय मुद्रा में हो सकती है जैसा कि आगे के प्रसङ्ग से स्पष्ट है। जब देवों ने आर्त स्वर में विष्णु को पुकारा तो वे इसी रूप में देवों के समक्ष प्रकट हुए–

जातोऽसि देवदेवे शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दिव्यरूपमिदं देवं प्रसादेनोपसंहर ।।[३]

यहाँ 'प्रसादेनोपसंहर' पद विष्णु की चौथी भुजा को अभय मुद्रा में रहने का सङ्केत करता है।

समुद्र मन्थन के समय देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वे देवों के समक्ष अपने पूर्ण तेज के साथ प्रकट हो गये। परम तेज के कारण ब्रह्मा तथा शिव के अतिरिक्त उन्हें कोई न देख सका। सुदर्शन-चक्रादि आयुध मूर्तमान् होकर उनकी सेवा कर रहे थे––

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमदिभरुपासितम् ।।[४]

यहाँ पर स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिः पद बहुवचन में है जो विष्णु की चार भुजा होने का सङ्केत करता है ।

तपस्या करती हुई माता अदिति के समक्ष विष्णु ने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को धारण करने वाले चतुर्भुज रूप को प्रकट किया–

चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः ।।[५]

विष्णु की चारों भुजाओं में गदा, शङ्ख, खड्ग तथा चक्र भी रहता है–

---

१. अथ च चतुर्भुजमिच्छति शान्तिदैकोगदाधरश्चान्यः ।
दक्षिणपार्श्वे ह्येवं वामे शङ्खश्च चक्रं च ।। वृ० स० ५८।३४.
२. वि० पु० १।९।६७.
३. वि० पु० ५।३।१०.
४. श्रीमद्भा० ८।६।७.
५. श्रीमद् भा० ८।१८।१.

जयेश्वराणां परमेशकेशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक् ।।[1]

इस रूप में वे स्तुति करते हुए मुनि जनों के समक्ष प्रकट हुए थे। विष्णुधर्मोत्तर में विष्णु का आवाहन करते समय उनकी चतुर्भुजी प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। उनके तीन हाथों में शङ्ख, चक्र तथा गदा रहती है--

विष्णुमावाहयिष्यामि शङ्खचक्रगदाधरम् ।।[2]

एक हाथ में किसी आयुध का उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु इसी प्रसङ्ग में प्रयुक्त हुआ 'प्रजानिर्माणकारकम्'[3] विशेषण उनके अभय एवं शान्त रूप को प्रकट करता है। अतः उनका एक हाथ शान्ति प्रदान करने की अभय मुद्रा में होगा।

विष्णु का अष्टभुजी रूप अधिक भव्य हो जाता है। उनमें धारण किये जाने वाले आयुधों में भी वृद्धि हो जाती है। बृहत्संहिता विष्णु का अष्ट भुजा वाला रूप निम्न प्रकार से बनाने का आदेश देती है--

खड्गगदाशरपाणिर्दक्षिणतः शान्तिदश्चतुर्थकरः ।
वामकरेषु च कार्मुकखेटकचक्राणि शङ्खश्च ।।[4]

अर्थात् यदि विष्णु आठ भुजा वाले होते हैं तो दाहिनी ओर के तीन हाथों में खड्ग, गदा तथा वाण धारण करते हैं और चौथा शान्तिदायिनी मुद्रा में रहता है। वायीं ओर की उनकी चारों भुजाओं में धनुष, खेटक, चक्र तथा शङ्ख विद्यमान रहता है।

वालक ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु उसके समक्ष प्रकट हुए--

गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिः ।।[5]

इस प्रसङ्ग से यह स्पष्ट होता है कि प्रकट हुआ रूप चतुर्भुज था किन्तु साथ ही ऐसा भी कहा गया है कि उनकी भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग, धनुष तथा खड्ग ये छः आयुध थे--

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गवरासिधरमच्युत ।[6]

---

१. वि० पु० १।४।३५.
२. वि० ध० १०४।३४.
३. वि० ध० १०४।३५.
४. बृ० सं० ५८।३३.
५. वि० पु० १।१२।४१.
६. वि० पु० १।१२।४५.

शेष दो हाथ सम्भवतः अभय तथा वरद मुद्रा में होंगे। इस प्रकार यह विष्णु का अष्टभुजी रूप ही सिद्ध होता है। विष्णु ने अपने शङ्ख के प्रान्त भाग से ध्रुव को स्पर्श कर उसके तपस्याजनित क्लेश को नष्ट कर दिया।[1]

एक स्थल पर विष्णु की ऐसी मूर्ति बतलायी गयी है कि उनके छः हाथों में छः आयुध हैं और शेष दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में हैं।

> शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम् ।
> वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नविभूषितम् ।।[2]

विष्णु के इन सभी रूपों की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। बैनर्जी महोदय ने मथुरा के पण्डित राधाकृष्ण के द्वारा बतलायी हुई एक प्रतिमा का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है, प्रतिमा चतुर्भुजी है। उनके तीन हाथों में शङ्ख, चक्र तथा गदा है और चौथा हाथ अभय मुद्रा में है।[3] यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर तथा विष्णु पुराण के प्रसङ्ग का स्पष्टीकरण प्रतीत होती है। बेसनगर के समीप उदयगिरि की गुफा में विष्णु की एक चतुर्भुजी प्रतिमा प्राप्त होती है। उनके पीछे के हाथ चक्र पुरुष तथा गदा देवी के सिर पर रखे हैं। आगे के बाएँ हाथ में शङ्ख है और दाहिना हाथ टूट गया। सम्भवतः इसमें कमल होगा अथवा अभय मुद्रा में होगा। यह प्रतिमा बहुत टूट चुकी है और जीर्ण दशा में है।[4] ढाका जिले में विक्रमपुर के शियाल्दी स्थान में काले पत्थर की बनी हुई विष्णु की प्रतिमा है। प्रतिमा सुन्दर एवं कला का उत्कृष्ट नमूना है।[5] चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म है और श्रीमद्भागवत के 'चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः'[6] का स्पष्टीकरण है। ढाका कलेक्टरी के हाते में विष्णु की चार भुजा वाली मूर्ति प्राप्त हुई है। इसे लगभग पचास वर्ष पीछे स्व० बैकुण्ठनाथ सेन ने प्राप्त की थी। प्रतिमा के बाएँ हाथों में चक्र तथा गदा है और एक दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है।[7]

श्री हरिकृष्ण शास्त्री महोदय ने अपने ग्रन्थ में विष्णु की दो अष्टभुजी प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। एक प्रतिमा काञ्जीवरम् में प्राप्त हुई और दूसरी बादामी की है। दोनों प्रतिमाएँ पत्थर की हैं। दोनों प्रतिमाओं के हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म,

---

१. शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्शकृताञ्जलिम् ।। वि० पु० १।१२।५१.
२. वि० पु० ६।७।८५-८९.
३. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४००.
४. बैनर्जी– जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४०१.
५. आइको आ० बुद्धिस्ट ए० ब्रह्म० स्कल्प० पृ० ८६.
६. श्रीमद्भा० ८।१८।१.
७. आइ० आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० ८८.

खड्ग एवं धनुष है। शेष दो हाथों में से एक अभय मुद्रा तथा दूसरा वरद मुद्रा में है।[1] वैष्णव पुराणों ने ये सभी आयुध विष्णु के आठ हाथों में स्वीकार किये हैं।[2] विष्णु की दो भुजा वाली एक प्रतिमा फतेहपुर सीकरी के रूपवस नामक स्थान से प्राप्त हुई है। प्रतिमा में विष्णु खड़े हैं। उनके बाएँ हाथ में शङ्ख है तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। प्रतिमा विष्णु पुराण में कथित रूप से मिलती है।[3] इसी प्रकार की दो, चार अथवा आठ भुजा वाली विष्णु की प्रतिमाओं का जैसा वर्णन वैष्णव पुराणों में हुआ है उसी रूप की मूर्तियाँ भारत के उत्तरी-पूर्वी भागों में प्राप्त होती हैं, क्योंकि ये ऐसे रूप हैं जो साधारणतः सर्वत्र देखने को मिल जाते हैं।[4]

आयुध तथा आयुध पुरुष—विष्णु के सब रूपों में जो आयुध उपस्थित रहते हैं उनका वैष्णव पुराणों में दो रूपों में चित्रण हुआ है—

१. प्राकृतिक रूप तथा

२. मानवी रूप।

वैसे तो आयुध अपने प्राकृतिक रूप में विष्णु की भुजाओं में विद्यमान रहते हैं किन्तु कभी-कभी ये आयुध पुरुष एवं सुन्दरी स्त्री के रूप में इनके समीप उपस्थित रहते हैं। विष्णु का हाथ उनके शिर पर रखा रहता है। आयुधों का प्रतिमाकरण करते समय उनके-आँखें, नासिका, हाथ, पैर तथा सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग बनाये जाते हैं। उन्हें सभी आभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। उनके शिर पर मुकुट रहता है उसी में आयुधों का लान्छन चिह्नित कर दिया जाता है अथवा हाथों के समीप बना दिया जाता है—

उक्तानां चैव सर्वेषां मूर्ध्निस्वायुधलाञ्छनम्।
भुजौ द्वौ तु प्रकर्त्तव्यौ स्कन्धलग्नौ सदा बुधैः ।।[5]

विष्णुधर्मोत्तर में शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, शङ्ख, हेतु, भिन्दि, शर और धनु इन आयुधों के रूप का वर्णन करता है। इनमें शक्ति, खड्ग, गदा, शङ्ख, शर, धनु तथा चक्रादि आयुध विशेषतः विष्णु से सम्बद्ध हैं। उन्हीं का यहाँ चित्रण होगा। शक्ति को रक्त वर्ण के अङ्गों वाली स्त्री के रूप में बनाया जाता है।

---

१. शास्त्री-हरिकृष्ण-साउथ इण्डि० गा० ए० गाडे० पृ० १७.
२. वि० ६।७।८५.
३. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४००.
४. वि० ध० १०५।२७.

वह वृक (भेड़िए) पर आरूढ़ रहती है। खड्ग श्याम वर्ण के क्रोध से भरे नेत्रों वाले पुरुष के रूप में बनाना चाहिये—

शक्तिस्तुयोषिदाकारा लोहिताङ्गी वृकाश्रिता ।
. . . .
खड्गश्च पुरुषश्श्यामशरीरः क्रुद्धलोचनः ।।[१]

गदा पीली, कान्तियुक्त, सुन्दर जघनस्थल वाली कन्या के रूप में रहती है, शङ्ख श्वेत वर्ण का सुन्दर नेत्र वाले दिव्य पुरुष के रूप में रहता है। वह देखने में सुन्दर लगता है। शर दिव्य नेत्रों वाला रक्त वर्ण के अङ्गों वाले दिव्य पुरूष के रूप में रहता है। धनु रक्त कमल के समान आभा वाली स्त्री के रूप में है जिसका शिरस्थान बाणों से भरा रहता है—

गदापीतप्रभा कन्यां सुपीनजघनस्थला ।
. . . .
शङ्खोऽपि पुरुषो दिव्यश्शुक्लाङ्गश्शुभलोचनः ।।
. . . .
शरःस्यात्पुरुषो दिव्यो रक्ताङ्गो दिव्यलोचनः ।।
धनुःस्त्री पद्मरक्ताभा मूर्ध्नि पूरितचापभृत् ।
एवमस्त्राणि पूतानि जानीयात्परमेश्वरे ।।[२]

अनेक स्थलों पर ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि भगवान् के द्वारा स्मरण किये जाने पर उसी क्षण सभी आयुध मूर्त्तरूप रखकर उपस्थित हुए[३] अथवा शङ्ख चक्रादि आयुध मूर्त्तमान होकर प्रभु के समीप उपस्थित थे (मूर्त्तिमद्भिर्निजायुधैः)[४] अथवा आयुध मूर्त्तमान् होकर सेवा में संलग्न थे (तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं)।[५] प्रभु जब समाधिस्थ हो गये तो उनका रथ घोड़ों सहित आकाश में उड़ गया और सभी मूर्त्तमान् आयुध प्रभु की परिक्रमा करके आकाश में चले गये।[६]

---

१. वि० ध० १०४।४६.
२. वि० ध० १०४।१११–११५.
३. वि० पु० ५।२२।६.
४. श्रीमद्भा० ११।३०।३२:
५. वही ११।३०।४२.
६. खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः।
तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च।
श्रीमद्भा० ११।३०।४४–४५.

विष्णु की गदा का नाम कौमोदकी है। इसका मानवीकरण एक अन्य स्थल पर विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है। उसका कथन है कि सुन्दर शरीर वाली, पतले कटिस्थल वाली मुग्ध स्त्री के रूप में गदा को प्रदर्शित करना चाहिये। सभी सुन्दर आभूषणों से उसका शरीर सुसज्जित हो और वह हाथ में चँवर लिए हुए हो और वह प्रभु की ओर देखने में तत्पर हो--

दक्षिणे तु गदा देवी तनुमध्या सुलोचना।
स्त्रीरूपधारिणी मुग्धा सर्वाभरणभूषिता।।
पश्यन्ती देवदेवेशं कार्या चामरधारिणी।[१]

इस सुन्दरी गदा के सिर के ऊपर उनका हाथ रखा रहता है।[२]

मानवीकरण के साथ-साथ प्रभु की कौमोदकी गदा वीरों के रुधिर से सनी हुई गदा के रूप में भी प्रदर्शित की गयी है--

कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत्
दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन।।[३]

शङ्ख का प्रायः सम्बन्ध विष्णु से ही समझा जाता है। उनके शङ्ख का नाम पाञ्चजन्य है जिसकी प्राप्ति उन्हें पञ्चजन नामक दैत्य को मारने के पश्चात् हुई थी। इसी शङ्ख के अन्दर वह दैत्य छिपकर रहता था।[४] शङ्ख युद्ध के समय स्वजनों को प्रोत्साहित करने के लिए और विपक्षी शत्रुओं को भयभीत करने के लिए बजाया जाता था। ऐसा भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में की गयी विभिन्न शङ्ख-ध्वनियों से स्पष्ट होता है। राव महोदय ने साधारण शङ्ख, विभूषित शङ्ख तथा ज्वालाशङ्ख आदि विभिन्न प्रकार के शङ्खों का उल्लेख किया है।[५] विष्णुधर्मोत्तर में शङ्ख को शङ्ख के आकार का ही बनाने का आदेश दिया है--

वामपाणिगतं शङ्खं शङ्खाकारं तु कारयेत्।।[६]

चक्र प्रसिद्ध वैष्णव आयुध है। किन्तु देवी दुर्गा के द्वारा भी यह धारण किया जाता है। विष्णु के द्वारा धारण किया जाने वाला चक्र सुदर्शन कहलाता है। कला के क्षेत्र में यह तीन रूपों में प्रदर्शित किया गया है--

---

१. वि० ध०--८५।११-१२.
२. कार्यं तन्मूर्ध्निविन्यस्तं देवहस्तं तु दक्षिणम्।। वि० ध० ६५।१२.
३. श्रीमद्भा० ३।२८।२८.
४. दैत्यः पञ्चजनो नाम शङ्खरूपस्य...। वि० पु० ५।२१-२७.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १०२.
६. वि० ध० ८५।१०.

१. गाड़ी के पहिये के रूप में अथवा विभूषित चक्र के रूप में,

२. खिले हुए कमल पुष्प के रूप में जिसकी पंखुड़ियाँ निकली हुई होती हैं तथा

३. पुरुष के रूप में ।

श्रीमद्भागवत् में सुदर्शन चक्र सहस्र धार वाला कहा गया है । इसका तेज असह्य होता है—

सञ्चिन्त येद्दशशतारमसह्यतेजः ।[1]

विष्णुधर्मोत्तर में चक्र को लम्बोदर, सभी प्रकार के आभूषणों से सजा हुआ, फैली हुई गोल-गोल आँखों वाला, विष्णु को देखने में तत्पर, हाथ में चँवर लिए हुए उनके वाम-भाग में उपस्थित हुआ कहा गया है । उनका बायाँ हाथ उसके सिर पर रखा रहता है—

वामभागगतश्चक्रः कार्यो लम्बोदरस्तथा ।
सर्वाभरणसंयुक्तो वृत्तविस्फारितेक्षणः ।।
कर्त्तव्यश्चामरकरो देववीक्षणतत्परः ।
कुर्याद्देवकरं वामं विन्यस्तं तस्य मूर्ध्नि ।।[2]

राव महोदय ने देवगढ़ के शेषशयन फलक पर कुछ आयुध पुरुषों के चित्रण दिये हैं जिनमें धनुष, चक्र, शङ्ख, गदा तथा खड्ग हैं । धनुष और गदा तो मध्य मूर्ति के समीप खड़े हैं बाद के तीन चक्र, शङ्ख और खड्ग कुछ नीचे मधुकैटभ दैत्य के सामने युद्ध करने की मुद्रा में खड़े हैं । ये सभी प्रतिमाएँ मनुष्य के आकार की हैं किन्तु उनके वास्तविक रूप से उन्हें पहचाना जा सकता है ।[3] उनका वास्तविक रूप तीन प्रकार से बना है—

१. उनके पीछे आकार बना है,

२. सिर पर आकार बना है तथा

३. हाथ में आकार है,।

तीनों ही रूप प्रतिमा में देखने को मिलते हैं। जब ये आयुध अपने वास्तविक रूप में विष्णु के हाथों में विद्यमान रहते हैं तब इन्हें आयुध-पुरुष नहीं कहा जाता ।[4]

---

१. श्रीमद्भा० ३।२८।२७.
२. वि० ध० ८५।१३–१४.
३. राव० ए० हि० आ० वा० १ पृ० १०३.
४. वही पृ० १०३.

इस प्रतिमा में गदा अत्यन्त सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित, देव की ओर ध्यान से देखती हुई स्त्री के रूप में बनी है जो विष्णुधर्मोत्तर के 'तनुमध्यासुलोचना' तथा 'पश्यन्तीदेवदेवेशं' का स्पष्ट उदाहरण प्रतीत होती है। अन्य आयुधों का रूप कुछ भिन्न है।

काञ्जीवरम् के कैलाशस्वामिन् के मन्दिर में एक और इसी प्रकार का प्रतिमा फलक प्राप्त होता है। इसमें भी विष्णु की प्रतिमा मध्य में बनी है। विष्णु अपने चारों हाथों में कोई आयुध नहीं लिये हुए हैं किन्तु उनके समीप दो प्रतिमाएँ बनी हैं जो उनके शङ्ख और चक्र ला रही हैं। राव महोदय ने इनको आयुध-पुरुष बतलाया है।[1] किन्तु बैनर्जी महोदय ने इन दोनों प्रतिमाओं को आयुध पुरुष नहीं माना है क्योंकि इन दोनों के दूसरे हाथ में चँवर है। वे इन दोनों को विष्णु के पार्षद् स्वीकार करते हैं।[2] इन दोनों विद्वानों के मत-वैभिन्न में राव महोदय का मत उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि दोनों प्रतिमाओं के एक-एक हाथ में शङ्ख तथा चक्र है। दोनों के दूसरे हाथ में चँवर है और वे विष्णु की ओर देख रहे हैं। विष्णु-धर्मोत्तर में चक्र के लिए 'कर्त्तव्यश्चामकरो देववीक्षणतत्परः'[3] ऐसा बनाने का आदेश दिया गया है। यद्यपि विष्णु से वह कुछ दूर पर है उसके सिर पर विष्णु का हाथ नहीं है फिर भी वह चक्र पुरुष ही है। बङ्गाल के शारिशहद नाम के (२४ परगनों में से एक) परगने में विष्णु के चक्र की एक प्रतिमा मिली है। यह प्रतिमा अब कलकत्ता यूनिवर्सिटी के आशुतोष म्यूजियम में रखी है। यह चार हाथों वाली प्रतिमा गरुड़ के कन्धों पर नृत्य कर रही है। पीछे के दोनों हाथों में शङ्ख तथा चक्र है और आगे के हाथ उपर की ओर उठकर मिले हुए नमस्कारात्मक मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा एक पहिये के भीतर बनी है।[4] गरुड़, चक्र आदि से तथा विष्णु के रूप से साम्य होने के कारण यह प्रतिमा चक्र पुरुष ही है और सुदर्शन चक्र है। टेराकोटा की कुछ मुद्राएँ वसारह में प्राप्त हुई हैं। ब्लोक महोदय ने उनके ऊपर अङ्कित आकारों को देखकर उन्हें वैष्णवी आयुध बताये हैं। एक मुद्रा पर शङ्ख, चक्र तथा दो लाइनों के रूप में धनुष बना है।[5] भीटा में भी कुछ मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। एक मुद्रा पर एक सुन्दर पहिया तथा शङ्ख के आकार का आयुध बना है। मार्शल महोदय ने इसे शङ्ख तथा सुदर्शन चक्र ही स्वीकार किया है।[6]

---

१. राव गो० ना०–ए० हि० आ० वा० १ पृ० १०५.
२. बैनर्जी डे० हि० आ० पृ० ५३९.
३. वि० ध० ८५।१४.
४. बैनजी–डे० हि० आ० पृ० ५३९–४०.
५. एनु० रिपोर्ट ऑफ दि० आ० सर्वे० आफ इण्डिया १९०३–०४ न० ११० प्लेट न० ३१.
६. वही १९११–१२ पृ० ५३ न० १९.

वस्त्र—विष्णु का अत्यन्त प्रिय वस्त्र पीताम्बर है जिसे वे पहनते हैं। यद्यपि वस्त्र के रूप में विष्णु दो वस्त्र ही पहनते हैं—

१. उत्तरीय तथा २. अधोवस्त्र

अधोवस्त्र विष्णु का पीताम्बर है जिससे इनका कटि प्रदेश ढँका रहता है। श्रीमद्-भागवत में पीताम्बर को छन्द का प्रतीक माना गया है।[1] यद्यपि सर्वत्र विष्णु के शरीर पर पीताम्बर ही शोभित रहता है किन्तु फिर भी उसे अनेक प्रकार का बताया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पीताम्बर पीले ही वर्ण का रहता है फिर भी वर्ण एवं वस्त्र में अन्तर अवश्य होगा। क्योंकि पीताम्बर के लिए कहीं पर पीत-वासा,[2] कहीं पिशङ्गवासा,[3] कहीं पीताङ्शुक[4] और कहीं पीतकौशेयवास[5] विशेषण का प्रयोग हुआ है। अतः विष्णु का पीताम्बर पीला, पिशङ्गवर्ण का, पीत अंशुक रेशमी वस्त्र का तथा पीतकौशेय, गहरे पीले वर्ण का रहता है। कहीं पर पीताम्बर को कमल कुसुम की केसर के समान पीत वर्ण का कहा गया है।[6] कहीं पर वह कदम्ब के पराग के समान पीले वर्ण वाला है।[7] कहीं पर उसे कनक परिधि[8] कह कर सोने के समान सुनहले वर्ण वाला कहा गया है।

शिल्परत्न ग्रन्थ में अनेक प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है जिनमें कौशेय सिल्क के बने हुए, कार्पास रुई के बने, चीर वल्कल के बने तथा चर्म पशुओं की खाल के बने मुख्य हैं—

वस्त्रं कौशेयकार्पासचीरचर्मादिकं पुनः ॥
तत्तदयोग्यं प्रकर्त्तव्यं युक्त्या सर्वत्र बुद्धिमान् ॥[9]

विष्णु को अधिकांशतः कौशेयपीताम्बर पहने ही दिखाया गया है। विष्णु का पीताम्बर कभी तो उनके घुटनों तक ऊँचा[10] और कभी पैरों से कुछ ऊपर तक रहता है।[11]

---

१. वासस्यन्दोमयं पीतं···। श्रीमद्भा० १२।११।११.
२. श्रीमद्भा० ८।१७।४.
३. श्रीमद्भा० ८।१०।५४.
४. श्रीमद्भा० ३।१५।३९.
५. श्रीमद्भा० ६।१।३६.
६. लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम्···श्रीमद्भा० ३।२६।१४.
७. कदम्बकिञ्जल्कदुकूलवाससम्···श्रीमद्भा० ३।८।२८.
८. श्रीमद्भा० ८।७।१७.
९. शि० र० १६।५३.
१०. वि० पु० ५।७।२३.
११. श्रीमद्भा० ८।८।१७.

आभूषण--विष्णु का पूरा शरीर सुन्दर बहुमूल्य आभूषणों से सजा रहता है। वैष्णव पुराणों में विष्णु के जिन आभूषणों का वर्णन हुआ है, उन्हें स्थान एवं अङ्ग-प्रत्यङ्ग के अनुसार निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है--

१. मौलि अर्थात् शिर पर पहनने वाले आभूषण,

२. ग्रैवेयक अर्थात् गले तथा वक्षस्थल के आभूषण,

३. कर्णाभूषण,

४. कटि में पहनने वाले आभूषण,

५. हाथों में पहनने वाले आभूषण तथा

६. चरणों में पहनने वाले आभूषण ।

ये सभी आभूषण स्वर्ण, बहुमूल्य मणि तथा पुष्पादि से बने होते थे।

मौलि—विष्णु शिर पर किरीट धारण करते हैं। किन्तु वह किरीट भिन्न-भिन्न प्रकार का कहा गया है । बृहत्संहिता में भी विष्णु को किरीटधारी[१] कहा गया है। वैष्णव पुराणों में विष्णु को किरीटिनं[२] (किरीट धारण करने वाले) कहा गया है। किन्तु कहीं पर उनका मुकुट रत्नजटित[३] चमचमाता हुआ[४] तथा कभी केवल सोने का बना हुआ[५] रहता है । कभी-कभी विष्णु के शिर पर बहुमूल्य मुकुट रहता है। श्रीमद्भागवत में दो प्रकार के मुकुटों का नाम दिया गया है—

१. किरीट तथा २. महा किरीट

सोने के बने रत्नजटित मुकुट ही किरीट कहे जाते हैं किन्तु जो बहुमूल्य खूब जड़ाऊ होता होगा उसी के लिए महाकिरीट विशेषण का प्रयोग हुआ है—

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥[६]

१. बृ० सं ५८।३२.
२. वि० पु० १।१२।४५, श्रीमद्भा० ८।१८।२, श्रीमद्भा० ३।३१।१२.
३. श्रीमद्भा० ६।४।३७.
४. श्रीमद्भा० ८।२४।४५.
५. श्रीमद्भा० ३।२१।११.
६. श्रीमद्भा० ६।४।३८.

मानसार में कहा गया है कि ब्रह्मा तथा शिव के लिए जटामुकुट होता है किन्तु विष्णु नारायण के योग्य किरीट मुकुट ही होता है।[१] जिस प्रकार देवों के मध्य विष्णु किरीट मुकुट धारण करते हैं उसी प्रकार मनुष्यों में सार्वभौम चक्रवर्ती राजाओं तथा अधिराजों के द्वारा पहना जाता है।[२] यह ऊपर को नुकीली ऊँची उठी हुई टोपी के रूप में होता है जो चारों ओर से अथवा केवल सामने से बहुमूल्य मणियों से जड़ा होता है।[३]

ग्रैवेयक—विष्णु गले में जो आभूषण पहने हैं वे भी तीन प्रकार के हो सकते हैं—

१. रत्न जटित, २. स्वर्ण निर्मित तथा ३. पुष्पनिर्मित।

बहुमूल्य रत्नजटित स्वर्ण निर्मित हार विष्णु के गले में पड़े रहते हैं।[४] किन्तु विष्णु की ग्रीवा एवं वक्षःस्थल पर धारण किये जाने वाले अत्यधिक प्रसिद्ध आभूषण कौस्तुभ मणि, पद्मराग मणि तथा वैजयन्ती माला है। कौस्तुभ मणि ही पद्मराग मणि थी जो समुद्र मन्थन से प्राप्त हुई थी जिसे विष्णु ने वक्षःस्थल पर धारण किया——

कौस्तुभाख्यमिदम्रत्नं पद्मरागो महोदधेः।
तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ॥[५]

बृहत्संहिता भी 'कौस्तुभमणि भूषितोरस्कः'[६] कहकर विष्णु का उर-स्थल इससे शोभित बताती है। सभी स्थानों पर विष्णु कौस्तुममणि भूषित बताये गये हैं। बैनर्जी महोदय ने इसे एक मणि न मानकर रत्नजटित ताँबड़ा लटकता हुआ हार माना है जो हृदय को शोभित करता है।[७]

विष्णु श्रीवत्स से शोभित रहते हैं। श्रीवत्स को आभूषण मानने में कुछ सन्देह है। बृहत्संहिता विष्णु को श्रीवत्साङ्कित वक्षाः[८] कहती है। यहाँ पर अङ्कित शब्द इस बात को स्पष्ट करता है कि श्रीवत्स वक्षःस्थल पर ही चित्रित है ऊपर से

१. पितामहस्य रुद्रस्य जटामुकुटयोज्यकम्।
किरीटमुकुटञ्चैव नारायणस्य योग्यकम्॥ मानसार ॥४३।३०.
२. किरीटं सार्वभौमस्य चाधिराजस्य योग्यकम्॥ मानसार ४३।३८.
३. राव० गो० ना० ए० दि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २६.
४. श्रीमद्भा० ३।८।२८.
५. श्रीमद्भा० ६।८।५.
६. बृ० सं० ५८।३१.
७. बैनर्जी –डे० हि० आ० पृ० ४३६.
८. बृ० सं० ५८।३२.

पहनने वाली वस्तु नहीं है। वैष्णव पुराण भी श्रीवत्स को कोई आभूषण नहीं मानते क्योंकि अनेक स्थलों पर श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्[१] श्रीवत्सवक्षा,[२] श्री वत्साङ्कित वक्षसम्[३] कहा गया है। इसके अतिरिक्त एक स्थल पर प्रयुक्त वक्षः श्रियं[४] विशेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि यह कोई आभूषण नहीं है। विष्णु पुराण विष्णु के हृदय पर विराजमान लक्ष्मी को ही श्रीवत्स चिह्न मानता है –

पश्यतां सर्वदेवानां ययौ वक्षस्थलं हरेः ॥[५]

श्रीमद्भागवत का भी कथन है कि अत्यन्त प्रीतिवश विष्णु ने लक्ष्मी को सदैव अपने वक्षःस्थल पर निवास करने की आज्ञा दे दी और वही उनके वक्ष का आभूषण बन गयी।[६]

उत्पल ने श्रीवत्स को हृदय पर की रोमावली बतलाकर इसे महापुरुषों का लक्षण स्वीकार किया है।[७] राव महोदय ने चार पँखुड़ियों वाले रोमयुक्त पुष्प के रूप में इसे उरस्थल की दाहिनी ओर प्रदर्शित करने का आदेश दिया है।[८]

वैजयन्ती माला विष्णु की प्रिय बहुमूल्य माला है। विष्णु पुराण इसे पाँच प्रकार की विभिन्न मणियों से बनी हुई बतला कर पञ्चतन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रस, रूप गन्ध तथा पञ्चतत्त्व क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर का मिश्रित रूप कहता है –

पञ्चरूपा तु या माला वैजयन्तीगदाभृतः।
सा भूतहेतुसंघाता भूतमाला च वै द्विजः ॥[९]

इसमें मुक्ता, पुष्पराग, इन्द्रनील, मरकत तथा हीरा रत्न लगे हुए थे क्योंकि विष्णुरहस्य ग्रन्थ में कहा गया है कि पृथ्वी से इन्द्रनील, जल से मुक्ता, अग्नि से पद्मराग, वायु से मरकत तथा आकाश से पुष्पराग मणि लेकर वैजयन्ती माला का निर्माण हुआ।[१०]

---

१. श्रीमद्भा० ३।२८।१४.
२. श्रीमद्भा० ८।१८।२.
३. वि० पु० ६।७।८०.
४. श्रीमद्भा० ३।२१।१२.
५. वि० पु० १।९।१०५.
६. तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत् परमं विभूतेः ॥ श्रीमद्भा० ८।८।२५
७. बैनर्जी –जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४३९.
८. राव० गो० ना० ए० दि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २७.
९. वि० पु० १।२२।७२.
१०. वि० रहस्य पृ० ५३.

यह माला गले से घुटनों के ऊपर तक लम्बी होती है। राव महोदय भी विभिन्न मणियों से मिलकर बनी हुई माला को वैजयन्ती माला बतलाते हैं।[१]

पुष्पों के बने हुए अनेक प्रकार के हारों में वनमाला विष्णु को अत्यन्त प्रिय है। इसके लिए कहा गया है कि सभी ऋतुओं के सुन्दर पुष्पों को मिलाकर बीच में कदम्ब पुष्प डाल कर बनी हुई माला वनमाला कहलाती है, यह घुटनों तक लम्बी होती है –

आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला।
मध्यं स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता॥[२]

विष्णुधर्मोत्तर वनमाला का लक्षण निम्न प्रकार से बतलाता है–

कृष्णा दीर्घा विचित्रा च वनमाला प्रकीर्तिता॥[३]

अर्थात् कृष्ण वर्ण की बड़ी तथा विचित्र पुष्पों की बनी माला वनमाला कहलाती है। यह विष्णु के घुटनों तक लम्बी होती है और यज्ञोपवीत नाभि प्रदेश तक लम्बा होता है।[४] वनमाला की सुगन्धि से आकृष्ट होकर भौंरे इस पर गुञ्जार करते हैं।[५] श्रीमद्भागवत में कहीं पर वनमाला घुटनों[६] तक लम्बी तथा कहीं पर चरणों[७] तक लम्बी बतलायी गयी है।

वनमाला के अतिरिक्त वे गले में कभी-कभी कुमुद पुष्प तथा श्वेत कमल के पुष्प की माला भी पहनते हैं –

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम्॥[८]

लक्ष्मीजी ने स्वयं विष्णु के गले में नवकञ्ज (नवीन ताजा कमल) की माला पहनायी थी।[९] उसके चारों ओर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे।

---

१. राव० गो० ना० वा० १ भा० १ पृ० २६.
२. वि० पु० ५।८।३६.
३. वि० ध० ४७।३.
४. वनमाला च कर्त्तव्या देवजान्ववलम्बिनी॥
यज्ञोपवीतः कर्त्तव्यो नाभिदेशमुपागतः॥ वि० धर्मो० ८५।९.
५. श्रीमद्भा० ८।१८।३, ३।१५।३९.
श्रीमद्भा० मत्तद्विरेफकलया ३।२८।१५, श्रीमद्भा०म धुंव्रतव्रात...
८।१८।३.
६. आजानुलबिम्नी माला श्रीमद्भा० ३।२९।१५.
७. चरणानुलम्बिनीमाला श्रीमद्भा० ३।२८।१६–
८. श्रीमद्भा० ३।२१।९.
९. ......नवकञ्जमालां माद्यन्मधुव्रत...श्रीमद्भा० ८।८।२४.

विष्णु को तुलसी भी बहुत प्रिय है । उन्हें तुलसी की गन्ध सुहावनी लगती है अतः उसी के बने आभूषणों से वे अपने शरीर को सजाते हैं –

गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या ।।[1]

किसी-किसी स्थल पर तो उनका पूरा शरीर तुलसी से सजा दिखाया गया है ।[2]

कर्णभूषण—विष्णु के कानों में पहने जाने वाले दो प्रकार के कुण्डलों का उल्लेख वैष्णव पुराणों में हुआ है–

१. रत्नजटित तथा २. मकराकृति ।

उनके सभी कुण्डल बहुमूल्य हैं । 'किरीटिनं कुण्डलिनं' ही उनका मुख्य रूप है । सभी स्थानों पर उनके कानों में कुण्डल ही शोभित रहते हैं। किन्तु उनमें भिन्नता है। कहीं पर उनके कुण्डल चमकते हुए,[3] कहीं बिजली की भाँति झिलमिलाते हुए[4] और कहीं बहुमूल्य[5] कहे गये हैं। किन्तु कभी वे मकराकृति कुण्डल[6] धारण करते हैं । कभी कुण्डलों के लिए 'झषराजं कुण्डलः[7]' का प्रयोग हुआ है ।

शिल्प ग्रन्थों में पाँच प्रकार[8] के कुण्डलों का वर्णन हुआ है –

१. पत्र कुण्डल, २. नक्र कुण्डल, ३. शङ्ख पत्र कुण्डल, ४. रत्न कुण्डल, तथा ५. सर्प कुण्डल, । इनमें से विष्णु को विशेषतः रत्न कुण्डल तथा नक्र कुण्डल पहने ही दिखाया गया है । बृहत्संहिता भी विष्णु को कुण्डलकिरीट धारी[9] बतलाती है। अपराजित-पृच्छ ग्रन्थ में कहा है कि विष्णु के कुण्डल स्वर्णमय, बहुमूल्य रत्नजटित होते हैं –

सर्वरत्नमयं दिव्यं पूरितं हैरकैः कर्णैः ।[10]

---

१. श्रीमद्भा० ३।१५।१९.
२. लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ।। श्रीमद्भा० ३।२६।२०.
३. श्रीमद्भा० ३।२१।१०.
४. श्रीमद्भा० ८।८।१४.
५. श्रीमद्भा० ८।७।१७.
६. श्रीमद्भा० ६।१।३४.
७. श्रीमद्भा० ८।१२।२, ३।१५।३९.
८. श्रीमद्भा० ८।१८।३.
९. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २५.
७. बृ० सं० ५८।३२.
१०. अप० पृच्छ० २३६.

एक स्थल पर विष्णु को कमल का पुष्प भी कुण्डल की भाँति कान में पहने हुए दिखाया है।[१]

कटि के आभूषण —विष्णु कटि में करधनी पहनते हैं जो पीताम्बर पर बँधी रहती है। विभिन्न स्थलों में कटि में पहने जाने वाले आभूषण के लिए विशेषतः मेखला तथा काञ्ची शब्द का प्रयोग हुआ है। श्रीमद्भागवत में 'स्वलङ्कृतं मेखलया नितम्बे'[२] प्रसङ्ग इस बात को स्पष्ट करता है कि मेखला विष्णु के कटि प्रदेश की शोभा वृद्धि करती है। काञ्ची भी विष्णु मेखला की भाँति पहनते थे। एक स्थल पर कहा गया है काञ्ची की लटकती हुई लड़ियाँ विष्णु के श्रोणि प्रदेश को शोभित कर रही हैं –

काञ्ची गुणोल्लसच्छ्रोणिं ....[३]

कहीं पर काञ्ची का ऐसा उल्लेख हुआ है जिसमें लड़ियाँ भी हैं और उसमें छोटी छोटी घण्टियाँ भी लगी हैं 'काञ्चीदामक्वणान्।'[४] इसके अतिरिक्त विष्णु एक और आभूषण कमर में पहने दिखाये गये हैं उसके लिए कटिसूत्र शब्द प्रयुक्त हुआ है –

कटिसूत्रब्रह्मसूत्र हारनूपुरकुण्डलैः ॥[५]

कहीं-कहीं पर करधनी के लिए कटित्र[६] शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

हाथ के आभूषण —विष्णु के द्वारा हाथ में पहने जाने वाले दो प्रकार के आभूषणों का उल्लेख वैष्णव पुराणों में हुआ है –

१. हाथ के ऊर्ध्व भाग में पहने जाने वाले आभूषण तथा

२. हाथ के निम्न भाग कलाई में पहने जाने वाले आभूषण।

अङ्गद[७] केयूर,[८] भुजवन्ध[९] से विष्णु की भुजाओं का ऊर्ध्व भाग शोभित होता है। मणिबन्ध में वे कङ्कण[१०], वलय,[११] धारण करते हैं। हाथों की अँगुलियों में रत्नजटित

---

१. श्रीमद्भा० ९।३।१७.
२० श्रीमद्भा० ३।८।२८.
३. श्रीमद्भा० ३।२८।१६.
४. श्रीमद्भा० ६।१९।२७.
५. श्रीमद्भा० १०।४०।५१.
६. .....केयूरकटित्रकङ्कणम्.... श्रीमद्भा० ६।१६।३०.
७. ....अङ्गदोल्लत्.... श्रीमद्भा० ८।१८।३.
८. केयूरकटकादि विभूषितम्॥ वि० पु० ६।७।८७.
९. वि० पु० १।१२।४१.
१०. श्रीमद्भा० ८।९।७.
११. वल्गुप्रकोष्ठवलयंश्रीमद्भा० ३।१५।४०.

अँगूठियाँ (मुद्रिकारत्नविभूषितम्[१])शोभित रहती हैं । वलय आभूषण अनेक प्रकार का कहा गया है, जैसे—मकर वलय[२], शङ्ख वलय[३] मीन वलय[४], आदि ।

चरण के आभूषण —विष्णु अधिकांशतः चरणों में नूपुर पहने हुए दिखाये गये हैं ।[५] किन्तु कभी-कभी वे पैरों में कड़े भी पहन लेते हैं ।[६]

वाहन गरुड़ — गरुड़ विष्णु के वाहन हैं। इनका वेदों में भी प्रसङ्ग प्राप्त है वहाँ इनके लिए गरुत्मान् शब्द का प्रयोग हुआ है और इन्हें अत्यन्त सुन्दर पङ्खों वाला कहा गया है ।[७] महाभारत तथा पुराणों में जो इनके लिए तार्क्ष्य शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका भी उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है किन्तु वहाँ पर तार्क्ष्य का तात्पर्य गरुड़ से न होकर अश्व से है ।[८] रामायण तथा महाभारत में अनेक स्थानों पर गरुड़ का वैदिक गरुत्मान् रूप से साम्य दिखलाया गया है । ये अरुण के बड़े भाई, सूर्य को हतप्रभ करने वाले तथा विनता एवं कश्यप के पुत्र हैं। हॉप्किन्स महोदय ने इसकी कथा का विस्तृत वर्णन किया है[९] महाभारत में वे स्वर्ग से अमृत को चुराने के कारण अमृतहरण कहे गये हैं ।[१०] इसी कार्य के द्वारा उन्होंने अपनी माता को दासी भाव से मुक्त कराया ।[११] विष्णु ने गरुड़ से अपना वाहन बनने के लिए वर माँगा । गरुड़ ने उसे स्वीकार कर लिया और विष्णु के वाहन बन गये ।[१२] विष्णु ने उन्हें अपनी ध्वजा पर स्थापित उनकी इच्छा पूरी की और वे गरुड़ध्वज कहे जाने लगे ।[१३] पङ्ख सुनहले होने के कारण वे सुपर्ण कहलाये।[१४]

---

१. वि० पु० ६।७।८५.
२. वि० पु० ३।५।११.
३. श्रीमद्भा० ८।६।१५.
४. श्रीमद्भा० ६।१२।२३.
५. श्रीमद्भा० ३।२८।१५, ६।४।३८.
६. वि० पु० ५।४।१३.
७. दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ऋ० वे० १।१६४।४६.
८. ऋ० वे० १०।१७।११.
९. हॉप्किन्स—इ० माइ० पृ० २१।२२.
१०. महा० आदि ३३।१५.
११. महा० आदि १६।२०.
१२. महा० आदि० ३३।१६.
१३. महा० अनु० १४९।५१.
१४. महा० आदि ३३।२४.

पुराण काल में गरुड़ के ये दोनों ही रूप अत्यन्त प्रसिद्ध हुए । सभी पुराणों में इनका प्रसङ्ग प्राप्त होता है किन्तु वैष्णव पुराण विशेषतः इनका गुणगान करता है । गरुड़ पुराण तो इन्हीं के महत्त्व का प्रदर्शन करता है । इनके दो रूपों का चित्रण वैष्णव पुराणों में हुआ है –

१. विष्णु के समीप स्थित गरुड़ तथा

२. विष्णु के वाहन बने हुए गरुड़ ।

जब गरुड़ विष्णु के समीप रहते हैं तब उनका एक हाथ गरुड़ के कन्धे पर रखा रहता है ।[१] जब वे उनके वाहन बने होते हैं तो उनके पङ्ख फैले रहते हैं । उनकी पीठ पर कृष्ण बैठते हैं और फैले हुए पङ्खों पर इनके चरण रहते हैं ।[२] गरुड़ विष्णु के हररूप में उनकी सहायता करते हैं । वे बड़े बलवान् तथा पराक्रमशाली हैं । उनका बायाँ पङ्ख सुनहला और अधिक शक्तिशाली है । कालियदमन् के समय कालिय नाग पर उसी बाएँ पङ्ख से वे प्रहार करते हैं –

पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान् कद्रुसुतमुग्रविक्रमः ॥[३]

सर्प तथा नाग गरुड़ से बहुत डरते हैं । सर्प ही गरुड़ का भोजन है । पाताल में भी रहने वाले सर्प सदैव गरुड़ से सशङ्कित रहते हैं ।[४] ये कृष्ण के द्वारा स्मरण किये जाने पर तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं । कृष्ण के साथ सत्यमाया भी गरुड़ पर बैठकर भ्रमण करती हैं ।[५]

विष्णुधर्मोत्तर में गरुड़ को हरे वर्ण का बतलाया गया है । कौशिक (उल्लू) के समान उसकी नासिका होती है । उसके नेत्र गोल तथा चार भुजाएँ होनी चाहिये । गृद्ध की जंघाओं के समान उसकी जंघा तथा चरण होते हैं । दो सुन्दर पङ्ख होते हैं । गरुड़ की चार भुजाएँ होती हैं । दो भुजाओं में छत्र तथा पूर्ण कुम्भ रहता है और शेष दो हाथ अञ्जलि मुद्रा में रहते हैं –

---

१. श्रीमद्भा० ३।१५।३८.
२. श्रीमद्भा० ३।२१।९.
३. श्रीमद्भा० १०।१७।७.
४. श्रीमद्भा० ३।१५।८.
५. वि० पु० ५।३२।२१.

ताक्ष्यमारकतप्रख्यः कौशिकाकारनासिकः ।।
चतुर्भुजस्तु कर्त्तव्यो वृत्तनेत्रमुखस्तथा ।
गृध्रोरुजानुचरणः पक्षद्वयविभूषणः
प्रभासंस्थानसौवर्णः कलापेन विवर्जितः ।।
छत्रं च पूर्णकुम्भं च करयोस्तस्य कारयेत् ।
करद्वयं तु कर्त्तव्यं तथास्य रचिताञ्जलिः ।।
यदास्यभगवान्पृष्ठे छत्रकुम्भधरौकरौ ।
न कर्त्तव्यौ तु कर्त्तव्यौ देवपादधरावुभौ ।।[१]

अग्नि पुराण में गरुड़ को आठ हाथों वाला कहा गया है। उनके दाहिने चारों हाथों में चक्र, खड्ग, मूसल, अङ्कुश तथा बाएँ चारों हाथों में शङ्ख, शार्ङ्ग, गदा और पाश रहता है।[२]

मानसार ग्रन्थ इन्हें तोते के समान नासिका वाला, आठ नागों से विभूषित, भीषण आँखों वाला, करण्ड-मुकुट युक्त, तपे हुए सोने के समान बतलाता है।[३]

मध्यकाल के प्रारम्भ में गरुड़ की प्रतिमाएँ तोते के समान बनायी गयीं। इस समय इनके अङ्गों की ओर अधिक ध्यान दिया गया। साँची के पूर्वी द्वार के अन्दर की ओर बीच में एक प्रतिमा फलक है। इसमें सभी पशु बुद्ध को सम्मान प्रदर्शित कर रहे हैं। बुद्ध बोधिद्रुम के नीचे वज्रासन मुद्रा में बैठे हैं। इनमें सिंह, कुत्ता, चिड़ियाँ आदि भी हैं। दाहिने कोने में बड़े तोते के आकारवाला एक पक्षी है जो कानों में कुण्डल पहने हुए है, झबरे बाल हैं। यह आकार पाँच फण वाले सर्प के पास बना है।[४] ग्रुण्डवेल महोदय ने कहा है कि गरुड़ का, भारत के शुक के रूप का तथा पश्चिमी एशिया के ग्रिफिन पक्षी के रूप का, मिश्रित रूप कला में प्रदर्शित किया गया है। इसी कारण इसका नवीन रूप हो गया।[५]

गान्धार कला के अन्तर्गत गरुड़ को एक बड़े गिद्ध के रूप में चित्रित किया गया है। उसे सब आभूषण पहनाये हैं किन्तु पङ्खों को अधिक स्वाभाविक बनाया गया। कभी-कभी ये आकाश में उड़ते हुए भी प्रदर्शित किये जाते हैं। अपनी बलिष्ठ चोंच में यह एक सर्प तथा सर्पिणी पकड़े रहते हैं।[६] यह रूप महाभारत में सुप्रतीक और

---

१. वि० ध० ५४।१-५.
२. अग्नि० ४९।१९-२१.
३. मानसार० पृ० ६१.
४. बैनर्जी० डे० हि० आ० पृ० ५३१.
५. ग्रुण्डवेल० बुद्धि० आ० पृ० ५१.
६. बैनर्जी० डे० हि० आ० पृ० ५३१.

विभावसु सर्पों को अपनी चोंच में ले जाने वाले गरुड़ के तथा हर्ष के बौद्ध नाटक नागानन्द में वर्णित गरुड़ के वर्णन से मिलता है। गुप्तकाल आते-आते गरुड़ के रूप में और परिवर्तन हुआ। इन्हें अत्यन्त सुन्दर पङ्खों वाले पक्षी के रूप में बनाया गया और इन्होंने गरुड़ध्वज के रूप को प्राप्त किया। स्मिथ महोदय का मत है कि गरुड़ ने रोमन् गिद्ध से अपना आकार प्राप्त किया।[1] किन्तु ऐलन महोदय इस रूप को स्वाभाविक बतलाते हैं और इस रूप को भारत का सर्वसाधारण रूप मानते हैं।[2] चन्द्रगुप्त द्वितीय के चाँदी के सिक्कों पर गरुड़ पङ्ख फैलाये हुए पक्षी की भाँति आगे की ओर मुख करके खड़े हैं। किन्तु इन्हीं के कुछ ताँबे के सिक्कों पर वे दो भुजा वाले मनुष्य के आकार के बनाये गये हैं। हाथों में वे ब्रेसलेट पहने हैं। एक तीसरी प्रकार से इनका और चित्रण प्राप्त होता है इसमें उनके हाथ नहीं हैं वे मुख में सर्प पकड़े हैं। यह पुराणों में कथित उनके 'पन्नगारि,' अथवा 'पन्नगाशन' रूप की ओर सङ्केत करता है। मनुष्य के समान मुख वाली गरुड़ की मूर्ति कुमारगुप्त की टेरेकोटा की मुद्राओं पर बनी हुई है। यह नालन्दा से प्राप्त हुई थी और अब कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में रखी है।[3] राव महोदय ने बादामी की तीन नम्बर की गुफा में अङ्कित गरुड़ की प्रतिमा का उल्लेख किया है। इसमें गरुड़ मनुष्य के मुख के आकार वाले पक्षी हैं। गोल बड़ी–बड़ी आँखें हैं। नासिका आगे को निकली हुई और बड़ी है। नीचे का हिस्सा पक्षी की भाँति है। दो सुन्दर पङ्ख हैं। सभी सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित तथा लम्बोदर हैं। हाथ में उनके सर्प है।[4] यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित गरुड़ के 'कौशिकाकारनासिकः' 'गृध्रोरुजानुचरणः' 'पक्षद्वयविभूषितः' तथा 'किञ्चिल्लम्बोदरः कार्यः' 'सर्वाभरणभूषणः' के रूप का स्पष्टीकरण है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के आकार वाली, चोंच के समान नाक वाली, गोल-गोल आँखों वाली गरुड़ की एक और प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसका उल्लेख बैनर्जी महोदय ने किया है। इसमें गरुड़ चार भुजा वाले हैं। आगे के दोनों हाथों से अञ्जलि बनाये हैं और पीछे के दोनों हाथों पर विष्णु तथा लक्ष्मी के चरण थामे हैं। सभी प्रकार के आभूषण उनके शरीर पर हैं। सिर पर मुकुट है।[5] यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के 'करद्वयं तु कर्त्तव्यं तथास्य रचिताञ्जलिः' 'वृत्तनेत्रमुखस्तथा' तथा 'कौशिकाकारनासिकः' का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

विष्णु वाहन गरुड़–पक्षिराज गरुड़ ही विष्णु के वाहन हैं। वे गरुड़ पर आरूढ़ होकर सब स्थानों में जाते हैं। विष्णु के इस रूप का वैष्णव पुराणों में अनेक

१. बैनर्जी० डे० आ० हि० आ० पृ० ५३१.
२. ऐलन० इन्ट्रो० पृ० ६५.
३. बैनर्जी० डे० आ० हि० आ० पृ० ५३२.
४. राव गो० ए० हि० आ० वा० १ पृ० २८७.
५. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ५३३.

स्थलों पर वर्णन हुआ है । इन रूपों में भी भुजाओं की ही भिन्नता है । कहीं वे दो भुजा वाले, कहीं चार भुजा वाले तथा आठ भुजा वाले कहे गहे हैं।

कर्दम की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु उनके समक्ष इसी रूप में प्रकट हुए । उनकी भव्य मूर्ति सूर्य के समान तेज वाली थी। उनके हाथों में शङ्ख, चक्र एवं गदा थी और एक हाथ में क्रीड़ा के लिए श्वेत कमल था। उनके चरण-कमल गरुड़ के कन्धों पर रखे थे । आकाश में स्थित इस गरुड़ासन के दर्शन कर कर्दमजी का चित्त प्रसन्न हो गया ।[1] यद्यपि भुजाओं की संख्या का उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है फिर भी आयुधों के वर्णन से स्पष्ट है कि यह विष्णु का गरुड़ स्थित चतुर्भुज रूप है ।

प्रचेतागण के कठिन तप से प्रसन्न होकर विष्णु ने अपना सौम्य विग्रह उनके समक्ष प्रकट किया । गरुड़ के स्कन्ध पर बैठ हुए वे सुमेरु पर्वत पर छायी हुई श्याम घटा के समान प्रतीत हो रहे थे । उनकी भुजाओं में आठ आयुध थे । गरुड़ अपने फैले हुए पङ्खों की ध्वनि से कीर्तिगान कर रहे थे–

सुपर्णस्कन्धमारूढ़ो मेरुश्रृङ्गमिवाम्बुदः ।
....
अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रै-
रासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ।।[2]

एक अन्य स्थल पर भी गरुड़स्थित विष्णु की अष्टभुजी मूर्ति का वर्णन हुआ है किन्तु वहाँ भी हाथों में धारण किये हुए आयुधों का नाम नहीं दिया है । कालनेमि राक्षस से युद्ध करते हुए देवों के समक्ष युद्ध क्षेत्र में गरुड़ पर आरूढ़ विष्णु प्रकट हुए । उनके चरणकमल गरुड़ के स्कन्ध पर विराजमान थे । उनकी आठों भुजाओं में आठ आयुध शोभित थे-

ततः सुपर्णांसे कृताङ्घ्रिपल्लवः
....
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लस
.... ।।[3]

---

१. किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनः स्पर्शस्मितेक्षणम् ।।
विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ।
दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ।।
श्रीमद्भा० ३।२१।१०-१२.

२. श्रीमद्भा० ४।३०।५-७.

३. श्रीमद्भा० ८।१०।५४.

समुद्र मन्थन के लिए मन्दराचल को ले जाते समय थकित हुए देवों के समक्ष प्रभ इसी रूप में प्रकट हुए । उन्होंने एक हाथ से मन्दराचल को उठाकर गरुड़ पर रख लिया । पक्षिराज गरुड़ ने समुद्र के तट पर जाकर पर्वत को उतार दिया।[१] यहाँ विष्णु की भुजा तथा किसी आयुध का उल्लेख नहीं हुआ है । अतः यह अवश्य ही दो भुजा वाला रूप होगा ।

चतुर्भुज विष्णु की एक गरुड़स्थित प्रतिमा ढाका के लक्ष्मणकाटी नामक स्थान से १८८९ ई० में प्राप्त हुई थी और अब ढाका म्यूज़ियम में सुरक्षित है । प्रतिमा में गरुड़ के फैले हुए पङ्खों के बीच में विष्णु बैठे हैं। उनके चार भुजाएँ हैं । दोनों दाहिने हाथों में क्रमशः चक्र और गदा है। चक्र के मध्य में एक पुरुष बना हुआ है और गदा पर सुन्दर स्त्री चित्रित है । बाएँ दोनों हाथों में शङ्ख तथा कमल है । कमल पुष्प पर वीणा बजाती हुई सरस्वती बनी है । यह पत्थर की बनी हुई भव्य प्रतिमा ६ फी० ४ इ० ऊँची है।[२]

देवी

नारी मनुष्य की अर्धाङ्गिनी मानी जाती है । यह भावना आज से नहीं वरन् अत्यन्त प्राचीनकाल से मान्य रही है। इसी ने आदिकाल में शक्ति का रूप ले लिया था । यही आदि शक्ति लक्ष्मी तथा दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध है । ब्रह्माजी ने जब प्रजापतियों की रचना कर ली, उसके बाद बिना स्त्रीतत्त्व के वे आगे रचना करने में असमर्थ हुए। अतः स्पष्ट है कि स्त्रीतत्त्व से शून्य रहने पर सृष्टि आगे नहीं बढ़ सकती। यही स्त्री और पुरुष तत्त्व देवी तथा देवता के रूप में प्रकट हुए। देवी तत्त्व में मातृ सत्ता की स्थापना की गयी। भारत में वैष्णव, शैव तथा शक्ति ये तीन सम्प्रदाय सर्वत्र मान्य रहे हैं । वैष्णव विष्णु को, शैव शिव को पूजते हैं किन्तु शक्ति की पूजा शाक्तों के साथ ही साथ वैष्णव तथा शैव दोनों ही सम्प्रदाय के व्यक्ति करते हैं । देवी अथवा आदिशक्ति के बिना ब्रह्म भी कुछ प्राप्त नहीं कर सकते । सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय मातृदेवियों की पूजा का प्राधान्य था ऐसा कहा जा चुका है । ऋग्वेद का वाक्सूक्त,[३] देवी सूक्त[४] तथा रात्रि[५] से सम्बन्धित सूक्त सृष्टि के अणु-

---

१. गिरिं चारोप्यगरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावाब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ।।
अवरोप्य गिरिं स्कन्धात् सुपर्णः पततां वरः ।।
श्रीमद्भा० ८।६।३८–३९.

२. आइ० आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० ८६.

३. ऋ० वे० १०।१२३.

४. ऋ० वे० १०।११५.

५. ऋ० वे० १०।१२७.

अणु में शक्ति की सत्ता की व्यापकता की ओर सङ्केत करते हैं । वाजसनेयी संहिता[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] तथा तैत्तिरीय आरण्यक[3] में अम्बिका, उमा, दुर्गा, काली आदि के नामों का उल्लेख है जो शाक्त धर्म से सम्बद्ध है। ऋग्वेद में अदिति को प्रकृति का रूप माना गया है। वही आकाश, वायु, माता, पिता तथा पुत्र के रूप हैं। सृष्टि में जो कुछ उत्पन्न हुआ है तथा उत्पन्न होगा सब अदिति का रूप है ।[4] मैक्समूलर महोदय[5] ने पृथ्वी और आकाश से परे एक अनन्तशक्ति का नाम अदिति बतलाया है और उसका बड़ा ही स्पष्ट एवं मनमोहक वर्णन किया है। अथर्ववेद ने विराज नाम की एक नवीन देवी का उल्लेख किया है। वे तीनों लोकों की माता हैं ।[6] इसी वेद में उनकी समानता अदिति से स्थापित की गयी है[7] और उन्हें स्वाहा[8] नाम से भी विभूषित किया गया है। ऋग्वेद में अनेक देवों की पत्नियों का उल्लेख हुआ है, जैसे-इन्द्राणी, वरुणानी रुद्राणी आदि। महाभारत में वर्णित दुर्गा[9] की दो स्तुतियाँ तथा हरिवंश पुराण में वर्णित आर्यास्तव[10] देवी के महत्त्व को पूर्णतः स्पष्ट कर देते हैं। मार्कण्डेय पुराण का देवी माहात्म्य खण्ड पौराणिक काल में देवी की महत्ता का प्रदर्शन करता है। ये देवीस्तुतियाँ देवी की आदि श्रेष्ठ एवं संरक्षिका शक्ति का प्रकटीकरण करती हैं। देवी के लिए प्रयुक्त हुए जगन्माता तथा जगदम्बा आदि विशेषण उनके मातृ रूप को लक्षित करते हैं। देवी का यह रूप पुराण साहित्य में अधिक स्पष्ट एवं विकसित हुआ है। यहाँ तक कि दर्शन जैसा विषय भी देवी के माहात्म्य से शून्य नहीं है। वेदान्तियों का माया का सिद्धान्त महामाया देवी के महत्त्व का प्रदर्शन करता है। सांख्य दर्शन का प्रकृति तथा पुरुष का सिद्धान्त इसी जगदम्बा आदिशक्ति का प्रतीक है। प्रकृति को देवी एवं आदि स्त्रीशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है । अतः सभी धर्म एवं दर्शन देवी का ही यशोगान करते प्रतीत होते हैं।

यद्यपि यह देवी तत्त्व सर्वत्र विद्यमान है परन्तु फिर भी प्रत्येक क्षेत्र, स्थान एवं धर्म में यह सत्ता विभिन्न रूप में पूजी जाती है। समस्त देवों की सत्ता त्रिमूर्ति अथवा त्रिदेववाद में स्वीकार की गयी है। इस त्रिमूर्ति के साथ तीन देवियों का भी अस्तित्व माना

---

१. वाज० सं० ३।५३.
२. तैत्तिरीय ब्रा० १।६।१०।४-५.
३. तैत्तिरीय आरण्यक १०।१८-१९.
४. ऋ० वे० १।८९, अथर्व वे० ७।६.
५. मैक्समूलर-वैदिक हिम्स पृ० ३२.
६. अथर्व० वे० ८।९।२१.
७. अथर्व० वे० ८।९।२१.
७. अथर्व० वे० ८।१०।११-२३.
८. महा० ४।६, ६।२३.
१०. हरिवंश ३।३.

गया और ब्रह्मा का सम्बन्ध सरस्वती, सावित्री अथवा गायत्री से, विष्णु का लक्ष्मी से तथा शिव का पार्वती अथवा दुर्गा से बतलाया गया है। इस विषय में भी अनेक मतभेद हैं। यद्यपि देवों के साथ देवियों का यह विभाजन प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र स्पष्ट किया गया है किन्तु वैष्णव पुराण का कथन है कि अप्रत्यक्ष रूप से आदि देव विष्णु की ही शक्ति विष्णु के अनेक रूपों एवं अवतारों में विभिन्न रूप धारण कर उनके साथ रहती है। यदि वे अपनी ब्राह्मी मूर्ति में ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं तो शक्ति सावित्री बनकर उनके साथ रहती हैं। विष्णु के रूप में वह लक्ष्मी बन जाती है तथा उमा के रूप में शिव का साथ देती हैं। ब्रह्मा की उपासना का शनैः शनैः ह्रास हो जाने पर समाज में विष्णु तथा शिव की महत्ता बढ़ती गयी। शिव की पत्नी की पृथक् रूप से जो उपासना होने लगी वही शाक्त सम्प्रदाय कहलाया।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत देवियों के दो रूप प्राप्त होते हैं--

१. वैष्णवी तथा

२. शक्ति अर्थात् रौद्री।

वैष्णव पुराणों में जिन वैष्णवी देवियों का वर्णन हुआ है वे निम्नलिखित हैं–

१. योगमाया रूप,

२. लक्ष्मी रूप,

३. सरस्वती तथा

४. भू देवी।

योगमाया—योगमाया विष्णु की शक्ति है जो प्रत्येक रूप में सदैव उनके साथ रहती है। अपनी इसी शक्ति से विष्णु सब कार्य करवाते हैं। इसी को आज्ञा देकर विष्णु ने देवकी के गर्भ को रोहिणी के गर्भ में स्थापित करवाया और उसे यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होने की आज्ञा दी—

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाममामकम्।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय॥
अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि॥[1]

१. श्रीमद्भा० १०।२।८-९.

जब कंस यशोदा के यहाँ से लायी हुई नवजात कन्या को चट्टान पर पटकने लगा उस समय वह उसके हाथ से छूट कर आकाश में चली गयी ।[१] आकाश में वह अष्टभुजी देवी के रूप में दिखायी पड़ी । देवी के हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र तथा गदा थे । वह दिव्यमाला, वस्त्र, चन्दन तथा सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित थी । उसे विष्णु की छोटी बहन कहा गया है—

अदृश्यतानुजाविष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ।।
दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुः शूलेषु चर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ।।[२]

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग गणों ने बहुत-सी भेंट देवी को समर्पित कीं । विष्णु ने योगमाया से कहा था कि पृथ्वी के लोग उन्हें दुर्गा, भद्रकाली, विजया वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि नामों से पुकारेंगे और उनके अनेक स्थान बनाये जायेंगे ।[३]

लक्ष्मी——लक्ष्मी के तीन रूपों का चित्रण हुआ है ।

१. लक्ष्मी का श्री तथा कमला रूप,
२. गजलक्ष्मी रूप तथा
३. महालक्ष्मी रूप ।

इनमें से कुछ रूपों का चित्रण वैष्णव पुराणों में हुआ है जिनका यथास्थान उल्लेख किया जायगा । लक्ष्मीजी भृगु की कन्या थीं । इनके धाता तथा विधाता नामक दो भाई थे । यही लक्ष्मी विष्णु की पत्नी हुईं ।[४] ख्याति उनकी माता थी । इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कहा गया है कि देवों तथा असुरों द्वारा समुद्र मन्थन करते समय उससे उत्पन्न हुए चौदह रत्नों में से लक्ष्मीजी भी एक रत्न थीं और वे कमल के आसन पर बैठी हुई कमल पुष्प हाथ में धारण किये हुए प्रकट हुई थीं । उनकी कान्ति स्फटिक मणि के समान थी—

---

१. सा तद्धस्तात् समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता । श्रीमद्भा० १०।४।८.
२. श्रीमद्भा० १०।४।९-१०.
३. दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ।।
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ।।
श्रीमद्भा० १०।२।११-१२.
४. वि० पु० १।८।१५.

ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासि कमलेस्थिता।
श्रीर्देवीपयसस्तस्मादुद्भूता घृतपङ्कजा ।।[१]

गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ अपने जल से लक्ष्मी को स्नान करवाने के लिए उपस्थित हुईं। दिग्गजों ने स्वर्ण कलशों में भरे हुए पूत जल से सर्वलोक महेश्वरी श्री देवी का अभिषेक करवाया—

घृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ।। [२]

स्नान के पश्चात् विश्वकर्मा ने आकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में अनेक प्रकार के आभूषण पहनाये। क्षीरसागर ने उन्हें खिले हुए कमल पुष्पों की माला प्रदान की।[३] इस प्रकार पवित्र जल से स्नान करायी हुई दिव्य आभूषणों को धारण करने वाली, सुन्दर वस्त्र एवं माला आदि से अलङ्कृत की हुई लक्ष्मी भगवान् विष्णु को दे दी गयी। और वे उन्हीं के वक्षःस्थल पर विराजमान हो गयीं। सभी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए।[४]

श्रीमद्भागवत में यह गजलक्ष्मी रूप और अधिक सुन्दरता से वर्णित है जिस समय शोभा की मूर्ति भगवती लक्ष्मी प्रकट हुई उस समय उनकी बिजली के समान चमकीली छटा से दिशाएँ जगमगा उठीं। उनके सौन्दर्य, औदार्य, यौवन, रूप-रङ्ग से सब का चित्त आकृष्ट हो गया—

ततश्चाविर्भूत् साक्षाच्छ्री रमाभगवत्परा।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामिनी यथा ।। [५]

इन्द्र ने स्वयं अपने हाथ से उनके लिए आसन रखा। श्रेष्ठ नदियों ने मूर्ति-मती होकर उनके अभिषेक के लिए सोने के घड़ों में जल भर कर ला दिया। पृथ्वी ने अभिषेक के योग्य सब औषधियाँ प्रदान की। गायों ने पञ्चगव्य तथा वसन्त ऋतु ने सब प्रकार के पुष्प प्रस्तुत कर दिये—

---

१. विष्णु पु० १।९।१००.
२. विष्णु पु० १।९।१०२-१०३.
३. क्षीरोदो रूपधृक्तस्यै मालामम्लानपङ्कजाम् ।
दददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार ह ।। वि० पु० १।९।१०४.
४. दिव्यमाल्याम्बरधरास्नाता भूषणभूषिता ।
पश्यतां सर्वदेवानां ययौ वक्षस्थलं हरेः ।। वि० पु० १।९।१०५.
५. श्रीमद्भा० ८।८।८.

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।
मूर्त्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ।।
आभिषेचनिका भूमिराहत् सकलौषधीः ।
गावः पञ्चपवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ।।[१]

ऋषियों ने उनका अभिषेक किया । बादल मूर्त्तिमान होकर अनेक वाद्य बजाने लगे । तब लक्ष्मीजी हाथ में कमल लेकर सिंहासन पर विराजमान हो गयीं । दिग्गजों ने जल से भरे कलशों से उनको स्नान कराया । समुद्र ने पीले रेशमी वस्त्र पहनने को दिये । वरुण ने वैजयन्ती माला प्रदान की । विश्वकर्मा ने आभूषण, सरस्वती ने मोतियों का हार, ब्रह्माजी ने कमल तथा नागों ने दो कुण्डल समर्पित किये ।[२] लक्ष्मी का यह रूप भरहुत, साँची, बोधगया, अमरावती तथा अन्य स्थानों में यत्र-तत्र अङ्कित मिलता है । इनमें लक्ष्मी कमल के आसन पर या तो बैठी हैं या खड़ी हैं, हाथ में कमल पुष्प लिए हैं, विकसित कमल से घिरी हुई हैं, कमल पुष्प के पत्र फैले हुए हैं । वे दो हाथियों से स्नान करायी जा रही हैं ।[३] इसके अतिरिक्त और भी कुछ भिन्न आकारों वाली प्रतिमाएँ बनी हैं । इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं । मार्शल महोदय ने उनमें से कुछ प्रतिमाओं को माया देवी की प्रतिमा स्वीकार किया है ।[४] भीटा तथा बसारह में प्राप्त हुई अनेक मुद्राओं पर लक्ष्मी की आकृतियाँ बनी हुई हैं ।[५] मौर्य तथा शुङ्ग काल की अनेक मुद्राओं पर देवी का यही रूप है ।[६]

---

१. श्रीमद्भा० ८।८।१०।११.

२. ऋषयः कल्पयाञ्चक्रुरभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ।।
मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयञ्छङ्खवेणु वीणास्तुमुलनिःस्वनान् ।।
ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ।।
समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ।।
भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ।।
श्रीमद्भा० ८।८।१२-१६.

३. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २०९.

४. मार्शल-लेटेस्ट मॉन्युमेन्टल वर्क ऑन साँची पृ० ९६.

५. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २०९.

६. एनु० रि० आ० आर० सर्वे ऑ० इण्डि० १९१३-१४ पृ० ११६.
न० ५५० स्पूनर की सूची.

खजुराहो में (चित्र नं० ३६) एक विष्णु की प्रतिमा है । उसके पादपीठ के नीचे अनेक छोटी आकृतियों का एक समूह अङ्कित है । केन्द्र में एक देवी कूर्म के ऊपर ध्यान मुद्रा में बैठी हैं । उनके दोनों पार्श्वों में सर्प पुच्छयुक्त दो नाग अथवा नागिन अञ्जलि मुद्रा में हाथ जोड़े खड़ी हैं । इस चित्रण के दोनों ओर मकरवाहिनी जल-देवियाँ अङ्कित हैं । वे दोनों अपने चारों हाथों में एक-एक घड़ा पकड़े हैं । इनके पीछे दोनों ओर प्रतिमा नृत्य और वंशीवादन में तल्लीन हुई अङ्कित हैं ।[1] यह प्रतिमा श्रीमद्भागवत में वर्णित रूप का प्रत्यक्षीकरण है । कूर्म पर बैठी हुई देवी लक्ष्मी हैं । घड़ों को लिए हुए दोनों प्रतिमाएँ गङ्गादि श्रेष्ठ नदियाँ और उनके दोनों ओर नागों की प्रतिमा कुण्डल देने वाले नागों की हैं ।[2] नृत्य करने वाली प्रतिमा घृताची अप्सरा तथा वंशी बजाने वाली प्रतिमा मूर्त्तिमान होकर शङ्ख, वेणु, वीणा बजाने वाले बादल हैं ।[3] समुद्रमन्थन में कूर्म रूप से भगवान समुद्र के तल में स्थित होकर मन्दराचल के भार को धारण किये रहे इसीसे कूर्म पर बैठी लक्ष्मी प्रदर्शित की गयीं हैं ।

लक्ष्मी अथवा कमला रुप—लक्ष्मी जगज्जननी हैं । खिले हुए कमल के समान नेत्रवाली, कमल से उत्पन्न हुई हैं । कमल ही उनका निवास स्थान है, वे हाथ में कमल पुष्प धारण करती हैं, कमल के समान मुख वाली तथा पद्मनाभ विष्णु की प्रिया हैं–

पद्मालया पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम् ।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम् ।।[4]

वे कमल की माला धारण करती हैं । कानों में सुन्दर कुण्डल शोभित रहते हैं । कमर पतली, शरीर पर केशर का लेप रहता है, चरणों में नूपुर धारण किये रहती हैं[5] – अग्नि पुराण लक्ष्मी को चार भुजा वाली बताता है । अपने दो दाहिने हाथों में वे चक्र और शङ्ख धारण करती हैं और अन्य दोनों बायीं भुजाओं में वे गदा तथा कमल धारण करती हैं–

चक्रशङ्खधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक् ।।[6]

---

१. श्रीमद्भा० ८।८।१०.
२. श्रीमद्भा० ८।८।१६.
३. मथुरा म्यूजियम केटेलॉग पृ० १०२.
४. वि० पु० १।९।११८.
५. ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं, · · · चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
· · · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितै र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ।।
श्रीमद्भा० ८।८।१७–१८.
६. अग्नि पु० ५०।२०:

इसी पुराण में लक्ष्मी की दोनों भुजाओं में अन्य वस्तुओं का भी उल्लेख हुआ है—

लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता ।।[1]

अर्थात् दाहिने हाथ में लक्ष्मीजी कमल धारण करती हैं और उनके बाएँ हाथ में श्रीफल (बेल) रहता है। यह प्रसङ्ग उनको केवल दो भुजाओं वाला होने का सङ्केत करता है। इस प्रकार इनके दो रूप हैं–१ दो भुजावाला तथा २. चार भुजावाला। लक्ष्मी रूप में ये दोनों ही रूप मान्य हैं।

विष्णुधर्मोत्तर में लक्ष्मी के रूप का विशद उल्लेख हुआ है। वे सम्पूर्ण जगत् की जननी तथा विष्णु की पत्नी कही गयी हैं[2] और उनके दो प्रकार के रूपों का वर्णन किया गया है। हरि के समीप उपस्थित रहने पर उन्हें दो भुजा वाली बनाया जाता है। इस रूप में वे अत्यधिक सुन्दर, अपने हाथ में कमल धारण किये तथा सभी प्रकार के आभूषण से शोभित रहती हैं। उनका गौर वर्ण है और श्वेत वस्त्र पहनती हैं—

हरेः समीपे कर्त्तव्या लक्ष्मीस्तु द्विभुजा नृप ।
दिव्यरूपाम्बुजकरा सर्वाभरणभूषणा ।।
गौरी शुक्लाम्बरादेवी रूपेणाप्रतिमा भुवि ।[3]

परन्तु लक्ष्मी को जब विष्णु से पृथक् बनाया जाता है तब वे चार भुजाओं वाली रहती हैं। सुन्दर सिंहासन पर वे आसीन रहतीं हैं। सिंहासन के ऊपर आठ दल वाला सुन्दर कमल खिला हुआ चित्रित रहता है। उसी पर उनकी स्थापना होती है। अपनी चारों भुजाओं में से ऊपर की दाहिनी भुजा में वे खूब बड़ी नाल वाला कमल धारण करती हैं जो उनके केयूर प्रान्त को छूता रहता है। ऊपर के दाहिने हाथ में अमृतघट धारण करती हैं। नीचे के दाहिने हाथ में बिल्वफल तथा दूसरे बाएँ हाथ में शङ्ख रहता है। उनके पीछे दो सुन्दर हाथी अपनी सूडों में जल भरकर नीचे की ओर छिड़कते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। उनके सिर पर सुन्दर कमल सुशोभित रहता है।[4]

---

१. अग्नि पु० ५०।१५.
२. या माता सर्वलोकस्य पत्नी विष्णोर्महात्मनः ।। वि० ध० ८२।१.
३. वि० ध० ८२।३.
४. पृथक्चतुर्भुजा कार्या देवी सिंहासने शुभे ।।
सिंहासनेऽस्या कर्त्तव्यं कमलं चारुकर्णिकम् ।
अष्टपत्रं महाभाग कर्णिकायां तु संस्थिता ।।
विनायकवदासीना देवी कार्या महाभुज ।
बृहन्नालं करे कार्यं तस्याश्च कमलं शुभम् ।।
दक्षिणे यादवश्रेष्ठ केयूरप्रान्तसंस्थितम् ।
वामेऽमृतघटः कार्यस्तथा राजन्मनोहरः ।।
तथैवान्यौ करौ कार्यौ बिल्वशङ्खधरौ नृप ।
आवर्जित घटं कार्यं तत्पृष्ठे कुन्जरद्वयम् ।।
देव्याश्च मस्तके पद्म तथा कार्यं मनोहरम् ।। वि० ध० ८२।३–८.

लक्ष्मी के समीप राजश्री, स्वर्गलक्ष्मी, ब्राह्मी लक्ष्मी और जय लक्ष्मी ये सब देवियाँ स्थापित की जाती हैं।[१] सम्भवत: ये सभी देवियाँ लक्ष्मी के विभिन्न अस्तित्वों को प्रकट करती हैं। विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित लक्ष्मी का रूप सम्भवत: गजलक्ष्मी तथा महालक्ष्मी का मिश्रित रूप है। क्योंकि विश्वकर्मशिल्प चतुर्भुजी महालक्ष्मी का लक्षण इस प्रकार बतलाता है–

> लक्ष्मीवत्सदाकार्या रूपाभरणभूषिता।
> दक्षिणाधः करे पात्रमूर्ध्वं कौमोदकी ततः।
> वामाध्वं खेटकं धत्ते श्रीफलं तदधः करे।
> विभ्रती मस्तके लिङ्गं पूजनीया विभूतये।।[२]

किन्तु मानसार महालक्ष्मी को तीन नेत्र वाली, शुद्ध काञ्चन वर्ण वाली तथा पीताम्बर-धारिणी बतलाता है–

> रक्ताब्जं पीठतश्चोर्ध्वं देवी पद्मासना भवेत्।
> चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च मुकुटं कुन्तलं भवेत्।
> प्रसन्नवदना देवीं शुद्धकाञ्चनसन्निभाम्।
> पीताम्वरधरां देवीं रक्तमंशुकधारणीम्।।[३]

कोई राज्य के लिए, कोई स्वर्ग के लिए, कोई जय के लिए लक्ष्मी की उपासना करता है। दुर्वासा के शाप से श्रीहीन हुए देवों ने भगवान् नारायण की प्रेरणा से समुद्र मन्थन कर लक्ष्मी को प्राप्त किया और लक्ष्मी को प्राप्त कर सब देव श्रीयुक्त हो गये। पदच्युत इन्द्र पुन: देवेन्द्र हो गये।[४] लक्ष्मी सत्त्व प्रधान देवी है। वही सबमें चेतना, शोभा का सञ्चार करती हैं।[५] जहाँ सत्त्व नहीं रहता वहाँ लक्ष्मी का रहना असम्भव है। सत्त्व ही लक्ष्मी का आधार है, वही उनकी शक्ति है, वही प्रेरणा है।

लक्ष्मी विष्णु की आत्मा

विष्णु के समान लक्ष्मी भी सर्वव्यापक हैं, जगज्जननी हैं। वे विष्णु की आत्मा हैं, उनकी शक्ति हैं। लक्ष्मी के विना विष्णु की कोई सत्ता नहीं। लक्ष्मी का आश्रय

---

१. वि० ध० ८५।१३–१४.
२. विश्व शि० १९।५४–५५.
३. मान० २३।१९–२०.
४. वि० पु० १।९।३८–८१.
५. यत: सत्त्वं ततो लक्ष्मी . . . वि० पु० १।९।२९.

लेकर विष्णु भी सत्त्व को धारण करते हैं। दोनों परस्पर एक हैं। जैसे लक्ष्मी के बिना विष्णु निर्जीव हैं उसी प्रकार विष्णु के बिना लक्ष्मी भी निष्प्राण हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मी वाणी हैं। विष्णु न्याय हैं तो लक्ष्मी नीति हैं। वे धर्म हैं तो लक्ष्मी सत्क्रिया हैं—

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयोहरिः ।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रियात्वियम् ।।[१]

लक्ष्मी विष्णु की अर्धाङ्गिनी और महामाया स्वरूपिणी हैं। विष्णु के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं।[२] वही विष्णु की माया शक्ति हैं। इनको समझना अत्यन्त कठिन है—

इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मामायाशक्तिर्दुरत्यया ।।[३]

इस जगत् के स्रष्टा विष्णु हैं और लक्ष्मी उनकी सृष्टि हैं। वे पर्वत हैं तो लक्ष्मी भूमि के रूप में उन्हें धारण करती हैं।[४] यज्ञ रूप में भी वे विष्णु से अलग नहीं। विष्णु समस्त यज्ञ हैं तो लक्ष्मी यज्ञ-क्रिया हैं। वे फलभोक्ता हैं तो लक्ष्मी उसको उत्पन्न करने वाली क्रिया है—

त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ।।[५]

श्रीभगवान् के साथ सन्तोष के रूप में तुष्टि बनकर, काम के रूप में इच्छा बनकर, यज्ञ के रूप में दक्षिणा बनकर, यजमान गृह के रूप में पत्नि शाला बनकर, पुरोडाश के रूप में आज्याहुति-घृत की आहुति बनकर, यूप के रूप में चित्ति बनकर, कुश के रूप में इध्या बनकर, अग्नि के रूप में स्वाहा बनकर वे सदैव उनके साथ रहती हैं।[६] विष्णु यदि सभी प्राणियों की आत्मा हैं तो लक्ष्मी शरीर, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण हैं। श्री यदि तीनों गुणों की अभिव्यक्ति हैं तो प्रभु उन्हें व्यक्त करने वाले हैं।[७]

भगवान् विष्णु यदि चन्द्रमा हैं तो लक्ष्मी कान्ति बनकर उनकी शोभा बढ़ाती हैं। यदि गोविन्द समुद्र हैं तो माता लक्ष्मी तरङ्ग बनकर उनका आलिङ्गन किये रहती हैं। मधुसूदन यदि इन्द्र हैं तो कमला शची बनकर उनके साथ विराजमान

---

१. वि० पु० १।८।१८.
२. विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ।। श्रीमद्भा० ६।१९।६.
३. श्रीमद्भा० ६।१९।११.
४. वि० पु० १।८।१९.
५. श्रीमद्भा० ६।१९।१२.
६. वि० पु० १।८।२०–२२.
७. श्रीमद्भा० ६।१९।१३–१४.

रहती हैं।[1] विष्णु कुबेर हैं तो लक्ष्मी उनकी पत्नी धूमोर्णा हैं। चक्रपाणि यम हैं तो वे यम पत्नी हैं। श्रीकेशव कुबेर हैं तो वे ऋद्धि हैं। हरि स्वामी कार्त्तिकेय हैं तो श्री देवसेना है। अतः यदि विष्णु आश्रय हैं तो लक्ष्मी शक्ति हैं—

यमश्चक्रधरः साक्षाद्धूमोर्णा कमलालया।
ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः।।
गौरी लक्ष्मी महाभागा केशवो वरुणः स्वयम्।
श्रीदेवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिर्हरिः।।
अवष्टम्भो गदापणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम।[2]

सर्वेश्वर हरि यदि दीपक हैं तो लक्ष्मी ज्योति के रूप में उन्हें प्रकाशित करती है। वृक्ष स्वरूप विष्णु के लिए लक्ष्मी लतारूप हैं। चक्रधारी विष्णु दिन हैं तो लक्ष्मी रात्रि हैं। वरदायक वरस्वरूप हरि की लक्ष्मी वधू हैं। प्रभु नद हैं तो वे नदी हैं।[3]

इस प्रकार लक्ष्मी ही विष्णु की शक्ति हैं। अपनी इस शक्ति के बिना विष्णु कुछ भी नहीं कर सकते। जब–जब भगवान् विष्णु अवतार धारण करते हैं, लक्ष्मीजी सदा उनके साथ ही विद्यमान रहती हैं और उनकी सहायता किया करती हैं। उन्हीं की सहायता से विष्णु कोई कार्य करने में सफल होते हैं। प्रत्येक कार्य में प्रभु को इनकी सहायता की अपेक्षा रहती है।[4] जब विष्णु आदित्य रूप हुए तो पद्म (कमल)

---

१. शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तथैवानपायिनी।
....
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्वत्रगो हरिः।
जलधिर्द्विजगोविन्दस्तद्वेलाश्रीर्महामुने।।
....
लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः।। वि० पु० १।८।२५-२६.

२. वि० पु० १।८।२७-२८.

३. ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्वः सर्वेश्वरो हरिः।
लताभूताजगन्माताश्रीविष्णुर्द्रुमसंज्ञितः।।
विभावरी श्रीर्दिवसो देवचक्रगदाधरः।
वरप्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्मवनालया।।
नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीस्वरूपसंस्थिता।
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताकाकमलालया।।
वि० पु० १।८।३०–३२.

४. एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदाश्रीस्तत्सहायिनी।। विष्णु १।९।१४२.

से जन्म लेकर ये पद्मा कहलायीं और जब प्रभु ने परशुराम का रूप धारण किया तब लक्ष्मी ने साक्षात् पृथ्वी रूप धारण कर लिया। श्रीराम के अवतार के समय उन्होंने सीता रूप में अवतरित हो उनका साथ दिया और कृष्ण का अवतार लेने पर वे रुक्मिणी के रूप में उनकी शोभा बनीं--

पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदाहरिः।
यदातु भार्गवो रामस्तदाभूद्धरणीत्वियम्॥
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी॥[1]

इसी प्रकार अन्य अवतारों में भी ये भगवान् से अलग नहीं हुईं। सदा उन्हीं के साथ छाया के रूप में रहकर प्रभु की सहायता करती रहीं। प्रभु के दैवी शरीर के साथ दैवी बनकर और मानवी शरीर के समय मानवी बनकर उन्हीं के अनुरूप में उनके साथ रहीं।[2]

लक्ष्मीजी जगत् की माता तथा विष्णु पिता हैं और इन्हीं माता-पिता रूप लक्ष्मी नारायण से यह जगत् व्याप्त है--

त्वसम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता।
यच्चैतद् विष्णुना चाम्ब! जगद् व्याप्तं चराचरम्॥[3]

लक्ष्मी का निवास स्थान भगवान् विष्णु का वक्षःस्थल कहा गया है। वहीं पर सदैव उनका वास रहता है।[4] और वे एक क्षण के लिए भी उनके सम्पर्क को चञ्चल प्रवृत्ति होने पर भी त्यागना नहीं चाहतीं--

पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित्॥[5]

जिनके कृपाकटाक्ष को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मादि देवता विष्णु की शरण में जाकर घोर तप करते हैं, वही देवी लक्ष्मी कमलवन नामक अपने निवास के सुन्दर स्थान को

---

१. वि० पु० १।९।१४३-४४.
२. वि० १।९।१४५.
३. अग्नि पु० २३७।१०.
४. नं वितृप्यन्तिहि दृशः श्रियोधामाङ्गमच्युतम्।
श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम्॥
श्रीमद्भा० १।११।२५-२६.
५. श्रीमद्भा० १।११।३३.

त्याग कर विष्णु के चरणों की सेवा करती हैं।[१] यद्यपि हरि की इच्छा नहीं होती फिर भी उनके चरण रज को प्राप्त कर वे अपने को धन्य मानती हैं और ब्रह्मादि देव जो कठिन तप द्वारा उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं उनकी ओर वे ध्यान तक नहीं देती,[२] यही उपेक्षा ही उनकी महानता है।

लक्ष्मीनारायण—वैष्णव पुराणों में अनेक स्थलों पर विष्णु को अपनी पत्नी के साथ प्रदर्शित किया गया है। कभी वे उनके [illegible]ड़ी रहती हैं, कभी पास में बैठी रहती हैं और कभी वाहन गरुड़ पर विष्णु के साथ बैठती हैं। विष्णु की प्रतिमा ऐसी लक्ष्मीनारायण कहलाती है।

विष्णु के दर्शन करने के लिए जाते हुए सनकादि ऋषियों को जब उनके पार्षदों ने रोका तो ऋषियों ने उन्हें असुर हो जाने का शाप दे दिया। यह सुनकर भगवान् स्वयं लक्ष्मी के साथ वहाँ पर आकर उपस्थित हो गये। सनकादि ने देखा विष्णु के दोनों ओर राजहंस के समान श्वेत चँवर डुलाये जा रहे हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। पीछे की भुजाओं में से एक समीप में खड़ी हुई लक्ष्मीजी की कमर के पास है। आगे की भुजाओं में से एक भुजा उनके समीप में स्थित गरुड़ के स्कन्ध पर रखी है और दूसरे हाथ से वे कमल पुष्प घुमा रहे हैं। समीप में लक्ष्मीजी स्थित हैं। लक्ष्मीजी के बाएँ हाथ में कमल है और दाहिना हाथ विष्णु के स्कन्ध पर रखा है। सभी आयुध मूर्तरूप में उपस्थित हैं।[३]

---

१. ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष
कामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ श्रीमद्भा० १।१६।३२.

२. हित्वेतरान् प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणु जुषतेऽनमीप्सोः ॥
श्रीमद्भा० १।१८।२०.

३. हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोल–
च्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम्।
श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रियास्व–
श्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥
पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या
काञ्च्यालिभिर्विरुतया वनमालया च।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥
विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्ह–
गण्डस्थलोन्नरनमुखं मणिमत्किरीटम् ।
दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्घ्य
हारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥ श्रीमद्भा० ३।१५।३९–४१

बेलूर के छत्रिगराय के मन्दिर में प्राप्त लक्ष्मीनारायण की एक प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय ने किया है। प्रतिमा उपर्युक्त प्रसङ्ग का ही प्रकटीकरण है। प्रतिमा में विष्णु की बायीं ओर सभी आभूषणों से सुसज्जित लक्ष्मीजी उपस्थित हैं। उनका एक हाथ विष्णु के गले में पड़ा है। उनके दूसरे हाथ में कमल पुष्प है। विष्णु का एक हाथ लक्ष्मी की कमर के पास है। गरुड़ समीप में उपस्थित हैं। सभी चक्रादि आयुध मूर्तरूप में विष्णु की सेवा में उपस्थित हैं।[1] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर में लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा है। उसमें विष्णु तथा लक्ष्मी आलिङ्गन मुद्रा में खड़े हैं। लक्ष्मी का दाहिना हाथ विष्णु के गले में पड़ा है और विष्णु का बाँया हाथ पीछे से आकर लक्ष्मी के वक्षस्थल के समीप रखा है। प्रतिमा की मुद्रा बड़ी सुन्दर है।[2]

इस रूप में लक्ष्मी को विष्णु की बायीं जंघा पर भी बैठी हुई दिखाया जाता है। इसी रूप में वे कभी विष्णु के साथ गरुड़ पर भी बैठी रहती हैं। ऐसी प्रतिमाएँ उमा-महेश्वर की प्रतिमाओं से साम्य रखती हैं। विष्णुधर्मोत्तर में लक्ष्मी के लिए 'वामोत्सङ्ग गतापि वा'[3] कहा गया है। 'वा' शब्द इस बात को स्पष्ट करता है कि इस रूप की भी प्रतिमा बनायी जा सकती है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि विष्णु ने अत्यन्त प्रीति वश अर्वाङ्गिनी लक्ष्मी को अपने उत्सङ्ग में स्थान दिया।[4]

लक्ष्मीनारायण की इस प्रकार की प्रतिमा ढाका शहर से दक्षिण-पश्चिम की ओर चार मील दूर बास्ता नामक स्थान में भौमिकों के घरों में प्राप्त हुई है। वहाँ इसी प्रतिमा की उपासना होती है। प्रतिमा में सभी कुछ वैष्णव पुराणों के प्रसङ्ग से मिलता है। गरुड़ चार भुजा वाले हैं। उनके आगे के दो हाथ अञ्जलि मुद्रा में हैं और पीछे के दोनों हाथों की हथेली पर लक्ष्मी तथा नारायण के चरण रखे हैं।[5]

होयसलेश्वर के मन्दिर में भी लक्ष्मीनारायण की बड़ी सुन्दर प्रतिमा प्राप्त होती है। इस प्रतिमा में भी लक्ष्मी विष्णु के वाम उत्सङ्ग में विराजमान हैं। विष्णु का दाहिना चरण आसन से नीचे पादपीठ पर रखा हुआ है। दोनों ओर आयुध मूर्त्तरूप में उपस्थित हैं। समीप में नीचे गरुड़ का अञ्जलिबद्ध रूप बना है। प्रतिमा के ऊपर-नीचे चारों ओर सुन्दर नक्काशी बनी है।[6]

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ११४.
२. खजुराहो पृ० १२ प्ले० ५४.
३. वि० ध० ८५।४७.
४. वि० पु० ३।४।२७.
५. आ० अ० ब्र० ए० बु० स्क० पृ० ८८.
६. सरस्वती यस० के० ए० स० इण्डि० स्क० पृ० १८५-६६ प्ले० १७९.

खजुराहो में प्राप्त गरुड़ारूढ़ लक्ष्मीनारायण की सुन्दर प्रतिमा में वैष्णव पुराणों के प्रसङ्गों का पूर्णत: स्पष्टीकरण हुआ है ।[१] विष्णु ललितासन मुद्रा में गरुड़ के ऊपर बैठे हैं अर्थात् उनका एक पैर मुड़ा हुआ गरुड़ के स्कन्ध पर है और दूसरा लटकता हुआ गरुड़ के हाथों पर रखा है। विष्णु के उत्सङ्ग में लक्ष्मी बैठी हैं। उनका दाहिना पैर मुड़ा है और बायाँ लटकता हुआ गरुड़ की बायीं हथेली पर रखा है। गरुड़ के पङ्ख फैले हैं और उड़ते हुए प्रदर्शित किये गये हैं।[२]

इलाहाबाद के संग्रहालय में भी एक लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा है। इसमें विष्णु तथा लक्ष्मी आलिङ्गन मुद्रा में विराजमान हैं। विष्णु का एक हाथ लक्ष्मी को अङ्कपाश में भरकर उनके कटि प्रदेश के ऊपर रखा है और लक्ष्मी का एक हाथ विष्णु के कण्ठ में पड़ा है। श्री शिवराम मूर्ति ने इसे विष्णु की लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा न मानकर कल्याण सुन्दर विष्णु माना है।[३] किन्तु प्रतिमा के रूप-आकार आदि के आधार पर इसे लक्ष्मीनारायण प्रतिमा मानना ही उपयुक्त है। इस रूप में विष्णु को चतुर्भुज के साथ-साथ कभी-कभी दो भुजा वाला भी प्रदर्शित किया जाता है। ऐसी प्रतिमाएँ विष्णु पुराण में कथित प्रसङ्ग से साम्य रखती हैं। खजुराहो के मन्दिरों में इस रूप के भी दर्शन होते हैं।

भू-देवी—भू-देवी लक्ष्मी का ही रूप मानी जाती हैं। श्रीमद्भागवत में इन्हें वराह भगवान के दाँत पर विराजमान हुई बताया गया है। वहाँ पर इनके रूप के विषय में उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु विष्णुधर्मोत्तर में इनके विषय में कहा गया है—

शुक्लवर्णा महीकार्या दिव्याभरणभूषिता ।
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चन्द्रांशुसदृशाम्बरा ॥[४]

अर्थात् पृथ्वीदेवी श्वेत वर्ण की चार भुजा वाली, चन्द्रिका के समान श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाली तथा सभी सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित रहती हैं। वे अपने तीन हाथों में रत्न-पात्र, सस्य-पात्र, औषधि से भरा हुआ पात्र धारण करती हैं और उनके

---

१. वि० पु० ३।४।२७, श्रीमद्भा० १०।५८।२–४. वि० ध० ८५।४७–४९.
२. खजुराहो पृ० २५ प्ले० ७२, अवस्थी रा० आ० ख० दे० प० पृ० १४२–१४३.
३. शि० मू० सी०–जन० ए० सो० ले० कलकत्ता वा० २१ न० २ पृ० ७९ प्ले० ४ आ० ७.
४. वि० ध० ६१।१.

चौथे हाथ में कमल पुष्प रहता है। उनके पीछे चारों दिग्गज रहते हैं। ऐसी गौरवर्ण वाली भूदेवी सभी औषधिपूर्ण हैं–

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमौषधिसंयुतम् ।
पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादवनन्दन ॥
दिग्गजानां चतुर्णां च कार्या पृष्ठगता तथा ।
सर्वौषधियुता देवी शुक्लवर्णातितस्मृता ॥[१]

अंशुमद्भेदागम भूमि देवी का प्रसन्न मुख, करण्ड मुकुट, सर्वाभूषण तथा पीताम्बर धारण किये हुए प्रदर्शित करता है।[२] पूर्वकरणागम के विचार से भूमि देवी श्याम वर्ण की हैं। वे रक्त वर्ण के वस्त्र तथा सुवर्ण यज्ञोपवीत पहनती हैं। उनके सिर पर करण्ड मुकुट रहता है।[३] मानसार उन्हें दुकूल, मुकुट, कुन्तल, मकर, कुण्डल धारण करने वाली बतलाता है।[४]

सरस्वती रूप––महालक्ष्मी से जो उनका सत्त्वप्रधान रूप उत्पन्न हुआ वही चन्द्रमा के समान श्वेत, अक्षमाला, अङ्कुश, वीणा, पुस्तक धारण करने वाली, भारती वेदगर्भा थी तथा सरस्वती कहलायी। ये विद्या की देवी मानी गयी हैं। ऋग्वेद में सरस्वती की एक पवित्र सरिता के रूप में अधिक ख्याति है।[५] ब्रह्मा के साथ सरस्वती का अधिक सम्पर्क है। उन्हीं के सम्मिलन से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। महाभारत में सरस्वती श्वेत वर्ण वाली, श्वेत कमल पर आसीन, अक्षमाला, पुस्तक तथा वीणा लिये हुए प्रदर्शित की गयी हैं।[६] सरस्वती विद्या तथा संस्कृति की देवी कही गयी हैं। इनके लिए वाक्, वाग्देवी, वागेश्वरी, भारती, वाणी आदि विशेषण प्रयुक्त होते हैं। सरस्वती सभी ब्राह्मण-धर्म के अनुयायियों की आराध्य देवी हैं। बौद्ध और जैन धर्म वाले भी इनकी आराधना करते हैं। बौद्ध इन्हें मञ्जुश्री की आत्मा स्वीकार करते हैं,[७] किन्तु ब्राह्मण धर्म में कभी इनका सम्बन्ध ब्रह्मा से बतलाया जाता है और कभी विष्णु से। साधारणतः ये कमल के पुष्प पर बैठी हुई, वीणा बजाती हुई दिखायी जाती हैं। हंस इनका वाहन है जो पैरों के समीप स्थित रहता है। संस्कृति की देवी के

---

१. वि० ध० ६१।२–३.
२. अं० आ० अ० ४९.
३. पू० का० अ० २६.
४. मानसार १९।२६.
५. ऋ० वे० ५।१३६.
६. महा० शान्ति १२२।२५–२७.
७. स्मिथ० वी० ए०–जैन स्तूपाज़ ऑफ मथुरा पृ० ५६.

रूप में दुग्ध के समान श्वेत वर्ण वाली सरस्वती अधिक महत्त्वशालिनी हैं।[1] पुराणों में इनका यही रूप अधिक स्पष्ट हुआ। विष्णुधर्मोत्तर सरस्वती को चार भुजा युक्त एवं सभी आभूषणों से सुशोभित बतलाता है। उनका सौम्य मुख, सुन्दर रूप, गौरवर्ण है। चारों भुजाओं में से दाहिने दोनों हाथों में वे पुस्तक तथा अक्षमाला धारण करती हैं। दोनों बाएँ हाथों में वीणा तथा कमण्डलु रहता है—

देवी सरस्वती कार्या सर्वाभरणभूषिता।
चतुर्भुजा सा कर्त्तव्या तथैव च समुत्थिता ।।
पुस्तकं चाक्षमाला च तस्या दक्षिणहस्तयोः।
वामयोश्च तथा कार्या वैणवी च कमण्डलुः ।।
समपादप्रतिष्ठा च कार्या सौम्यमुखो तथा ।।[2]

स्कन्दपुराण में सरस्वती जटाजूट युक्त, शुद्ध, अर्ध-चन्द्र मस्तक पर धारण करने वाली, कमलासन पर सुशोभित, नील ग्रीवा वाली एवं तीन नेत्रों वाली कही गयी हैं।[3] 'रूप-मण्डन' ग्रन्थ में देवी का चित्रण निम्न प्रकार से हुआ है—

एकवक्त्रा चतुर्हस्ता मुकुटेन विराजिता।
प्रभामण्डलसंयुक्ता कुण्डलान्वितशेखरा ।।
अक्षाब्जवीणापुस्तकं महाविद्या प्रकीर्तिता।
वराक्षाब्जं पुस्तकं च सरस्वती शुभावहा ।।[4]

मानसार ग्रन्थ में सरस्वती पद्मासन पर स्थित शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाली, मुक्ताभरण से भूषित, चार भुजा, दो नेत्र, केश बाँधे हुए, रत्नयुक्ता तथा पद्म के हार से शोभित, नूपुर पहने हुए करण्ड मुकुट से शोभित कही गयी हैं।[5] हंस सरस्वती का भी वाहन है।

बैनर्जी महोदय ने भरहुत के स्तम्भ पर खुदी हुई सरस्वती की बड़ी सुन्दर प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा में देवी कमलासन पर विराजमान हैं उनके हाथों में वीणा, अक्षमाला, पुस्तक तथा कमण्डलु है। देवी की मुद्रा बड़ी आकर्षक है। वे

---

१. मेकडॉनल—वै० मा० पृ० ८७.
२. वि० ध० ६४।१—३.
३. जटाजूटधरा शुद्धा चन्द्रार्धकृतशेखरा।
पुण्डरीक समासीना नीलग्रीवा त्रिलोचना ।। स्क० पु० ९६।३१.
४. रूपमण्डन अ० ५४.
५. मानसार २४।५१—५२.

सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं ।[1] मथुरा में कङ्काली टीला से खुदाई में भी सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई, प्रतिमा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े सुन्दर बने हैं। वेषभूषा सुसज्जित है।[2] सरस्वती की एक अन्य प्रतिमा प्राप्त हुई है जो १′ ११″×११″ है। यह प्रतिमा काले पत्थर की बनी हुई है। सरस्वती की चार भुजाएँ हैं, आगे की दोनों भुजाओं से वे वीणा बजा रही हैं, पीछे की दोनों भुजाओं में से दाहिनी में अक्षमाला तथा बायीं में पुस्तक है। वे कमल के आसन पर आसीन हैं। उनका दाहिना चरण कमल के ऊपर है। कमल नाल के दाहिनी ओर हंस भी प्रदर्शित किया गया है।[3] तन्जौर के बृहदीश्वर मन्दिर में भी सरस्वती की एक प्रतिमा प्राप्त हुई, जो प्रतिमा कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें सरस्वती का रूप एवं सौन्दर्य और अधिक निखरा हुआ है।[4] राव महोदय ने होयसल तथा होलेविडू स्थानों में प्राप्त सरस्वती की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। पत्थर की दोनों प्रतिमाएँ बड़ी सुन्दर हैं और विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्गों से मिलती हैं।[5] इसके अतिरिक्त सरस्वती की अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ बङ्गाल में प्राप्त होती हैं। बोगरा जिले में भी सरस्वती की सुन्दर प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। राजशाही संग्रहालय में रखी हुई सरस्वती की प्रतिमा भी दर्शनीय है।[6] थापर महोदय ने सरस्वती की अनेक प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। प्रतिमाएँ कांस्य तथा ताँबे की हैं। इसमें एक प्रतिमा ऐसी है जिसमें सरस्वती के चार हाथ हैं। उनमें वे पुस्तक, अक्षमाला, वीणा तथा कमण्डलु धारण किये हुए विष्णुधर्मोत्तर के "पुस्तकं चाक्षमाला च तस्या दक्षिणहस्तयोः" 'वामयोश्च तथा कार्या वैष्णवी च कमण्डलुः[7] रूप को व्यक्त करती हैं।[8]

लक्ष्मी का रुक्मिणी रूप—भगवान् विष्णु के देव रूप होने पर लक्ष्मी भी दिव्य शरीर में विद्यमान रहती हैं किन्तु विष्णु के मानवी शरीर धारण करने पर वे भी मानवी रूप में प्रकट हो जाती हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है—

राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि[9]

अर्थात् विष्णु के राघव रूप में वे सीता रूप में अवतरित होती हैं और कृष्ण जन्म में

---

१. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २१३.
२. वही पृ० २१२.
३. आइ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० १८६–१९०.
४. वही पृ० १९१.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० ३७७.
६. आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० १८८.
७. वि० ध० ६४।३.
८. थापर डी० आर० आइ० इ० ब्र० पृ० १०३.
९. वि० पु० १।९।१४४.

रुक्मिणी के रूप में कृष्ण की प्रिय अर्धाङ्गिनी बनती हैं। वे राजा भीष्मक की कन्या थीं। रुक्मी उनका भाई था। विवाह के पूर्व उत्सव यात्रा के समय उनका मोहक रूप सबको आश्चर्य में डाल देने वाला था। उनका शरीर सुन्दर, कटिप्रदेश पतला था। मुख पर सुन्दर अलकें, कटि में करधनी शोभित थी। कुन्दकली के सदृश श्वेत दाँत, कुँदरू के समान लाल अधर थे। कानों में कुण्डल, हाथों में कङ्कण तथा चरणों में नूपुर पहने थीं। उनके छोटे-छोटे घुँघरू झुन-झुन वज रहे थे। वे सुकुमार चरण कमलों से राजहंस की गति से चल रही थीं।[1] उनके कर कमलों में जड़ाऊ कंगन, अँगूठियाँ तथा चँवर शोभा पा रहे थे। चरणों में मणिजटित नूपुर रुनझुन कर रहे थे। वक्ष:स्थल पर चन्दन का लेप था और उस पर हार शोभित थे। कटि में पड़ी हुई करधनी की लड़ियाँ लटक रही थीं। उनके मुख पर घुँघराली अलकें, कानों में कुण्डल तथा गले में स्वर्ण हार शोभित थे——

पय: फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ।।
वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात्।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ।।
सोपाच्युतं क्वणयती मणि नूपुराभ्यां
रेजुऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढ़कुचकुङ्कुमशोणहार-
भासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या।
तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा।
प्रीत: स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ।।[2]

यह रुक्मिणी अलौकिक रूप लावण्य वाली लक्ष्मी का ही रूप है। भगवान् के द्वारा मानवी रूप धारण करने पर उन्होंने भी मनुष्य का शरीर धारण कर लिया, क्योंकि विष्णु के शरीर के अनुकूल वे भी अपना देवी एवं मानवी रूप धारण कर लेती हैं——

---

१. श्रीमद्भा० १०।५८।१८–२०.
२. श्रीमद्भा० १०।६०।६–९.

देवत्वे देवदेहेऽयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ।।[1]

विष्णु पुराण में कहा गया है कि सर्व सुन्दरी, चारुहासिनी, वरानना, सुन्दर कटि-प्रदेश वाली रुक्मिणी कृष्ण के साथ शोभित रहती हैं।[2] विष्णुधर्मोत्तर उन्हें कृष्ण की प्रिया तथा सर्वसुन्दरी बतलाता है--

देवीमावाहयिष्यामि रुक्मिणीं कृष्णवल्लभाम् ।
रुक्मणित्वमिहाभ्येति जगतामेकसुन्दरि ।।[3]

जब वे कृष्ण के साथ प्रदर्शित की जाती हैं तो उनके एक हाथ में नीला कमल रहता है। कृष्ण अपने एक हाथ में चक्र धारण करते हैं।[4] वैखानसआगम रुक्मिणी के हाथ में नीलोत्पल के स्थान पर लाल कमल मानता है ।

मद्रास म्यूजियम में प्राप्त कृष्ण और रुक्मिणी की प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्ग को व्यक्त करती है। प्रतिमा पत्थर की बनी हुई है । कृष्ण के वाम भाग में समीप ही रुक्मिणी उपस्थित हैं। कृष्ण के दाहिने हाथ में चक्र है और बायाँ हाथ रुक्मिणी के स्कन्ध पर रखा है। कृष्ण का शरीर आभूषणों से शोभित है। कानों में कुण्डल तथा गले में मालाएँ पड़ी हैं। रुक्मिणी का आकार भी मनमोहक है। उनके बाएँ हाथ में नीलोत्पल है । प्रतिमा जीर्ण दशा में है और कहीं-कहीं पर टूट गयी है।[5]

पार्वती—जब विष्णु अपने रौद्री रूप को धारण करते हैं तब गौरी एवं पार्वती बनकर लक्ष्मीजी शिव के साथ निवास करती हैं । विष्णु पुराण में लक्ष्मी को गौरी तथा विष्णु को शङ्कर भी माना गया है । गौरी के रूप में वे विष्णु रूपी शिव की सहायिका हैं--

शङ्करोभगवान्छौरिर्गौरीलक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।।[6]

वराह पुराण में विष्णु को शङ्कर तथा लक्ष्मी को पार्वती कहा गया है और इन दोनों में भेद मानने वाले को अधम कहा है—

---

१. वि० ध० १।९।१४५.
२. रुक्मी तस्याभवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना ।।
रुक्मिणीं चकमे कृष्णस्सा च तं चारुहासिनी ।।
वि० पु० ५।२६।१-४.
३. वि० ध० १०६।१२०.
४. वि० ध० १०६।१२४-२५.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ८५.
६. वि० पु० १।८।२२-२३.

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः ।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते ।।
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं तु तद्भवेत् ।
विष्णुरुद्रकृतं ब्रूयाच्छ्रीगौरीति निगद्यते ।।
एतयोरन्तरं यच्च सोऽधमः कथ्यते जनैः ।।[१]

ये शिवजी के साथ कभी बैल पर आरूढ़ होकर विचरण करती हैं और कभी कैलाश पर्वत पर रहकर विहार करती हैं। अपने पुत्र गणेश को गोद में लेकर बैठी हुई पार्वती का चित्रण श्रीमद्भागवत में हुआ है।[२] पार्वती की अकेली तथा गणेश के साथ बैठी हुई अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। खजुराहो के जगदम्बा मन्दिर में पार्वती की चार भुजा वाली प्रतिमा है जो ५ फी० ८ इ० ऊँची है। प्रतिमा बड़ी सुन्दर है, किन्तु वहाँ के निवासियों ने उसे काले रङ्ग से पोत दिया है और उसकी काली अथवा जगदम्बी के नाम से पूजा करते हैं। गांगोली महोदय[३] ने इसे लक्ष्मी की तथा अयूबायर महोदय[४] ने इसे मकर वाहिनी गङ्गा की प्रतिमा बतलाया है किन्तु अन्य पार्वती की प्रतिमाओं से इसकी तुलना करने पर इस भ्रम का निवारण हो जाता है। पार्वती की कुछ प्रतिमाएँ ऐसी भी हैं जिसके दोनों ओर समीप में कार्तिकेय तथा गणेश उपस्थित हैं। पार्वती चार भुजाओं में से ऊपर की दो भुजाओं में पूर्ण विकसित नाल वाला कमल लिये हैं। उन दोनों कमलों पर छोटे-छोटे गणेश तथा कार्तिकेय बने हुए हैं।[५]

भद्रकाली—भद्रकाली रूप में देवी की अठारह भुजाएँ होती हैं। वे मनोहर रूप वाली हैं। चार सिंहों के द्वारा चलाये जाने वाले रथ पर विराजमान रहती हैं—

अष्टादशभुजा कार्या भद्रकालीमनोहरा ।
आलीढ़स्वासनस्था च चतुर्सिंहे रथे स्थिता ।।[६]

देवी अपने हाथों में अक्षमाला, खड्ग, त्रिशूल, चण्ड, वाण, चाप, शङ्ख, पद्म, दण्ड, शक्ति, कृष्णाजिन, अग्नि आदि धारण करती हैं। कुछ भुजाओं में शान्तिप्रद आयुध

१. वराह पु० २१५।१७–१९.
२. श्रीमद्भा० १०।५८।२१.
३. गांगोली ओ० सी–दि आर्ट आ० च० पृ० ३४.
४. जान्स ई० और अयूबायर जे०–खजुराहो पृ० १००.
५. अग्रवाल वा० शं०–मथु० क० पृ० ७४–७६, इण्डि० आर्ट पृ० १७३.
६. वि० ध० १२१।६–७.

रहते हैं जो उनके भद्र रूप को प्रकट करते हैं । देवी श्याम वर्ण की, चार भुजा तथा तीन नेत्र वाली हैं। यह पार्वती का ही आभिचारिक रूप है। पूर्वी भारत में इनकी अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं । कलकत्ता के काली मन्दिर में स्थापित प्रतिमा दर्शनीय है ।

गौरी—महेश्वर के द्वारा इनका ध्यान किया जाता है। ये गौर वर्ण की चार भुजा वाली होती हैं । अक्षसूत्र, पद्म, कमण्डलु हाथों में रहता है । शेष हाथ अभय मुद्रा में रहता है। गौरी कमल के आसन पर स्थित रहती हैं—

गौरी कुमारिका रूपा ध्यायमाना महेश्वरैः ।
वरदाभयहस्ता सा द्विभुजा श्रेयसे सदा ।।
अक्षसूत्रामये पद्मं तस्याधश्च कमण्डलुः ।
गौर्यामूर्त्तिश्चतुर्बाहुः कर्त्तव्या कमलासना ।।[1]

मानसार ग्रन्थ में गौरी श्वेत वर्ण, दो भुजा, दो नेत्र वाली, आसन पर स्थित करण्ड-मुकुट तथा केशबन्ध से युक्त हैं । अपने हाथों में से दाहिने हांथ में उत्पल धारण करती हैं । बायाँ हाथ वरद मुद्रा में रहता है । गौरी का रूप सुन्दर होता है ।[2]

नन्दा—गोकुल में नन्द के यहाँ जन्म लेने के कारण नन्दा कहलायीं । इनके चार हाथ हैं । दो भुजाएँ अभय मुद्रा में रहती हैं और दो हाथों में क्रमशः अङ्कुश तथा कमल रहता है । इसके अतिरिक्त अपने चारों हाथों में ये खड्ग, खेटक, अङ्कुश तथा कमल भी धारण करती हैं। इनका वर्ण श्वेत है और हाथी पर आरूढ़ रहती हैं।

नन्दा भगवती देवी भारद्वाजाभिनन्दजा ।
वरपाशाङ्कुशाब्जानि विभ्रती च चतुर्भुजा ।।
गौरवर्णा गजस्था वा खड्गखेटबराभया ।[3]

वराह पुराण में इनकी उत्पत्ति की कथा वर्णित है ।[4] राव महोदय ने भी इनका उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है ।[5]

दुर्गा—दुर्गा की उपासना अनेक रूपों में होती रही है। कभी-कभी उनकी काल्पनिक आयु के आधार पर उन्हें संध्या, सरस्वती, चण्डिका, गौरी, महालक्ष्मी, ललिता

---

१. वि० ध० १२२।९–११.
२. मानसार ५१।३२.
३. वि० ध० ११५।२८।३१.
४. वराह पु० १३५।३८।५२.
५. राव गो० ना० ए० हि० आ० पृ० ३५५।५६.

आदि अनेक नाम प्रदान किये गये हैं,[१] यथा—एक वर्ष की आयु वाली बालिका के रूप में उनका नाम संध्या, दो वर्ष की सरस्वती, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नव वर्ष की दुर्गा, दस वर्ष की गौरी, तेरह वर्ष की महालक्ष्मी तथा सोलह वर्ष की वे ललिता कही गयी।[२] मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य खण्ड में दुर्गा के रूप में देवी ने स्वयं कहा है—वैवस्वत मन्वन्तर में द्वापर के अन्त में तथा कलियुग के प्रारम्भ में शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों को मारने के लिए नन्द गोपालों के घर में मैं नन्दा के रूप में जन्म लूँगी। विन्ध्य पर्वत को मैं अपना निवास स्थान बनाऊँगी। द्वापर के अन्त में विप्रचित्ति के यहाँ जन्म लेने वाले शुम्भ-निशुम्भ दैत्यों को मारकर खा लूँगी। उस रक्त से मेरे सब अङ्ग लाल हो जायँगे और सब मुझे रक्त चामुण्डा के नाम से पुकारेंगे।[३]

सौ वर्ष के अकाल में ऋषियों की स्तुति से प्रसन्न होकर मैं पार्वती के शरीर से सौ नेत्रों वाले रूप में प्रकट होकर शताक्षी कहलाऊँगी। चौथे युग में कुछ शाकों के द्वारा अकाल पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा कर शाकम्भरी रूप धारण करूँगी। दुर्गमन् दैत्य को मारने के कारण सब मुझे दुर्गा नाम से जानेंगे। तत्पश्चात् हिमालय की ओर प्रस्थान कर मैं भयङ्कर रूप धारण करूँगी और भीमा कहलाऊँगी। भ्रमरों की सहायता से आक्रमण कर अरुण दैत्य को मारकर मेरी भ्रामरी रूप से प्रसिद्धि होगी।[४]

कला के अन्तर्गत दुर्गा अनेक रूपों में प्रदर्शित की गयी हैं। विष्णुधर्मोत्तर में दुर्गा आठ भुजाओं वाली सिंह पर आरूढ़ कही गयी हैं। वे अपने एक हाथ में चन्द्रबिम्ब को धारण करती हैं—

> शक्तिं बाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे।
> चन्द्रबिम्बमथो वामे खेटमूर्ध्वं कपालकम्॥
> शूलं चक्रं च बिभ्राणा सिंहारूढ़ा च दिग्भुजा।
> एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गापहारिणी॥[५]

उनके अन्य तीनों हाथों में शूल, चक्र तथा कपाल रहता है। आगम ग्रन्थों में दुर्गा चार आठ या इससे भी अधिक भुजाओं वाली बतलायी गयी हैं। जब वे चार भुजा वाली रहती हैं तो आगे का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में एवं पीछे के हाथ में चक्र रहता है। आगे

---

१. मा० पु० देवी माहात्म्य ५।१७।१०.
२. वही ५।२१-२२.
३. ,, ५।३८-४५.
४. मा० पु० देवी माहात्म्य ५।३८-४५.
५. वि० ध० ११५।१७-१९.

के बाएँ हाथ में खेटक तथा पीछे के बाएँ हाथ में शङ्ख पकड़े रहती हैं। वे पद्मासन पर खड़ी हुई या महिष की पीठ अथवा सिर पर बैठती हैं। उनका वक्षःस्थल लाल वस्त्र के द्वारा ढका रहता है जो सर्प के द्वारा बँधा रहता है।[1] सुप्रभेदागम इन्हें विष्णु की छोटी प्रिय बहिन बतलाता है। ये आदि शक्ति से निकली हुई आठ भुजा वाली हैं। आठों हाथों में शङ्ख, चक्र, शूल, धनुष, बाण, खड्ग खेटक तथा पाश रहता है।[2] इनके नीलकण्ठी, क्षेमकरी, हरसिद्धि, रुद्राशदुर्गा, वनदुर्गा, अग्निदुर्गा, विन्ध्यवासिनी दुर्गा, रिपुमारिदुर्गा, ये नव रूप हैं जिनका आगम ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन हुआ है। पुराणों में नवदुर्गा रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोण्डा, चण्ड-नायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्ड-रूपा, अति चण्डिका तथा उग्रचण्डिका नाम से प्रसिद्ध हैं। वैष्णव पुराणों में दुर्गा के इन रूपों का वर्णन नहीं हुआ है।[3]

दुर्गा के रूप की देवी की प्रतिमाएँ सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय से प्राप्त होती हैं। अनेक भारतीय सिक्कों तथा मुद्राओं पर भी इन्हीं का रूप प्राप्त होता है। दक्षिण में महाबलिपुरम् में दुर्गा की एक प्रस्तर प्रतिमा प्राप्त होती है। इस प्रतिमा में विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कथित दुर्गा के कुछ अंश का प्रदर्शन हुआ है। दुर्गा देवी पद्म के आसन पर विराजमान हैं। शेष बातें तो समान हैं किन्तु भुजाओं का प्रदर्शन ठीक से नहीं हुआ है।[4] महाबलिपुरम् के वराकस्वामिन् के मन्दिर में एक और दुर्गा की प्रतिमा है। इसमें दुर्गा के आठ हाथ हैं जिनमें शक्ति, बाण, शूल, खड्ग, चन्द्रबिम्ब, खेटक तथा कपाल आदि आयुध हैं। वे महिष के सिर पर खड़ी हुई बनी हैं।[5] इसके अतिरिक्त इण्डियन म्यूजियम में कुछ दुर्गा की प्रतिमाओं का संग्रह है जिनका उल्लेख बैनर्जी महोदय ने अपने ग्रन्थ में किया है।[6]

महिषासुर मर्दिनी—यह दुर्गा का ही रूप है। इस रूप में वे महिषासुर के साथ युद्ध करती हुई प्रदर्शित की जाती हैं। विष्णुधर्मोत्तर इन्हें चामुण्डा अथवा चण्डिका नाम देता है। उसके अनुसार देवी स्वर्ण के समान वर्ण वाली, तीन नेत्र वाली युवती के रूप में हैं। वे सिंह की पीठ पर बैठती हैं। उनके बीस हाथ हैं। दाहिनी भुजाओं में शूल, खड्ग, शङ्ख, चक्र, बाण शक्ति, वज्र तथा डमरू रहता है। । बाएँ हाथों में

---

१. सौम्या पीताम्बरोपेता सर्वाभरणभूषिता।
नागेन्द्रेण स्तनं बद्ध्वा रक्तकञ्चुकधारिणी ।। अंशु० आ० आ० ३१.
२. आदिशक्तिस्समुद्भूता विष्णुप्राणानुजाशुभा ।। सुप्रभेदागम अ० १९.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० ३४२-४६.
४. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ५००.
५. वही पृ० ५००-५०१.
६. वही पृ० ५०१-५०२.

नागपाश, खेटक, परशु, अङ्कुश, धनुष, घण्टा, ध्वज, गदा, दर्पण तथा मुद्गर रहता है। असुर का महिष भाग कटा पड़ा रहता है और वास्तविक असुर उसकी गरदन से निकलता हुआ प्रदर्शित किया जाता है। देवी का सिंह उसे काटता रहता है और देवी अपना त्रिशूल उसकी गरदन में चुभोये रहती हैं। दैत्य नागपाश में बँधा रहता है और ढाल तथा तलवार दोनों हाथों में लिए रहता है। उसकी तलवार उठी रहती है—

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभासा सुरूपिणी।
त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थिता मता।
कृशमध्या विशालाक्षी चारुपीनपयोधरा।
एकवक्त्रा तु सुग्रीवा बाहुर्विंशतिसंयुता॥
शूलासिशङ्खचक्राणि बाणशक्तिपवीनपि।
अभयं डमरुं चैव छत्रिकां दक्षिणे करे॥
ऊर्ध्वादि क्रमयोगेन बिभ्रती सा सदा शुभा।
नागं पाशं तथा खेटं कुठाराङ्कुशकार्मुकम्॥
घण्टाध्वजगदादर्शं मुद्गरं वाम एव च।
तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पतितमस्तकः॥
शस्त्रोद्यतकरस्स्तब्धस्तद्ग्रीवा संभवः पुमान्।
शूलभिन्नो वमद्रक्तो रक्तभ्रूमूर्धजेक्षणः॥
सिंहेन खाद्यमानश्च पाशबद्धो गलेभृशम्।
याम्याङ्घ्राक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रयालीढगासुरे।
चण्डी चौद्यतशस्त्रेयं चाशेषरिपुनाशिनी॥[1]

इन्हें दश भुजा, तीन नेत्र, जटामुकुट, चन्द्रकलायुक्त भी प्रदर्शित किया जाता है। अतसी पुष्प के समान इनके शरीर का वर्ण रहता है। देवी उन्नत पयोधर, क्षीण कटि वाली हैं। इनके दाहिने हाथों में त्रिशूल, खड्ग, शक्ति, चक्र, धनुष तथा बाएँ हाथों में पाश, अङ्कुश, खेटक, परशु तथा घण्टी रहती है। देवी का दाहिना पैर शेर की पीठ पर और बायाँ भैंसे के शरीर को छूता हुआ प्रदर्शित किया जाता है।[2] शेष रूप विष्णुधर्मोत्तर के समान ही रहता है।

राव महोदय ने एलोरा में प्राप्त पत्थर की एक महिषमर्दिनी प्रतिमा का उल्लेख किया है। यह दस भुजा वाली देवी महिष के स्कन्ध पर त्रिशूल चुभाये हुए हैं।

१. वि० ध० ११७।१८-२५.
२. रूप० ५५।१८-२०.

विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कथित सभी आयुध उनके हाथों में हैं। देवी क्रोध की मुद्रा में हैं। पास में पड़े कटे भैंसे से दैत्य निकला है जो क्रूर दृष्टि से देवी की ओर देख रहा है। देवी का सिंह दैत्य को नोच रहा है।[१] प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर का प्रकटीकरण है। पत्थर में बड़ी सुन्दरता से बनायी गयी है। महाबलिपुरम् में प्राप्त एक दूसरी प्रतिमा का भी प्रसङ्ग राव महोदय के ग्रन्थ में प्राप्त होता है। यह प्रतिमा भी विष्णुधर्मोत्तर के कथित आकार का ही रूप है।[२] बैनर्जी महोदय ने भीटा, छम्ब, गङ्गैकोण्डचोल-पुरम्, महाबलिपुरम् एलोरा, एहोल तथा हरिपुर स्थानों में प्राप्त हुई दुर्गा की अनेक प्रतिमाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया हैं। भीटा में प्राप्त देवी की प्रतिमा केवल दो भुजा वाली है, वे महिष दैत्य से युद्ध कर रही हैं। छम्ब में प्राप्त प्रतिमा चार भुजा वाली है और देवी महिष के सिर पर खड़ी उसे त्रिशूल मार रही हैं। उदयगिरि गुफा में प्राप्त प्रतिमा ऐसी है जो दस भुजा वाली है और विष्णुधर्मोत्तर के रूप से साम्य रखती है किन्तु प्रतिमा में सिंह नहीं प्रदर्शित किया गया है। महाबलिपुरम् तथा एलोरा के अवशेष में सब वस्तुओं के साथ देवी का वाहन सिंह भी बना हुआ है।[३] सभी प्रतिमाओं में कुछ-कुछ अंश प्राप्त होते हैं। खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर में उत्तर-पूर्व की ओर की भित्ति पर महिषमर्दिनी देवी की प्रतिमा है। देवी के समीप महिष कटा हुआ पड़ा है। देवी की मुख-मुद्रा क्रुद्ध है। देवी के समीप उनका वाहन सिंह है। उनका एक चरण सिंह की पीठ पर है।[४] बादामी में प्राप्त महिषमर्दिनी की प्रतिमा में भी देवी का त्रिशूल महिष दैत्य के गले में चुभा हुआ है और एक हाथ से देवी महिष की पूँछ पकड़ कर उठाये हैं।[५]

महाकाली—यह भयानक आकार वाली देवी हैं। विष्णु की नाभि से उद्भूत कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने मधु कैटभ दैत्य को मारने के लिए इनकी स्तुति की थी। विष्णुधर्मोत्तर में ये अत्यन्त काले वर्ण की कही गयी हैं। इनके मुख में विशाल दाढ़ें हैं। इनका नेत्र विशाल तथा कटि प्रदेश पतला है। इनकी चार भुजाएँ हैं। उनमें खड्ग पात्र, सिर, खेटक धारण करती हैं। गले में कबन्धों की तथा मुण्डों की माला पहनती हैं—

> सा भिन्नाञ्जनसङ्काशा दंष्ट्राङ्कितवरानना।
> विशाललोचनानारी बभूव तनुमध्यमा ।।
> खड्गपात्रशिरः खेटैरलङ्कृत चतुर्भुजा ।
> कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरस्सृजम् ।।[६]

---

१. राव गो० ना०—ए० हि० आ० पृ० ३४५ प्ले० १०४.
२. वही प्ले० १०५.
३. बैनर्जी जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ४९७-५०४.
४. खजुराहो—पृ० १२ प्ले० ४१.
५. सरस्वती ए० के० ए० स० इण्डि० स्क० पृ० १४२ प्ले० २३ आ० १०२.
६. वि० ध० ११९।१४-१९.

पूर्वकारणागम इन्हें दस भुजा वाली तथा जल से भरे मेघ के समान वर्ण वाली बतलाता है ।[1]

राव महोदय ने अपने ग्रन्थ में मेड्यूर में प्राप्त महाकाली की प्रतिमा का उल्लेख किया है । प्रतिमा काँस्य धातु की बनी है। इसके अतिरिक्त मद्रास म्यूजियम में भी महाकाली की प्रतिमा है। दोनों प्रतिमाएँ आंशिक रूप से विष्णुधर्मोत्तर से साम्य रखती हैं । देवी के गले में मुण्डों की माला तथा कबन्ध हार है।[2] यही विष्णुधर्मोत्तर की विशेषता है । थापर महोदय ने अपने ग्रन्थ में महाकाली की एक अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा का उल्लेख किया है । प्रतिमा काँस्य की है । देवी एक ऊँचे आसन पर बैठी हैं । उनका दाहिना पैर नीचे लटक रहा है और बाँया पैर मुड़ा हुआ आसन पर है । गले में उनके कबन्ध माला है उनकी चार भुजाओं में खड्ग, खेटक, शिर है । यही आयुध विष्णुधर्मोत्तर को भी मान्य हैं । किन्तु चौथे हाथ में देवी के डमरू है । यही भिन्नता है ।[3]

सप्त मातृकाएँ—जिस समय शिव अन्धकासुर से युद्ध कर रहे थे उस समय अन्धकासुर के शरीर से जितनी रक्त की बूँदें गिरतीं उतने ही नवीन अन्धकासुर उत्पन्न हो जाते। उस समय शिव ने घबड़ा कर अपनी शक्ति छोड़ी । इसके साथ ही साथ ब्रह्मा, विष्णु, स्कन्द, इन्द्र, यम आदि देवों ने भी अपनी शक्तियाँ छोड़ी । ये सभी शक्तियाँ सप्तमातृकाओं के नाम से प्रसिद्ध हुईं जो निम्न लिखित हैं——

ब्रह्मा की शक्ति ब्राह्मी कहलायी,
विष्णु की शक्ति वैष्णवी कहलायी,
शिव की शक्ति माहेश्वरी कहलायी,
कुमार की शक्ति कौमारी कहलायी,
वराह की शक्ति वाराही कहलायी,
इन्द्र की शक्ति इन्द्राणी कहलायी तथा
यम की शक्ति चामुण्डा कहलायी ।

ब्राह्मी—ब्राह्मी ब्रह्मा के द्वारा छोड़ी हुई शक्ति है अतः उसका रूप ब्रह्मा के समान है । विष्णुधर्मोत्तर इन्हें चार मुख, तथा छः भुजाओं वाला बतलाता है । दाहिने हाथों में स्रुव, सूत्र आदि रहता है और वाएँ हाथों में वे पुस्तक तथा कुण्डी धारण करती हैं । शेष भुजाएँ अभय मुद्रा में रहती हैं——

१. पूर्व का० अ० ३२.
२. राव गो० ना० ए० हि० आ० पृ० ३५७.
३. थापर, डी० आर० आइ० इ० ब्रा० पृ० १०७ प्ले० ७०.

तत्र ब्राह्मी चतुर्वक्त्रा षड्भुजा हंससंस्थिता ।
....
वरं सूत्रं स्रुवं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात् ।
वामे तु पुस्तकं कुण्डी विभ्रती चाभयप्रदा ।[१]

ब्राह्मी का वर्ण पीला रहता है । वे सभी आभूषणों से सुसज्जित तथा मृग का उत्तरीय धारण करती हैं और हंस पर आरूढ़ रहती हैं ।[२] रूपमण्डन ग्रन्थ हंसारूढ़ ब्राह्मी के चारों हाथों में अक्षसूत्र, कमण्डलु, स्रुव और पुस्तक बतलाता है ।[३]

अंशुमद्भेदागम में वे रक्त-पद्म पर आसीन, पीताम्बर पहने, स्वर्ण के समान आभा वाली, त्रिशूल अक्षमाला आदि धारण किये हुए बतलायी गयी हैं ।[४] पूर्वकारणागम इन्हें ब्रह्मा के समान बतलाता है । शेष आकार, रूप समान है ।[५]

वैष्णवी––विष्णु के द्वारा छोड़ी हुई शक्ति वैष्णवी के नाम से प्रसिद्ध हुई । विष्णुधर्मोत्तर वैष्णवी को गरुड़ पर आरूढ़, श्याम वर्ण की तथा छः भुजा वाली प्रदर्शित करता है । दाहिने हाथों में क्रमशः गदा, पद्म तथा एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है । बाएँ हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र तथा एक हाथ वरद मुद्रा में रहता है—

वैष्णवी ताक्ष्यंगा श्यामा षड्भुजा वनमालिनी ।
वरदा गदिनी दक्षे विभ्रती चाम्बुजस्रजम् ।।
शङ्खचक्राभयान्वामे साचेयं विलसद्भुजा ।[६]

देवी पुराण इन्हें शङ्ख, गदा लिए तथा पीत वस्त्र धारण किये हुए बतलाता है ।[७] रूप-मण्डन गरुड़ पर स्थित वैष्णवी को विष्णु के सदृश बतलाता है ।[८]

माहेश्वरी––शिव की शक्ति का नाम माहेश्वरी है । इस रूप में इनका श्वेत वर्ण वाले महेश्वर से सम्बन्ध रहता है । विष्णुधर्मोत्तर में माहेश्वरी

---

१. वि० धर्मो० ११९।२८-३२.
२. पिङ्गलाभूषणोपेता मृगचर्मोत्तरीयका । वि० ध० ११९।३३.
३. ब्रह्माणी हंसमारुढा साक्षसूत्रकमण्डलुः ।।
स्रुवं तु पुस्तकं धत्ते ऊर्ध्वहस्तद्वये शुभाः ।। रूपमण्डन अ० ५५।२१.
४. अ० आ० अ० ४८.
५. पू० का० अ० ३२.
६. वि० ध० ११९।५५.
७. देवी पु० ८।१८-१९.
८. वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडोपरि संस्थिता ।
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा ।। रूपमण्डन अ० ५५।२३.

पाँच मुख तथा तीन नेत्रों वाली बतायी गयी हैं। वे वृष पर आरूढ़ रहती हैं। उनके शरीर का श्वेत वर्ण है और जटा-जूट सिर पर धारण करती हैं। छः भुजाएँ हैं। दाहिनी तीन भुजाओं में से दो में सूत्र और डमरू रहता है, एक वरद मुद्रा में रहता है। बाएँ हाथों में शूल, घण्टा धारण करती हैं और एक अभय मुद्रा में रहता है—

माहेश्वरी वृषारूढा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना।
शुक्लेन्दुभृज्जटाजूटा शुक्लासर्वसुखप्रदा ।।
षड्भुजावरदा दक्षे सूत्रं डमरुकं तथा।
शूलघण्टाभयं वामे सैव धत्ते महाभुजा ।।[१]

रूपमण्डन माहेश्वरी के चारों हाथों में कपाल, शूल, खट्वाङ्ग तथा वरद मुद्रा वाला बतलाता है।[२] अंशुमद्भेदागम शिवा को ही माहेश्वरी रूप प्रदान करता है।[३] पूर्वकारणागम माहेश्वरी को शिव के समान आभूषण धारण करने वाली बतलाता है।[४]

कौमारी—कौमारी सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं। रक्त वस्त्र धारण करती हैं। इनके तीन नेत्र तथा चार भुजाएँ हैं। दो भुजाओं में शक्ति, कुक्कट हैं तथा दो भुजाएँ वरद तथा अभय मुद्रा में रहती हैं। इनका ध्वज मयूरध्वज है और ये गूलर के वृक्ष के नीचे बैठी दिखायी जाती हैं।[५]

वराही—वराही कृष्ण वर्ण की, विशाल उदर वाली हैं। उनका मुख वराह के सदृश होता है। इनके दाहिने हाथों में दण्ड, खड्ग रहता है और एक वरद मुद्रा में रहता है। बाएँ हाथों में खेट, पाश रहता है और एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है।[६]

इन्द्राणी—इन्द्राणी स्वर्ण के समान आभा वाली, गज पर आरूढ़ तथा सहस्र नेत्र वाली हैं। दाहिने हाथ में सूत्र, वज्र तथा बाएँ हाथों में कलश पात्र रहता है। शेष दोनों हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में रहते हैं।[७]

---

१. वि० ध० ११९।५६-५७.
२. माहेश्वरी प्रकर्त्तव्या वृषभासनसंस्थिता।
कपालशूलखट्वाङ्गवरहस्ता चतुर्भुजा ।। रूपमण्डन अ० ५५।२४.
३. अ० आ० अ० ४८.
४. पू० का० अ० ३२।१८.
५. वि० ध० ११९।५८.
६. कृष्णवर्णा तु वाराही सूकरास्या महोदरी।
वरदा दण्डिनी खड्गं बिभ्रतो दक्षिणे सदा ।। वि० ध० १२२-१७.
७. ऐन्द्री सहस्रदृक्सौम्या हेमाभागजमस्थिता।
वामे तु कलशं पात्रं त्वभय तदधः करे ।। वि० ध० १२२।१५.

चामुण्डा--चामुण्डा रक्त वर्ण की विकृत मुख वाली हैं। ये प्रेतों के साथ रहती हैं तथा सर्पों के आभूषण धारण करती हैं। इनका रूप बड़ा भयानक होता है।[1] अपराजितपृच्छ ग्रन्थ चामुण्डा को शव पर आरूढ़ बतलाता है।[2]

एलोरा में सप्त मातृकाओं का एक साथ सुन्दर चित्रण हुआ है। सभी देवियों का रूप तथा आकार स्पष्ट है। वेलूर तथा कुम्भकोणम् में भी इसी प्रकार की पत्थर की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं जिनका वर्णन राव महोदय ने किया है।[3]

विष्णु के अवतार

अवतार का उद्देश्य--सृष्टि का सदैव यही नियम रहा है कि जब संसार पर किसी प्रकार का कष्ट आता है और धरती दुर्जनों के अत्याचारों से पीड़ित हो जाती है, तब विश्वरूप सर्वात्मा संसार का हित करने के लिए अपने शुद्ध सत्त्वांश से अवतरित होकर पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करते हैं--

सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः ।
सत्त्वांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥[4]

वे लीला से अवतार धारण करते हैं और अपनी योगमाया का आश्रय लेकर स्वच्छन्द लीला करते हैं। अपने को अवतार विशेष के आवरण में छिपाये हुए वे उसी के समान प्रतीत होते हैं।[5] पृथ्वी का भार उतारने के लिए वे नट के समान अनेक रूप धारण कर अन्त में इसका परित्याग कर देते हैं।[6] भक्तों की इच्छा से माया का आधार लेकर वे जो रूप धारण करते हैं वही सत्य प्रतीत होता है।[7] इस प्रकार वे मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार लेकर लोकों का पालन तथा विश्व के द्रोहियों का संहार करते हैं। अवतारों के द्वारा वे प्रत्येक

---

१. चामुण्डा प्रेतगारक्ता विकृतास्याहिभूषणा ।
दंष्ट्रोग्रा क्षीणदेहा च गर्ताक्षी भीमरूपिणी ॥
. . . .
खेटं पाशं धनुदण्डं कुठारम् चेति बिभ्रती ॥
वि० ध० १२३।८-१०.

२. शवारूढा तु चामुण्डा जङ्घे घण्टावलम्बिके ।अ० पृ० २२३.

३. राव, गो० ना० ए० इ० आ० पृ० ३५५.

४. वि० पु० ५।१।३२.

५. श्रीमद्भा० १।१।२०.

६. यथानटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो ॥ श्रीमद्भा० ८।३।६.

७. श्रीमद्भा० ३।२५।३.

युग में धर्म की रक्षा करते हैं। अतः अवतार का मुख्य उद्देश्य है धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश।[1]

भगवान् का श्रेष्ठ सत्त्वमय, योगियों द्वारा दर्शनीय सहस्र चरण, उरु, भुजा, सिर, कान, आँख तथा नासिका वाला शरीर, सहस्र किरीट, कुण्डल, केयूर तथा वस्त्रादि से प्रकाशित रहता है।[2] यही पुरुष रूप अवतारों का अक्षय कोष है। इसी के अंश से सब अवतार प्रकट होते हैं—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥[3]

अवतार की भावना विश्व के सभी धर्मों द्वारा मानी जाती है किन्तु भारत में यह भावना बहुत प्रमुख है। सभी धार्मिक सुधारक किसी न किसी दैवी शक्ति के अवतार माने गये हैं। बङ्गाल में वैष्णव धर्म के प्रचारक चैतन्य महाप्रभु विष्णु के अवतार माने जाते हैं। रामकृष्ण परमहंस की उपासना भी ईश्वर के अवतार के रूप में हुई। शङ्कराचार्य शिव के अवतार स्वीकार किये गये।[4]

यद्यपि अनेक देवों के अवतार पृथ्वी पर हुए किन्तु उन सबमें विष्णु के अवतार सर्वप्रमुख एवं सर्वप्रसिद्ध हैं। सृष्टि के पालनकर्ता के रूप में विष्णु पृथ्वी पर दैवी तथा मानवी इन दो रूपों में अवतरित हुए। ऋग्वेद में भी विष्णु त्रियात्मक देवता माने गये हैं।[5] इसी से इस क्षेत्र में विष्णु का ही प्राधान्य है।

भागवत पुराण हरि के असंख्य अवतार बतलाता है। उनकी गणना करना असम्भव है।[6] देवता, ऋषि, मनु, प्रजापति और सब प्राणी उन्हीं के अंश हैं, फिर भी अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु युग-युग में विशेष रूप धारण करते हैं, और वे उनके विशिष्ट अवतार हो जाते हैं।

---

१. इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सत्त्वम् ॥ श्रीमद्भा० ७।९।३८.
२. श्रीमद्भा० १।३।३-४.
३. श्रीमद्भा० १।३।५.
४. आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० ९३.
५. ऋ० वे० ६।४।११.
६. अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ श्रीमद्भा० १।३।२६.

अवतारों की कथा अत्यन्त अद्भुत एवं रहस्यमयी है। जादूगर एवं नट के वचन सङ्कल्पों की भाँति ईश्वर की लीला भी अनेक तर्क एवं युक्तियों द्वारा नहीं जानी जा सकती है।[1] गरुड़ पुराण का कथन है कि एक ही ईश्वर संसार की रक्षा करने के लिए समय-समय पर अनेक अवतारों को ग्रहण करते हैं।[2]

विष्णु के अवतार तीन प्रकार के कहे गये हैं १. पूर्ण, २. आवेश तथा ३. अंश। जो अवतार एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीवन भर के लिए धारण किया जाता है, वह पूर्ण अवतार है। उदाहरण के लिए राम तथा कृष्ण, जिन्होंने विष्णु के अवतार के रूप में जीवन पर्यन्त कार्य किया और कार्य की पूर्ति हो जाने पर शरीर त्याग दिया। आवेश अवतार वे होते हैं जिनमें जीवन के कुछ भाग तक उद्देश्य की पूर्ति कर दी जाती है, जैसे—परशुराम। उन्होंने अपने क्षत्रिय संहार के उद्देश्य की पूर्ति कर अपनी क्षात्र शक्ति राम को समर्पित कर दी और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। अंशावतार में भगवान का कुछ अंश मात्र अवतरित होता है। वे स्वयं नहीं अवतार लेते हैं। उदाहरणार्थ चक्र, शङ्खादि के अवतार जो पृथ्वी पर आकर जीवन धारण कर सबका हित करते हैं।[3]

शतपथ ब्राह्मण[4] में कहा गया है कि प्रजापति ब्रह्मा ने मत्स्य तथा वराह आदि अवतार धारण कर सृष्टि का हित किया। तैत्तिरीय आरण्यक[5] में ऐसा प्रसङ्ग आया है कि सौ भुजाओं वाले वराह के द्वारा जल में डूबी हुई पृथ्वी निकाली गयी। शनैः शनैः समाज की प्रवृत्ति बदली। ब्रह्मा का माहात्म्य कम होने लगा और विष्णु ही प्रधान देवता स्वीकार किये जाने लगे। विष्णु की महत्ता इतनी अधिक बढ़ गयी कि वे सभी अवतार जो ब्रह्मा के माने जाते थे, विष्णु के माने जाने लगे। यहाँ तक कि सभी धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों का सम्बन्ध इन्हीं के अवतारों से जोड़ दिया गया।

अवतारों की संख्या—यद्यपि गीता ने 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'[6] और 'सम्भवामि युगे युगे'[7] पदों के द्वारा विष्णु के अवतारों को असीमित कर दिया, फिर भी महाभारत में उनके हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, वामन तथा नृसिंह अवतारों का

---

१. श्रीमद्भा० १।३।३५-३७.
२. ग० पु० १।१।१२-१३.
३. राव० गो० नाथ० – ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १६५.
४. शत० ब्रा० ३।५।२।७.
५. वाराहेण कृष्णेन शतबाहुना उदीरिता ।। तैत्ति० आ० ६।३।५।८.
६. गीता ४।७.
७. गीता ४।८.

उल्लेख किया गया है ।[१] एक अन्य स्थल पर कृष्ण तथा बलराम, भार्गव राम, दाशरथी राम और कल्कि[२] इन्हें भी विष्णु के अवतार बतलाकर महाभारत ने दस अवतारों[३] को स्वीकार कर लिया है । वायु पुराण में दस अवतारों के अन्तर्गत हंस, यज्ञ, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, दाशरथी राम, वेदव्यास, वासुदेव कृष्ण और कल्कि को गिना गया है ।[४] इसके अतिरिक्त इसी प्रसङ्ग में त्रेतायुग का एक अवतार और बतलाया गया है । यह पाँचवाँ अवतार कहा गया किन्तु नाम का उल्लेख नहीं हुआ है । सम्भवतः यह अवतार जामदग्न्य परशुराम की ओर सङ्केत करता है, क्योंकि दाशरथी राम तो तालिका में है । यहाँ भी बुद्ध का उल्लेख नहीं हुआ है और मत्स्य, कूर्म, वराह के स्थान पर यज्ञ, दत्तात्रेय तथा वेदव्यास की गणना कर ली गयी है ।

शनैः शनैः सब ओर प्रसारित होते हुए बुद्ध धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक पुराणों के अवतारों की तालिका में बुद्ध स्वयं विष्णु के अवतार माने जाने लगे । गरुड़ पुराण में विष्णु के २२ अवतारों का वर्णन हुआ है जो कुमार, यज्ञेश, वराह, देवर्षि नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, उरुक्रम, ऋषभदेव, मत्स्य, कमठ, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम (दाशरथी), कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि हैं ।[५] इन अवतारों की गणना करने के बाद वह एक स्थल पर विष्णु के दस अवतारों के क्रम को भी स्वीकार करता है—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहोऽथ वामनः ।
रामौ रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कि तथैव च ।[६]

और साथ-साथ विष्णु के हंस अवतार का भी उल्लेख कर देता है ।[७] वराह पुराण विष्णु के दस अवतार ही स्वीकार करता है —

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।
रामौ रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश ।।[८]

---

१. महा० १२।३४९।३७.
२. महा० १२।३८९।७७-९०.
३. महा० १२।३६९।१०४.
४. वायु० पु० ९८।७१.
५. ग० पु० १।१।१३-३५.
६. ग० पु० उत्तरभाग २०।३१.
७. हंसोमत्स्यस्तथा कूर्मः पातु मां सर्वतो दिशम् ।। ग० पु० १९५।१३.
८. वराह पु० ४।२.

अग्नि[1] तथा मत्स्य[2] पुराण में विष्णु के दस अवतार कहे गये हैं। मत्स्य पुराण का कथन है कि भृगु के शाप से विष्णु को सात बार (दत्तात्रेय, मान्धाता, जामदग्न्य, दाशरथी राम, वेद व्यास, बुद्ध तथा कल्कि[3]) पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा, क्योंकि उन्होंने शुक्र की माता का वध कर दिया था। इन सात रूपों में दत्तात्रेय, मान्धाता और वेदव्यास अवतार मत्स्य, कूर्म, वराह और बलराम अथवा कृष्ण के स्थान पर स्वीकार किये गये हैं। विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है—

मत्स्यकूर्मवराहाश्वसिंहरूपादिभिः स्थितम्।[4]

अतः स्पष्ट है कि यह पुराण मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंहादि मुख्य अवतारों के साथ हयग्रीव की भी गणना कर लेता है। श्रीमद्भागवत में विष्णु के अवतारों का वर्णन तीन स्थलों[5] पर किया गया है। प्रथम स्थल[6] पर विष्णु के २२ अवतारों का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः—

१. सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदि कुमार ब्राह्मण
२. शङ्कर अथवा वराह रूप
३. देवर्षि नारद
४. नरनारायण
५. कपिल
६. दत्तात्रेय
७. यज्ञ
८. ऋषभदेव
९. पृथु
१०. मत्स्य
११. कच्छप
१२. धन्वन्तरि
१३. मोहिनी रूप
१४. नृसिंह
१५. वामन
१६. परशुराम
१७. पराशर
१८. राम (दाशरथी)
१९. बलराम
२०. कृष्ण
२१. बुद्ध
२२. कल्किरूप

---

१. अग्नि पु० ४९।५-१७.
२. मत्स्य पु० ४७।४६-५०.
३. मत्स्य पु० २३८।१७-३५.
४. वि० पु० ५।१७।१०.
५. श्रीमद्भा० १।३।६-२२, २।७।१, १२।४।३.
६. श्रीमद्भा० १।३।१६-२२.

दूसरे स्थल[1] पर अवतारों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है –

१.	वराह	१३.	वामन
२.	यज्ञ	१४.	त्रिविक्रम
३.	कपिल	१५.	हंस
४.	दत्तात्रेय	१६.	धन्वन्तरि
५.	सनत्कुमार	१७.	परशुराम
६.	नर नारायण	१८.	राम (दाशरथी)
७.	पृथु	१९.	बलराम
८.	ऋषमदेव	२०.	कृष्ण
९.	हयग्रीव	२१.	व्यासदेव
१०.	मत्स्य	२२.	बुद्ध
११.	कच्छप	२३.	कल्कि
१२.	नृसिंह		

किन्तु तीसरे स्थल पर विष्णु के महत्त्वपूर्ण अवतारों में मत्स्य, हयशीर्ष, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम (दाशरथी), बुद्ध तथा कल्कि इन दस अवतारों की गणना हुई है और इन्हीं के बीच में वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार को भी लिया गया है[2] एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि विष्णु ने मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वामन, हंस, दाशरथी राम, परशुराम तथा वामनादि अवतार धारण कर तीनों लोकों की रक्षा की –

मत्स्याश्वकच्छप नृसिंहवराहहंस–राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥[3]

वैष्णव पुराणों ने विष्णु के अवतारों के मध्य बुद्ध तथा जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की गणना कर बौद्ध तथा जैन धर्म के महत्त्व को कम कर लिया। दोनों

---

१. श्रीमद्भा० २।७।१-४०
२. श्रीमद्भा० १०।४०।१७-२२.
३. श्रीमद्भा० १०।२।४०.

धर्मों के प्रमुख प्रवर्तकों को विष्णु का अवतार माना जाने लगा। वैसे तो विष्णु के असंख्य अवतारों की गणना करना असम्भव है फिर भी अन्त में इन सभी प्रसङ्गों से स्पष्ट हो जाता है कि वैष्णव पुराणों को मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन (त्रिविक्रम) भार्गव राम, दाशरथी राम, कृष्ण और बलराम, बुद्ध तथा कल्कि–ये दश अवतार ही मुख्यतः मान्य हैं और अन्य अवतार साधारण हैं। दशावतार का यही क्रम पुसालकर[1] हाप्किन्स[2] आदि विद्वानों को भी मान्य है।

विष्णु के दशावतारों को रूप के अनुसार तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है —

१. पशु अवतार–मत्स्य, कूर्म, वराह,

२. मानवी अवतार–वामन, राम (दाशरथी), राम (भार्गव), कृष्ण-बलराम, बुद्ध, कल्कि तथा

३. मिश्रित अवतार—नृसिंह।

पुसालकर महोदय[3] ने इन दश अवतारों को तीन भागों में विभक्त किया है–

१. धार्मिक अवतार,

२. ऐतिहासिक अवतार तथा

३. भविष्य के अवतार।

धार्मिक अवतारों के अन्तर्गत मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह तथा वामन ये पाँच अवतार स्वीकार किये गये हैं। परशुराम, राम, कृष्ण और बुद्ध ये चार अवतार ऐतिहासिक तथा कल्कि भविष्य में होने वाला अवतार है।[4] पुराणों में प्राप्त वराह, नृसिंह तथा वामन अवतार के प्रसङ्ग वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होते हैं। अतः इन अवतारों को दिव्य तथा मानुष इन दो भागों में और विभाजित किया जा सकता है।[5] मत्स्य[6] तथा वायु पुराण[7] के आधार पर पुसालकर महोदय ने यह विभाजन किया है।

उक्त विद्वान् ने दशावतार का सम्बन्ध मानव के क्रमिक विकास से बतलाया है। उनका कथन है कि मत्स्यावतार मानव की प्रारम्भिक अवस्था का, कूर्म तथा

---

१. पुसालकर–स्ट० इ० दि० एवि० ए० पु० पृ० १०.
२. हॉप्किन्स–एपि० माइ० पृ० २१७.
३. पुसालकर–स्ट० इ० दि० ए० ए० पु० पृ० ११.
४ वही पृ० ११.
५ वही पृ० ११-१२.
६. मत्स्य पु० ४७।२, २४१।४७.
७. वायु पु० ९८।७१-८८.

वराह अर्धविकसित अवस्था का द्योतक है । नृसिंह तथा वामन अवतार गुफाओं तथा जङ्गलों में रहने वाली जङ्गली, असभ्य एवं अर्धसभ्य जातियों का प्रतीक है । परशुराम अवतार यत्र-तत्र विचरण करने वाली खानाबदोशी एवं शिकारी जातियों का प्रतीक है । राम तथा कृष्ण नगर में रहने वाली सभ्य एवं पूर्ण विकसित अवस्था को प्रकट करते हैं ।[1]

पुसालकर महोदय का कथन वैज्ञानिक दृष्टि से भी सत्य है । जैसा कि पूर्व में कहा गया है, इन दशावतारों से सृष्टि की उत्पत्ति और विकास के क्रम का ज्ञान होता है ।

सृष्टि में सर्वप्रथम जल उत्पन्न हुआ और जल में मत्स्य, कच्छपादि जलचर हुए । विष्णु के मत्स्य, कच्छप अवतार उसी जलमग्ना सृष्टि को व्यक्त करते हैं । जल के मध्य से पृथ्वी निकली और उस पर घास-फूस तथा अनेक पशु उत्पन्न हुए जिसमें वराह, सिंह आदि हैं । शनैः शनैः मानव सत्ता का आविर्भाव हुआ किन्तु उनकी प्रवृत्ति पाशवी एवं हिंसक थी । विष्णु का नृसिंह अवतार मानवी तथा पाशवी प्रवृत्ति का सम्मिश्रण है । मनुष्य में शीघ्र ही चेतना जागृत हुई । वह वन में रहकर जङ्गली जीवों की हिंसा कर उदर पूर्ति करता और युद्ध तथा वध द्वारा अपना अधिकार स्थापित करता था । वामन तथा परशुराम अवतार इन्हीं रूपों को प्रकट करते हैं । तत्पश्चात् व्यक्तियों का विकास हुआ, वे पूर्णतः सभ्य होकर सुसंस्कृत समाज में रहने लगे । राम और कृष्ण उसी जीवन के उदाहरण हैं ।

दशावतारों में अधिकांशतः ऐसे अवतार हैं जो किसी न किसी पुराण के नायक हैं । उदाहरणार्थ मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नृसिंह, इन सभी का अपना-अपना पृथक् पुराण है । यद्यपि राम रामायण के तथा कृष्ण महाभारत के नेता हैं फिर भी राम, कृष्ण तथा बलदेव का विष्णु तथा भागवत पुराणों में विस्तृत वर्णन हुआ है ।

दशावतार

मत्स्य—मत्स्यावतार का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में हुआ है ।[2] महाभारत में विस्तार के साथ इस अवतार की कथा वर्णित है, किन्तु मत्स्य अवतार विष्णु का न मानकर ब्रह्मा का माना गया है । मत्स्य भगवान् वैवस्वत मनु से कहते हैं कि मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ और तुम्हें बचाने के लिए यह अवतार लिया है ।[3] किन्तु वैष्णव पुराणों का इस विषय में भिन्न मत है । भागवत पुराण का कथन है कि

१. पुसालकर —स्ट० इ० दि० ए० ए० पु० पृ० १२.
२. शत० ब्रा० १।८.
३. अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा ····· महा० वन प० १२।९७.

चाक्षुष मन्वन्तर के अन्त में सम्पूर्ण त्रिलोक के समुद्र में डूब जाने पर विष्णु ने मत्स्य अवतार धारण किया और पृथ्वी रूपी नौका पर अगले मन्वन्तर के स्वामी वैवस्वत मनु को विठाकर उनकी रक्षा की।[1] ब्रह्माजी के मुख से प्रलय जल में गिरे हुए वेदों को लेकर वहीं विचरण करते रहे।[2] सम्पूर्ण मत्स्य पुराण मत्स्य भगवान् का ही यशोगान करता है।

एक दिन स्नान करते समय वैवस्वत मनु की अञ्जलि में एक छोटी मछली आ गयी। उसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर मनु ने उसे वहाँ से उठाकर जल के पात्र में डाल दिया। धीरे-धीरे मछली बढ़ने लगी और मनु उसे आकार के अनुसार बड़े स्थान में रखने लगे। एक ही दिन में वह मछली बढ़कर चार लाख कोश के विस्तार वाला महामत्स्य बन गयी। तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। वहाँ डालते समय महामत्स्य मनु को आने वाले प्रलय के विषय में उपदेश देकर अन्तर्ध्यान् हो गये। शीघ्र ही प्रलय का समय आया। मनु उन्हीं का स्मरण कर एक नौका पर धान्य, अन्यं बीज तथा सप्तर्षियों के साथ आरूढ़ हो गये। सप्तर्षियों का तेज उस अन्धकार में प्रकाश कर रहा था।[3] इसी समय स्वर्ण के समान दैदीप्यमान शरीर वाले मत्स्य भगवान् उपस्थित हुए। उनके सिर पर एक विशाल शृङ्ग था और उनके शरीर का विस्तार चार लाख योजन था। वासुकि नाग के द्वारा पृथ्वी रूपी नौका महामत्स्य के सींग से बाँध दी गयी। उस नौका को खींचते हुए महामत्स्य प्रलय समुद्र में विचरण करते रहे। इसी समय मनु को उन्होंने आत्मज्ञान का उपदेश दिया और अन्त में ब्रह्मा के मुख से गिरे हुए वेदों को लेकर भागने वाले हयग्रीव असुर को मारकर वेद ब्रह्मा को दे दिये।[4] पूर्व में ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय के समय जब ब्रह्मा ने सोने की इच्छा की थी उस समय उनके मुख से गिरे हुए

---

१. रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम्॥
श्रीमद्भा० १।३।१५.

२. मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः
क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः।
विस्रंसितानुरुभये सलिलेमुखान्मे
आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान्॥ श्रीमद्भा० २।७।१२.

३. श्रीमद्भा० ८।२४।४०–४४.

४. सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे।
एकशृङ्गधरोमत्स्यो हैमो नियुतयोजनः॥
निबध्यनावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणापुरा।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनः॥
श्रीमद्भा० ८।२४–४५–४६.

वेदों को लेकर यह असुर भाग गया था ।[1] उसे मारने के लिए ही विष्णु ने जलचर मत्स्य का यह प्रथम अवतार धारण किया--

अवतारकथामाद्यांमायामत्स्यविडम्बनम् ।।[2]

इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं । हॉप्किन्स महोदय मत्स्यावतार ब्रह्मा को ही मानते हैं ।[3] किन्तु कैनेडी महोदय[4] श्रीमद्भागवत द्वारा कथित मत से सहमत हैं। उनका कथन है कि मत्स्यरूपधारी विष्णु ने हयग्रीव से वेद छीनकर ब्रह्मा को दिये और मनु को मत्स्य पुराण सुनाया ।

विष्णुधर्मोत्तर शृङ्गयुक्त मत्स्य के रूप को स्वीकार करता है--

शृङ्गीमत्स्यस्तु कर्त्तव्यो देवदेवो जनार्दनः ।।[5]

किन्तु शिल्प ग्रन्थों द्वारा विष्णु के मत्स्य रूप को दो प्रकार से बनाने का आदेश दिया है--

१. पूर्णमत्स्य रूप तथा २. अर्धमत्स्य रूप

पूर्ण मत्स्य रूप में पूरा शरीर मत्स्य के समान बनाया जाता है उसके सिर पर एक सींग होता है ।[6] अर्धमत्स्य रूप में कटि से नीचे का भाग मत्स्य के समान बनता है, किन्तु ऊपर का आधा भाग मनुष्य के आकार का होता है । विष्णु की चार भुजाएँ होती हैं । पीछे की दोनों भुजाओं में शङ्ख और चक्र रहता है । आगे की दोनों भुजाएँ वरद तथा अभय मुद्रा में रहती हैं । सिर पर किरीट मुकुट शोभित रहता है और अङ्गों पर विष्णु के द्वारा धारण किये जाने वाले सभी आभूषण शोभित रहते हैं ऐसा मेरुतन्त्र ग्रन्थ का कथन है ।[7]

राव महोदय ने गढ़वा नामक स्थान से प्राप्त मत्स्य प्रतिमा का उल्लेख किया है । प्रतिमा में आधा शरीर मनुष्य के आकार का है । प्रतिमा चार भुजा वाली है । पीछे के हाथों में शङ्ख चक्र है और आगे के हाथ अभय एवं वरद मुद्रा में हैं।[8] भट्टाचार्य महोदय ने एक पूर्ण मत्स्य तथा एक अर्धमत्स्य की प्रतिमा का उल्लेख

---

१. श्रीमद्भा० ८।२४-४-९.
२. श्रीमद्भा० ८।२४।१.
३. हॉप्किन्स--ए० माइ० पृ० २१८.
४. कैनेडी--हिन्दू माइ० पृ० ४३२.
५. वि० ध० ६५।५९.
६. मत्स्यावतारिणं देवं मत्स्याकारं प्रकल्पयेत् ।। वि० ध० ८५।६०.
७. मेरुतन्त्र पृ० १२७.
८. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१८.

किया है। पूर्ण मत्स्य के सिर पर एक ऊँचा श्रृङ्ग है और अर्धमत्स्य प्रतिमा चार भुजा वाली है। सिर पर मुकुट है और ऊपर का शरीर आभूषणों से सुसज्जित है।[1] काले पत्थर की बनी हुई ३ फी० ऊँची एक मत्स्य प्रतिमा ढाका जिले में व्रजयोगिनी स्थान के समीप प्राप्त हुई और अब वहाँ के काली के मन्दिर की दीवाल में स्थापित है। इसमें विष्णु अर्ध मत्स्य के रूप में हैं। उनके दोनों ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती हैं। विष्णु की चार भुजाएँ हैं जिनमें क्रमशः पद्म, चक्र, गदा और शङ्ख हैं। प्रतिमा अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक है।[2]

कच्छप—शतपथ ब्राह्मण में यह अवतार ब्रह्मा का माना गया है। उसके अनुसार प्रजापति ने कच्छप अवतार धारण कर सब की रक्षा की थी।[3] परन्तु अन्यत्र इसे विष्णु का ही अवतार माना गया है। भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि असुरों के द्वारा परास्त कर दिये जाने पर श्रीहीन इन्द्र सभी देवों के साथ ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा उन सब को साथ लेकर बैकुण्ठधाम पहुँचे और विष्णु की स्तुति करने लगे। भगवान् ने प्रकट होकर समुद्र में औषधियाँ डालकर मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की नेती बनाकर समुद्र मथने की आज्ञा दी। जिससे वे सब उससे निकले हुए अमृत को पीकर अमर एवं शोभायुक्त हो सकें।[4] सब वस्तुओं के उपस्थित हो जाने पर मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया। मन्दराचल पर्वत इतना भारी था कि कोई उसका भार न सह सका और कोई आधार न होने के कारण वह समुद्र में धँसने लगा।[5] मन्दराचल को नीचे धँसता हुआ देखकर सभी देव तथा असुर बड़े व्याकुल हो गये। विष्णु देवों को दुखी देखकर उनका विघ्न हटाने के लिए उपाय सोचने लगे। उसी क्षण एक अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छप का रूप धारण कर वे समुद्र के जल में प्रविष्ट हो गये और नीचे जाकर मन्दराचल को उठा लिया।[6] मन्दराचल को ऊपर उठा हुआ देखकर देवता तथा असुर बड़े प्रसन्न हुए और पुनः मन्थन करने लगे। भगवान् कच्छप की पीठ जम्बूद्वीप के समान एक लाख योजन फैली हुई थी।[7] जब अपने पराक्रम के अनुसार देवों एवं असुरों ने पुनः मन्थन का कार्य प्रारम्भ किया तो

---

१. भट्टाचार्य—इण्डि० इमे० पृ० १९.
२. आइ० आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० १०५.
३. शत० ब्रा० ३।५।२।१, ७।४।३।५.
४. श्रीमद्भाग० ८।६।२१–२३.
५. मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत्।
ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात् पाण्डुनन्दन ।। श्रीमद्भा० ८।७।६.
६. कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्,
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ।। श्रीमद्भा० ८।७।८.
७. दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन्,
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ।। श्रीमद्भा० ८।७।१०.

वह पर्वत कच्छप की पीठ पर नाचने लगा। अपनी पीठ पर उस पर्वत का घूमना इन्हें ऐसा लगता था मानो उनकी पीठ को कोई खुजला रहा हो—

विभ्रत् तदावर्तनमादिकच्छपो, मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥[1]

इसके साथ ही साथ सहस्रबाहु भगवान् अपने हाथों से उसे दबाकर पर्वत के ऊपर अलक्षित रूप से स्थित हो गये—

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्यं आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ॥[2]

विष्णु के कूर्मावतार को भी दो प्रकार से बनाने का आदेश दिया गया है–[3]

१. पूर्ण कूर्मरूप तथा

२. अर्ध कूर्म रूप।

"कूर्मावतारिणं देवं कमठाकृतिमालिखत्"[4] के अनुसार पूरा रूप कूर्म के आकार का बनाया जाता है। इसी रूप का वैष्णव पुराणों[5] में वर्णन हुआ है। अर्ध कूर्म रूप में नीचे का आधा भाग कछुए के समान होता है और ऊपर का भाग मनुष्य के समान तथा चार भुजायुक्त होता है। चारों भुजाओं में से पीछे की दोनों भुजाओं में शङ्ख, चक्र रहता है और आगे की दोनों भुजाएँ अभय तथा वरद मुद्रा में रहती हैं। पूर्वोक्त पूर्ण कूर्म रूप की प्रतिमाएँ बहुत कम प्राप्त होती हैं। सागर को मथते समय कछुए की पीठ पर घूमता हुआ मन्दराचल कला के अन्तर्गत प्रदर्शित किया गया है।

वराह—ऋग्वेद में वराह रूप का उल्लेख हुआ है।[6] तैत्तिरीय आरण्यक का कथन है कि जल में डूबी हुई पृथ्वी को सौ भुजाओं वाले शूकर ने निकाला।[7] रामायण में पृथ्वी को उठाने वाला वराह रूप ब्रह्मा का माना गया है।[8] किन्तु महाभारत में कहा गया है कि संसार का हित करने[9] के लिए विष्णु ने वराह रूप

---

१. श्रीमद्भा० ८।७।१०.
२. श्रीमद्भा० ८।७।१२.
३. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१९.
४. वि० ध० १०६।९२.
५. श्रीमद्भा० ८।७।१०, कूर्ममावाहयिष्यामिधृतमन्दरपर्वतम्। वि० ध० १०६।९४.
६. ऋ० वे० १।६१।७.
७. तैत्तिरीय० आ० ६।३।५।२.
८. वा० रामा० ३।४५।१३.
९. वाराहं वपुमाश्रित्य जगदर्थे समुद्धृता ॥ महा० वन० १०२।३२.

धारण कर हिरण्याक्ष का वध किया।[१] रसातल में धँसी हुई पृथ्वी का पुनः उद्धार करने के लिए वे इस रूप में अवतरित हुए।[२] प्रलय के समय जल में डूबी हुई पृथ्वी को निकालने की चिन्ता में लगे हुए ब्रह्माजी के नासा छिद्र से अँगूठे के बराबर का एक वराह शिशु निकल पड़ा। उनके देखते-देखते वह शिशु आकाश में स्थित हो गया और उसका आकार हाथी के समान हो गया--

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ ।
वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ।।
तस्याभिपश्यतः स्वस्थः क्षणेन किल भारत ।
गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ।।[३]

इस वराह रूप को देखकर सभी मरीचि, सनकादि ऋषिगण चकित हो गये। वे यह न समझ पाये कि वह कैसे उत्पन्न होकर इतना विशाल हो गया। उसी क्षण भगवान् वराह पर्वताकार होकर अ यन्त भीषण स्वर में गरजने लगे। उनकी गर्जना की ध्वनि सभी दिशाओं में भर गयी। सभी लोक उनकी स्तुति करने लगे।[४] मुनीश्वरों की स्तुति से प्रसन्न होकर वराह भगवान् एक बार फिर गरजे और गजराज की भाँति लीला करते हुए जल में घुसे।[५] आकाश से पूँछ उठाकर बड़ी जोर से उछले और बालों को फटकार कर खुरों के आघात से बादलों को विदीर्ण करने लगे। भगवान् वराह का शरीर अत्यन्त कठोर था, त्वचा पर कड़े बाल थे, सफेद दाढ़ें थीं और दोनों आँखों से तेज निकल रहा था। इस प्रकार की शोभा धारण कर वे प्रलय समुद्र में यत्र-तत्र स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने लगे--

उत्क्षिप्तबालः खचरः कठोरः
सटाविधुन्वन् खररोमशत्वक् ।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्रईक्षा-
ज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ।।[६]

---

१. वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः ।। महा० वन० १२६।१२.
२. श्रीमद्भा० १।३।७.
३. श्रीमद्भा० ३।१३।१८-१९.
४. श्रीमद्भा० ३।१३।२३-२५.
५. विनद्यभयो विबुधोदयाय,
गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ।। श्रीमद्भा० ३।१३।२६.
६. श्रीमद्भा० ३।१३।२७.

यज्ञ रूप होने पर भी वराह रूप धारण करने के कारण वे अपनी नाक से सूँघ-सूँघ कर इधर-उधर चारों ओर पृथ्वी की खोज कर रहे थे । अत्यन्त कठोर दाढ़ें होने के कारण वे मुनिजनों का ध्यान रखते हुए विचरण कर रहे थे ।[१] बाण के समान पैने खुरों से जल को चीरते हुए अपार जलराशि के पार पहुँच कर उन्होंने रसातल में धँसी हुई पृथ्वी को देखा । वे शीघ्र ही अपनी दाढ़ों पर पृथ्वी को उठाकर रसातल से ऊपर आने लगे—

> खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽऽप
> उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।
> ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे
> यां जीवधानीं स्वमभ्यधत्त ॥
> स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
> स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।[२]

हिरण्याक्ष भी भगवान् का पता लगाता हुआ वहीं पहुँच गया और वराह की लाल-लाल आँखों से निकलते हुए तेज को देखकर वह भयभीत होकर जोर से हँसने लगा ।[३] पीले बाल तथा तीक्ष्ण दाढ़ों वाले दैत्य ने उनको अनेक दुर्वचन कहे और पृथ्वी को छुड़ा लेने के लिए पीछा करने लगा ।[४] वराह भगवान् ने शीघ्र ही पृथ्वी को लाकर व्यवहार योग्य स्थान में रखकर उसमें अपनी आधार शक्ति का सञ्चार किया । सब देव प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे । इसी समय सोने के आभूषण, अद्भुत कवच तथा भारी गदा लेकर हिरण्याक्ष वहाँ आ पहुँचा और उन पर गदा प्रहार करने लगा ।[५] बड़ी देर तक दोनों में द्वन्द्व युद्ध चलता रहा अन्त में वराह के चरण

---

१. घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्
क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ॥ श्रीमद्भा० ३।१३।२८.

२. श्रीमद्भा० ३।१३।३०—३१.

३. ददर्श तत्राभिजितं धराधरं
प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया
जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥ श्रीमद्भा० ३।१८।२.

४. तं निस्सरन्तं सलिलादनुद्रुतो
हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः ।
करालदंष्ट्रोऽशनिनिस्वनोऽब्रवीद्
गतह्रियां किं त्वसतां विगर्हितम् ॥ श्रीमद्भा० ३।१८।७.

५. श्रीमद्भा० ३।१८।९—१४.

प्रहार से शाप वश दैत्य के रूप में अवतरित हुए उनके प्रिय पार्षद ने शरीर त्याग दिया।[१]

विष्णु पुराण में वराह को शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाला, कमल के समान नेत्र वाला,[२] कमल दल के समान श्याम तथा नीलाचल के सदृश विशालकाय बड़े-बड़े खुरों वाला कहा गया है,[३] इस रूप में वे समस्त यज्ञों के अधिपति तथा शङ्ख, चक्रादि धारी हैं। यज्ञ का यूप उनकी दाढ़ें हैं। उनके चारों चरणों में चारों वेद तथा दाँतों में यज्ञ विद्यमान हैं। हुताशन उनकी जिह्वा, तथा कुशाएँ, रोमावली, सबका आधारभूत पर ब्रह्म सिर है। वैष्णव सूक्त सटा कलाप हैं। स्रुक तुण्ड (थूथनी) है। धीर, गम्भीर शब्द यजमान गृह, सत्र शरीर की संधियाँ हैं। इष्ट (श्रोत) और पूर्व (स्मार्त) धर्म, यज्ञ-पुरुष के कान हैं। वे सम्पूर्ण विश्व के परमेश्वर हैं।[४] आदि वराह की दाढ़ों पर रखी हुई पृथ्वी, कमल वन को रौंदते हुए गजराज के दाँतों में कीचड़ से सने हुए कमल के पत्ते के समान प्रतीत हो रही थी—

दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद्
भूमण्डलं नाथ विभ्राव्यते ते।
विगाहतः पद्मवनं विलग्नं
सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम्॥[५]

वराह के जो नृवराह अथवा भूवराह, यज्ञ वराह तथा प्रलय वराह ये तीन रूप कहे गये हैं[६] इसमें से उपर्युक्त रूप यज्ञ वराह का है।

विष्णुधर्मोत्तरम् में वराह की प्रतिमा को अनेक रूपों में बनाने का आदेश दिया गया है। प्रथम तो वराह की मूर्ति शेषनाग सहित बनना चाहिए। शेषनाग की चार भुजाओं में से ऊपर के हाथों में हल तथा गदा रहती है और शेष दो हाथ अञ्जलि मुद्रा में रहते हैं। शेष के फण रत्नजटित होते हैं और आँखें विस्मय से भरी हुई पृथ्वी की ओर दृष्टि डालती हुई दिखायी जाती हैं। ऐसे शेष के

---

१. श्रीमद्भा० ३।१९।३०–३१.
२. वि० पु० १।४।१२.
३. ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया
महावराहः स्फुटपद्मलोचनः।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः
समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥ वि० पु० १।४।२८.
४. वि० पु० १।४।३१।३५.
५. वि० पु० १।४।३६.
६. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १५६.

पीछे भगवान् विराजमान रहते हैं ।[1] विष्णु चार भुजा वाले तथा कभी दो भुजा वाले रहते हैं । चार भुजा वाले रहने पर वे अपने तीन हाथों में पद्म, चक्र तथा गदा धारण करते हैं और एक बाएँ हाथ की अरत्नी पर पृथ्वी देवी एक स्त्री के रूप में विराजमान रहती हैं। वे अपने दोनों हाथों से भगवान् को नमस्कार करती हुई दिखायी जाती हैं ।[2] एक अन्य प्रकार से भी इस रूप का प्रदर्शन किया जा सकता है। इसमें हिरण्याक्ष भगवान् वराह की ओर त्रिशूल ताने रहता है और भगवान् अपने चक्र से उसका सिर काटने को उद्यत दिखाये जाते हैं ।[3] पृथ्वी को धारण करने के कार्य में भी वे दो प्रकार से प्रदर्शित किये जा सकते हैं।[4]

१. सम्पूर्ण शरीर मनुष्य की भाँति होता है, मुख केवल वराह की भाँति होता है और वे क्रोध से भरे हुए सभी दानवों के मध्य में स्थित रहते हैं ।

२. सम्पूर्ण शरीर वराह के समान चित्रित किया जाता है। इस रूप का उल्लेख श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण में हुआ है। नृवराह दो भुजावाले हैं, दोनों हाथों में पृथ्वी को धारण किये रहते हैं और कपिल के समान ध्यानावस्थित मुद्रा में रहते हैं—

नृवराहोऽथवा कार्यो ध्याने कपिलवत्स्थितः ।
द्विभुजस्त्वथ वा कार्यः पिण्डनिर्वहणोद्यतः ।।[5]

विष्णुधर्मोत्तर नृवराह की एक और प्रकार की प्रतिमा का उल्लेख करता है । वे वलशाली, अञ्जनसमूह के समान श्याम, सूर्य के समान तेजपूर्ण अपने भयङ्कर रूप से

---

१. शेषश्चतुर्भुजः कार्यश्चारुरत्नफणान्वितः ।।
....
आश्चर्योत्फुल्लनयनो देवीवीक्षणतत्परः ।
कर्त्तव्यो सीरमुसलौ करयोस्तस्य यादवः ।।
सर्पभूषश्च कर्त्तव्यस्तथैव रचिताञ्जलिः ।
...संस्थानस्तत्पृष्ठे भगवान्भवते ।। वि० ध० ७९।२–४.
२. वि० ध० ७९।५–६.
३. हिरण्याक्षशिरच्छेदश्चक्रोद्यतकरोऽथ वा ।
शूलोद्यतहिरण्याक्ष सम्मुखो भगवान्भवेत् ।। वि० ध० ७९।७.
४. समग्रकोडरूपो वा बहुदानवमध्यगः ।
नृवराहो वराहो वा कर्त्तव्यः क्ष्माविधारणे ।। वि० ध० ७९।१०.
५. वि० ध० ७९।९.

दैत्य को भयभीत करने वाले हैं।[१] उनके चरण-कमल शेष के फण पर विराजमान रहते हैं। शङ्खनाद से वे दैत्य को भयभीत करते हैं। चन्द्रमा की कला के समान श्वेत दाढ़ें आगे दिखलायी पड़ती हैं। बालेन्दु के समान उनकी श्वेत दाढ़ों पर बैठी पृथ्वी विस्मय तथा प्रसन्नता से भरे नेत्रों से उनकी ओर देखती रहती हैं——

शेषाभभोगविन्यस्तमहाचरणपङ्कज ॥
शङ्खनादोद्भवत्राहि नियन्तासुरनायकम् ।
....

शशाङ्क लेखादंष्ट्राग्रविभासितजगत्रय ।
विस्मयोत्फुल्लनयनभूमिवीक्षितविग्रह ॥
बालेन्दुतुल्यदंष्ट्राग्र लीलोद्धृतवसुन्धर ।[२]

वराह अवतार में भू वराह को 'नराङ्गो वाथ कर्त्तव्यो भूवराहो गदादिमृत्'[३] के अनुसार दो प्रकार का वनाया जा सकता है——

१. पूरा शरीर वराह रूप में तथा

२. पूरा शरीर मनुष्य का और मुख केवल वराह का।

विष्णु तथा भागवत पुराण द्वारा जिस रूप का चित्रण हुआ है वह पूर्ण वराह रूप है और उसकी अनेक प्रतिमाएँ उत्तरी भारत में प्राप्त होती हैं। राव महोदय ने कुछ ऐसी वराह की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है जिसमें वराह के शरीर में छोटी-छोटी मनुष्यों की प्रतिमाएँ बनी हैं और पृथ्वी देवी उनकी एक दाढ़ को पकड़े हुए हैं।[४] ये प्रतिमाएँ वैष्णव पुराणों में वर्णित प्रसङ्ग का प्रत्यक्ष रूप हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है कि वराह के रोमों में अनेक मुनिजनों का निवास रहता है। जिस समय वराह पृथ्वी को लेकर बाहर निकले और उन्होंने अपने शरीर को कँपाया उस समय उनकी रोमावली में स्थित मुनिजन उनकी स्तुति करने लगे——

---

१. भिन्नञ्जनचयश्याम लीलोद्धृतवसुन्धर ॥
अनैश्वर्यमहामोहतमोनाशनभास्करम् ।
भक्तमुष्टमवत्रासनिहितासुरनायकम् ।
आगच्छ नृवराहेह हिरण्याक्षविनाशन ॥
वि० ध० १०६।४६-४८.

२. वि० ध० १०६।४८-५१.

३. वि० ध० ७९।१०.

४. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १५८.

विधुन्वतो वेदमयं शरीरं
रोमान्तरस्था मुनयः स्तुवन्ति ।।[१]

इसके अतिरिक्त वराहदेव की दाढ़ पर रखी हुई पृथ्वी गजराज के दाँतों में लगे हुए कमल पत्र के समान प्रतीत हो रही थी ।[२] उदयगिरि की गुफा संख्या चार में वराह की प्रतिमा प्राप्त होती है । वराह की दाढ़ पर पृथ्वी एक सुन्दर स्त्री के रूप में बैठी है। बैनर्जी महोदय ने इसे अत्यन्त सुन्दर, भव्य एवं आकर्षक प्रतिमा बताया है ।[३] बादामी की गुफा में भी बिल्कुल इसी प्रकार का प्रस्तुतीकरण हुआ है, किन्तु यहाँ की प्रतिमा में उदयगिरि की भाँति पृथ्वी वराह की दाढ़ पर नहीं है वरन् वे अपने दोनों हाथों से पृथ्वी को पकड़े हैं और बड़े ध्यान से वराह पृथ्वी की ओर देख रहे हैं ।[४] इस प्रतिमा में वराह का पृथ्वी की ओर ध्यान से देखना विष्णुधर्मोत्तर के "द्विभुजस्त्वथ वा कार्यः पिण्डनिर्वहणोद्यतः[५]" प्रसङ्ग का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसके अतिरिक्त महाबलिपुरम्,[६] बादामी,[७] मध्यप्रदेश में रायपुर, नागलपुरम्,[८] मेवाड़ में जोधपुर में फलौदी नामक स्थान में[९] वराह की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं किन्तु वैष्णव पुराण के प्रसङ्गों से उनमें भिन्नता है । बादामी की तथा जोधपुर जिले में फलोदी नामक स्थल में प्राप्त प्रतिमा में पृथ्वी वराह के दाहिने हाथ पर रखी है। कलकत्ता म्यूजियम में जो वराह की प्रतिमा है उसमें पृथ्वी वराह की दाढ़ पर रखी है ।[१०]

नृसिंह—हिरण्यकशिपु का वध करने तथा प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए विष्णु ने नृसिंह अवतार लिया । हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से यह वरदान माँगा था कि वह किसी प्राणी से, आकाश, पृथ्वी आदि पर कहीं भी, किसी शस्त्र से दिन अथवा रात्रि

---

१. वि० पु० १।४।२६.
२. ततः समुत्क्षिप्य धरांस्वदंष्ट्रया । वि० पु० १।४३६.
दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद्भूर्मण्डलं नाथविभाव्यते ते ।
. . . . सरोजिनीपत्रमिवोढ पङ्कम् ।।
वि० पु० १।४।३६-३८.
३ बैनर्जी जे० एन ० डे० हि० आ० पृ० ४१५.
४ वही पृ० ४१६.
५. वि० ध० ७९।९.
६. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १३०.
७. वही पृ० १४०.
८. वही पृ० १४१.
९. वही पृ० १४१-४२.
१०. वही पृ० १४२.

में न मारा जाय ।[1] इसी से यह विचित्र रूप इन्हें धारण करना पड़ा । जब वह अपने पुत्र को खम्भे से बाँध कर उसे मारने के लिए उद्यत हुआ उस समय खम्भे को तोड़कर नृसिंह देव प्रकट होकर गर्जन करने लगे । नृसिंह का रूप अत्यन्त भयानक था । तपाये हुए सोने के समान उनकी पीली-पीली आँखें बड़ी भयानक लग रही थीं । जम्हाई लेने के कारण गरदन के बाल इधर-उधर बिखर रहे थे । खूब बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण विकराल दाढ़ें थीं । तलवार के समान लपलपाती हुई छूरे की धार के समान तेज एवं तीखी उनकी जीभ थी । उनकी टेढी भौंहों के कारण मुख और भी भयानक लग रहा था । कान बड़े-बड़े निश्चल, स्थिर एवं ऊपर को उठे हुए तथा नाक क्रोध से खूब फूली हुई थी । फटे हुए जबड़े मुख की भयङ्करता को और अधिक बढ़ा रहे थे । शरीर इतना विशाल था कि मानो स्वर्ग को छू रहा हो । गरदन कुछ छोटी, नाटी, एवं मोटी थी । छाती खूब चौड़ी तथा कमर पतली थी । पूरे शरीर में चन्द्रमा के समान श्वेत रोम चमक रहे थे और सैकड़ों भुजाएँ दोनों ओर फैली हुई थीं । उनकी उँगलियों के बड़े-बड़े नाखून आयुधों का कार्य कर रहे थे । वे अपनी भुजाओं में चक्रादि आयुध तथा वज्रादि शस्त्र धारण किये थे । उनका रूप भयानक था ।[2] इससे किसी का उनके समक्ष जाने का साहस नहीं हो रहा था । हिरण्यकशिपु भी इस रूप से भयभीत होकर शङ्का करने लगा--

---

१. यदि दास्यस्यभिमतान्वरान् मे वरदोत्तम ।
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्माभून्ममप्रभो ।।
नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।
न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्नमृगैरपि ।।
....
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे एकपत्यं च देहिनाम् ।। श्रीमद्भा० ७।३।३५-३७.

२. मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो
नृसिंहरूपस्तदलं भयानवाम् ।
प्रतप्त चामीकरचण्डलोचनं
स्फुरत्सटाकेसरजम्भितानननम् ।।
करालदंष्ट्रंकरवालचञ्चल–
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुत,
व्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ।।
दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर
ग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ।
चंद्रांशुगोरैश्छुरितं तनूरुहै–
र्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ।। श्रीमद्भा० ७।८।२०-२२.

प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ।।[१]

अर्थात् ऐसा तो नहीं है कि महामायावी विष्णु ने मुझे मारने के लिए यह रूप रचा हो। उनका यह रूप न तो पूरा-पूरा सिंह का ही था और न मनुष्य का ही। वे न पशु थे और न मनुष्य। ऐसा नृसिंह का विचित्र रूप खम्भे से निकला—

अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन स्तम्भे समायां न मृगं न मानुषम्

....

नायं मृगो नापि नरो विचित्रम–हो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ।।[२]

दैत्यराज ने शीघ्र ही उन पर गदा प्रहार किया। देर तक दोनों में युद्ध चलता रहा। अन्त में नृसिंह ने अपने लम्बे और तेज नाखूनों को उसके पेट में भोंक दिया। नखों के भुकते ही हिरण्यकशिपु नखों को निकालने के लिए व्याकुल होने लगा किन्तु खेल ही खेल में सभा के दरवाजे पर ले जाकर अपनी जाँघों पर गिराकर नृसिंह ने उसका पेट उसी तरह विदीर्ण कर दिया जैसे गरुड़ विषधर सर्प को नोंच डालता है—

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरि
व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम्।
द्वार्युर आपात्य ददार लीलया
नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम् ।।[३]

नृसिंह देव ने जिस समय दैत्यराज को मारा उस समय क्रोध से भरी हुई उनकी भयङ्कर लाल आँखों की ओर देखा नहीं जा सकता था। वे अपनी जीभ को बाहर निकाल कर लपलपाती हुई जीभ से फैले हुए मुख के दोनों कोनों को चाट रहे थे। दैत्य के शरीर से निकले हुए रक्त के छीटों से उनका मुख तथा गरदन के बाल लाल हो गये थे। खून से सना हुआ उनका शरीर गज को मारकर आँतों की माला

१. श्रीमद्भा० ७।८।२३.
२. श्रीमद्भा० ७।८।१८-१९.
३. श्रीमद्भा० ७।८।२९.

पहने हुए सिंह के समान प्रतीत हो रहा था।[1] उन्होंने का दैत्य कलेजा फाड़कर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। अनेक दैत्य क्रुद्ध होकर उन पर प्रहार करने दौड़े किन्तु नृसिंह ने अपनी भुजा, नखों तथा चरणों के प्रहार से सबको मार कर भगा दिया।[2] उस समय उनकी गरदन के बालों की फटकार से बादल तितर-बितर होने लगे। उनके नेत्रों की ज्वाला के समक्ष सूर्य आदि ग्रहों का भी तेज फीका पड़ गया। उनके सिंहनाद से भयभीत होकर दिग्गज चिंघाड़ने लगे। गरदन के बालों से टकरा कर देवताओं के विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगाने लगा। पैरों की धमक से भूकम्प आ गया और उनके वेग से पर्वत उड़ने लगे। दिशाओं में अन्धकार छा गया और दीखना बन्द हो गया।[3]

विष्णु पुराण में नृसिंह अवतार का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में हुआ है। विष्णु-धर्मोत्तरम् में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि हरि ने सङ्कर्षण के अंश से नरसिंह रूप धारण किया।[4] नृसिंह को पीन स्कन्ध, मोटी गर्दन, कृश मध्य भाग, कृश उदर, नीले कमल की आभा, तथा नीले वस्त्रों को धारण किये होना चाहिए। सभी आभूषणों से सुसज्जित, ज्वालाओं के समूह से प्रकाशित मुख वाले चारों ओर चमकती हुई छटा वाले होना चाहिए।[5] उन्हें अपनी जाँघ पर पड़े हुए हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल अपने तीक्ष्ण नखों से विदीर्ण करते हुए दिखाना चाहिए—

हिरण्यकशिपोर्वक्षः नाटयन्नखरैः खरैः ।
नीलोत्पलाभः कर्त्तव्यो देवजानुगतस्तथा ॥[6]

इसके अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तर नृसिह के रूप को ज्ञानयुक्त बतलाता है। उनकी तेज दाढ़ें, भयानक मुख, बड़े-बड़े सुन्दर अयाल हैं। सहस्र यम के समान क्रोधपूर्ण, सहस्र इन्द्र के समान पराक्रमशाली, सहस्र कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली और मन से भी अधिक शीघ्रगामी है।[7] उनकी विद्युत् के समान लपलपाती हुई जिह्वा, खुला हुआ

---

१. संरम्भ दुष्प्रेक्ष्य कराललोचनो
   व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्व जिह्वया ।
   असृग्लवाक्तारुकेसनाननो
   यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ श्रीमद्भा० ७।८।३०.
२. श्रीमद्भा० ७।६।३१.
३. श्रीमद्भा० ७।८।३२-३३.
४. हरिः सङ्कर्षणांशेन नरसिंहवपुर्धरः ॥ वि० ध० ७८।७.
५. वि० ध० ७८।२-३.
६. वि० ध० ७८।४.
७. दंष्ट्राकरालवदनमलातप्रतिमेक्षणम् ।
   सहस्रयमसक्रोधं सहस्रेन्द्रपराक्रमम् ।
   सहस्रधनदस्फीतं मनसोऽप्यति शीघ्रगम् ॥ वि० ध० १०६।४०-४१.

मुख, कुटिल भृकुटी, भयङ्कर मुख, तथा अग्नि के ज्वाला-पुञ्ज के समान चमकती हुई तेजपूर्ण उनके मुख की कान्ति है—

विद्युतजिह्वं व्यावृतास्यं भ्रकुटीकुटिलाननम् ।
वह्निज्वालावलीपुञ्जदुर्निरीक्ष्यमुखश्रियम् ॥
....
वज्रतीक्ष्णनखाक्रान्तमहादैत्येन्द्रजीवितम् ।[1]

नर और सिंह इन दोनों रूपों का मिश्रित रूप होने के कारण इसे राव महोदय ने द्विमूर्ति माना है। यह प्रतिमा भय उत्पन्न करने वाली कही गयी है। नृसिंह की प्रतिमा को कला के अन्तर्गत दो प्रकार से स्पष्ट किया गया है[2]—

१. गिरिज नृसिंह तथा

२. स्थूण नृसिंह ।

गिरिज नृसिंह के अन्तर्गत वे एक पर्वत की गुफा से निकलते हुए दिखाये जाते हैं। इन्हें केवल नृसिंह भी कहते हैं। ऐसा वर्णन वैखानस आगम में हुआ है। इस रूप में वे चार भुजा वाले हैं। शङ्ख, चक्र अपने पीछे के हाथों में धारण किये हैं और अन्य दो हाथ घुटनों तक फैले हैं।[3] शिल्परत्न में नृसिंह दो भुजाओं वाले, श्वेत स्फटिक के समान, बैठे हुए, उन्मत्त शरीर वाले वतलाये गये हैं।[4]

स्थूण नृसिंह का रूप अधिक स्पष्ट एवं व्यापक है। इसी रूप का वर्णन वैष्णव पुराणों में हुआ है। इसमें नृसिंह खम्भे को तोड़ कर निकले हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। अग्नि पुराण नृसिंह को खुले मुख वाला, वाम उरु पर दानव को डालकर उसका वक्ष चीरने वाला बतलाता है। वे चक्र तथा गदा धारण करते हैं।[5] रूपमण्डन तथा शिल्परत्न में भी नृसिंह के भयानक रूप का वर्णन हुआ है, किन्तु श्रीमद्भागवत में वर्णित नृसिंह का रूप अत्यन्त स्वाभाविक है। खम्भे से निकल कर हिरण्यकशिपु पर झपटना, उसे खींचकर, सभा की देहली पर बैठकर, उसे जङ्घाओं पर डाल कर, उसका

१. वि० ध० १०६।४१-४३.
२. नारसिंहो द्विविधो गिरिजस्स्थूणजश्चेति
राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १५८.
३. वैखाआ० ४२.
४. शिल्प० अ० २५।११.
५. नरसिंहो विवृत्तास्यो वामोरूक्षदानवः ।
तद्वक्षोदारयन्याली · · · अग्नि पु० ४९।४.

हृदय चीरना, यह प्रसङ्ग अधिक स्वाभाविक है और प्रतिमाओं में भी यही भाव स्पष्ट किया गया है। भुजाओं की संख्या को भागवत पुराण में स्पष्ट नहीं किया गया है।[१] वह नृसिंह की हजारों भुजाएँ बताता है।[२] शिल्परत्न ग्रन्थ भुजाओं की संख्या आठ निश्चित करता है।[३]

एलोरा में जो नृसिंह की मूर्ति है उसमें उनका मुख वास्तविक सिंह का है जो बड़ा भयानक है। खूब घुँघराली फैली हुई जटाएँ हैं। ऊँचा किरीट मुकुट धारण किये हैं। हिरण्यकशिपु उनकी जाँघों पर पड़ा है और दो हाथों से उसे वे चीर रहे हैं। यह बैठी हुई प्रतिमा है जो श्रीमद्भागवत के प्रसङ्ग का प्रस्तुतीकरण प्रतीत होती है।[४] इसी प्रकार की और भी पत्थर तथा कांस्य की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। राव महोदय ने यानक नृसिंह और लक्ष्मी नृसिंह इन दो प्रकार के नृसिंह के और रूपों का वर्णन किया है। यानक नृसिंह गरुड़ के कन्धे पर बैठे रहते हैं और आदिशेष, छत्र के समान उनके सिर पर अपने फण फैलाये रहते हैं। किन्तु लक्ष्मी नृसिंह लक्ष्मी के साथ रहते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि हरिण्यकशिपु का वध करने के पश्चात् भी नृसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ। किसी का भी उनके समीप जाने का साहस नहीं होता था अतः देवों ने क्रोध शान्त करने के लिए लक्ष्मी को उनके समीप भेजा।[५] सम्भवतः राव महोदय के लक्ष्मी नृसिंह का यही सूत्र मूल आधार है। राव महोदय ने हलेविडू[६] तथा बादामी[७] की केवल दो, नृसिंह की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। दाड़िकोम्बू[८] में तथा मद्रास म्यूजियम में स्थूल नृसिंह की प्रतिमाएँ हैं। मद्रास म्यूज़ियम की प्रतिमा काँस्य की है।[९]

वामन—विष्णु के वामन रूप की कल्पना वैदिक ग्रन्थों के आधार पर हुई है। ऋग्वेद में कहा गया है वे एक विशाल युवा पुरुष हैं। उन्होंने अपने तीन पगों से सम्पूर्ण पृथ्वी नाप डाली।[१०] उनके लिए प्रयुक्त उरुक्रम और उरुगाय शब्द उनकी तीव्र गति की ओर सङ्केत करते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु अथवा

---

१. भुजाष्टकसमायुक्तां · · ·। रूपमण्डन अ० ३।२५.
२. · · · भुजानीकशतं · · ·। श्रीमद्भा० ७।८।२२.
३. शिल्परत्न अ० २५।१३.
४. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ मू० पृ० १५९.
५. साक्षाच्छ्री प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम्।। श्रीमद्भा० ७।८।२.
६. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १५०.
७. वही पृ० १५५.
८. वही पृ० १५८.
९. वही पृ० १५९.
१०. ऋ० वे० १।१५५।५.

इन्द्र और आकाश में सूर्य ये तीनों रूप विष्णु के ही स्वीकार किये गये हैं। इन्हीं तीन रूपों एवं तीन पगों के आधार पर रामायण तथा महाभारत में उनका वामन रूप विकसित हुआ। महाभारत में वामन रूप लेने के कारण वे वामन,[१] तीनों पगों से तीनों लोकों को नापने के कारण त्रिविक्रम[२] कहे गये हैं। वामन पुराण इन्हीं के यश का प्रतीक है।

श्रीमद्भागवत में वामन रूप का विशद वर्णन हुआ है। अदिति की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् आयुधों सहित प्रकट हुए। अदिति और कश्यप के देखते-देखते उन्होंने नट की भाँति रूप बदलकर वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया।[३] बलि को परास्त करने के लिए तथा इन्द्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए उन्होंने इस रूप को धारण किया था। उस बालब्रह्मचारी वामन के रूप को देखकर सभी देव-महर्षि अत्यन्त आनन्दित हुए। उनका जातकर्म संस्कार कराया गया। जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार होने लगा तब सभी देवों एवं देवियों ने उन्हें अनेक वस्तुएँ प्रदान की। सविता देवता ने गायत्री उपदेश, देवगुरु बृहस्पति ने यज्ञोपवीत, कश्यप ने मेखला, पृथ्वी ने कृष्ण-मृगचर्म, चन्द्रमा ने दण्ड, माता अदिति ने कौपीन तथा कटिवस्त्र, आकाश के देवता ने छत्र, ब्रह्मा ने कमण्डलु, सप्तर्षियों ने कुश, सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला समर्पित की। यक्षराज कुबेर ने आकर भिक्षापात्र तथा जगज्जननी भगवती उमा ने स्वयं उन्हें भिक्षा दी।[४] यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् वामन ने दैत्यराज बलि की यज्ञ-शाला की ओर प्रस्थान किया। महामायावी विष्णु अपने हाथ में छत्र, दण्ड और जल से भरा हुआ कमण्डलु लिए हुए थे।[५] कमर में मूँज की मेखला बँधी थी और उनके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत पड़ा था–

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम्।
जटिलं वामनं विप्रंमायामाणवकं हरिम्॥[६]

वामन का शरीर छोटा होने के कारण अङ्ग भी उसी के अनुरूप छोटे एवं सुन्दर थे। ऐसे रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर बलि ने उनको उत्तम आसन दिया।[७]

---

१. उपेन्द्रः वामनो प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः॥ महा० अनु० १४९।३०.
२. आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः॥ महा० अनु० १४९।६९.
३. बभूव तेनैव स वामनो वटुः
संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः॥ श्रीमद्भा० ८।१८।१२.
४. श्रीमद्भा० ८।१८।१४–१७.
५. छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं
विवेश विभ्रद्धयमेधवाटम्॥ श्रीमद्भा० ८।१८।२३.
६. श्रीमद्भा० ८।१८।२४.
७. श्रीमद्भा० ८।१८।२६.

विष्णुधर्मोत्तर वामन देव को दण्डी, दूर्वा की भाँति श्याम, कृष्णाजिन् पहने हुए पढ़ने के लिए उद्यत बताता है—

कर्त्तव्यो वामनो देवस्संकटैर्गात्रपर्वभिः ।
पीनगात्रश्च कर्त्तव्यो दण्डी चाध्ययनोद्यतः ।।
दूर्वाश्यामश्च कर्त्तव्यः कृष्णाजिनधरस्तथा ।।[1]

अपराजित पृच्छ वामन को छत्री, दण्डी, चार भुजा वाला,[2] रूपमण्डन पीनगात्र वाला, श्यामवर्ण दण्डी[3] तथा शिल्परत्न कृष्णाजिन्, उपवीत, कुण्डल पहने हुए, छत्र-कमण्डलु लिये हुए, शिखायुक्त, कुब्जाकार तथा विशाल उदर वाला बतलाता है ।[4]

वामन द्वारा तीन पग पृथ्वी माँगने पर बलि ने शुक्राचार्य के द्वारा मना करने पर भी, पृथ्वी-दान का सङ्कल्प कर दिया । उसी समय भगवान् का वामन रूप इतना बढ़ गया कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र सब उन्हीं में समा गये । उन्हीं में सम्पूर्ण विश्व दृष्टिगोचर होने लगा ।[5] इसे देखकर दैत्यगण भयभीत हो गये ।[6] उस समय त्रिविक्रम अपनी भुजाओं में सुदर्शन चक्र, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, सौ चन्द्राकार चिह्नों वाली ढाल और विद्याधर नामकी तलवार धारण किये हुएथे—

सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्चशार्ङ्गंस्तनयित्नुघोषम् ।।
पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ।।[7]

---

१. वि० ध० ८५।५४–५५.
२. छत्री दण्डी वामनः स्यादथवास्यश्चतुर्भुजः ।। अ० पृ० अ० २१९.
३. वामनस्सशिखश्यामो दण्डी पीनोम्बुपात्रवान् ।। रूप० म० अ० ४।२६.
४. कृष्णाजिन्युपवीती स्याच्छत्रीधृतकमण्डलुः ।
कुण्डली शिखया युक्ता कुब्जाकारो महोदरः ।। शिल्परत्न अ० २५।१५.
५. श्रीमद्भा० ८।१८।२८–३०.
६. तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
. . . .
सर्वोत्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वे सुराः कश्मलमापुरङ्ग ।। श्रीमद्भा० ८।२०।२१–३०.
७. श्रीमद्भा० ८।२०।३०–३१.

उनके मस्तक पर मुकुट, भुजाओं में केयूर, कानों में मकराकृति कुण्डल, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न, गले में कौस्तुभ मणि, कमर में मेखला, कन्धे पर पीताम्बर, गले में पाँच प्रकार के पुष्पों की बनी वनमाला थी।[१] उन्होंने एक पग से बलि की सारी पृथ्वी नाप ली। दूसरे से उन्होंने स्वर्गलोक को नापा।[२] उनका ऊपर की ओर जाता हुआ दूसरा पग महः जनः तपः तथा सत्यलोक में पहुँच गया। तीसरे पग से नापने के लिए बलि के पास कुछ भी शेष न रहा—

उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परंगतः ॥[३]

अतः त्रिविक्रम ने तीसरे पैर को बलि के ऊपर रखकर उसे नागपाश से छुड़ाकर सुतल में भेज दिया।[४] इस प्रकार विष्णु ने इन्द्र का सारा राज्य तथा पृथ्वी बलि से लेकर उन्हें प्रदान की।

विष्णुधर्मोत्तर त्रिविक्रम को जल से भरे हुए मेघ के समान नील वर्ण का, दण्ड, पाश, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी बतलाता है। स्वाभाविक मानव के समान इनका रूप नहीं होता। इनका मुख ऊपर की ओर तथा आँखें खूब खुली हुई होती हैं—

सजलाम्बुदसंकाशस्तथा कार्यस्त्रिविक्रमः ॥
दण्डपाशधरः कार्यः शङ्खसञ्चुम्बिताधरः ।
शङ्खचक्रगदापद्माः कार्यास्तस्य स्वरूपिणः ॥
नृदेहास्ते न कर्त्तव्याः शेषं कार्यं तु पूर्ववत् ।
एकोर्ध्ववदनः कार्यो देवोविस्फारितेक्षणः ॥[५]

---

१. स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डल
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥
मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ श्रीमद्भा० ८।२०।३२–३३.

२. क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥
पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं ॥ श्रीमद्भा० ८।२०।३३–३४.

३. श्रीमद्भा० ८।२०।३४.

४. श्रीमद्भा० ८।२३।६.

५. वि० ध० ८५।५५–५६.

शिल्परत्न वामन को बाएँ पैर से पृथ्वी को दबाते हुए और दूसरा दाहिना पैर आकाश तक उठाते हुए बतलाता है।[1]

वामन की प्रतिमा कला के अन्तर्गत दो रूपों में चित्रित की गयी है—

१. वामन ब्रह्मचारी रूप तथा

२. त्रिविक्रम रूप।

एलोरा की १५ नम्बर की दशावतार गुफा में त्रिविक्रम की प्रतिमा के ऊपर उठे हुए चरण के नीचे वामन की प्रतिमा बनी है। वामन ब्रह्मचारी रूप में दण्ड-कमण्डलु लिए खड़े हैं। उनके सम्मुख बलि तथा उनकी पत्नी हैं। बलि अपना सङ्कल्प पूरा करने के लिए हाथ में कमण्डलु से जल लेते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। इसी के समीप एक और प्रतिमा का अंश है जिसमें शुक्र बलि को दान देने के लिए मना कर रहे हैं।[2]

कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में भी वामन की एक प्रतिमा है। इसमें वामन छत्र, दण्ड, कमण्डलु धारण किये हैं। उनका रूप ब्रह्मचारी के समान है। वे बलि से पृथ्वी माँगते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। इस प्रतिमा में बलि की पत्नी और शुक्र उनके पीछे खड़े हैं।[3] बादामी के अवशेषों में प्राप्त हुई वामन की एक प्रतिमा का उल्लेख बैनर्जी महोदय ने किया है। यहाँ पर वामन की प्रतिमा बड़ी सुन्दर बनी है। वे सिर पर छाता लगाये हैं। हाथ में दण्ड, कमण्डलु, कृष्णाजिन् है, कटि में बँधी हुई मोटी मेखला है। ये सभी चिह्न श्रीमद्भागवत के "छत्रं सजलदं सदण्डं सजलं कमण्डलु" 'मौञ्ज्यामेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् जटिलं वामनं' आदि प्रसङ्गों के साकार रूप प्रतीत होते हैं। इस प्रतिमा में वामन के मुख की प्रसन्न आकृति ऐसी है जैसे दैत्यराज ने उनको दान देना स्वीकार कर लिया हो।[4] वामन का यह रूप बड़ा ही सौम्य तथा शान्त है। खजुराहो के वामन मन्दिर में वामन की एक विशाल मूर्ति है। उसकी चार भुजाएँ हैं। चारों भुजाएँ टूटी हुई हैं। वामन का शरीर मोटा और सभी अवयव छोटे हैं। सिर पर घुँघराले बाल हैं। उनके शरीर पर हार ग्रैवेयक, वनमाला कौस्तुभ-मणि, केयूर, यज्ञोपवीत, मेखला, नूपुर आदि अलङ्कार शोभित हैं। उनके दाहिनी ओर समीप में शङ्ख तथा बायीं ओर चक्र पुरुष रूप में विद्यमान है। भूदेवी शङ्ख पुरुष

---

१. त्रिविक्रमं वक्ष्ये वामपादेन मेदिनीम्।
आक्रामन्तं द्वितीयेन साकल्येन नमस्स्थलम्॥
शिल्परत्न अ० २५।१८.

२. राव० गो० ना०—ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १७४–७५.

३. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १७५–७६.

४. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४१९.

के पीछे खड़ी हैं और चक्र पुरुष के पीछे गरुड़ हैं। वामन की मूर्ति के सिर के पीछे प्रभावली है, जिसके एक कोने में ब्रह्मा तथा दूसरे कोने में शिव हैं और बीच में अन्य अवतार बने हैं। इस प्रतिमा का उल्लेख डॉ० अवस्थी ने अपने ग्रन्थ में किया है।[१]

वामन का त्रिविक्रम रूप विशाल तथा भयानक है। राव महोदय ने त्रिविक्रम की एक प्रतिमा का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है। इसमें त्रिविक्रम का हाथ फैला है, अँगुलियाँ बाहर की ओर फैली हैं। उनका मुख भयानक एवं बदसूरत है मनुष्य के समान नहीं है। मुख ऊपर की ओर उठा हुआ और आँखें खूब फैली हुई हैं। यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के "नृदेहास्ते न कर्त्तव्या" तथा "एकोर्ध्ववदन: कार्यो देवो-विस्फारितेक्षण:" प्रसङ्गों का स्पष्टीकरण प्रतीत होती हैं।[२] त्रिविक्रम जब अपना तीसरा कदम नाप चुके और उनका ऊपर उठा हुआ चरण स्वर्ग पहुँचा उसी समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उलट गया। सब ओर जल ही जल हो गया। सम्भवत: त्रिविक्रम का विचित्र एवं कुरूप मुख इसी भावना को स्पष्ट करता है ऐसा राव महोदय का विचार है।[३] ढाका जिले में जूरादुल स्थान से काले पत्थर की बनी हुई वामन की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा तीन फी० लम्बी तथा एक फी० आठ इञ्च चौड़ी है। प्रतिमा में त्रिविक्रम की चारों भुजाओं में चक्र, गदा, पद्म तथा शङ्ख है। उनका बाँया पैर ऊपर की ओर उठा हुआ है और उसके ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा की प्रतिमा बनी है।[४] सम्भवत: यह प्रतिमा श्रीमद्भागवत के प्रसङ्ग का प्रकटीकरण प्रतीत होता है। क्योंकि भागवत पुराण में कहा गया है कि जब त्रिविक्रम का दूसरा चरण मह: जन: तप लोक होता हुआ सत्य लोक पहुँचा तो उनके नख-चन्द्र के प्रकाश में ब्रह्मा भी डूब गये। उन्होंने सब देवों-ऋषियों के साथ उस चरण का स्पर्श कर सम्मान किया—

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभि
हंतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात्।[५]

त्रिविक्रम के उठे हुए चरण पर स्थापित ब्रह्मा की प्रतिमा इसी कथन की पुष्टि करती है। इसके अतिरिक्त काले पत्थर की बनी हुई वामन की एक और प्रतिमा अब्दुलापुर में है। प्रतिमा रामपाल के अवशेषों से प्राप्त हुई थी।[६] मध्यप्रदेश के

---

१. अवस्थी—रामाश्रय—खजुराहों में हिन्दू प्रतिमा विज्ञान पृ० १६१–६२.
२. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १६७.
३. वही पृ० १६८.
४. आइ० आ० बु० ए० ब्र० स्क० पृ० १०५.
५. वही पृ० १०७.
६. वही पृ० १०८.

के रायपुर जिले में राजिम नामक स्थान में,[१] महाबलिपुरम्[२] में, बादामी[३] में तथा मेवाड़ के जयपुर जिले के चत्सु[४] नामक स्थान में पत्थर की बनी हुई त्रिविक्रम की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं जो वैष्णव पुराणों में वर्णित प्रसङ्गों से कुछ अंश तक साम्य रखती हैं।

परशुराम—हैहय वंश का अन्त करने के लिए स्वयं विष्णु ने परशुराम के रूप में अवतार ग्रहण कर इस पृथ्वी को २१ बार क्षत्रियों से शून्य कर दिया।[५] परशुराम हाथ में धनुष, बाण तथा परशु लेते हैं। उनके शरीर पर काला मृगचर्म तथा सिर पर सूर्य के समान चमकीली जटाएँ रहती हैं—

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा
धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम्।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभि-
र्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन्॥[६]

परशु, निषङ्ग, ढाल एवं धनुष उनके मुख्य शस्त्र हैं।[७] तीखी फरसे की धार से वे शीघ्र ही सबको काट डालते हैं।[८] पिता के वध को निमित्त बनाकर २१ बार उन्होंने पृथ्वी पर के क्षत्रियों का वध करके समन्तपञ्चक तीर्थ में रक्त से भरे हुए पाँच तालाब बनवा दिये।[९] पिता के सिर को धड़ से जोड़कर यजनादि करने पर इनके पिता को सङ्कल्पशरीर की प्राप्ति हो गयी और उन्हें सप्तर्षियों में स्थान प्राप्त हो गया।[१०] पिता की आज्ञा से इन्होंने अपने सब भाइयों को मार डाला था और अपनी माता रेणुका का भी सिर काट लिया था। विष्णुधर्मोत्तर में परशुराम को जटा-मण्डल वाला, हाथ में परशु लिये हुए, कृष्णाजिन् धारण करने वाला बतलाया गया है—

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १९६.
२. वही पृ १७१.
३. वही पृ० १७३.
४. वही पृ १७८.
५. यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम्।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम्॥
श्रीमद्भा० ९।१५।१४.
६. श्रीमद्भा० ९।१५।२९.
७. घोरमादाय परशुं सतूणं चर्मकार्मुकम्॥ श्रीमद्भा० ९।१५।२८.
८. श्रीमद्भा० ९।१५।३४.
९. श्रीमद्भा० ९।१५।१८–१९.
१०. श्रीमद्भा० ९।१५–२२–२३.

कार्यस्तु भार्गवो रामो जटामण्डलुददृशुः ।।
हस्ते यः परशुः कार्यः कृष्णाजिनवरस्य तु ।[१]

विष्णु पुराण उन्हें कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए कहता है । उनकी जटाएँ सूर्य के समान चमकती हैं। वे धनुष बाण, परशु तथा अन्य युद्ध के आयुधों को धारण करते हैं ।[२] अग्नि पुराण 'रामश्चापेषुहस्तस्स्यात्खड्गी परशुनान्वितः'[३] कहकर परशुराम को धनुष, बाण, परशु, खड्गधारी बतलाता है । रूपमण्डन भी परशुराम को परशुधारी एवं जटाधारी बतलाता है ।[४] बैखानस आगम इन्हें रक्त वर्ण वाला, श्वेत वस्त्रधारी, जटामुकुट युक्त बताता है ।[५] कला के अन्तर्गत परशुराम को दो रूपों में चित्रित किया गया है--

१. दो भुजा वाली प्रतिमा तथा
२. चार भुजा वाली प्रतिमा ।

पार्श्वनाथ के जैन मन्दिर में परशुराम की दो प्रतिमाएँ हैं। पहली प्रतिमा २ फी० ऊँची है। उनके सिर पर किरीट तथा गले में वनमाला है । उनके चार भुजाएँ हैं जिनमें परशु, शङ्ख, पद्म तथा चक्र है ।[६] किन्तु यह प्रतिमा वैष्णव पुराणों में वर्णित रूप से कुछ भिन्न है। ढाका में प्राप्त हुई परशुराम की प्रतिमा जटायुक्त है । यद्यपि उनके चार भुजाएँ हैं, किन्तु उनके परशु, गदा, शङ्ख तथा चक्र है ।[७] इस प्रतिमा का आकार तथा रूप विष्णुधर्मोत्तर[८] तथा श्रीमद्भागवत[९] में कथित रूप से मिलता है । रानीहाटी स्थान से एक परशुराम की प्रतिमा प्राप्त हुई है । प्रतिमा चार भुजा वाली है । चारों भुजाओं में परशु, शङ्ख, चक्र तथा पद्म हैं । अब यह प्रतिमा औटशाही स्थान में है ।[१०] बैनर्जी महोदय ने एक दो भुजा वाली परशुराम की प्रतिमा का उल्लेख किया है। उनके सिर पर जटाएँ हैं । दाहिने हाथ में परशु है और बायाँ हाथ कटि पर रखा है ।[११]

---

१. वि० ध० ८५।६१-६२.
२. श्रीमद्भा० ९।१५।२९-३०; वि० ध० १०६।१०२-१०३.
३. अग्नि पु० ४९।५०.
४. जटाजिनधरो रामो भार्गवः परशुं दधत् ।। रूपमण्डन अ०३।२६.
५. जामदग्न्यरामं···द्विभुजंरक्ताभं श्वेतवस्त्रधरं··
जटामुकुटधरं सोपवीतं···कारयेत् ।। बै० आ०
६. अवस्थी रामाश्रय-खजुराहो में हिन्दू प्रतिमा विज्ञान पृ० १६६-६७.
७. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४२०.
८. वि० ध० १०६।१०३.
९. श्रीमद्भा० ९।१५।२८-३२.
१०. आइ० आ० ए० ब्र० स्क० पृ० १०७.
११. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४२१-४२२.

राम (दाशरथी)—सूर्यवंशी राजा दशरथ के पुत्र राम के स्वरूप का विशद वर्णन रामायण में हुआ है, किन्तु वैष्णव पुराणों में इनके रूप का विशेष वर्णन नहीं हुआ, केवल कुछ सङ्केत अवश्य प्राप्त होते हैं। रावण से युद्ध करते समय इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा लाये गये एक अत्यन्त सुन्दर रथ पर बैठकर श्रीराम लड़े—

स्वः स्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरपैः ॥[१]

पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर श्रीराम अयोध्या आये उस समय विमान के अन्दर की झाँकी दर्शनीय है। भरत ने भगवान् की पादुकाएँ, विभीषण ने सुन्दर चँवर, सुग्रीव ने पङ्खा, हनुमान ने श्वेत छत्र, शत्रुघ्न ने धनुष और निषंग, सीताजी ने तीर्थों के जल से भरा कमण्डलु, अङ्गद ने सोने का खड्ग और जाम्बुवान् ने ढाल ली। उस समय श्रीराम ग्रहों सहित उदित हुए चन्द्र की भाँति शोभित हो रहे थे।[२] तत्पश्चात् चारों समुद्रों आदि के जल से उनका अभिषेक किया गया और वे सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ तथा विभिन्न अलङ्कार धारण करके पत्नी सीता सहित सिंहासन पर विराजमान हुए। उस समय उनकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी—

जटानिर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः।
अभ्यषिञ्चद् यथेवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः।
एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः।
स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ।[३]

विष्णु देवताओं की प्रार्थना से इस लीला विग्रह को धारण कर प्रभु होकर भी मनुष्यों की भाँति लीला करते थे।[४] उनके वक्षः स्थल पर आश्रय पाने वाली लक्ष्मीजी

---

१. श्रीमद्भा० ९।१०।२१.
२. पादुके भरतो ग्रहणाच्चामरव्यजनोत्तमे।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतछत्रं मरुत्सुतः॥
धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थ कमण्डलुम्।
अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराणनृप॥
पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्चवन्दिभिः।
विरेजे भगवान्राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः॥
श्रीमद्भा० ९।१०।४३–४५.
३. श्रीमद्भा० ९।१०।४९–५०.
४. नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयाऽऽत्त –
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः॥ श्रीमद्भा० ९।११।२०.

जनकपुर में राजा जनक के घर सीता नाम से अवतीर्ण हुई[1] और श्रीराम ने धनुष तोड़ कर उनसे विवाह किया ।[2] विष्णु पुराण में राम के चरित्र का संक्षेप में वर्णन हुआ है और राज्याभिषेक के समय का सुन्दर चित्र खींचा गया है ।[3] विष्णुधर्मोत्तर में श्रीराम के केवल राजोचित रूप का वर्णन हुआ है और उन्हें अपने भाइयों से घिरा हुआ कहा गया है । अन्य भाइयों के सिर पर मुकुट न बनाने का आदेश दिया है-

रामोदाशरथिः कार्यो राजलक्षणलालितः ।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महायशाः ।
तथैव सर्वे कर्त्तव्याः किन्तु मौलिविवर्जिताः ।।[4]

अग्नि पुराण में दिया हुआ राम का चित्रण उन्हें चार अथवा दो भुजा वाला वतलाता है । उसका कथन है—

रामश्चापि शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजस्मृतः ।।[5]

राम की अनेक प्रतिमाएँ यत्र-तत्र प्राप्त होती हैं। वैनर्जी महोदय का कथन है कि मध्यकालीन युग में रामायण के अनेक दृश्य भारत के मन्दिरों में ही नहीं अपितु इण्डो-चाइना तथा इण्डोनेशिया के मन्दिरों में भी चित्रित किये जाते थे ।[6]

राम और कृष्ण—बलराम कृष्ण के बड़े भाई हैं । दोनों देवकी तथा वसुदेव के पुत्र हैं । इनकी कथा भागवत, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त, हरिवंश आदि पुराणों में दी हुई है । जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि देवकी के सातवें गर्भ में बलराम ने जव प्रवेश किया तब कृष्ण योगमाया को आज्ञा देकर देवकी के उदर से वह गर्भ खींचकर रोहिणी के उदर में स्थापित करवा दिया । खींचे जाने के कारण इनका सङ्कर्षण नाम पड़ा । देवकी के आठवें गर्भ से हरि उत्पन्न हुए जो कृष्ण कहलाये । राम और कृष्ण दोनों सम्पूर्ण सृष्टि के रक्षक होने के साथ ही साथ गोप, ग्वालों, गोपिकाओं तथा गौओं के भी रक्षक बन गये । बलराम कृष्ण की सदैव सहायता करते रहते थे किन्तु मुख्य कार्य कृष्ण ही करते थे । जन्म तथा बाल्यावस्था से अन्त तक जितने भी पुण्य कार्य कृष्ण ने किये सबका विस्तार से वर्णन वैष्णव पुराणों में हुआ है । भागवत पुराण तो कृष्ण चरित्र का प्राण ही है । कैनेडी महोदय ने भी राम कृष्ण के पूर्ण

---

१. श्रीमद्भा० ९।१०।१२.
२. श्रीमद्भा० ९।१०।७.
३. वि० पु० ४।४।८७-९९.
४. वि० ध० ८५।६२-६३.
५. अग्नि पु० ४९।६.
६. वैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४२१.

चरित्र का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है ।[1] उनके कार्यों से विषय का मुख्य सम्बन्ध न होने के कारण उनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है । केवल उनके रूप आकार पर ही विशेष ध्यान दिया गया है ।

बृहत्संहिता में बलराम को हाथ में हल लिए, मद से उन्मत्त, रक्त नेत्र वाले, एक कान में कुण्डल पहने हुए चित्रित किया गया है ।[2] बलराम के रूप का सङ्कर्षण के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है। ये गौरवर्ण के, नीले वस्त्र धारण करने वाले, कान में एक कुण्डल पहने हुए, गले में लम्बी वनमाला तथा शरीर पर अनेक आभूषण धारण करते हैं । हल तथा मूसल इनके प्रमुख आयुध हैं। ध्वज रथ का तालध्वज है। मदिरा के अधिक सेवन से इनके नेत्र उन्मत्त तथा लाल रहते हैं । देवी रेवती इनकी पत्नी हैं ।[3]

कला के अन्तर्गत इन्हें दो तथा चार हाथों वाला प्रदर्शित किया गया है। कालान्तर में सर्पफण का छत्र प्रतीक रूप में इनके सिर के पीछे प्रदर्शित किया जाने लगा । मथुरा में एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें वे सर्पछत्र के नीचे खड़े हैं। इनके दो हाथ हैं जिनमें वे हल तथा मूसल लिए हुए हैं । वे छोटी और ऊँची धोती पहने हैं । सिर पर बड़ी पगडी है । शरीर पर साधारण आभूषण, गले में मालाएँ हैं और एक कान में कुण्डल पहने हैं । दाहिना पैर कुछ मुड़ा हुआ है । यह प्रतिमा वैष्णव पुराणों में वर्णित बलराम के "कुण्डलैकधरं-वनमाला विभूषितम" रूप का स्पष्टीकरण प्रतीत होती है और अब प्रतिमा लखनऊ म्यूजियम में रखी है ।[4] इसी प्रकार की एक प्रतिमा मध्यभारत में ग्वालियर के तुमेन स्थान से प्राप्त हुई और ग्वालियर म्यूजियम में रखी है । यह प्रतिमा भी पूर्वोक्त प्रतिमा से मिलती-जुलती है किन्तु इसकी यह विशेषता है कि प्रतिमा के समीप बलराम का मुख्य चिह्न तालध्वज बना हुआ है । इसमें तालपत्र के गुच्छे बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं । इसी ध्वज के पास एक गधे का आकार बना है ।[5] यह प्रतिमा वैष्णव पुराणों में वर्णित बलराम द्वारा मारे जाने वाले धेनुकासुरवध का स्मरण दिलाती है ।

---

१. कैनेडी—हिन्दू माइ० पृ० ४३९—४१.
२. बृ० सं० ५७।५।३७.
३. राममावाहयिष्यामि मदविभ्रान्तलोचनम् ।
   कुण्डलैकधरं शान्तं वनमाला विभूषितम् ।।
   एहि राम महाभाग रेवतीदयिताच्युत
   हत प्रलम्ब सीराग्रव्याकृष्ट यमुनोदक ।। वि० ध० १०६।१२३—२४.
४. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४२३, प्ले० २२ आ० ४.
५. बैनर्जी जे एन० डे० हि० आ० पृ० ४२४ प्ले० १७ आ० ३.

विष्णु का कृष्णावतार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण विष्णु के अंशावतार थे।[१] इस रूप को धारण कर उन्होंने सबसे अधिक पृथ्वी का भार हल्का किया। विष्णु का काला केश जिसे योगमाया ने देवकी के गर्भ में स्थापित किया था उसी से कृष्ण का जन्म हुआ।[२] इनके सम्पूर्ण जीवन एवं अद्भुत लीलाओं का वर्णन वैष्णव पुराणों में हुआ है। इस अवतार में उनके कुछ मुख्य रूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वे निम्नलिखित हैं—

१. जन्म के समय चतुर्भुज बालक का रूप,

२. बाल कृष्ण रूप,

३. गोपाल बालक रूप,

४. बालमुकुन्द रूप,

५. वेणु गोपाल अथवा वंशीधर रूप,

६. कालिय-मर्दन रूप,

७. गोवर्धनधर रूप,

८. पार्थसारथी रूप,

९. कृष्ण रुक्मिणी बलभद्र रूप,

१०. युद्ध वेशधारी रूप,

११. योगीश्वर रूप तथा

१२. समाधिस्थ रूप।

ये सभी रूप कृष्ण के एक हुए विभिन्न महत्त्वपूर्ण कार्यों का स्मरण कराते हैं। इनमें से अधिकांश रूप कला में भी ढले हुए प्राप्त होते हैं।

चतुर्भुज बालक रूप—कारागार में बन्द हुए वसुदेव-देवकी के समक्ष विष्णु जन्म से पूर्व बालक के रूप में प्रकट हुए। वसुदेवजी ने देखा कि उस बालक के नेत्र कमल के समान सुन्दर एवं प्रसन्न हैं। नील वर्ण के शरीर पर पीताम्बर शोभित है।

---

१. अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः।
विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः॥ वि० पु० ५।१।२.

२. वि० पु० ५।१।५९.
........केशौसितकृष्णौ तत्रायमष्टमोगर्भो मत्केशोभविता सुराः।
वि० पु० ५।१।६३.

वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न तथा गले में कौस्तुभ मणि झिलमिला रही है । चारों भुजाओं में शङ्ख, गदा, चक्र, कमल धारण किये हैं । वह वैडूर्य मणि का मुकुट, सुन्दर कुण्डल पहने है तथा बाल सूर्य की किरणों की भाँति चमक रहे हैं। कमर में चमकती हुई लड़ियों वाली करधनी है और उनके शरीर के अङ्ग-अङ्ग से शोभा प्रस्फुटित हो रही है ।[१] ऐसे रूप को देख कर देवकी विस्मित होकर स्तुति करने लगीं । उन्होंने कहा कि यह चतुर्भुज दिव्य रूप ध्यान की वस्तु है । केवल माँस–मज्जा पर दृष्टि रखने वाले देहाभिमानी पुरुषों के समक्ष इसे प्रकट मत करिये ।[२] इस रूप को छिपा लीजिये क्योंकि कंस से मुझे बड़ा भय है—

उपसंहर विश्वात्मानन्दो रूपमलौकिकम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ।।[३]

देवकी के कहने पर शीघ्र ही प्रभु साधारण शिशु के रूप में प्रकट हो गये ।[४] वसुदेव उन्हें यमुना पार कर यशोदा के पास पहुँचा आये । यहाँ पर कृष्ण ने अनेक राक्षसों का वध किया ।

जब दोनों भाई गोकुल की कीचड़ में घसिटते हुए चलते उस समय उनके पैर के नूपुर तथा किङ्किणी के घुँघरू स्वयं बजने लगते थे । उसे सुनकर वे दोनों स्वयं विस्मित हो उठते थे ।[५] इन धूल से सने पुत्रों को माताएँ गोद में लेकर हृदय से लगा लेती और स्तन पान कराने लगतीं । दूध पीते-पीते बीच में वे अपनी माताओं की ओर देखकर मुस्कुराते थे । तब उनकी छोटी-छोटी दतुलियों वाले मुख को देखकर माताएँ आनन्द विभोर हो जाती थीं—

दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पं दशनं ययतुः प्रमोदम् ।।[६]

दही का मटका तोड़ डालने पर जब माता यशोदा उन्हें पकड़ती और छड़ी से धमकातीं

---

१. तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभितकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।।
महार्हवैडूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्त सहस्रकुन्तलम् ।।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।।
श्रीमद्भा० १०।३।९–१०

२. श्रीमद्भा० १०।१३।१२–१५.
३. श्रीमद्भा० १०।३।३०.
४. श्रीमद्भा० १०।१४।१.
५. श्रीमद्भा० १०।८।२१–२२.
६. श्रीमद्भा० १०।८।२३.

तब वे खूब रोते। हाथों से आँख मलते, जिससे मुख भर में काजल की स्याही फैल जाती। पिटने के भय से आँखें ऊपर की ओर उठी हुई थीं—

> कृतागसं तं प्रुरुदन्तमक्षिणी
> कषन्तमज्जन्मषिणी स्वपाणिना।
> उद्वक्षिमानं भयविह्वलेक्षणं
> हस्ते गृहीत्वा विषयन्त्यवागुरत् ॥[1]

गोपाल रूप——कृष्ण का गोपाल रूप बड़ा ही मनमोहक है। वे बड़े होकर गोचारण के लिए जाते हैं। वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल वर्ण के शरीर पर पड़ा हुआ पीताम्बर बादलों में बिजली के समान चमक रहा है। गले में घुँघुचियों की माला शोभा पा रही है। कानों में चमकते हुए मकराकृति कुण्डल धारण किये हैं। सिर पर मोर पङ्खों का बना हुआ मुकुट तथा वक्षःस्थल पर वनमाला सुशोभित है। उनके कमल के सदृश कोमल तथा सुन्दर हाथ की एक नन्ही हथेली पर दही भात का कौर रखा है। बगल में वे बेंत और सींग दबाये हुए हैं। कमर में बँधे हुए फेटे में उनकी प्रिय बाँसुरी लटकी हुई है। इसी बालगोपाल वेष के दर्शन ब्रह्माजी को हुए थे——

> नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
> गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
> वन्यस्रजे कबलवेत्रविषाणवेणु
> लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥[2]

एक बार ब्रह्माजी प्रभु की माया से मोहित हो गये। उन्हें सभी ग्वाल बाल तथा बछड़े चतुर्भुज रूप में दिखायी पड़ने लगे। सभी शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये श्याम शरीर के, कुण्डल, हार, वनमाला, श्रीवत्स, कौस्तुभ धारण किये, शङ्खाकार कङ्गन पहने गले में तुलसी की माला पहने हुए दिखायी पड़े।[3] गोपाल कृष्ण मयूरपिच्छ के

---

१. श्रीमद्भा० १०।९।११.
२. श्रीमद्भा० १०।१४।१.
३. तावत् सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्यतत्क्षणात्।
व्यदृश्यन्तघनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणोवनमालिनः ॥
श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥
आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥
श्रीमद्भा० १०।१३।४६–५०.

मुकुट के साथ कभी-कभी अपने घुँघराले बालों में महकते हुए पुष्प गूँथ लेते हैं। नयी-नयी रङ्गीन धातुओं से अपने श्याम शरीर पर चित्रकारी करते हैं—

बर्हप्रसूननवधातु विचित्रिताङ्गः
प्रोद्दामवेणुदलश्रृङ्ग रवोत्सवाढ्यः ॥[1]

वे वन में कभी बाँसुरी, कभी पत्ते और सींग बजा कर चलते हैं।[2] गायों के खुरों से उठती हुई धूल से उनकी घुँघराली अलकें धूसरित हो जाती हैं। सिर पर मोर मुकुट तथा गुथे हुए जङ्गली पुष्प बड़े सुन्दर लगते हैं।[3]

कृष्ण कभी-कभी आनन्द में भर कर अपने को खूब सजाकर नट का-सा वेष धारण कर लेते हैं। उनके सिर पर मयूरपिच्छ, कानों में कनेर के पीले-पीले पुष्प, शरीर पर सुनहरा पीताम्बर तथा गले में पाँच प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की गुँथी हुई वैजयन्ती माला शोभित होती है। वे नटवर बाँसुरी बजाकर गोप बालकों को आनन्द देते हैं—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥[4]

विष्णु पुराण भी कृष्ण बलराम दोनों को काक पक्षधारी, सिर पर मयूरपिच्छ का मुकुट पहने, वन्यपुष्पों के कर्णफूल पहने हुए वंशी तथा पत्तों के बाजे से शब्द करते वन में इधर-उधर विचरण करते हुए प्रदर्शित करता है—

बर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतंसकौ।
गोपवेणुकृतातोद्य पत्रवाद्यकृतस्वनौ ॥
काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकी ॥[5]

---

१. श्रीमद्भा० १०।१४।४७.
२. श्रीमद्भा० १०।१४।४८.
३. तं गोरजश्छुरित कुन्तलबद्धबर्ह,
वन्य प्रसूनरुचिरे क्षणचारुहासम्॥ श्रीमद्भा० १०।१५।४२.
४. श्रीमद्भा० १०।२१।५.
५. वि० पु० ५।६।३१-३३.

नवीन कोपलों के गुच्छे शरीर में यत्र-तत्र लगा लेते हैं। अङ्ग-अङ्ग में रङ्गीन धातुओं की चित्रकारी, कानों में कमल के कुण्डल, कपोलों पर घुँघराली अलकें तथा मुख कमल मन्द-मन्द मुस्कान से प्रफुल्लित रहता है। वे अपना एक हाथ गोपों के कन्धे पर रख कर दूसरे हाथ में एक कमल का पुष्प लेकर नचाते रहते हैं।[1] वे गले में मणि तथा तुलसी की माला भी पहनते हैं। तुलसी की गन्ध उन्हें प्रिय है और मणियों से वे गौओं की गणना करते हैं।[2]

कालियमर्दन रूप—कृष्ण का कालिय मर्दन रूप बड़ा भव्य है। कालियनाग का दमन करने के लिए यमुना में कूद कर उससे लड़ने लगे। उन्होंने नाग के थकित हो जाने पर बड़े-बड़े सिरों को दबा कर उन पर चढ़ गये। कालिय के मस्तकों की लाल मणियों की लालिमा से उनके सुकोमल तलुये और भी लाल हो गये। कृष्ण कूद-कूद कर उससे शतसिरों पर कलापूर्ण नृत्य करने लगे। जिस सिर को वह नहीं झुकाता था उसी को वे अपने पैरों से कुचल देते थे। इससे उसकी जीवन-शक्ति क्षीण होने लगी ओर कृष्ण के इस अद्‌भुत ताण्डव से उसका अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गया, उसे रक्त की उल्टी होने लगी। नागपत्नियाँ भयभीत होकर उनकी स्तुति करने लगीं।[3] इस समय कृष्ण का रूप अत्यन्त सलोना था। वर्षाकालीन मेघ के समान साँवले

---

१. श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह
धातु प्रवालनटवेषमन व्रतांसे।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्ज
कर्णोत्पलालकपोलमुखाब्जहासम्॥ श्रीमद्भा० १०।२३।२२.

२. मणिधरः क्वचिदागणयन् गा
मालया दयितगन्धतुलस्याः॥ श्रीमद्भा० १०।३५।१८.

३. तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र–
पादाम्बुजोऽखिल कलादिगुरुर्ननतं॥
....
यदयच्छिरो न नमतेऽङ्गशतैकशीर्ष्ण–
यस्तत्तन् ममर्दखरदण्डधरोङ्घ्रिपातैः॥
....
तस्यांक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु
यद् तत समुन्नति निःश्वसतो रुषोच्चैः।
नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः॥
तच्चित्र ताण्डव विरुग्णफणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः॥
....
मोक्षेप्सवः शरदं शरणं प्रपन्नाः॥ श्रीमद्भा० १०।१६–२३.

सुकुमार शरीर पर पीताम्बर, मयूर-पिच्छ, श्रीवत्स चिह्न शोभायमान था। चरण कमल गद्दी के समान सुकोमल थे।[1] विष्णु पुराण भी 'प्रणनर्त्तोरुविक्रमः'[2] तथा 'ववाम रुधिरं बहु'[3] 'मूर्च्छामुपाययौ'[4] पदों के द्वारा इसी रूप को प्रदर्शित करता है। यह रूप नाग सम्प्रदाय और कृष्ण सम्प्रदाय की प्रतिद्वन्द्विता का प्रतीक है। प्राचीन काल में भारत में यक्षों की भाँति नागों की भी पूजा प्रचलित थी, परन्तु कालान्तर में इन दोनों ही सम्प्रदायों की जन-प्रियता कम होने लगी और नवीन सम्प्रदायों में विशेषतः कृष्ण-वासुदेव सम्प्रदाय अधिक जन-प्रिय होने लगा, कृष्ण का कालियमर्दन रूप इसी अस्तित्त्व को प्रदर्शित करता है।

इस रूप की प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय ने किया है। प्रतिमा में कृष्ण नाग के फणों पर नृत्य कर रहे हैं। उनका बाँया पैर फणों पर है और दाहिना ऊपर उठा है। उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है और बाएँ हाथ में वे नाग की पूँछ पकड़े हैं। प्रतिमा श्रीमद्भागवत के 'नृत्यन् पदानुनमयन्' रूप को व्यक्त करती है। दक्षिण भारत में प्राप्त हुई यह काँस्य की बनी प्रतिमा मध्यकालीन कला का सुन्दर नमूना है। यह प्रतिमा मद्रास म्यूज़ियम में रखी है।[5] एलोरा के कैलाश मन्दिर के बीच की प्रतिमा के चारों ओर दीवाल पर कृष्ण का कालियमर्दन रूप अङ्कित है। इसमें भी कृष्ण फणों पर नृत्य कर रहे हैं। कालिय के फण झुके हुए प्रदर्शित किये गये हैं जो श्रीमद्भागवत में वर्णित 'तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु' प्रसङ्ग का स्मरण दिलाते हैं।[6]

गोवर्धन-धारी रूप—जब इन्द्र ने वर्षा करके सम्पूर्ण ब्रज को डुबा देने का विचार किया उस समय कृष्ण अपनी योगमाया के आश्रय से गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर सात दिन तक अपनी अँगुली पर धारण किये रहे—

वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥[7]

सभी पर्वत के गड्ढे में सात दिन तक रहे। यह देखकर इन्द्र के आश्चर्य की सीमा न रही। गौओं की रक्षा करने के कारण इन्द्र ने ऐरावत के घण्टे में पवित्र जल भर कर[8] उपेन्द्र पद पर उनका अभिषेक कर उन्हें गोविन्द नाम से भूषित किया—

---

१. श्रीमद्भा० १०।१६।९–१०.
२. वि० पु० ५।७।४४.
३. वि० पु० ५।७।४६.
४. वि० पु० ५।७।४६.
५. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१२.
६. वही पृ० २१३–१४.
७. श्रीमद्भा० १०।२५।२३.
८. अथोपवाह्याददाय घण्टामैरावताद् गजात्।
अभिषेकं तया चक्रे पवित्रजलपूर्णया ॥ वि० पु० ५।१२।१३.

उपेन्द्र गवामिन्दो गोविन्दस्त्वं भविष्यसि ।।[१]

इससे पूर्व गोकुल के व्यक्ति इन्द्र की विधिपूर्वक पूजा करते थे, किन्तु कृष्ण के इस कार्य ने इन्द्र के प्राधान्य को समाप्त कर दिया। गोकुलनिवासियों के हृदय में जो इन्द्र के प्रति भय था वह समाप्त हो गया। इन्द्र ने स्वयं कृष्ण के समक्ष अपनी पराजय स्वीकार कर ली और सर्व सामान्य जन इन्द्र के स्थान पर कृष्ण की पूजा करने लगे।

गोवर्धनधारी कृष्ण की प्रतिमा नागह्वेली में है। कृष्ण अपने दाहिने हाथ पर पर्वत धारण किये हैं। पर्वत के नीचे शरण लिए हुए ग्वाल-बाल तथा गाएँ बनी हैं।[२] इसी प्रकार की एक प्रतिमा हलेविड़ू में है। इसमें कृष्ण अपने बाएँ हाथ पर पर्वत धारण किये हैं। अतः प्रतिमा दाहिनी ओर झुकी है। गाय, ग्वाल-बाल सब पर्वत के नीचे हैं। प्रतिमा पत्थर की है।[३]

वीर वेष—कृष्ण वीर वेष में भी सुन्दर लगते हैं। भीष्म पितामह ने कृष्ण के इसी रूप के दर्शन किये। उनके श्याम तमाल के समान साँवले शरीर पर सूर्य रश्मियों के समान पीला पीताम्बर फहरा रहा है। कमल के समान सुन्दर मुख पर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं। युद्ध में घोड़ों की टाप से उठती हुई धूल से उनके केश मटमैले हो गये हैं। श्रम के कारण पसीने की छोटी-छोटी बूँदें मस्तक पर शोभित हो रही हैं। शरीर पर सुन्दर कवच शोभित है। शरीर बाणों से विंधा है।[४] कृष्ण ने युद्ध में शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु भीष्म पितामह ने उसे तोड़ने का प्रण किया। उन्होंने उनका सत्य वचन रखने के लिए अपना प्रण तोड़ दिया। वे रथ से कूद पड़े और रथ का पहिया लेकर हाथी पर झपटते हुए सिंह की भाँति उनकी ओर झपटे। शीघ्रता से दौड़ने के कारण उनके कन्धे का दुपट्टा गिर गया। पूरा शरीर, बाणों के लगने के कारण रक्त से भरा था। अर्जुन उनके चरणों में लिपट कर उन्हें रोक रहे थे—

---

१. वि० पु० ५।१२।१२.
२. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१४.
३. वही पृ० २१५-१६.
४. त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
  रविकरगौरवाम्बरं दधाने।
 वपुरलककुलावृताननाब्जं
  विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या।।
 युधितुरगरजोविधूम्रविष्वक्
  कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये।। श्रीमद्भा० १।९।३३-३४.

स्वनिगमपहाय मत्प्रतिज्ञा
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलदगु-
र्हरिरिव हन्तुमिमं गतोत्तरीयः ।।[1]

कृष्ण रुक्मिणी बलभद्र रूप– कृष्ण, रुक्मिणी तथा बलराम इन तीनों के एक साथ उपस्थित रहने का प्रसङ्ग भी वैष्णव पुराण में प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तर कहता है कि नीलोत्पल के वर्ण वाले कृष्ण के एक हाथ में चक्र रहता है। पास में स्थित रूक्मिणी के दाहिने हाथ में कमल रहता है। समीप में बलराम हल मूसल लिए एक कुण्डल पहने हुए, नीले वस्त्र धारण किये हुए रहते हैं। उनके नेत्र मद से विह्वल रहते हैं। श्याम वर्ण की रुक्मिणी के हाथ कमल के समान सुन्दर होते हैं, उनका बाँया हाथ कटि पर रखा रहता है–

एकानंशापि कर्त्तव्या देवी पद्मकरा तथा ।
कटिस्थवामहस्ता सा मध्यस्था रामकृष्णयोः ।
सीरपाणिर्बलः कार्यो मुसली चैव कुण्डली ।
श्वेतोऽतिनीलवसनो मदादञ्चितलोचनः ।।
कृष्णश्चक्रधरः कार्यो नीलोत्पलदलच्छविः ।
इन्दीवरकरा कार्या तथा श्यामा च रुक्मिणी ।।[2]

बृहत्संहिता में इसी प्रकार की प्रतिमा का कुछ भिन्न रूप से वर्णन हुआ है। उसका कथन है कि बलराम कृष्ण के साथ दुर्गा देवी रहती है। उनके दो, चार या आठ हाथ होते हैं। यदि दो हाथ वाली होती हैं तो दाहिने हाथ में लाल कमल और बाँया हाथ कटि पर रखा रहता है। यदि चार हाथ होते हैं तो बाएँ दोनों हाथों में पुस्तक तथा कमल और दोनों दाहिने हाथों में से एक में अक्षमाला और एक वरद हस्त रहता है आठ हाथ होने पर, बाएँ चार हाथों में कमण्डलु, धनुष, पुस्तक और कमल रहता है। दाहिने तीन हाथों में बाण, दर्पण, अक्षमाला और एक हाथ वरद मुद्रा में रहता है।[3] वैखानस आगम देवी के हाथ में लाल कमल बतलाता है।

मथुरा म्यूज़ियम में कृष्ण की इसी प्रकार की प्रतिमा है जिसका उल्लेख राव महोदय ने किया है। कृष्ण के बाएँ हाथ में चक्र स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

१. श्रीमद्भा० १।९।३७.
२. वि० ध० ८५।७२-७४.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २०२-३.

दूसरा हाथ उनका पास की बनी हुई देवी के स्कन्ध पर रखा है, उनके एक हाथ में कमल है। देवी के पास हल मूसल धारण किये हुए बलराम खड़े हैं। इस प्रतिमा में देवी के केवल दो हाथ हैं।[१] अतः यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्ग का स्पष्टीकरण प्रतीत होती है। प्रतिमाओं के गले में पुष्पमालाएँ हैं और सिर के बाल ऊपर की ओर सुन्दरता से बँधे हैं।

योगीश्वर रूप—इस रूप के अन्तर्गत कृष्ण के उन अनेक रूपों का वर्णन है जिनके दर्शन नारद ने एक समय में ही किये। एक बार नारदजी कृष्ण से मिलने द्वारका गये। कृष्ण के अन्तःपुर में जब वे पहुँचे तो उन्होंने रुक्मिणीजी के साथ कृष्ण को बैठे हुए देखा। देवर्षि को देखकर कृष्ण उठ खड़े हुए और उनका स्वागत किया—

विप्रोददर्श चमरव्यजनेन रुक्म—
दण्डेन सात्त्वतपतिं परिवीजयन्त्या ॥[२]

तत्पश्चात् उसी समय नारद कृष्ण की दूसरी पत्नी के महल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण को अपनी पत्नी तथा उद्धव के साथ चौसर खेलते हुए देखा। वहाँ भी इन्हें देखकर कृष्ण खड़े हो गये और कब पधारे ऐसा प्रश्न पूछा।[३] वे उसी समय विभिन्न महलों में गये, कहीं कृष्ण को बच्चों को प्यार करते, कहीं स्नान करते, कहीं यज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणों को भोजन कराते, कहीं सन्ध्या वन्दन करते, कहीं शस्त्र का अभ्यास करते, कहीं हाथी-घोड़े पर चढ़ते, कहीं अपनी अन्य स्त्रियों के साथ हास्य-विनोद करते, कहीं एकान्त में बैठकर पुराण पुरुष का ध्यान करते हुए देखा। एक ही समय में कृष्ण के इन अनेक रूपों को देख कर नारद अत्यन्त विस्मित हुए और कृष्ण से बोले—

योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥
विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम्।
योगेश्वरात्मन् निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥[४]

कृष्ण योगेश्वर हैं और अपनी योगमाया के आश्रय से वे अनेक रूप धारण कर लेते हैं, यही उनका सर्वव्यापी रूप है।

पार्थसारथी रूप—भीष्म पितामह ने मृत्यु के समय कृष्ण के इस रूप का ध्यान किया। इस रूप में उनके शरीर का वर्ण श्याम तमाल के समान साँवला है। उनके

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भाग १ पृ० २०५ प्ले० ५८.
२. श्रीमद्भा० १०।६९।१३.
३. दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ॥ श्रीमद्भा० १०।६९।२०.
४. श्रीमद्भा० १०।६९।३७-३८.

शरीर पर सूर्य की रश्मियों के समान स्वर्णिम पीताम्वर है । घोड़ों की टापों से उठी हुई धूल से धूसरित घुँघराली अलकें उनके मुख कमल पर शोभित रहती हैं । मुख पर पसीने की छोटी-छोटी बूँदें झलकती रहती हैं, शरीर बाणों से बिंधा है—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं
रविकर गौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं
....
युधितुरगरजो विधूम्रविष्वक्
कचलुलित श्रमवार्यलङ्कृतास्ये
मम निशितशरैर्विभिद्यमानस्त्वचि ।।[1]

अर्जुन के कहने से उन्होंने अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के मध्य खड़ा कर दिया । युद्ध में पितामह ने उन्हें शस्त्र ग्रहण कराने की प्रतिज्ञा की थी । अतः उन्होंने कृष्ण का शरीर बाणों से वींध कर उनका कवच छिन्न-भिन्न कर डाला । उस समय क्रुद्ध होकर कृष्ण रथ से कूद पड़े और रथ का पहिया लेकर पितामह पर झपटे । इस समय उनका दुपट्टा कन्धे से गिर गया था ।

धृत रथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु
र्हरिरिव हन्तुमिमं गतोत्तरीयः ।
शितविशिखहतो विशीर्णदंशः
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।[2]

ऐसे वीर कृष्ण अर्जुन के सारथी हैं । युद्ध क्षेत्र में अर्जुन का रथ चलाते हैं ।[3] उनके बायें हाथ में घोड़ों की रास तथा दाहिने हाथ में चाबुक रहती है ।[4] महाभारत के युद्ध में कृष्ण ने ऐसी अपूर्व शोभा धारण की ।

राव महोदय ने पार्थ-सारथी की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है जो त्रिपलीकन के पार्थसारथी मन्दिर में है। किन्तु यह प्रतिमा उपर्युक्त प्रसङ्ग से कुछ भिन्न है । मन्दिर के बीच की प्रतिमा पूर्व की ओर मुख किये है। इसी के समीप कृष्ण की दो भुजा वाली प्रतिमा है । कृष्ण के शरीर पर कवच है । उनके एक हाथ में शङ्ख है तथा दूसरा वरद

---

१. श्रीमद्भा० १।९।३३-३४.
२. श्रीमद्भा० १।९।३७-३८.
३. श्रीमद्भा० १।९।३५.
४. विजयरथ कुटुम्ब आत्ततोत्रे ।
धृतह्यरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये । श्रीमद्भा० १।९।३९.

मुद्रा में है । कृष्ण के दाहिनी ओर रुक्मिणी हैं । उनके दाहिने हाथ में कमल है और बायाँ हाथ लटका हुआ है । यहीं पर सात्यकी की भी प्रतिमा है । दक्षिणी दीवाल पर बलराम बने हैं । उनके दाहिने हाथ में हल है तथा बायाँ हाथ वरद मुद्रा में है । उत्तरी दीवाल पर सङ्कर्षण तथा अनिरुद्ध बने हैं । प्रत्येक के दाहिने हाथ में दण्ड है और बायाँ हाथ वरद मुद्रा में है। यह प्रतिमा एक ब्राह्मण ने बनाई है।[1]

समाधिस्थ रूप––जब कृष्ण ने बलराम को शरीर छोड़ते हुए देखा तो वे बड़े दुःखी हुए और वे भी एक पीपल के पेड़ के नीचे जाकर पृथ्वी पर बैठ गये ।[2] उस समय श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज रूप धारण कर रखा था । उनके प्रकाश से सभी दिशाओं का अन्धकार दूर हो रहा था। उनके शरीर का वर्ण वर्षाकालीन मेघ के समान साँवला था । वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था । वे शरीर पर रेशमी पीताम्बर पहने और उसी प्रकार का दुपट्टा डाले हुए थे । कमल मुख पर मुस्कान तथा कपोलों पर नीली-नीली लटकती हुई अलकें बड़ी सुन्दर लगती थीं । नेत्र कमल के समान कोमल तथा सुन्दर थे । कानों में मकराकृति कुण्डल जगमगा रहे थे । कमर में शोभित हुई करधनी की लड़ियाँ लटक रही थीं । कन्धे पर यज्ञोपवीत पड़ा था । मस्तक पर बहुमूल्य मणि-जटित मुकुट, कलाइयों में कङ्गन, भुजाओं में केयूर, वक्षःस्थल पर हार, चरणों में नूपुर, अँगुलियों में अँगूठियाँ तथा गले में कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी और वनमाला घुटनों तक लटक रही थी । शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध मूर्त्तमान होकर प्रभु की सेवा कर रहे थे । उस समय प्रभु अपनी जाँघ पर बाँया चरण रखे हुए थे । अतः लालकमल के समान चमकता हुआ उनका लाल तलवा दूर से हरिण के मुख के समान प्रतीत हो रहा था ।[3] इसी भ्रम से जरा नामक व्याध ने उनके तलवे को बाण से बींध

१. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २११-१२.

२. रामनिर्वाणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ।
निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ।। श्रीमद्भा० १०।३०।२७.

३. बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णुऽप्रभया स्वया ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इवपावकः ।।
श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।
कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ।।
सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् ।
पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।
कटिसूत्र ब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः ।
हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ।।
वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ।
कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम ।।
श्रीमद्भा० ११।३०।२८-३२.

दिया परन्तु समीप आकर चतुर्भुज रूपधारी प्रभु को देखकर क्षमा याचना करने लगा।[1] भगवान् ने अपने गले में तुलसी की माला धारण कर रखी थी उसी की सुगन्ध को सूँघते-सूँघते उनका सारथी दारुक गरुड़ध्वज रथ लेकर आया और उनके चरणों पर गिर कर प्रलाप करने लगा। वह कुछ भी नहीं कह पाया था कि बीच में ही भगवान् का गरुड़ध्वज से चित्रित रथ आकाश में उड़ गया और उसके साथ ही सब दिव्य आयुध भी चले गये।[2]

बाल मुकुन्द अथवा वट-पत्रशायी रूप—एक बार मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् नरनारायण उनके समक्ष उपस्थित हुए और वर माँगने के लिए कहा। उन्होंने नरनारायण की उस माया के दर्शन करने की इच्छा की जिससे मोहित होकर लोक और लोकपाल अद्वितीय ब्रह्म में अनेक प्रकार के भेद-विभेद देखने लगते हैं।[3] ऐसा वरदान देकर प्रभु बदरिकाश्रम चले गये।

एक बार वे संध्या के समय पुष्पभद्रा नदी के तट पर भगवान् की उपासना में तन्मय थे। उसी समय अचानक जोर की आँधी चलने लगी, आकाश में बादल मँडराने लगे, बिजली कड़कने लगी और घनघोर वर्षा होने लगी। समुद्र ने चारों ओर से पृथ्वी को घेर लिया। उसमें तीव्र लहर तथा भँवर पड़ने लगे। चारों ओर मगर उछलने लगे। ऊपर नीचे सब ओर जल ही जल दिखायी देने लगा। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, द्वीप, पर्वत, दिशाएँ सब जल में डूब गयीं।[4] केवल मार्कण्डेयजी बच रहे। वे अपनी जटाएँ फैलाकर पागलों की भाँति प्राण बचाने के लिए इधर-उधर घूमने लगे।[5] उन्हें कभी हवा का झोंका लगता, कभी तरङ्गों में बह जाते, कभी शोकग्रस्त होते, कभी मोहग्रस्त। इसी तरह प्रलय समुद्र में भटकते हुए उन्हें करोड़ों वर्ष बीत गये।[6]

एक दिन उन्होंने पृथ्वी के टीले पर बरगद का छोटा सा पेड़ देखा। उस वृक्ष के हरे-हरे पत्तों में लाल-लाल पुष्प लगे हुए थे। वृक्ष के ईशान कोण पर स्थित

---

१. मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ॥
चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृत-किल्पिषः।
भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥ श्रीमद्भा० ११।३०।३३-३४.

२. श्रीमद्भा० ११।३०।४४-४५.

३. अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोक शिखामणे।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः स पालो वेद सद्भिरदाम् ॥ श्रीमद्भा० १२।९।६.

४. श्रीमद्भा० १२।९।१०-१५.

५. स एक एवोर्वरितोमहामुनि
बंभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥श्रीमद्भा० १२।९।१५.

६. श्रीमद्भा० १२।९।२०.

एक डाल पर पत्तों का एक दोना बन गया था। उन्हें उसी पर एक छोटा-सा शिशु लेटा हुआ दिखाई पड़ा। उसके शरीर से निकलती हुई ज्योति सब ओर के अन्धकार को नष्ट कर रही है--

स कदाचिद् भ्रमन्तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि द्विजः।
न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥
प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम्
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥[1]

मरकत मणि के समान श्यामल शरीर वाले सुन्दर शिशु के मुख मण्डल से तेज फूट रहा है। शङ्ख के समान उतार-चढाव वाला कण्ठ, छाती चौड़ी तथा तोते की चोंच के समान सुन्दर नासिका है। भौंहें सुन्दर बनी हुई हैं और काली-काली घुँघराली अलकें कपोलों पर लटक रही हैं जो साँस लेने से भी कभी-कभी हिल जाती हैं। शङ्ख के समान घुमावदार कानों में अनार के लाल पुष्प शोभित हैं। मूँगे के समान लाल होठों पर श्वेत मुस्कान छाई है। कमल के भीतरी भाग के समान लाल नेत्र, तथा गम्भीर नाभि है। पीपल के पत्ते के आकार की छोटी सी तोंद है। श्वास लेते समय उस पर बलें पड़ जाती हैं और नाभि भी कभी कभी हिल जाती है।[2] नन्हें नन्हें हाथ में सुन्दर अँगुलियाँ हैं। वह शिशु अपने दोनों करकमलों से चरण का अँगूठा पकड़कर मुख में डाल रहा है—

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः॥[3]

उस दिव्य शिशु के दर्शन कर मुनि की थकावट जाती रही। उनके नेत्र कमल खिल गये। मन में अनेक शङ्काएँ उठने लगीं और वे उस शिशु से कुछ पूछने के लिए उसके समीप जाने का प्रयास करने लगे। मुनि शिशु के समीप तक पहुँच भी न पाये थे कि उसकी

---

१. श्रीमद्भा० ११।९।२०-२२.
२. महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम्।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥
श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम्।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥
पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम्।
श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम्।
श्रीमद्भा० १२।९।२२-२४.
३. श्रीमद्भा० १२।९।२५.

श्वास के साथ मच्छर के समान उदर में चले गये ।[१] अन्दर पहुँच कर उन्होंने प्रलय के पूर्व में विद्यमान सम्पूर्ण सृष्टि के दर्शन किये । उन्हें आकाश, अन्तरिक्ष, नक्षत्र, समुद्र, पृथ्वी, नगर, गाँव तथा अपना आश्रम सब यथास्थान दिखायी दिया । उसी क्षण वे शिशु की श्वास के साथ बाहर आकर प्रलय समुद्र में गिर पड़े[२] और पुनः उसी रूप में पत्र पुट पर शिशु के दर्शन किए--

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं ।
वटं च तत् पर्णपुटे शयानम् ।।[३]

बड़ी देर तक निर्निमेष नेत्रों से वे शिशु की ओर देखते रहे फिर शिशु के रूप में क्रीडा करने वाले इन्द्रियातीत प्रभु का आलिङ्गन करने के लिए आगे बढ़े परन्तु वे उसके समीप तक पहुँच भी न पाये थे कि शिशु अन्तर्ध्यान हो गया । उसके अन्तर्ध्यान होते ही वह टीला, बरगद का वृक्ष सब विलीन हो गये । प्रलयकालीन वातावरण भी समाप्त हो गया और उन्होंने अपने को पूर्ववत् पुष्पभद्रा नदी के तट पर बैठे हुए भगवान का ध्यान करते पाया ।[४] राव महोदय ने वट पत्रशायी रूप की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है । पत्थर पर पीपल का पत्र बना है उस पर मुकुन्द भगवान् लेटे हुए अपने पैर का अँगूठा चूस रहे हैं ।[५]

बुद्ध—वैदिक धर्म में हिंसा एवं अनैतिकता का समावेश हो जाने पर उसकी प्रतिक्रिया के रूप में अहिंसा मात्र के पुजारी बौद्ध धर्म ने समाज में प्रवेश किया । शनैः शनैः बौद्ध धर्म न केवल सम्पूर्ण भारत में अपितु भारत से बाहर भी अनेक देशों में प्रसारित हुआ । किन्तु एक समय ऐसा भी आया जब बौद्ध धर्म भी अनैतिक आचरणों से अछूता न रह सका । सब में परस्पर ईर्ष्या-द्वेष, भेद-भाव तथा अनैतिक आचरणों का समावेश हो गया । फलतः इसी धर्म की प्रतिक्रियां के रूप में शनैः शनैः समाज में पौराणिक धर्म ने प्रवेश किया । इस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ही मुख्य त्रिदेव

---

१. तावच्छिशोर्वैश्वसितेन भार्गवः ।
सोऽन्तश्शरीरं मशको यथावित् ।। श्रीमद्भा० १२।९।२७.

२. हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं ।
निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।।
. . . .
बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ।। श्रीमद्भा० १२।९।२९-३०.

३. श्रीमद्भा० १२।९।३१.

४. श्रीमद्भा० १२।९।३३-३४.

५ राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१५ प्ले० ६७ अं० ३.

माने गये। इन तीनो में विष्णु ने अधिक महत्त्व प्राप्त किया और उनके प्रमुख दशावतारों के बीच में बुद्ध की भी गणना होने लगी ।

पुराणों में बुद्ध अजन के पुत्र कहे गये है। कलियुग के प्रारम्भ में उनका यह अवतार देवताओं के द्वेषी को मोहित करने के लिए हुआ। इनका जन्म मगध देश में हुआ था––

ततः कलौसम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ।।[1]

एक अन्य स्थल पर[2] भी कहा गया है कि जिस समय दैत्य गण वेद मार्ग का आश्रय लेकर मय दानव के बनाये नगरों में रह कर सबका सर्वनाश करेंगे उस समय लोगों की बुद्धि में मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करने वाला वेष धारण कर बुद्ध के रूप में अनेक उपधर्मों का उपदेश देंगे। वेद मार्ग का आश्रय लेकर किये जाने वाले सर्वनाश के समाधान के रूप में विष्णु ने बुद्ध अवतार लेकर अहिंसा का प्रचार किया।

विष्णु पुराण में बुद्ध की उत्पत्ति के विषय में बड़ा रोचक वर्णन हुआ है। एक बार मैत्रेय से पराशर ने प्रश्न किया नग्न कौन है ? नग्न किसे कहते हैं, किस प्रकार के आचरण वाला व्यक्ति नग्न की संज्ञा प्राप्त करता है ?[3] इस पर पराशर ने उत्तर दिया कि ऋक्, यजुः और साम सभी वर्णों के आवरण हैं। समस्त वर्णों के वस्त्र वेदत्रयी हैं अतः इन्हीं को मोह से त्याग देने वाला व्यक्ति नग्न कहलाता है––

ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृत्तिर्द्विज ।
एतामुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विज ।।
त्रयी समस्त-वर्णानां द्विज-संवरणं यतः ।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ।।[4]

उनकी उत्पत्ति के विषय में वशिष्ठ ने भीष्म को बताया था। एक बार सौ दिव्य वर्ष तक युद्ध होते रहने के पश्चात् देवगण असुरों से हार गये। तब सब देवगण क्षीर सागर के उत्तरी तट पर जाकर भगवान् विष्णु की आराधना तथा स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति

---

१. श्रीमद्भा० १।३।२४.
२. श्रीमद्भा० २।७।३७.
३. को नग्नः किंसमाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत ।
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया ।। वि० पु० ३।१७।४.
४. वि० पु० ३।१७।५-६.

से प्रसन्न हो कर प्रभु ने अपने शरीर से माया मोह उत्पन्न कर देवों को दिया और कहा कि यही बुद्धरूप में अवतरित होकर असुरों को वेदत्रयी से मोहित कर भ्रष्टाचरण वाला बनायेगा ।[1] तत्पश्चात् उस दिगम्बर, मयूरपिच्छधारी, मुण्डित केश वाले माया मोह ने नर्मदा के तट पर तपस्या करते हुए असुरों से जाकर उनके तप का कारण पूछा-

ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज ।
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत् ।।[2]

शीघ्र ही नाना प्रकार की युक्तियों एवं अतिरञ्जित वचनों द्वारा मायामोह ने उन्हें वैदिक मार्ग से भ्रष्ट कर दिया। इस धर्म का नाम अर्हत् (आदर करने योग्य) तथा उसके अनुयायियों का आर्हत् नाम पड़ा ।[3] इस धर्म को जानो (बुद्धयत), समझो (बुद्धयध्वं) आदि के द्वारा मायामोह ने बुद्ध धर्म का निर्देश कर असुरों से उनका धर्म छुड़ा दिया—

एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।
मायामोहः सदैतेयान्धर्ममत्याजयन्निजम् ।।[4]

अन्त में इसी प्रकार का आचरण करते-करते असुरों का स्वधर्म कवच नष्ट हो गया और वे शीघ्र ही देवों से पराजित हुए। इस प्रकार विष्णु पुराण बुद्ध धर्म की बड़ी निन्दा करता है।

बुद्ध को इस पुराण में मुण्डित केश, रक्त वस्त्र पहने हुए दिगम्बर बताया गया है । अन्य अनेक ग्रन्थों में भी बुद्ध के रूप का चित्रण हुआ है। इस अवतार को मानने के विषय में पुराण विभिन्न मत वाले हैं । कुछ विष्णु के दशावतारों में इन्हें स्वीकार करते हैं, कुछ नहीं ।

बृहत्संहिता में प्रसन्न-मूर्ति बुद्ध पद्मासन पर बैठ हुए बतलाये गये हैं—

पद्माङ्कितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिस्सुनीचकेशश्च ।
पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवेद् बुद्धः ।।[5]

---

१. समुत्पाद्यददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान् ।
मायामोहोऽप्यमखिलान्दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति । वि० पु० ३।१७।४१-४२.
२. वि० पु० ३।१८।२.
३. अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन तेयतः ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन ते भवन् ।। वि० पु० ३।१८।१२.
४. वि० पु० ३।१८।१७.
५. बृ० सं० अ० ५६।३६.

अग्नि पुराण बुद्ध को शान्तात्मा, लम्बे कान वाला, गौराङ्ग, पद्म पर स्थित, श्वेत वस्त्रधारी बतलाता है। उनके दोनों हाथ वरद एवं अभय मुद्रा में रहते हैं।[१] विष्णु-धर्मोत्तर में वर्णित बुद्ध का लक्षण अधिक स्वाभाविक एवं स्पष्ट है। उसका कथन है—

काषायवस्त्रसंवीतस्स्कन्धसंसक्तचीवरः।
पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी बुद्धः प्रकीर्तितः॥[२]

अर्थात् बुद्ध को कषाय वस्त्रधारी, स्कन्ध पर वल्कल वस्त्र पड़ा हुआ, पद्मासनस्थ, दो भुजा वाला होना चाहिए। उन्हें ध्यानयुक्त हाथ वरद तथा अभय मुद्रा में चित्रित करना चाहिए। रूपमण्डन ने बुद्ध को पद्मासन लगाकर बैठे ध्यानमग्न, आभूषणशून्य, कषाय वस्त्रधारी बताया है।[३]

कला के अन्तर्गत दिखाया जाने वाला बुद्ध का यही रूप है। विष्णु के दशावतारों के साथ ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा भी बनी है। ये अवतार विष्णु के पीछे बनी हुई प्रभावली पर बने हैं। वे मत्स्यावतार से प्रारम्भ होकर सिर पर होते हुए बाँयी तरफ नीचे की ओर तक दिखाये गये हैं। विष्णु की योगेश्वर मूर्ति[४], चन्नकेशवमूर्ति[५] और दत्तात्रेय[६] की मूर्तियों का उल्लेख राव महोदय ने किया है। इनमें बुद्ध ध्यान मुद्रा में पद्मासन लगाये बैठे हैं, दोनों हथेली एक दूसरी पर गोद में रखी हुई हैं।[७] बोरोबुडूर नामक स्थान में एक ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा है जिसको डॉ० आनन्दस्वामी ने प्रकाशित की है। बुद्ध योगासन लगाये बैठे हैं। नेत्र ध्यान में बन्द हैं। बड़ा ही सौम्य तथा शान्त मुख है। हाथ दोनों गोद में हैं।[८]

कल्कि— विष्णु का यह अवतार अभी नहीं हुआ है। कलियुग के अन्त के समीप होगा। जब सब राजा लुटेरे हो जायेंगे,[९] ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी

१. शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदामयदायकः। अग्नि पु० ४९।९.
२. वि० ध० ८५।८१.
३. बुद्ध-पद्मासनो रक्तस्त्यक्ताभरणमूर्धजः।
काषायवस्त्रोध्यानस्थो द्विभुजो कार्द्धपाणिकः॥ रूपम० अ० ४।३०।३१.
४. राव गो० ना० ए० हि० आ० भाग १ सं० १ प्लेट २४ पृ० २२०
५. वही पृ० २२०.
६. वही प्ले० ३ पृ० २२०
७. वही पृ० २२०.
८. वही प्ले० ५८ पृ० २२१.
९. श्रीमद्भा० २।७।३७.

और शूद्र राजा होंगे, कभी स्वाहा, स्वधा तथा वषट्कार की ध्वनि नहीं सुनाई देगी।[1] उस समय कलियुग पर शासन करने के लिए विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर में विष्णु का कल्कि अवतार होगा।[2] श्रीमद्भागवत में कल्कि का उल्लेख तो अनेक बार हुआ है किन्तु उसके रूप का विशेष उल्लेख नहीं हुआ। अग्नि पुराण[3] ने कल्कि को २ रूपों में प्रदर्शित करने का आदेश दिया है--

१. धनुष पर बाण चढ़ाये हुए म्लेच्छों को मारने में तत्पर तथा

२. अश्व पर बैठे हुए हाथ में खड्ग, शङ्ख, चक्र और शर लिये हुए। दोनों रूपों में से कोई भी बनाया जा सकता है। दूसरे रूप के शस्त्र उनकी चार भुजाओं की ओर सङ्केत करते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में चित्रित कल्कि का रूप अंशतः भिन्न है। वह कल्कि को दो भुजा वाला बतलाता है--

खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो ह्यारूढो महाबलः।
म्लेच्छोच्छेदकरः कल्कि द्विभुजः परिकीर्तितः॥[4]

अर्थात् कल्कि हाथ में खड्ग पकड़े हुए, क्रुद्ध, अश्वारूढ़, बलवान् और म्लेच्छों को मारने के लिए उद्यत दो हाथ वाले हैं। रूपमण्डन में कल्कि को हाथ में खड्ग लिये हुए अश्वारूढ़ कहा गया है।[5] वैखानस आगम उन्हें चार भुजा वाला कहता है। इनका मुख अश्व के समान तथा शेष शरीर मनुष्य के आकार का होता है। हाथों में शङ्ख, चक्र, खड्ग तथा खेटक रहता है। आकार भयानक होता है।[6]

दशावतारों के चित्रण के मध्य कल्कि की प्रतिमा देखने को मिलती है। इसकी पृथक् प्रतिमा के उदाहरण बहुत कम हैं। कल्कि के रूप तथा लक्षणों को देखकर बी० सी० भट्टाचार्य ने इसे सूर्य के पुत्र रेवन्त से कुछ साम्य रखता हुआ बताया है।

---

१. स्वाहास्वधावषडिति स्म गिरो न यत्र।
शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान युगान्ते॥ श्रीमद्भा० २।७।३८.
२. श्रीमद्भा० १।३।२५.
३. धनुस्तूणान्वितः कल्की म्लेच्छोत्सादको द्विजः।
अथवाश्वस्थितः खड्गी शङ्खचक्रशरान्वितः॥
अग्नि पु० ४९।९.
४. वि० ध० ८५।७१.
५. कल्की सखडगोऽश्वारूढ़ोहरेरवतराइमे॥ रूपम० अ० ४।३४.
६. कल्किनं....अश्वाकारं मुखमन्यन्नराकारं चतुर्भुजं।
चक्रशङ्खधरं खड्गखेटकधरमुग्ररूपं भयानकमेव देवरूप....
वै० आ० ५३.

अन्तर केवल इतना है कि रेवन्त के पीछे कुत्ते, गायक तथा अन्य अनुचर रहते हैं।[1] भट्टाचार्य ने कल्कि की एक स्वतन्त्र प्रतिमा का उल्लेख किया है जो वाराणसी में है।[2] राव महोदय ने एक कल्कि की प्रतिमा का उल्लेख किया है। इसमें वे दो भुजा वाले तथा अश्वारूढ़ हैं। हाथ में खड्ग लिये हैं जो ऊपर की ओर उठी हुई विष्णुधर्मोत्तर के 'खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढ़े महाबलः' प्रसङ्ग का स्मरण दिलाती है। इस प्रतिमा का मुख बड़ा भयानक है।[3]

गौण अवतार—– दशावतारों के अतिरिक्त वैष्णव पुराणों में विष्णु के कुछ अन्य अवतारों का भी वर्णन हुआ है जो दशावतारों की भाँति महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इनमें व्यास, धन्वन्तरि, कपिल, हयशीर्ष तथा मोहिनी आदि उल्लेखनीय हैं।

व्यास—–व्यास महाभारत के रचयिता हैं। महाभारत की रचना करते समय इन्होंने गणेशजी का स्मरण किया। गणेशजी उपस्थित हो गये। गणेश व्यास के बोलते उस पर व्यास ने उनसे कहा कि वे भी श्लोक का अर्थ बिना ही तुरन्त लिख डालते थे। तब उन्होंने व्यास से कहा कि वे लिखते समय रुकेंगे नहीं। समझे हुए न लिखें। व्यास अनेक कूट-श्लोक बीच में बोलते थे। उनको समझने में गणेशजी को देर लगती थी। उतनी देर में वे आगे सोच लेते थे। व्यास सत्यवती तथा पराशर ऋषि के पुत्र थे। इन्हें भी विष्णु का अवतार माना गया है।[4] वैष्णव पुराणों में इनके रूप तथा आकार का वर्णन बहुत कम हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर इन्हें काले वर्ण वाला, गहरी भूरी जटाओं वाला बतलाता है। सुमन्त, जैमिनि, पैल तथा वैशम्पायन ये चारों शिष्य उनके समीप उपस्थित रहते हैं——

कृष्णकृशतनुर्व्यासः पिङ्गलोऽति जटाधरः।
सुमन्तुजैमिनिपैलोवैशम्पायन एव च।
तस्य शिष्यास्तु कर्त्तव्याश्चत्वारः परिपार्श्वयोः॥[5]

ऋषियों के लक्षणों के अनुसार व्यासदेव का जटाधर कृशतनु यह रूप उपयुक्त है। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार ऋषियों को जटाजूट धारण किये हुए, दुर्बल, तेजयुक्त, कृष्णाजिन धारण किये हुए बताया गया है——

---

१. भट्टाचार्य बी० सी०-इण्डियन इमेजेज् पृ० १३.
२. वही पृ० १६.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २२४ प्ले० ३५.
४. महा० आदि ७।२४-२९.
५. वि० ध० ८५।६५–६६.

ऋषयस्तत्र कर्त्तव्या जटाजूटोपशोभिताः ।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गा दुर्बलास्तेजसान्विताः ।।[1]

धन्वन्तरि--वारुणी देवी के प्रकट होने के पश्चात् जब देव तथा दैत्यों ने पुनः अमृत की इच्छा से समुद्र मन्थन करना प्रारम्भ किया तब उसमें से एक अलौकिक एवं सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ । उसकी भुजाएँ खूब लम्बी एवं मोटी थीं । गला शङ्ख के समान उतार-चढ़ाव वाला बना था, आँखों में लालिमा थी । शरीर का रङ्ग साँवला था । गले में माला तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आभूषण सुशोभित थे। शरीर पर पीताम्बर, कानों में चमकीले मणियों के कुण्डल थे। उसका वक्षस्थल चौड़ा, अवस्था तरुण, सौन्दर्य अनुपम था । वह सिंह के समान बलवान् था और सिर पर चिकने घुँघराले बाल शोभित थे। वे हाथों में कङ्गन पहने थे और दोनों हाथों से अमृत घट पकड़े हुए थे ।[2] यही आयुर्वेद के प्रवर्तक आचार्य धन्वन्तरि थे ।[3] इन्हें विष्णु भगवान् का अंशांश अवतार माना गया है--

सवै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ।।[4]

विष्णुधर्मोत्तर धन्वन्तरि को अच्छे रूप वाला, प्रियदर्शन तथा दोनों हाथों में अमृत का कलश लिये हुए बनाने का आदेश देता है--

धन्वन्तरिश्च कर्त्तव्यः सुरूपः प्रियदर्शनः ।
करद्वयगतं चास्य सामृतं कलशं भवेत् ।।[5]

कपिल--कपिलदेव महर्षि कर्दम तथा देवहूति के पुत्र थे । एक बार कर्दम ऋषि ने अत्यन्त घोर तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्वेत कमल तथा कुमुद पुष्पों की बनी हुई माला, रत्नजटित मुकुट, निर्मल वस्त्र, कुण्डल धारण किये हुए,

---

१. वि० ध० ४२।३-४.
२. उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ।।
दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ।।
पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
स्निग्ध कुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ।।
अमृतापूर्णकलशं विभ्रद् वलयभूषितः ।।
श्रीमद्भा० ८।८।३१-३२.
३. धन्वन्तरिरितिख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ।श्रीमद्भा० ८।८।३५.
४. श्रीमद्भा० ८।८।३४.
५. वि० ध० ७३।४१.

शङ्ख, चक्र, गदा तथा एक हाथ में श्वेत क्रीडा कमल लिये हुए गरुड़ पर आरुढ़ भगवान् उनके समक्ष उपस्थित हुए । उनके चरण कमल गरुड़ के स्कन्ध पर थे––

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् ।
स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ।
किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ।।
विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ।
दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षः श्रियं कौस्तुभकन्धरम् ।।[1]

कर्दम ने भगवान की स्तुति की, उन्होंने अपने अंश से उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होने का वरदान दिया ।[2] उन्होंने शीघ्र ही अपनी योगमाया से देवहूति के गर्भ से कपिल मुनि के रूप में अवतार ग्रहण किया––

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।
भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ।।[3]

इनके सुनहले बाल, कमल के समान विशाल नेत्र तथा कमलाङ्कित चरण थे ।[4] विष्णु-धर्मोत्तर में कपिल के रूप का स्पष्ट उल्लेख हुआ है । वे पद्मासन पर बैठे हुए सिर पर जटामण्डल धारण किये हुए हैं । उनके नेत्र ध्यान करने से बन्द रहते हैं । वे वायु के वेग को अपने शरीर में रोकने के कारण पृथुलस्कन्ध वाले हैं, उनके चरणों में कमल के चिह्न बने रहते हैं । शरीर पर मृगचर्म पहनते हैं और शुभ्र यज्ञोपवीत उनके स्कन्ध पर पड़ा रहता है––

पद्मासनोपविष्टश्च ध्यानसंमीलितेक्षणः ।।
कर्त्तव्यः कपिलो देवो जटामण्डलदर्द्शः ।
वायुसंरोधपीनांसः पद्माङ्कचरणद्वयः ।।
मृगाजिनधरो राजन् शुभयज्ञोपवीतमान् ।[5]

---

१. श्रीमद्भा० ३।२१।९-१०.
२. श्रीमद्भा० ३।२१।३२.
३. श्रीमद्भा० ३।२४।१६.
४. हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ।। श्रीमद् ० ३।२४।१७.
५. वि० ध० ७७।१।२-४.

प्रद्युम्न का वैराग्य रूप ही कपिल रूप है।[1] इस रूप में वैराग्यरूप से स्थित रहकर वे ध्यानमग्न होकर अपने परमपद का चिन्तन किया करते हैं। यही कपिल मुनि सांख्य के प्रवक्ता भी हैं—

वैराग्यभावेन महानुभावो
ध्याने स्थितः स्वं परमं पदं तत् ।
ध्यायन्नथास्ते भुवनस्य गोप्ता
साङ्ख्यप्रवक्ता पुरुषः पुराणः ।।[2]

वैखानस आगम कपिल के रूप का कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन करता है। उसका कथन है कि कपिल के आठ हाथ हैं, वे पूर्व की ओर मुख करके बैठे रहते हैं। उनके दाहिने चार हाथों में से एक अभय मुद्रा में रहता है, शेष तीन हाथों में चक्र, खड्ग और हल रहते हैं। बाँयी ओर तीन हाथों में शङ्ख, पाश और दण्ड रहता है और एक हाथ कटि पर रखा है। उनके वस्त्र लाल होते हैं और दोनों ओर गायत्री और सावित्री की प्रतिमा बनी होती है।[3]

हयशीर्ष—जिस समय हयग्रीव दैत्य ब्रह्मा के हाथ से वेद लेकर भागा उस समय वे न जान पाये। विष्णु ने यह देखकर हयशीर्ष रूप धारण किया और जाकर उस दैत्य का वध कर उससे वेद छुड़ाकर ब्रह्मा को लाकर दिया। इस कथा का प्रसङ्ग भागवत पुराण में प्राप्त होता है। इस रूप में भगवान् का सिर अश्व के समान है और वे इसी रूप में पाताल से वेद लाये।[4] अश्वशिरस् के आठ भुजाएँ हैं। चार भुजाओं में वे शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करते हैं। ये चारों आयुध साकार प्रदर्शित किये जाते हैं। शेष चार हाथ समीप में स्थित चार वेदों के सिर पर रहते हैं जो देहधारी होते हैं—

कर्त्तव्योऽष्टभुजो देवस्तत्करेषु चतुःष्वथ ।।
शङ्खचक्रगदापद्मान्साकारान्कारयेद् बुधः ।
चत्वारश्च कराः कार्या वेदानां देहधारिणाम् ।।
देवेन मूर्ध्नि विन्यस्ताः सर्वाभिरणधारिणा ।
अश्वग्रीवेण देवेन पुरा वेदाः समुद्धताः ।।[5]

---

१. प्रद्युम्नंविद्धिवैराग्यंकापिलीं तनुमास्थितम् । वि० ध० ७८।१।१.
२. वि० ध० ७८।१।५.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २४०.
४. वि० ध० ८०।६.
५. वि० ध० ८०।३–५.

अवशिरस् देव के नीले वस्त्र होते हैं इसी कारण इस रूप को सङ्कर्षण का रूप मानने का आदेश दिया गया है––

नीलाम्बरधरः कार्यो देवो हयशिरोधरः ।।
विद्धि सङ्कर्षणाङ्गं वै देवं हयशिरोधरम् ।[1]

वेदों के रूप के निर्माण के विषय में विष्णुधर्मोत्तर कहता है कि सामवेद को अश्व के समान मुख वाला बनाना चाहिए अथवा ऋग्वेद को ब्रह्मा के समान, यजुर्वेद को इन्द्र के समान, सामवेद को विष्णु की भाँति तथा अथर्ववेद को शम्भु की भाँति बनाना चाहिए––

सामवेदस्तु कर्त्तव्यः किं त्वश्ववदनः प्रभुः ।
अथवा देवरूपेण वेदाः कार्या विचक्षणैः ।।
ऋग्वेदस्तु स्मृतो ब्रह्मा यजुर्वेदस्तु वासवः ।
सामवेदस्तथा विष्णुः शम्भुश्चाथर्वणो भवेत् ।।[2]

एक स्थल पर हयशीर्ष देव को शत चन्द्रमा के समान अर्थात् श्वेत शङ्ख, चक्र, गदा धारण करने वाला, वेद हरण से दुःखार्त ब्रह्मा को आश्वासन देने वाला बतलाया गया है–

शशाङ्कशतसंकाश वेदोद्धरणनिश्चित ।
हयग्रीव त्वमभ्येहि शङ्खचक्रगदाधर ।।
वेदाहरण दुःखार्तसमाश्वासित पद्मज ।[3]

नुग्हाली के मन्दिर में एक प्रतिमा प्राप्त होती है। इस प्रतिमा के नीचे छोटा-सा संस्कृत का लेख है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह हयग्रीव की प्रतिमा है। विष्णुधर्मोत्तर के कथन के अनुसार ही इस प्रतिमा में आठ हाथ तो हैं किन्तु हाथों के आयुधों में कुछ अन्तर है। चार हाथों में तो शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म हैं किन्तु शेष चार हाथों में वेद के स्थान पर बाण, खड्ग, खेटक और धनुष है। इस प्रतिमा के नीचे ढाल तथा तलवार लिये हुए एक राक्षस बना है। राव महोदय ने अपने ग्रन्थ में इस प्रतिमा का उल्लेख किया है।[4]

---

१. वि० ध० ८०।२–३.
२. वि० ध० ७३।४२–४३.
३. वि० ध० १०६।७८–७९.
४. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २६१.

मोहिनी—श्रीमद्भागवत में विष्णु के मोहिनी रूप का प्रसङ्ग दो स्थलों पर प्राप्त है—

१. समुद्र मन्थन के समय तथा

२. महादेवजी के समक्ष ।

जब समुद्र से अमृत उत्पन्न हुआ तो धन्वन्तरि के हाथ से दैत्यों ने शीघ्र ही अमृत का कलश छीन लिया और पहले अमृत पीने के लिए परस्पर लड़ने लगे । उसी समय देवताओं के उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए भगवान् विष्णु ने एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री का रूप धारण किया । यही भगवान् का मोहिनी रूप है । मोहिनी का रंग नीलकमल के समान श्याम था । उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त आकर्षक बने हुए थे। दोनों सुन्दर कानों में कर्णफूल शोभित थे । कपोल सुन्दर, ऊँची नासिका तथा मुख बड़ा ही रमणीय बना हुआ था । उसका शरीर सुडौल तथा कमर पतली थी । मुख से सुगन्ध निकल रही थी । केश खूब लम्बे थे और उनमें खिले हुए बेले के पुष्प गुँथे हुए थे । वह गले में सुन्दर आभूषण तथा भुजाओं में केयूर पहने हुए थी । चरणों में नूपुर थे । शरीर पर स्वच्छ साड़ी पहने थी तथा ऊपर से करधनी बाँधे थी। उसकी सलज्ज मुस्कराहट, नाचती हुई तिरछी भौंह, विलास भरी चितवन सबका मन लुभा रही थी ।[1] इस प्रकार के सुन्दर एवं अद्भुत स्त्री के रूप को विष्णु ने शीघ्र ही देवों का हित करने के लिए धारण कर लिया—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वापायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ।।[2]

वह सुन्दर रूप वाली मोहिनी शीघ्र ही अमृत कलश लेकर सभा में अमृत बाँटने के लिए आई । वहाँ सभी देवता तथा दैत्य अलग-अलग पंक्ति में पूर्व की ओर मुख करके

---

१. प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ।।
नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालि झङ्कारोद्विग्नलोचनम् ।।
बिभ्रत् स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ।।
विरजाम्बरसंवीत नितम्बद्वीपशोभया ।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ।।
सव्रीडस्मित विक्षिप्तभ्रू—विलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथप चेतःसु काममुद्दीपयन् मुहुः ।। श्रीमद्भा० ८।८।४२–४६.

२. श्रीमद्भा० ८।८।४१.

बैठे हुए थे । सुन्दरी की साड़ी इधर उधर खिसक रही थी । नितम्ब भार के कारण वह धीरे-धीरे चल रही थी । उसकी आँख मद से विह्वल थीं और कलश के समान स्तन तथा गजशावक की सूँड की भाँति जङ्घाएँ थीं । पैरों में पड़े हुए स्वर्ण नूपुर अपनी झनकार से सभामण्डप को मुखरित कर रहे थे। दोनों कानों में कुण्डल थे। अपनी सुन्दरता के कारण वह आयी हुई लक्ष्मीजी की सखी की भाँति लग रही थी । जब उसने अपनी मुस्कानभरी चितवन देव तथा दैत्यों पर डाली तो सभी मुग्ध हो गये ।[1] दैत्यों के ऊपर रूप की मोहिनी डालने के बहाने से उन्होंने शीघ्र ही देवों को अमृत पिला दिया और दानवों के समक्ष ही अपना वह मोहिनी रूप त्यागकर वास्तविक रूप धारण कर लिया––

पीतप्रायेऽमृतेदेवैर्भगवान्लोकभावनः
पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ।।[2]

जब शङ्करजी ने सुना कि प्रभु ने मोहिनी रूप द्वारा दैत्यों को मोहित कर देवों को अमृत पिला दिया तो वे भी उस रूप को देखने की लालसा से पार्वतीजी के साथ बैल पर बैठकर बैकुण्ठ गये[3] और प्रभु के समक्ष अपनी लालसा प्रकट की। उसी समय ही भगवान् वहाँ से अन्तर्ध्यान होगये। शीघ्र ही शङ्करजी ने अपने सामने अनेक प्रकार के सुन्दर पुष्पों एवं फूलों से भरा उपवन देखा । उसमें एक सुन्दर स्त्री गेंद उछाल-उछाल कर खेल रही थी । बड़ी सुन्दर साड़ी पहने थी और कमर में करधनी की लड़ियाँ लटक रही थीं । लाल-लाल पल्लवों के समान चरण थे और ठुमक-ठुमक कर चल रही थी। बड़ी चञ्चल उद्विग्न आँखें थीं। उछाली हुई गेंद को रोकने के लिए इधर-उधर भाग रही थी । कपोलों पर कानों के कुण्डलों की आभा जगमगा

---

१. प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ।।
तस्यां नरेन्द्रकरभोरूरुशद्दुकूल श्रोणी तटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी
स कूजती कनकनूपुर शिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ।।
तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्ण
नासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन
देवासुराविगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ।।
श्रीमदभा० ८।९।१६–१८.

२. श्रीमद्भा० ८।९।२७.

३. श्रीमद्भा० ८।१२।१–२, १२–१३.

रही थी । काली घुँघराली अलकें थीं । कभी उसकी साड़ी खिसकती तथा वेणी खुलती । इस रूप को देखकर शङ्करजी मुग्ध हो गये ।[1]

विष्णुधर्मोत्तर ने मोहिनी के उस रूप का वर्णन किया है जिसमें वे अपने हाथ में अमृत का कलश लिये रहती हैं । उनका शरीर सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित रहता है और वे देखने में बड़ी चतुर लगती हैं--

स्त्रीरूपश्च तथा कार्यः सर्वाभरणभूषितः ।
करेऽमृतघटश्चास्य कर्त्तव्यो भूरिदक्षिणः ।।[2]

भट्टाचार्य महोदय ने एक ऐसी प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमें समुद्र-मन्थन का दृश्य उत्कीर्ण है । उसी के समीप मोहिनी का चित्रण है । मोहिनी की आकृति बड़ी मनमोहक है ।[3]

'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की उक्ति के अनुकूल विष्णु के अवतारों एवं रूपों को समझना अत्यन्त कठिन है । विष्णु के दशावतारों में से कुछ अवतारों ने कालान्तर में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों एवं भक्ति-मार्गों को जन्म दिया । इनमें विशेषतः राम तथा कृष्ण प्रमुख हैं । इन्हीं दोनों को आधार मानकर राम भक्ति सम्प्रदाय तथा कृष्णभक्ति सम्प्रदाय ये दो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हुए । दोनों सम्प्रदायों के भक्तों का शनैः शनैः इतना स्वाभिमान एवं वैमनस्य बढ़ गया कि वे दोनों अपने आगे अन्य सम्प्रदाय के भक्तों को निम्न दृष्टि से देखने लगे । यह स्वाभिमान द्वारिका

---

१. विक्रीडतीं कन्दुकलीलयालसद्
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ।।
आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन–
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे-पदे ।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्–
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ।।
दिक्षु भ्रमत्कन्दुक चापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ।।
श्लथद् दुकूलं कबरीं च विच्युतां–
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ।। श्रीमद्भा० ८।१२।१८–२१.

२. वि० ध० ८५।६०.

३. भट्टाचार्य बी० बी० इ० इमे० भा० १ प्ले० ८आ० २.

के मन्दिर में स्थापित हुई कृष्ण की मूर्ति के समक्ष कहे गये तुलसी के शब्दों से व्यक्त हो जाता है––

कित मुरली कित चन्द्रिका कित गोपिन को साथ ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण लो हाथ ।।

किन्तु ये सभी अवतार जहाँ पर एक स्थान पर ही एक साथ चित्रित हुए दृष्टिगत होते हैं वहाँ पर यह स्वाभिमान समाप्त हो जाता है, क्योंकि इन सब अवतारों के मूल स्रोत विष्णु ही हैं ।

विष्णु के विशिष्ट रूप

विष्णु के कुछ विशिष्ट रूपों का वर्णन वैष्णव पुराणों में आ है। यह रूप सभी देवों से भिन्न है यही इसकी विशेषता है । यह विशेषता विष्णु के आकार-प्रकार, मुखों की संख्या, भुजाओं की संख्या तथा मुद्रा पर आधारित है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ ऐसे भी रूपों का उल्लेख हुआ है जो वास्तव में तो विशिष्ट नहीं हैं किन्तु किसी न किसी प्रसिद्ध कथानक से सम्बद्ध होने के कारण विशिष्ट हो गये हैं । इन सभी रूपों की मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हैं। किसी रूप में वे खड़े हैं, किसी में बैठे हैं तथा किसी में गरुड़ पर आरूढ़ हैं। कहीं पर वे प्रलयकालीन समुद्र में सम्पूर्ण विश्व को अपने में व्याप्त कर शेष की शय्या पर शयन करते हैं ।

श्रीमद्भागवत में कपिलदेव ने भगवान् को अपनी रुचि के अनुसार, खड़े, बैठे, चलते तथा लेटे हुए– इन अनेक रूपों में चिन्तन करने का उपदेश दिया है–

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ।
प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ।।१

विष्णु की प्राप्त प्रतिमाओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है–

१. स्थानक (खड़ी हुई मूर्ति),
२. आसन (बैठी हुई मूर्ति) तथा
३. शयन (लेटी हुई मूर्ति)।

दक्षिण भारत में काञ्जीवरम् के वैकुण्ठप्परुमाल के मन्दिर में, मदुरा के कूडएअल्गर के मन्दिर में तथा तिन्नवेल्ली जिले के मन्नार्कोयिल मन्दिर में उपर्युक्त तीनों प्रकार

---

१. श्रीमद्भा० ३।२८।२९.
२. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ८२.

की विष्णु की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। मन्दिर के बीच में बने हुए तीन मञ्जिले स्थान में ऊपर से नीचे की मञ्जिल की ओर क्रमशः विष्णु की स्थानक, आसन और शयन प्रतिमाएँ हैं।[१]

उपर्युक्त सभी मूर्तियाँ चार प्रकार की होती हैं–

१. योग, २. भोग, ३. वीर तथा ४. आभिचारिक।

योग मुद्रा का योगीजन ध्यान करते हैं। भोग रूप की उपासना प्रसन्नता प्राप्ति के लिए, वीर मुद्रा की उपासना वीरता प्राप्ति के लिए तथा आभिचारिक रूप की उपासना शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए की जाती है।[२] ये चारों प्रकार की प्रतिमाएँ उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन-तीन प्रकार की होती हैं। इनकी भिन्नता का आधार बीच में स्थित विष्णु की प्रतिमा के साथ रहने वाले अन्य देव, देवियाँ तथा महर्षिगण हैं।[३] राव महोदय ने इन सभी प्रतिमाओं का वर्णन विस्तार से किया है। उन सबका वर्णन यहाँ पर अपेक्षित नहीं है। वैष्णव पुराणों में वर्णित विष्णु के कुछ विशिष्ट रूपों का ही वर्णन यहाँ किया गया है, जो निम्न-लिखित हैं–

१. वैकुण्ठ रूप,
२. त्रैलोक्यमोहन रूप,
३. गजेन्द्रमोक्ष रूप,
४. आदिमूर्ति,
५. जलशायिन् रूप,
६. मन्मथ रूप तथा
७. विश्वरूप।

वैकुण्ठ रूप– शुभ्र ऋषि की पत्नी विकुण्ठा के गर्भ से अपने अंश से उत्पन्न होकर विष्णु ने वैकुण्ठ रूप धारण किया और लक्ष्मी की प्रार्थना से वैकुण्ठ धाम की रचना की।[४] इस रूप में विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ रहते हैं। उनके चार मुख तथा

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ७९.
२. वही पृ० ८३.
३. वही पृ० ८०.
४. तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान् स्वयम्।
वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः॥
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया॥ श्रीमद्भा० ८।५।४-५.

आठ भुजाएं होती हैं। विष्णुधर्मोत्तर में बैकुण्ठ को इसी रूप में बनाने का आदेश दिया गया है। विष्णु सभी आभूषणों से सुसज्जित रहते हैं। जल से भरे हुए मेघ के समान श्याम वर्ण वाले शरीर पर वे दिव्य पीताम्वर धारण करते हैं। हृदय पर कौस्तुभमणि शोभित रहती है। विष्णु के चार मुख तथा आठ भुजाएँ रहती है। चारों मुख भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उनका पूर्व का मुख सौम्य (सुन्दर, शोभन), दक्षिण का मुख नृसिंह, पश्चिम का कपिल और उत्तर का वराह रूप का होता है–

> मुखाश्च कार्याश्चित्वारो बाहवो द्विगुणास्तथा।
> सौम्यं तु वदनं पूर्वं नारसिंह तु दक्षिणम्॥
> कापिलं पश्चिमं वक्त्रं यथा वाराहमुत्तरम्॥[१]

उनकी आठों भुजाओं में से दाहिनी चारों भुजाओं में बाण, अक्षमाला, मूसल आदि रहता है और चर्म, चीर, धनुष तथा इन्द्रधनुष वे बायीं चारों भुजाओं में धारण करते हैं–

> तस्य दक्षिणहस्तेषु बाणाक्षमुसलादयः।
> चर्म चीरं धनुश्चेन्द्रं वामेषु वनमालिनः॥[२]

यह रूप आसन मुद्रा में रहता है।

एक अन्य स्थल पर भी बैकुण्ठ की चतुर्मूर्ति प्रतिमा बनाने का उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर में हुआ है। उसका कथन है चार मुखों को धारण करने के कारण ही बैकुण्ठ चतुर्मूर्ति हो जाते हैं–

> एकमूर्तिधरः कार्यो वैकुण्ठेत्यभिशब्दितः।
> चतुर्मुखः स कर्त्तव्यः प्रागुक्तवदनः प्रभुः॥
> चतुर्मूर्तिः स भवति कृते मुखचतुष्टये॥[३]

चारों मुखों में से पूर्व की ओर का मुख सुन्दर होता है और वही प्रधान मुख है। दक्षिण की ओर का मुख ज्ञान का प्रतीक है और वह सिंह के समान होता है।

---

१. देवदेवं तथा विष्णुं कारयेद्गरुडस्थितम्।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं सर्वाभरणधारिणम्
सजलाम्बुदछायं पीतदिव्याम्बरं तथा॥ वि० ध० ४४।९-११.
२. वि० ध० ४४।१२-१३.
३. वि० ध० ८५।४३-४४.

पश्चिम की ओर का ऐश्वर्य का द्योतक मुख बड़ा भयानक होता है–

पूर्वं सौम्यं मुखं कार्यं यत्तु मुख्यतमं विदुः ।
कर्त्तव्यं सिंहवक्त्राभं ज्ञानवक्त्रं तु दक्षिणम् ।।
पश्चिमं वदनं रौद्रं यत्तदैश्वर्यमुच्यते ।
चतुर्वक्त्रस्य कर्त्तव्यं रूपमन्यत्तथेरितम् ।।[1]

यहाँ पर उत्तर की ओर के चौथे मुख के विषय में कुछ नहीं कहा गया है । इसमें तीन मुख पूर्व में कथित सौम्य, नारसिंह तथा कपिल के समान होते हैं ।[2] अतः चौथा मुख वराह के समान हो सकता है ।[3]

गरुड़ के रूप के विषय में कहा गया है कि उसे चार भुजा वाला भी बनाया जा सकता है। जिसमें वे आगे के दोनों हाथों को अञ्जलि मुद्रा में जोड़े रहते हैं और पीछे के दोनों हाथों पर वे सुख से बैठे बैकुण्ठ के चरण कमल सम्भाले रहते हैं । गरुड़ के पङ्खों पर गदा तथा चक्र रखे रहते हैं।[4] यहाँ पर बैकुण्ठ की भुजाओं में धारण किये गये आयुधों का उल्लेख नहीं हुआ है । इनके हाथों में गदा, खड्ग, बाण, चक्र, शङ्ख, खेटक, धनुष आदि आयुध ही होंगे जिनका वर्णन भागवत पुराण तथा विष्णु पुराण में अनेक स्थलों पर हुआ है। अपराजितपृच्छ ग्रन्थ में भी विष्णु को इसी प्रकार का चार मुख तथा आठ भुजा वाला कहा गया है और उनकी शान्त मुद्रा बतलायी गयी है ।[5] दाहिनी भुजाओं में गदा, खड्ग, बाण, चक्र तथा बायीं भुजाओं में शङ्ख, खेटक, धनुष तथा पद्म रहता है।[6] तीन मुखों का क्रम तो समान है किन्तु पश्चिम की ओर का मुख श्रीमुखाकार कहा गया है–

पुरतः पुरुषाकारो नारसिंहश्च दक्षिणे ।
अपरे श्रीमुखाकारो वाराहस्यस्तथोत्तरे ।।[7]

---

१. वि० ध० ८५।४४-४६.
२. वि० ध० ४४।११-१२.
३. वाराहमुत्तरम् . . . ।। वि० ध० ४४।१२.
४. चतुर्भुजो वा कर्त्तव्यस्ताक्ष्यो यादवनन्दनः ।।
गरुडश्च तथा कार्यो धर्मज्ञरचिताञ्जलिः ।
सुखोपविष्टस्तत्पृष्ठे तत्करस्थौ हि पङ्कजः ।
उपविष्टौ गदाचक्रौ कर्त्तव्यौ ताक्ष्यपक्षयोः ।। वि० ध० ८५।४५-४७.
५. प्रवचम्यथ बैकुण्ठं सोऽष्टबाहुर्महाबलः ।
गरुडस्थश्चतुर्वक्त्रः कर्त्तव्यः शान्तिमिच्छता ।। अ० पृ० २१९।१८.
६. अ० पृ० २१९।२१-२२.
७. अ० पृ० २१९।२५.

रूपमण्डन को भी यह स्वरूप तथा आयुध मान्य है किन्तु वह पश्चिम की ओर का मुख स्त्री की भाँति बतलाता है जो लक्ष्मी का ही मुख है–

अपरं स्त्रीमुखाकारं वाराहास्यं तथोत्तरम् ।।[1]

राव महोदय ने इस रूप की दो प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। एक प्रतिमा जो बादामी के प्रस्तर फलक पर प्राप्त होती है वह वैष्णव पुराणों में वर्णित बैकुण्ठ के रूप से कुछ अंश तक मिलती है। प्रतिमा में विष्णु के चार मुख तथा आठ भुजाएँ हैं। चारों मुखों में सामने का मुख देखने में बड़ा सौम्य है। दक्षिण की ओर का मुख नृसिंह के समान है। उत्तर की ओर का मुख भयानक है जो आकृति में वराह की भाँति प्रतीत होता है और विष्णुधर्मोत्तर के 'पश्चिमं वदनं रौद्रं'[2] के कथन को पुष्ट करता है। पश्चिम की ओर का मुख कुछ-कुछ स्त्री की भाँति है। आठों हाथों में धारण किये गये आयुधों का क्रम विष्णुधर्मोत्तर से कुछ भिन्न है, किन्तु रूपमण्डन से पूर्णतः मिलता है।[3] उक्त विद्वान् द्वारा कथित दूसरी प्रतिमा में आयुधों का क्रम विष्णुधर्मोत्तर से मिलता है।[4]

बैकुण्ठ रूप की प्रतिमा के अनेक उदाहरण कला में प्राप्त होते हैं। भट्टाचार्य महोदय ने बनारस में प्राप्त हुई बैकुण्ठ की एक सुन्दर प्रतिमा का प्रसङ्ग दिया है। यह प्रतिमा कला का उत्कृष्ट नमूना है और विष्णुधर्मोत्तर में कथित रूप एवं आयुधों से मिलती है। यही इसकी महती विशेषता है। प्रतिमा में चार मुख तथा आठ भुजाएँ हैं। भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, अक्षमाला, मूसल, धनुष आदि धारण किये हुए बैकुण्ठ गरुड़ पर आरूढ़ हैं।[5] चारों मुखों का क्रम विष्णुधर्मोत्तर के समान है।[6] खजुराहो में जो बैकुण्ठ मन्दिर है उसमें बैकुण्ठ की चार फी० से भी अधिक ऊँची प्रतिमा प्राप्त होती है। प्रतिमा में तीन मुख हैं। सामने का मुख पुरुष के आकार का है। सिर पर किरीट मुकुट है। दक्षिण का नारसिंह मुख तथा बाम भाग का वराह मुख विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्गों के अनुसार भयानक है। सिरों के पीछे शिरश्चक्र है जिसमें दशावतार प्रदर्शित किये गये हैं। प्रतिमा में आठ भुजाएँ हैं जिनमें चार टूट चुकी हैं और शेष भुजाओं के समीप दाहिनी और बायीं ओर चक्र तथा शङ्ख पुरुष रूप में उपस्थित हैं। वैकुण्ठ देव का सम्पूर्ण शरीर कुण्डल, केयूर, कङ्कण, कौस्तुभ-

---

१. रूप० मं० ५८।३२-३४.
२. वि० ध० ८५।४५.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २५६ प्ले० ७५.
४. वही पृ० २५६ प्ले० ७६.
५. भट्टाचार्य इण्डि० इमे० पृ० १८.
६. वि० ध० ४४।१०-१३.

मणि, हार, वनमाला, यज्ञोपवीत, मुक्ताओं की मेखला, नूपुर आदि अलङ्कारों से अलङ्कृत है ।[1] एक और आठ भुजाओं वाली वैकुण्ठ की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसकी पाँच भुजाएँ टूट गयी हैं और शेष तीन हाथों में पद्म, शङ्ख तथा चक्र है। प्रतिमा में मुख पूर्व की प्रतिमा की भाँति है ।[2]

त्रैलोक्यमोहन--श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि विष्णु के त्रैलोक्यमोहन रूप की नारद, नन्द, सुनन्द, आदिपार्षद, इन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, चारण आदि चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं–

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः ।
वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ।।[3]

दक्ष प्रजापति द्वारा विन्ध्याचल के अधमर्षण तीर्थ में की गयी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें अपने त्रैलोक्यमोहन रूप के दर्शन कराये ।[4] वे अपने चरणकमल गरुड़ के स्कन्ध पर रखे थे और विशाल, हृष्ट-पुष्ट आठ भुजाओं में चक्र, शङ्ख, असि, चर्म, बाण, धनुष, पाश, गदा धारण किये थे–

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
चक्रशङ्खासि चर्मेषुधनुः पाशगदाधरः ।।[5]

मेघ के समान श्याम वर्ण के शरीर पर वे पीताम्बर धारण किये थे । मुखमण्डल प्रफुल्लित तथा नेत्र आनन्द की वर्षा कर रहे थे । उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न गले में कौस्तुभमणि थी और वनमाला घुटनों तक लटक रही थी ।[6] स्वर्णजटित किरीट, मकराकृति कुण्डल, करधनी, कड़े, केयूर, नूपुर आदि आभूषण उनके शरीर की शोभा को अपूर्व बना रहे थे ।[7] इस अपूर्व रूप को देखकर दक्षप्रजापति गद्गद हो गये ।

रूपमण्डन[8] तथा अपराजित पृच्छ[9] ग्रन्थ त्रैलोक्यमोहन को चार सिर तथा

---

१. खजुराहो पृ० २४.
२. खजुराहो पृ० २५.
३. श्रीमद्भा० ६।४।३९.
४. श्रीमद्भा० ६।४।३५.
५. श्रीमद्भा० ६।४।३६.
६. पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।
वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ।। श्रीमद्भा० ६।४।३७.
७. महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ।। श्रीमद्भा० ६।४।३८.
८. रूपमण्डन अ० ५३.
९. अ० पृ० अ० २१९।१२।१४.

सोलह भुजा वाला बतलाता है । शिरों का क्रम पुरुष, नरसिंह, वराह तथा कपिल के रूप में होता है ।[१]

इसके अतिरिक्त स्तुति करते हुए देवताओं के समक्ष विष्णु जिस रूप में प्रकट हुए वह भी गरुड़ारूढ़ रूप था, किन्तु उनके १६ भुजाएँ थीं । वस्त्राभूषण समान थे । हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, खेटक, धनुष, बाण, असि, चर्म, अङ्कुश, शक्ति, पाश, मुग्दर, हल, मूसल आदि आयुध थे ।[२] यहाँ पर त्रैलोक्य-मोहन शब्द का उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भागवत इन दोनों ही रूपों में त्रैलोक्यमोहन रूप स्वीकार कर लेता है ।

राव महोदय ने त्रैलोक्यमोहन रूप की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है । विष्णु गरुड़ पर आसीन हैं और उनके चार मुख, मुखों का क्रम वैकुण्ठ रूप की भाँति है और विष्णुधर्मोत्तर के "नृसिंह रूपं कथितं वाराहं कापिलं तथा"[३] स्पष्टीकरण प्रतीत होता है । प्रतिमा में १६ हाथ हैं बायें ६ हाथों में गदा, चक्र, अङ्कुश, बाण, शक्ति, चक्र हैं । सात दाहिने हाथों में मुद्गर, पाश, धनुष, शङ्ख, पद्म, कमण्डलु तथा शृंङ्ग हैं । शेष दाहिने तथा बायें हाथ योग, अभय तथा वरद मुद्रा में हैं ।[४]

गजेन्द्रमोक्ष रूप––गज और ग्राह का युद्ध अधिक समय तक चलता रहा । परास्त होकर गज ने अपनी सूँड में कमल पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को समर्पित किया । उसी क्षण चक्रधारी विष्णु आकाश में प्रकट हो गये और चक्र से ग्राह का शिर काटकर गज की रक्षा की । इस कथा का वर्णन भागवत पुराण में हुआ है––

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशुयतो गजेन्द्रः ।।
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरिमाहकृच्छ्रात् ।।[५]

मद्रास प्रेसीडेन्सी में, काञ्ची के वरदराज नामक विष्णु के मन्दिर में प्राप्त प्रतिमा में इसी रूप का स्पष्टीकरण हुआ है । प्रतिमा बड़ी भव्य एवं आकर्षक है ।

---

१. नरास्यो नारसिंहास्यः सूकरः कपिलाननः ।। अ० पृ० २१९।१५.
२. श्रीमद्भा० ८।५।११-१५.
३ वि० ध० ८५।५३.
४. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २५७ प्ले० ७९.
५. श्रीमद्भा० ८।३।३१-३२.

विष्णु गरुड़ के स्कन्ध पर बैठे हैं। पीछे के दाहिने हाथ में ऊपर की ओर उठा हुआ चक्र है। पीछे के बायें हाथ में शङ्ख, आगे के बायें में पद्म तथा दाहिने में गदा है। विष्णु के पैर गरुड़ के हाथों पर रखे हैं। मगर गज का पैर पकड़े है और उसकी पीठ पर चक्र है। साथ ही एक मनुष्य की प्रतिमा पैरों को मोड़े हुए बैठी है। जो मगर के पूर्व जन्म के गन्धर्व रूप को स्पष्ट करती है। इस प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय ने अपने ग्रन्थ में किया है।[1] दाडिकोम्बू में वरदराज की एक और प्रतिमा प्राप्त होती है। इस प्रतिमा में भी विष्णु गरुड़ पर बैठे हैं। गरुड़ विष्णु के पैरों को अपने फैले हुए हाथों की हथेली पर रखे हैं। विष्णु को आठ भुजाओं में चक्र, शङ्ख, गदा, खड्ग, खेटक, धनुष, बाण तथा पद्म हैं।[2] यह प्रतिमा भी श्रीमद्भागवत में वर्णित रूप से कुछ मिलती है। कुछ प्रतिमाओं में मकर को नाग के रूप में भी अङ्कित किया गया है देवगढ़ में प्राप्त हुई करिवरद प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। इसमें गजेन्द्र के पैर एक नाग पकड़े है। समीप ही उड़ते हुए गरुड़ के ऊपर विष्णु विराजमान हैं। गजेन्द्र अपनी सूँड में कमल पुष्प लिए उनको अर्पण कर रहा है। ऊपर की ओर विद्याधर युगल बने हैं। उनके हाथों में पुष्पों की माला है। नाग के समीप नागपत्नियाँ अञ्जलि मुद्रा में उपस्थित हैं।[3] नाग के रूप में मकर का चित्रण दक्षिणी भारत की प्रतिमाओं में हुआ है, किन्तु उत्तरी भारत की प्रतिमाओं में मकर ग्राह के रूप में ही प्रदर्शित किया गया है। ग्राह का अर्थ सर्प और मकर दोनों है।[4] अतः शास्त्रीय ढङ्ग से दोनों ही उचित हैं। किन्तु वैष्णव पुराणों को ग्राह का मकर रूप ही मान्य है।

जलासन अथवा आदिमूर्ति—राव महोदय ने इसे विष्णु की आदिमूर्ति स्वीकार किया है।[5] इस रूप में विष्णु शेष की शय्या पर आसीन रहते हैं। शेष के फण ऊपर की ओर फैले रहते हैं। उनके फणों में विद्यमान मणियों की कान्ति से विष्णु का मुख स्पष्ट दिखायी नहीं पड़ता। उनके समीप लक्ष्मी भी रहती है किन्तु वे चरणों को दबाती हुई नहीं दिखायी जातीं उनकी चारों भुजाओं में कोई आयुध नहीं रहता। गदा और चक्र देहयुक्त होकर समीप में उपस्थित रहते हैं—

शेषभोगोपविष्टो वा कार्यो देवो मनोहरः ।
तत्फणैरेव रचितं दुर्निरीक्ष्यं प्रभोर्मुखम् ।।

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २७९.
२. वही वही पृ० २६९ प्ले० ८० फी० २.
३. राव गो० ना० ए० हि० आ० सं० १ भा० १ पृ० २६८.
४. मोनि० विलि०-ए० सं० इं० डि० पृ० ३७२.
५. श्रीमद्भा० ८।३।३३.

शेषभोगोपविष्टस्य शून्यं कर–चतुष्टयम् ।
कार्यं चक्रं गदा कार्या सदेहा तत्समीपगा ।।
लक्ष्मीः कार्या तथा तस्य शेषभोगगतापि वा ।।[१]

ऐसी प्रतिमाएँ बहुत कम देखने को मिलती हैं। मद्रास जिले में दाडिकोम्बू नामक स्थान में वरदराजप्परुमाल मन्दिर के एक स्तम्भ पर विष्णु की प्रतिमा है। इसका उल्लेख राव महोदय ने किया है। प्रतिमा में विष्णु आदिशेष के ऊपर बैठे हैं, शेष के फण छत्र की भाँति सिर पर फैले हैं। शेष का शरीर तीन स्थान से कुण्डलीभूत होकर शय्या के रूप में बना है। उनका बाँया पैर मुड़ा हुआ शेष शय्या पर है और दाहिना नीचे लटका हुआ है। सभी शङ्ख, चक्रादि आयुध मूर्त रूप में हैं। कुछ बायीं ओर हटकर अञ्जलिबद्ध मुद्रा में गरुड़ खड़े हैं।[२] विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित रूप से इस प्रतिमा में इतना ही अन्तर है कि इसमें गरुड़ भी उपस्थित हैं और विष्णुधर्मोत्तर ने गरुड़ की उपस्थिति का इस रूप में उल्लेख नहीं किया है। प्रतिमा में वर्णित गरुड़ के करबद्ध रूप का उल्लेख विष्णुधर्मोत्तर ने अन्यत्र किया है।[३]

विष्णु की आदिमूर्ति का एक उदाहरण नगेहल्ली में प्राप्त होता है। प्रतिमा पत्थर की है। एक वृक्ष के नीचे विराजमान शेषशय्या पर वे बैठे हैं। शेष के सात फण उनके सिर पर छत्र की भाँति फैले हैं । विष्णु के चार भुजाएँ हैं। पीछे की दोनों बायीं तथा दाहिनी भुजाओं में क्रमशः शङ्ख तथा चक्र है। आगे का दाहिना हाथ शय्या पर रखा है और बायाँ हाथ मुड़े हुए बायें पैर के घुटने पर रखा हुआ बाहर की ओर लटका हुआ है। दाहिनी ओर गरुड़ अञ्जलि बाँधे आलीढ़ मुद्रा में बैठे हैं। बायीं ओर ब्रह्मा तथा शिव हैं। उनके सिर टूट गये हैं। आदि मूर्ति की प्रतिमा खूब सुन्दर तथा सभी आभूषणों से सजी हुई है।[४]

जलशायिन् रूप––यह विष्णु का बड़ा ही विलक्षण तथा नवीन रूप है क्योंकि और कुछ रूपों में तो इनकी प्रतिमाएँ अन्य देवों से किसी अंश तक साम्य भी रखती हैं किन्तु यह रूप केवल विष्णु का ही प्राप्त होता है। अन्य किसी देवता का जलशायी अथवा शेषशायी रूप नहीं प्राप्त होता। विष्णुधर्मोत्तर में जलशायी विष्णु के दो रूपों की ओर सङ्केत किया गया है––

---

१. वि० धर्मो० ८५।४९-५१.
२ राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० १०८.
३. गरुडश्च तथाकार्यो धर्मज्ञो रचिताञ्जलिः ।।
वि० ध० ८५।४७.
४. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २६२-६३.

देवमावाहयिष्यामि भोगिभोगासनस्थितम् ।
भोगिभोगासनासीन समागच्छ जगद्गुरो ।
देवमावाहयिष्यामि भोगिभोगशयं प्रभुम् ।।[1]

दोनों रूपों में वे शेष की शय्या पर विराजमान रहते हैं किन्तु एक उनकी शयन मुद्रा है और दूसरी आसन मुद्रा अर्थात् बैठा हुआ रूप है जिसका वर्णन पूर्व में हो चुका है। इस प्रकार ये दोनों रूप एक होते हुए भी भिन्न हैं।

शेषशायी अथवा जलशायी रूप--राव महोदय ने इस रूप को साधारण प्रतिमाओं के अन्तर्गत स्वीकार किया है[2] किन्तु यह विष्णु का प्रमुख असाधारण एवं विशिष्ट रूप है। शिल्परत्न, पद्मपुराण, अपराजितपृच्छ आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख हुआ है। वैष्णव पुराणों में इस रूप का विस्तृत वर्णन हुआ है।

अक्रूर कृष्ण और बलराम को मथुरा ले जा रहे थे। मार्ग में यमुना तट पर पहुँच कर दोनों भाइयों ने यमुना का अमृत तुल्य जल पिया और रथ पर चढ़कर बैठ गये।[3] तत्पश्चात् अक्रूर स्नान करके, डुबकी लगाकर जब गायत्री का जप करने लगे तो जल के भीतर उन्होंने दोनों भाइयों को रथ पर साथ बैठे देखा। जब अपनी शङ्का का समाधान करने के लिए बाहर सिर निकाला तो उन्होंने पूर्ववत् दोनों भाइयों को बैठे देखा। जल के भीतर देखे हुए रूप को भ्रम समझकर उन्होंने फिर जल में डुबकी लगाई इस बार उन्हें शेषशायी नारायण के दर्शन हुए। उन्होंने देखा हजार सिरों को धारण करने वाले भगवान् शेष की गोद में प्रभु विराजमान हैं। उनका मेघ के समान श्याम वर्ण है, रेशमी पीताम्बर धारण किये हैं। चारों भुजाओं में पद्म, शङ्ख, चक्र, गदा शोभित हैं तथा उनकी अत्यन्त शान्तमूर्ति है। कमल दल के समान अरुण नेत्र हैं। उनका बदन सुन्दर, मुख पर मधुर हास्य तथा चितवन बड़ी मनोहर है। अत्यन्त सुन्दर बड़ी भौंहें, थोड़ी सी ऊँची नासिका है। सुन्दर कानों, कपोलों एवं लाल-लाल अधरों की छटा बड़ी निराली है। बाहें घुटनों तक लम्बी, हृष्ट-पुष्ट एवं सुडौल हैं। ऊँचे स्कन्ध तथा वक्षःस्थल पर लक्ष्मी विराजमान हैं। बहुमूल्य मणियों का जड़ा हुआ मुकुट सिर पर सुशोभित है। हाथों में कड़े, बाजूबन्द, कमर में करधनी तथा स्कन्ध पर यज्ञोपवीत पड़ा हुआ है। वक्षःस्थल पर

---

१. वि० ध० १०६।८२-८३.
२. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २१७.
३. तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ।। श्रीमद्भा० १०।३९।३९.

श्रीवत्स का चिह्न तथा गले में कौस्तुभ मणि एवं वनमाला लटक रही है ।[१] नन्द, सुनन्द आदि पार्षद सनकादि ऋषि, ब्रह्मा, महादेव आदि देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं । लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, ऊर्जा, ह्लादिनी, संवित, माया आदि शक्तियाँ मूर्त्तिमती होकर प्रभु की सेवा कर रही हैं ।[२] इस चतुर्भुजी मूर्ति को देखकर अक्रूरजी आनन्द विभोर हो गये ।

शेषशायी विष्णु के दर्शन अर्जुन को उस समय हुए जब वे कृष्ण के साथ रथ पर चढ़कर ब्राह्मण के बालक की खोज में गये थे । सुदर्शन चक्र के द्वारा प्रकाशित करते हुए मार्ग पर चलकर वे अन्तिम सीमा तक पहुँच गये । अधिक प्रकाश में आँखें चौंधिया जाने से अर्जुन ने आँखें बन्द कर ली । तब वह दिव्य रथ जल में प्रवेश करने लगा । जल के भीतर मणि जटित सहस्र खम्भों से जगमगाता हुआ एक सुन्दर महल दिखाई पड़ा । उसी में सहस्र फणों पर मणियों एवं मुकुट को धारण करने वाले शेषजी विराजमान थे । उन्हीं की सुखमयी शय्या पर लेटे परम पुरुषोत्तम के दर्शन अर्जुन को हुए । जल से भरे हुए मेघ के समान श्याम वर्ण का मुख, शरीर के सब अङ्ग तथा नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे । वे पीताम्बर धारण किये थे। मुकुट, कुण्डल तथा आभूषण से उनकी शोभा की और वृद्धि हो रही थी । अपनी आठ लम्बी, मोटी तथा सुडौल भुजाओं में वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग-धनुष आदि आयुध धारण किये थे । वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न था और घुटनों तक वनमाला लटक रही थी । सभी पार्षद, आयुध, पुष्टि, श्री, कीर्ति आदि शक्तियाँ तथा ब्रह्मादि

---

१. तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।।
प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ।।
चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ।।
....

सुमहार्हमणिव्रात किरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ।।
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ।।
श्रीमद्भा० १०।४०।४६–५२.

२. श्रीमद्भा० १०।४०।५३–५७. 39.

देवता उनकी सेवा में उपस्थित थे।[1] दोनों रूपों में अत्यधिक साम्य है। केवल अन्तर इतना है कि पूर्व वाली चतुर्भुजी मूर्ति है और बाद वाली अष्टभुजी मूर्ति।

विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत दुग्ध के सागर के मध्य विष्णु को शेषशय्या पर लिटाना चाहिए।[2] शेष के फणों में स्थित मणियों की प्रभा से उनके सिर पर चँदोवा-सा बना हो और उसी शय्या पर बैठी हुई लक्ष्मी उनके चरण युगल दबाती हों--

शेषाहिभोगपर्यन्तविस्तीर्णशयनाच्युत।
तत्फणावलिरत्नांशुवितानकृतोत्तर ॥
लक्ष्मीसंवाह्यमानाङ्घ्रिकमलद्वयराजित।[3]

उनका वर्ण अतसी पुष्प के समान श्याम होता है। वे पीताम्बर धारण करते हैं और उनके कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं--

नारायणं सुदुष्पार देवं शार्ङ्गधनुर्धरम्।
अतसीकुसुमश्यामं पीतवाससमच्युतम्॥
विबुद्धः पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः॥[4]

विष्णुधर्मोत्तर में विष्णु के शेषशायी रूप को पद्मनाभ कहा गया है। जल के मध्य स्थित शेषनाग का सिर ऊपर की ओर से फैले हुए फणों में विद्यमान मणि तथा रत्नों की प्रभा से दुर्निरीक्ष्य हो जाता है। उनके शरीर की बनी हुई शय्या पर चार भुजा वाले पद्मनाभ को सोता हुआ दिखाया जाता है--

जलमध्यगतः कार्यः शेषः पन्नगदर्शनः।
फणपुञ्जमहारत्नदुर्निरीक्ष्यः शिरोधरः॥
देवदेवस्तु कर्त्तव्यस्तत्र सुप्तश्चतुर्भुजः।[5]

प्रभु का एक पैर लक्ष्मी की गोद में और दूसरा शेष शय्या पर रखा रहता है। उनकी चारों भुजाओं में से एक भुजा घुटने तक फैली रहती है, एक नाभि तक जाकर स्थित

---

१. सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवासं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्।
प्रलम्बचाविष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम्॥
श्रीमद्भा० १०।८९।५३-५८.

२. शीतांशुरश्मिजालाभदुग्धाम्भोधिशयाच्युत॥ वि० ध० १०७।९.

३. वि० ध० १०७-६.

४. वि० ध० १०७।४-५.

५. वि० ध० ८१।२-३.

रहती है, एक हाथ को वे अपने सिर के नीचे रखकर सिर को थामे रहते हैं और एक हाथ में उनके सन्तानमञ्जरी रहती है। नाभि प्रदेश से ऊपर उठे हुए कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर वहीं विराजमान रहते हैं—

एकः पादोऽस्य कर्त्तव्यो लक्ष्म्युत्सङ्गगतः प्रभोः।
तथापरश्च कर्त्तव्यः शेषभोगाङ्कसंस्थितः।
एकोभुजोऽस्य कर्त्तव्यस्तत्र जानौप्रसारितः।।
कर्त्तव्यो नाभि-देशस्थस्तथा चैवा परः करः।
तथैवान्यः करः कार्यो देवस्य तु शिरोधरे।।
सन्तानमञ्जरीधारी तथैवास्यापरोभवेत्।
नाभीसरसिसम्भूते कमले तस्य यादव।।
सर्वपृथ्वीमयं देव्योः प्राग्वत्कार्यः पितामहः।
यत्रास्यपद्मसम्भूतो देवदेवः पितामहः।।
नाललग्नश्च कर्त्तव्यौ पद्मस्य मधुकैटभौ।।[१]

कमल नाल के समीप मधु तथा कैटभ दैत्य रहते हैं। विष्णु के सभी अस्त्र तथा आयुध शेष के समीप पुरुष रूप में बनाए जाते हैं—

नृरूपधारीणि भुजङ्गमस्य
कार्याण्यथास्त्राणि तथा समीपे।
एतत्तंथोक्तं यदुपुङ्गवाग्र्य
देवस्य रूपं परमस्य तस्य।।[२]

पद्म पुराण में भी ऐसा ही रूप वर्णित है किन्तु अन्तर केवल इतना है कि जो हाथ विष्णुधर्मोत्तर विष्णु के सिर के नीचे दिखाता है उसे पद्मपुराण केवल मस्तक तक गया हुआ बतलाता है।[३]

जलशायिन् विष्णु की ऐसी ही प्रतिमा झाँसी जिले के देवगढ़ मन्दिर में प्राप्त होती है। अनन्त की शय्या पर विष्णु लेटे हैं। उनके सिर पर अनन्त के फण

---

१. वि० ध० ८१।१, ३–७.
२. वि० ध ८१।८.
३. एकः करोऽस्य कर्त्तव्यः सव्यजानौ प्रसारितः।
कर्त्तव्यो मूर्धदेशस्थस्तथा तस्यापरः करः।।
पद्म पु० हेमादि व्रत खं० पृ० २२२.

छत्र के समान फैले हैं। विष्णु का दाहिना चरण लक्ष्मी की गोद में और बायाँ शेष शय्या पर है। चारों हाथ उनके उसी प्रकार से हैं जैसे विष्णुधर्मोत्तर में कहे गये हैं। नाभि से उद्भूत कमल पर चतुर्मुख ब्रह्मा विराजमान हैं। सभी आयुध मूर्तरूप में उपस्थित हैं। पूरी प्रतिमा बड़ी ही भव्य तथा कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।[1] अनन्तशायी विष्णु की एक प्रतिमा कानपुर जिले के भीतरगाँव नाम के ईंटों के बने हुए मन्दिर में भी प्राप्त होती है।[2] दक्षिण में विष्णु के इस रूप को पद्मनाभ न कहकर रङ्गस्वामी तथा रङ्गनाथ नाम दिया गया है। वहाँ एक १२ फी० लम्बी शेषशायी प्रतिमा है। सभी आकार-प्रकार पूर्व के समान हैं।[3] दक्षिण में यह रूप साधारण माना जाता है किन्तु उत्तर में इस रूप की बहुत कम प्रतिमाएँ हैं।

मन्मथ––कामदेव को वासुदेव का आंशिक रूप माना गया है। शिव के क्रोध द्वारा भस्म कर दिये जाने पर कामदेव ने पुनः शरीर प्राप्ति के लिए अपने अंशी वासुदेव का आश्रय लिया। वे ही कृष्ण तथा रुक्मिणी के पुत्र हुए और प्रद्युम्न कहलाये––

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत॥
स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः॥[4]

यहाँ पर कामदेव के नाममात्र का ही उल्लेख हुआ है। किन्तु विष्णुधर्मोत्तर कामदेव के रूप का स्पष्ट वर्णन करता है। वह कामदेव को आठ भुजा वाला, संसार में अवर्णनीय रूप वाला, शङ्ख, पद्म, बाण, चाप से विभूषित और मद से उन्मत्त नेत्रवाला बतलाता है––

कामदेवस्तु कर्त्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि॥
अष्टबाहुः स कर्त्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः।
चापबाणकरश्चैव मदादञ्चितलोचनः॥[5]

कामदेव के चार हाथ आयुधों से पूर्ण रहते हैं। शेष चारों हाथ उनकी चारों पत्नियों

---

१. राव गो० ना० ए० हि० आ० से० मा० १ पृ० ११० प्ले० ३२.
२. वही पृ० १११.
३. कनिंघम्स आकालो० सर्वे० रिपोर्ट वा० १० पृ० ५२.
४. श्रीमद्भा० १०।५५।१–२.
५. वि० ध० ७३।१९।२०.

के ऊपर रख रहते हैं। रति, प्रीति, शक्ति, मदशक्ति ये चार उनकी अत्यन्त सुन्दर तथा मनोरमा पत्नियाँ हैं।[1] मकर कामदेव की ध्वजा है और वे पञ्चमुख बाण को धारण करते हैं––

केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखो महान् ।।[2]

शिल्परत्न कामदेव के रूप का कुछ भिन्न वर्णन करता है। वे हाथ में इक्षु-दण्ड का चाप लिए रहते हैं। पञ्चपुष्प युक्त बाण दक्षिण हाथ में रहता है। वसन्त ऋतु को द्योतित करने वाले पीतवस्त्र धारण करते हैं। कानों में दाड़िम के कर्णफूल, गले में बकुल पुष्प की माला, सिर पर सुन्दर पुष्प रहते हैं। समीप में मकरध्वज को लिए हुए अश्व के समान मुख वाला व्यक्ति उपस्थित रहता है। दक्षिण भाग में प्रीति तथा वाम भाग में रति उपस्थित रहती हैं। उनकी शय्या सारसों से पूर्ण होती है––

वक्ष्ये मनसिजं देवमिक्षुचापधरं सदा ।
पञ्चपुष्पमयान्बाणान्बिभ्राजं दक्षिणे करे ।।
हरितं लोहितं वापि दिव्याभरणभूषितम् ।
किञ्चज्जटिलसंस्थान पुष्पमालाभिरञ्जितम् ।।
पीतवस्त्रं वसानं च वसन्तेन समन्वितम् ।
नाना कुसुमभूषेण कङ्कलीपत्रवाससा ।।
दाडिमीकर्णपूरेण कण्ठे बकुलमालिना ।
परेकस्वर्ण-सङ्काशैः कृतशेखरशोभिना ।।
पार्श्वे चाश्वमुखः कार्यो मकरध्वजधारकः ।
प्रीतिर्दक्षिभागेऽस्य भोजनोपस्करान्विता ।
वाम-भागे रतिः कार्या रन्तुकामा निरन्तरम्
शय्या तु सारसैः युक्ता वापिका नन्दनं वनम् ।।[3]

होलेविडू के होयसलेश्वर के मन्दिर में प्राप्त मन्मथ की एक प्रतिमा चार भुजा वाली है। चारों हाथों में विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कथित आयुध हैं। मद्रास प्रेसीडेंसी में तेन्काशी के विश्वनाथ स्वामी के मन्दिर में भी एक प्रतिमा कामदेव की है। इसमें

---

१. रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्मदशक्तिस्तथोज्ज्वला ।
चतस्रस्तस्यकर्त्तव्याः पत्न्यो रूपमनोहराः ।
चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपगाः ।।
वि० ध ७३।२१–२२.

२. वि० ध० ७३।२२.

३. शिल्परत्न ४५।११–१८.

पाँच पुष्पों वाला वाण उनके हाथ में है। सुन्दर वेषभूषा है किन्तु उनके दाढ़ी मूँछें हैं यह विभिन्नता है।[१]

विश्वरूप––यह विष्णु का महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक रूप है। इसमें विष्णु सम्पूर्ण विश्व के रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं। श्रीमद्भागवत में विराट स्वरूप की विभूतियों का विस्तार से वर्णन हुआ है। वाणी, अग्नि आदि सभी देवता उनके मुख से, सातों छन्द सात धातुओं से, देवताओं एवं पितरों के भोजन करने योग्य अमृत, अन्न तथा रस रसनेन्द्रिय जिह्वा से, अश्विनी कुमार नासिका से, संसार की रक्षा करने वाले लोकपाल भुजाओं से, दाढ़ी, मूँछों और नखों से, मेघ, बिजली, शिला, लोहा आदि उत्पन्न हुए।[२] उनकी नाड़ियों से नदी-नद, हड्डियों से पर्वतों का निर्माण हुआ। उनके उदर में मूल प्रकृति, समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है। सृष्टि में, आकाश में बाहर-भीतर जो कुछ दृष्टिगत होता है सब उसी विराट एवं विश्वपुरुष का रूप है।[३]

विष्णुधर्मोत्तर विश्व रूप के निर्माता का, आकार-प्रकार का, विधिवत् वर्णन करता है। विष्णु के चार मूल मुख वैष्णव होते हैं अर्थात् जिस प्रकार वासुदेव की प्रतिमा में सौम्य, नृसिंह, वाराह और कापिल मुख होते हैं। उन मुखों के ऊपर सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरुष ये चार माहेश्वर मुख होते हैं। ईशान मुख नहीं बनाया जाता क्योंकि वह वक्त्रहीन होता है और सबसे ऊपर होता है। इन माहेश्वर मुखों के ऊपर चार ब्राह्म मुखों का निर्माण होता है। उन मुखों के ऊपर आगे-पीछे सब ओर अनेक देवताओं एवं विभिन्न पशुओं के मुख बनाने चाहिए––

आदौ देवस्य कर्त्तव्यश्चत्वारो वैष्णवा मुखाः।
तेषामुपरि कर्त्तव्यास्तथा माहेश्वराः पुनः॥
ईशानं वक्त्रहीनास्ते यथा प्रोक्ता मया पुरा।
तेषामुपरि कर्त्तव्या मुखाः ब्रह्मायथेरिताः॥
ततश्चान्ये मुखाः कार्यास्तिर्यगूर्ध्वं तथैव च।
सर्वेषामपि देवानां तथान्यानपि कारयेत्॥
ये मुखाः सत्त्वजातानां नानारूपाणि भागशः।[४]

१. राव गो० ना०–ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० २७८–२७९.
२. श्रीमद्भा० २।६।१–५.
३. श्रीमद्भा० २।६।६–२१.
४. वि० ध० ८३।२–५.

प्रत्येक मुख में आँखों की दृष्टि चित्रसूत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की होनी चाहिए।[१] सभी विभिन्न भयङ्कर जीवों के मुखों के साथ उन्हें सम्पूर्ण संसार को निगल जाते हुए दिखाना चाहिए। उनका मुख फैला हुआ होता है––

नानाविधानि सत्त्वानि मुखैरन्यैस्तथैव च ।।
ग्रसमानः स कर्त्तव्यः सर्वैः सत्त्वभयङ्करैः ।
कार्याण्युद्भवमानानि मुखाः कार्याश्च ते शुभाः ।।[२]

विष्णु का यह रूप बड़ा भयानक होता है और भुजाओं की भी कोई संख्या निश्चित नहीं है। जितनी अधिक से अधिक भुजाएँ कलाकार बना सकता हो उतनी अधिक भुजाएँ होनी चाहिए।[३] नृत्तशास्त्र में कथित हस्तमुद्राओं का चित्रण हाथों द्वारा होना चाहिए। कुछ हाथों में सभी आयुध हों, कुछ में यज्ञ-दण्ड, शिल्पभाण्ड, कला-भाण्ड, वाद्यभाण्ड आदि हों—

हस्तानि यानि दृष्टानि नृत्तशास्त्रे महात्मभिः ।।
तानि सर्वाणि कार्याणि तस्य देवस्य बाहुषु ।।
हस्ताः कार्यास्तथैवान्ये सर्वायुधविभूषणाः ।।
यज्ञदण्डधराश्चान्ये शिल्पभाण्डधरास्तथा ।
कलाभाण्डधराश्चान्ये वाद्यभाण्डधराः परे ।।[४]

तीनों लोक विश्वरूप के शरीर में चित्रकर्म द्वारा प्रदर्शित कर देना चाहिए। शेष अनेक सिरों पर सभी विचित्र वर्ण प्रदर्शित करना चाहिये।[५] विश्व रूप का आकार इतना विशाल एवं भव्य है कि पूर्ण प्रतिमा बनाना तो दूर रहा उनके पूरे रूप का कोई वर्णन ही नहीं कर सकता।[६] विश्व रूप को वैकुण्ठ रूप अर्थात् गरुड़ पर आरूढ़ भी बनाया जा सकता है।[७]

---

१. यावन्तो दृष्टयः प्रोक्ताश्चित्रसूत्रे महात्मभिः ।।
दर्शनीयास्तु ताः सर्वास्तस्य मूर्धसु भागशः ।। वि० ध० ८३।५–६.
२. वि० ध० ८३।६–७.
३. यथाशक्त्या च कर्त्तव्यास्तस्य देवस्य बाहवः। वि० ध० ८३।८.
४. वि० ध० ८३।८–१०.
५. त्रैलोक्यं सकलं राजन्यथाशास्त्रानुसारतः ।
दर्शनीयानि वर्णानि सर्वाण्येव महात्मनः ।।
बहुरूपस्य देवस्य बहुमस्तकानि तु ।। वि० ध० ८३।१२–१३.
६. कात्स्र्येन रूपं पुरुषोत्तमस्य वक्तुं न शक्यं कुत एव कर्तुम् ।।
वि० ध० ८३।१४.
७. वि० ध० ८३।१२.

रूपमण्डन ग्रन्थ में विश्वरूप के चार सिर तथा बीस भुजाएँ कही गयी हैं। उनकी दाहिनी भुजाओं में पताका, हल, शङ्ख, वज्र, अङ्कुश, शर, चक्र, बीजपूर रहता है और बायीं भुजाओं में वे पताका, दण्ड, पाश, गदा, खड्ग, उत्पल, शृङ्ग, मूसल तथा अक्ष धारण करते हैं। शेष दो भुजाएँ योग मुद्रा में रहती हैं। गरुड़ पर आरूढ़ रहते हैं और उनके चारों मुख नर, नृसिंह, स्त्री तथा वराह के समान होते हैं।[१] अपराजितपृच्छ ग्रन्थ में विश्वरूप की उसी प्रतिमा का उल्लेख हुआ है। जिसमें चार मुख तथा बीस भुजा वाले, पताका, हल, शङ्ख, बीजपूर, दण्ड, पाश, शृङ्ग, पद्म हाथों में धारण किये हुए प्रभु गरुड़ पर स्थित रहते हैं।[२] गीता में कहा गया है कि बीस भुजा वाले भयङ्कर विश्वरूप के दर्शन अर्जुन को हुए थे।[३]

विश्वरूप की सर्वप्राचीन मूर्ति अब मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। यह प्रतिमा अलीगढ़ से प्राप्त हुई थी।[४] प्रतिमा में तीन मुख हैं जो विष्णुधर्मोत्तर में कथित वैकुण्ठ मूर्ति के प्रसङ्ग का स्पष्टीकरण प्रतीत होते हैं। सिरों के पीछे विशाल प्रभावली में सप्तर्षि, नवगृह, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन इन चारों ऋषिकुमारों की प्रतिमाएँ बनी हैं।[५] तीन मुखों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे वैष्णव की प्रतिमा मान लिया है।[६] किन्तु प्रतिमा के आकार-प्रकार एवं रूप को देखकर उनका आधार निर्मूल तथा भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। प्रतिमा में चार भुजाएँ हैं जिनमें शङ्ख, चक्रादि आयुध हैं। डॉ० अग्रवाल ने इसी प्रकार की एक अन्य प्रतिमा का भी उल्लेख किया है। प्रतिमा अलीगढ़ की प्रतिमा से साम्य रखती है किन्तु इसमें भुजाएँ आठ हैं।[७] बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित प्रतिमा में विष्णु वीरासन मुद्रा में बैठे हैं। ये प्रतिमाएँ वैष्णव पुराणों में कथित विश्व रूप से भिन्न हैं।[८]

खजुराहों में प्राप्त विश्व मूर्ति में प्रधानतः पुरुष, नर, सिंह तथा वराह तीन ही मुख हैं। चौथा मुख प्रदर्शित नहीं किया गया है। नर, सिंह और वाराह मुखों के ऊपर अनेक अर्धचन्द्राकार मुख हैं तथा पीछे बहुत छोटे-छोटे मत्स्य, कूर्मादि के मुख बने हैं जो विष्णु-

---

१. रूपमण्डन अ० ५३।५५।५७.
२. अप० पृ० २१९।२८–३२.
३. गीता ११।११–२९.
४. मथुरा कला–पृ० ६५, इण्डि० आ० पृ० २५५.
५. आ० १७१, भारतीयकला पृ० ३१२–१३ चि० ३६०.
६. मथुरा कला पृ० ६५.
६. महे० प्र० भारती नं ४ पृ० १४६–१४७
७. अग्रवाल वा० श० गुप्ता आर्ट पृ० ९.
८. वही पृ० ११.

धर्मोत्तर के प्रसङ्ग को व्यक्त करते हुए प्रतीत होते हैं ।[१] भुजाओं के विषय में भी 'यथाशक्त्या च कर्त्तव्यास्तस्य देवस्य बाहवः' की उक्ति का पालन हुआ है और प्रतिमा में बारह भुजाएँ बनी हुई हैं ।[२] बैनर्जी महोदय ने अपने ग्रन्थ में विश्व रूप की एक भव्य प्रतिमा का उल्लेख किया है । इस प्रतिमा में बीस भुजाएँ तथा अनेक मुख हैं। प्रतिमा राजशाही म्यूजियम में है ।[३]

शिव

शिव सृष्टि का संहार करने वाले कहे गये हैं । ये ही एक ऐसे देव हैं जिनकी आराधना वैदिक काल से पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय में भी होती थी। इसके अनेक प्रमाण इतिहासकारों द्वारा दिये जा चुके हैं । वैदिक काल में शिव का रुद्र रूप अधिक प्रसिद्ध रहा ।[४] श्वेताश्वतर उपनिषद् में रुद्र के अनेक नामों के साथ शिव का भी उल्लेख हुआ है। सांख्यायन तथा कौशीतकि उपनिषदों में शिव, रुद्र, महादेव, महेश्वर, ईशान आदि नाम इन्हें सर्वमुख देवता सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।[५] वेबर महोदय ने इनमें से महादेव तथा ईशान रूप को सर्वप्रमुख बताया है ।[६] अथर्ववेद में भव, शर्व, पशुपति, उग्र, महादेव तथा ईशान इन सात नामों का उल्लेख हुआ है । शतपथ तथा कौशीतकि ब्राह्मण इन सात नामों में अशनि रूप की वृद्धि कर आठ रूपों की पूर्ति कर देते हैं। इनमें भव, पशुपति, महादेव और ईशान ये चार रक्षक एवं कल्याणकारी रूप हैं और शर्व, रुद्र, उग्र और अशनि ये चार संहारक रूप हैं । ये रूप भी सौम्य तथा अघोर भेद से दो प्रकार के हैं ।[७] पाणिनि ने रुद्र के भव, शर्व, मृड़ आदि नामों का उल्लेख अपने सूत्रों में किया है ।[८] पतञ्जलि ने रुद्र तथा शिव आदि रूपों को 'पशुना रुद्रं यजेत्[९]' या 'शिवां रुद्रस्य भिषजी[१०]' कहकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया है । रामायण में राम और शिव के रूप में एकता स्थापित की गयी

---

१. आदौ देवस्य कर्त्तव्यश्चत्वारो वैष्णवा मुखाः ।
....
ततश्चान्ये मुखा कार्यस्तिर्यगूर्ध्वं तथैव च ।। वि० ध ८३।२–५.
२. खजुराहो पृ० २४ प्ले० ६६, अवस्थी रामाश्रय दे० पृ० १४०–४१.
३. बैनर्जी जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ४०४–५.
४. ऋ० वे० ६।४।१०, ४।१२।१६, ९।१३।३.
५. बैनर्जी, जे० एन० डे ० हि० आ० पृ० ४६४–६६.
६. वेबर- इण्डिशे स्टडिन क० २ पृ० ३०२.
७. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६५.
८. अष्टाध्यायी ४।१।४९.
९. कीलहर्न, महाभाष्य भाग ३ पृ० ३३१.
१०. वही पृ० ४०३.

है ।[१] महाभारत में शिव के सहस्र नामों का उल्लेख हुआ है[२] और उनके लिए शङ्कर,[३] ईशान,[४] शर्व,[५] नीलकण्ठ,[६] त्र्यम्बक,[७] धूर्जटि,[८] नन्दीश्वर,[९] शिखिन्,[१०] व्योमकेश,[११] महादेव,[१२] तथा शितिकण्ठ,[१३] आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं। पुराणों में प्रयुक्त शम्भु और शङ्कर नाम कल्याणकारी हैं। इस प्रकार इनकी महत्ता अत्यन्त प्राचीन काल से स्पष्ट है ।

आज भी शिव के लिङ्ग रूप की उपासना सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। प्रत्येक नगर, ग्राम, सड़क, जङ्गल, पर्वत आदि पर स्थापित हुए शिव के लिङ्ग रूप की उपासना होती है। शिव ही एक ऐसे देवता हैं जो यति तथा भोगी, राजा तथा रङ्क दोनों के आराध्य देव बन सके । भण्डारकर महोदय तो पशुपति के रूप में इन्हें जङ्गल के व्यक्तियों का आराध्यदेव मानते हैं ।[१४] अतः सभ्य जाति के ही नहीं असभ्य एवं जङ्गली जातियों के भी शिव आराध्य देव रहे हैं ।

पुराण काल में शिव की महत्ता और अधिक बढ़ गयी । शैव पुराण तो शिव को ही सर्वस्व मानते हैं और उन्हीं के विभिन्न रूपों एवं सम्प्रदायों का वर्णन करना उनका मुख्य उद्देश्य है । वैष्णव पुराणों में शिव के रूप तथा आकार का वर्णन तो अवश्य हुआ है किन्तु सीमित रूप में। शिव की उपासना सदा से दो रूपों में होती रही है । अतः उनकी प्रतिमाएँ भी दो रूपों में प्राप्त होती हैं–

१. लिङ्ग प्रतिमा तथा

२. रूप अथवा मानवी प्रतिमा ।

---

१. रामा० २।१७।१२.
२. महा० १३।१७
३. महा० वन० १६८।१६.
४. महा० द्रोण० २०२।१०३.
५. अनु० १५।११.
६. महा० द्रोण २०२।५०.
७. महा० द्रोण २०२।१३०.
८. महा० द्रोण० २०२।२९.
९. महा० अनु० १७।७६.
१०. महा० द्रोण० २०२।११.
११. महा० द्रोण० २०२।३४.
१२. महा० द्रोण० २०२।१२.
१३. महा० द्रोण० २०२।२६.
१४. भण्डारकर, आर० जी, वै० शै० ए० माइ० रिजि० सि० पृ० १०३.

लिङ्ग प्रतिमा—लिङ्ग रूप की उपासना उतनी ही प्राचीन है जितनी वृक्ष पूजा आदि। हॉडर एम० वेस्ट्राप महोदय का कथन है कि शिव के लिङ्ग रूप की उपासना न केवल भारतीयों में अपितु अनेक अन्य देशों में भी प्रचलित थी। लिङ्ग उपासना शैव सम्प्रदाय का मुख्य अङ्ग है। शिव के अन्य मानवी रूपों की उपासना लिङ्ग उपासना के समान प्रसिद्ध न हो सकी। शिव के मन्दिरों के मध्य की प्रतिमा लिङ्ग रूप में होती है।[1] जैसा कि पूर्व अध्याय में कहा जा चुका है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय शिव प्रमुख आराध्य देव थे। मुद्राओं पर बनी हुई उनकी अनेक प्रतिमाएँ एवं लिङ्ग प्राप्त हुए हैं जिनका विस्तृत वर्णन राव[2] तथा बैनर्जी[3] महोदय ने अपने ग्रन्थों में किया है। ऋग्वेद में कही हुई शिश्न देवता की उपासना ही कालान्तर में होने वाली लिङ्ग उपासना है। ऐसा मार्शल महोदय का मत है।[4] वेदों में शिश्न देवता की उपासना की निन्दा की गयी है। इसका उल्लेख पूर्व के पृष्ठों में हो चुका है।

शिव त्रिदेवों के अन्तर्गत सृष्टि का संहार करने वाले देव स्वीकार किये गये हैं। प्रलय के समय सम्पूर्ण चराचर इन्हीं में समा जाता है। इसी रूप में वे इस अपार शक्ति को धारण करते हैं। उन्हीं के द्वारा पुनः सृष्टि होती है इसी से इनका लिङ्ग रूप अधिक महत्त्वपूर्ण है—

लयं गच्छन्ति भूतानि संहारे निखिलं यतः।
सृष्टिकाले पुनस्सृष्टि तस्माल्लिङ्गमुदीरितम्।[5]

अपराजितपृच्छ ग्रन्थ में शिव तथा शक्ति दोनों को लिङ्ग का प्रतीक माना गया है। यह सृष्टि उन्हीं दोनों के संयोग से उत्पन्न हुई है।[6] यहाँ पर लिङ्ग की परिभाषा भिन्न प्रकार दी गयी है—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः क्षितिः स्याज्जलहारिका।
तन्मध्ये सर्वभूतात्मलयनाल्लिङ्गमुच्यते॥
उच्छ्रयो लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका।
उमा तु पीठिका ज्ञेया शङ्करो लिङ्गमुच्यते।[7]

---

१. हॉडर एम० वेस्ट्रप –प्रिमिटिव सि० ए० इ० इ० फे० वर० पृ० २६.
२. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ७४–७५.
३. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६३.
४. वही पृ० ४५.
५. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० २७८.
६. सृष्युट्द्भवः सयोनिश्च शिवशक्त्या चराचरम्।
शिवलिङ्गोद्भवाशक्तिः शक्तिमांश्च शिवस्तथा॥
उभयोरपि संयोगाच्छिवशक्त्योश्चराचरम्॥
— अपराजिपृच्छ १९६।६१–६२.
७. अपराजित पृच्छ १९६।६३–६५.

वैष्णव पुराणों में लिङ्ग निर्माण का अधिक विस्तृत वर्णन नहीं हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर में लिङ्गनिर्माण पर कुछ आदेश दिये गये हैं और शिवलिङ्ग के तीन भाग कहे गये हैं—

१. भोग पीठ,
२. भद्र पीठ तथा
३. ब्रह्म पीठ।

लिङ्ग के ऊपर का भाग भोग कहलाता है। यह वृत्ताकार बनता है। उससे नीचे का भाग आठ कोणों वाला तथा उससे नीचे का भाग चौकोर रहता है। इस प्रकार के लिङ्ग में बहुमूल्य रत्न लगे होने चाहिए——

भोगोऽस्य वृत्तः कर्त्तव्यो भागमष्टास्रमेव तु ॥
चतुरस्रं तथा भागं कर्त्तव्यं भूरिदक्षिणम् ॥[1]

लिङ्ग का निर्माण इस प्रकार से होना चाहिए कि इसका गोलाकार भाग दिखाई पड़े। आठ कोण वाला भाग पिण्डिका में बना हो और चौकोर भाग ब्रह्मपीठ में हो। ब्रह्मपीठ का निर्माण भद्रपीठ के नीचे होता है:—

वृत्तं दृश्यन्तु कर्त्तव्यं अष्टास्रं पिण्डिकागतम् ॥
चतुरस्रं तु कर्त्तव्यं ब्रह्मपीठगतं तथा।
अधस्ताद् भद्रपीठस्य ब्रह्मपीठं विदुर्बुधाः ॥[2]

लिङ्ग भाग ऊपर की ओर उठा हुआ होता है। इस पर बनी हुई सुन्दर रेखाएँ ऊपर जाकर तिरछी हो जाती हैं।[3] श्रीमद्भागवत में समस्त देव-गण शिव की स्तुति करते समय उनके लिङ्ग रूप की ओर भी सङ्केत करते हैं और उसे पृथ्वी तथा आकाश तक व्याप्त बतलाते हैं।[4]

शिल्प ग्रन्थों में तीन प्रकार के लिङ्गों का वर्णन हुआ है जो क्रमशः निष्कल, सकल तथा मिश्र हैं।[5] केवल लिङ्ग रूप में बना हुआ आकार लिङ्ग प्रतिमा का रूप सकल तथा मुखलिङ्ग रूप मिश्र होता है—

---

१. वि० ध० ७४।२–३.
२. वि० ध० ७४।३–४.
३. वि० ध० ७४।५.
४. श्रीमद्भा० ४।४।१८–२३.
५. निष्कलं सकलं मिश्रं लिङ्गं चेति त्रिधा मतम् ॥ मय० अ० ३३.
अथ लिङ्गं त्रिधा ज्ञेयं निष्कलं सकलं तथा
मिश्रं चेति च तल्लिङ्गमचलं च चलं द्विधा ॥ ईशानशिव पद्धति पृ० १४८.
राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० २७९.

निष्कलं केवलं लिङ्गं सकलं प्रतिमा स्मृता ।
मिश्राख्यं मुखलिङ्गं स्यान्मिश्रलक्षणलक्षितम् ।[१]

मयमत ग्रन्थ में भी इसी प्रकार की परिभाषा का उल्लेख हुआ है।[२] इन तीनों प्रकार के लिङ्गों के दृष्टान्त वैष्णव पुराणों में प्राप्त होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में जिस लिङ्ग के निर्माण का आदेश दिया गया है वह निष्कल लिङ्ग है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णु आदि पुराणों में शिव के जिन अनेक रूपों का वर्णन हुआ है वे शिव के सकल रूप हैं। सद्योजात नामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशान इन पाँच मुखों वाला लिङ्गरूप मिश्र का उदाहरण है।

राव महोदय ने लिङ्ग दो प्रकार[३] के बतलाये हैं—

१. चल तथा २. अचल ।

चल लिङ्ग हल्के होते हैं और सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकते हैं। वस्तु के आधार पर ये छः प्रकार के कहे गये हैं[४]—

१. मृण्मय—मिट्टी का बना हुआ लिङ्ग। यह पक्व और अपक्व भेद से दो प्रकार का होता है।

२. लौहज—लोहा, ताँबा, पीतल, चाँदी तथा सोने आदि धातुओं को परस्पर मिला कर बनता है।

३. रत्नज—इसमें मोती, वैडूर्य, नीलम, पुष्पराग, रुबी आदि अमूल्य रत्न जड़े रहते हैं। इसके साथ-साथ यह स्फटिक तथा सूर्यकान्त का भी बनता है।

४. दारुज—शमी, मधूक, कर्णिकार, तिन्दुक, अर्जुन, पिप्ल, उदुम्बर, खदिर, चन्दन, शाल, बिल्व, बदर तथा देवदारु वृक्षों की लकड़ी से बनता है।

५. शैलज—पत्थर का बना हुआ हल्का लिङ्ग जो एक मनुष्य के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सके।

---

१. ईशानशिवगुरुदेवपद्धति अ० १ पृ० १४९.
२. निष्कलं लिङ्गमित्युक्तं सकलं बेरमुच्यते ॥
मुखलिङ्गं तयोर्मिश्रं लिङ्गार्चाकृतिसन्निभैः। नयमत ३३।४२.
३. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० ७४.
४. वही पृ० ७८.

६. क्षणिक—वे लिङ्ग जो पूजा के समय बनाये जायें और पूजा के समाप्त होने पर विसर्जित कर दिये जायें। ऐसे लिङ्ग बालू, चावल, भात, नदी के किनारे की मिट्टी, मक्खन, रुद्राक्ष, चन्दन तथा कूर्च घास, पुष्प तथा आटे के बनते हैं।

आगम ग्रन्थों में अनेक प्रकार के लिङ्गों का वर्णन हुआ है। सुप्रभेदागम[१] में दस प्रकार के (स्वायम्भुव, पूर्ण, दैवत, गाणपत्य, आसुर, सुर, आर्ष, राक्षस, मानुष तथा बाण) लिङ्ग कहे गये हैं। कामिकागम[२] इन दस में से पूर्ण, आसुर, सुर, राक्षस इन चार को नहीं मानता। मुकुटागम दैविक, आर्षिक, गाणप तथा मानुष इन चार ही लिङ्गों को स्वीकार करता है।[३] दस लिङ्गों में प्रतिमा निर्माण की दृष्टि से केवल अन्तिम के दो मानुष तथा बाण लिङ्ग ही उपयुक्त हैं।

मनुष्यों के द्वारा बनाये जाने वाले लिङ्ग मानुष कहलाते हैं।[४] इनके तीन भाग होते हैं—ब्रह्मभाग, विष्णु भाग तथा रुद्र भाग। रुद्र भाग ही पूजा भाग अथवा भोग भाग कहलाता है। इसी पर जल डाला जाता है और पुष्प, फल तथा अन्य पूजा की वस्तुएँ चढ़ाई जाती हैं। रुद्र भाग पर कुछ सुन्दर रेखाएँ बनती हैं जिन्हें ब्रह्म सूत्र कहते कहते हैं। लिङ्ग में पीठिका का बनना अत्यन्तावश्यक है क्योंकि लिङ्ग आधेय और पीठ आधार है। यह पीठ चौकोर, छः कोण, अष्टकोण किसी भी प्रकार का बनाया जा सकता है। मयमत में भद्र, महाम्बुज, श्रीकर, विकर, महावज्र, सौम्यक, श्रीकाम्य, चन्द्र, वज्र आदि पीठों का वर्णन हुआ है।[५] विष्णुधर्मोत्तर ने भद्रपीठ को ही माना है।[६] मयमत में लिङ्गनिवेश के अन्तर्गत छत्र, गोल, अण्डे, अर्धचन्द्र के आकार का भोग भाग बनाने का आदेश दिया गया है।[७] गोल तथा ऊपर की ओर उठते हुए लिङ्ग भाग को विष्णुधर्मोत्तर अधिक श्रेष्ठ मानता है और उसी को बनाने का आदेश भी देता है।[८]

मुख लिङ्ग के अन्तर्गत एक मुख से पाँच मुख तक बनते हैं। एकमुख लिङ्ग की एक प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में प्राप्त होती है। इसमें लिङ्ग के एक ओर मुख बना है। सिर पर जटा-जूट बने हैं।[९] बैनर्जी महोदय ने एक एकमुखी तथा एक

---

१. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ परिशिष्ट पृ० २८०.
२. डॉ० शुक्ल वास्तुशा० भाग प्रतिमा ल० पृ० १११.
३. राव, गो० ना० ए० हि० आ० पृ० ७८–८०.
४. मानुषैः रचितं लिङ्गं मानुषं चेति कथ्यते। मानसार पृ० ४८.
५. मयमत अ० ३३। २१–२७.
६. वि० ध० ४८।४.
७. छत्राभा त्रपुषाभा कुक्कुटकाण्डार्धचन्द्रसदृशायाः ॥ मयमत अ०३३।२९.
८. वि० ध० ४८।२-३.
९. लखनऊ संग्रहालय प्र० न० ४२.

पञ्चमुखी लिङ्ग का उल्लेख किया है। पञ्चमुखी लिङ्ग में चार मुख लिङ्ग के चारों ओर हैं और पाँचवाँ मुख चारों सिरों के ऊपर लिङ्ग के शिरोभाग पर बना हुआ है।[१] पाँचों मुख विष्णुधर्मोत्तर में कथित मुखों के समान बने हैं। ऊपर का पाँचवाँ मुख अधिक सुन्दर तथा सौम्य है।[२]

मुख लिङ्ग का एक और उदाहरण दक्षिण भारत में प्राप्त गौडिमल्लम् लिङ्ग है। इसमें लिङ्ग के ऊपर के आधे भाग में शिव बने हैं। उनके शरीर पर आभूषण तथा कानों में कुण्डल हैं। कन्धे पर त्रिशूल रखा है। राव महोदय ने इस लिङ्ग को अत्यन्त प्राचीन माना है। इसकी पूजा परशुरामेश्वर के नाम से होती रही है। तेल के चिकने लेप के कारण यह खराब नहीं हुआ है केवल कुछ पर्त के टुकड़े कहीं-कहीं पर हट गये हैं। सामने की ओर शिव का मुख बना हुआ है।[३]

भीटा से प्राप्त हुए शिव लिङ्ग का भी उल्लेख राव महोदय ने किया है। यह लिङ्ग लखनऊ के म्यूज़ियम में रखा हुआ है। लिङ्ग में सबसे ऊपर एक पुरुष का मुख है। वह अपने बाए हाथ में त्रिशूल लिये है और दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। उसके नीचे लिङ्ग में चार मुख चार कोनों पर बने हैं। कानों में कुण्डल तथा केश विन्यास के आधार पर आर० डी० बैनर्जी महोदय ने उन्हें स्त्री का मुख माना है।[४] किन्तु जे० एन० बैनर्जी महोदय को यह मत मान्य नहीं। वह उन्हें पुरुष के मुख बतलाकर उसे शिव का पञ्चमुखी लिङ्ग मानते हैं।[५] लिङ्ग के आकार-प्रकार एवं रूप को देखकर बैनर्जी महोदय का मत उपयुक्त प्रतीत होता है। एकमुखी लिङ्ग का एक और अवशेष लखनऊ म्यूज़ियम में है। लिङ्ग के ऊपर के भाग में एक ओर शिव का मुख बना हुआ है। मुख बड़ा ही भव्य एवं आकर्षक है।[६]

मानवीय प्रतिमाएँ—वैष्णव पुराणों में शिव के जिन रूपों का वर्णन हुआ है उसके अनुसार उनकी प्रतिमाओं का विभाजन निम्न प्रकार से हो सकता है—

१. मङ्गलकारी शान्त मूर्ति,

२. दक्षिण मूर्ति,

---

१. बैनर्जी—डे० हि० आ० पृ० ४६१-६२.
२. वि० ध० ४८।२–६.
३. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० ६३–६४.
४. बैनर्जी, आर० डी०–ए० डा० ज० आ० १९०९–१९१०.
५. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६३.
६. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६०.

३. नृत्तमूर्ति तथा

४. संहारक मूर्ति एवं अमङ्गलकारी मूर्ति ।

वैष्णव पुराणों में प्राप्त प्रसङ्गों से विदित होता है कि इन सभी रूपों के निम्न-लिखित आधार हैं--

१. भुजाओं की भिन्नता--शिव के भिन्न-भिन्न भुजा वाले अनेक रूप हैं। कोई ऐसा है जिसमें वे साधारणतः दो भुजावाले हैं। किसी रूप में उनमें आठ तथा किसी में दस भुजाएँ रहती हैं। कभी-कभी वे सहस्र भुजा वाले हो जाते हैं।

२. शिरों की भिन्नता--किसी रूप में वे साधारणतः एक सिर वाले हैं, किन्तु किसी रूप में वे पाँच सिर वाले हो जाते हैं।

३. आयुधों की भिन्नता--कभी वे केवल त्रिशूल धारण करते हैं। कभी इनके हाथों में डमरू, खड्ग, खेटक, पाश, त्रिशूल रहता है। किन्तु किसी रूप में खप्पर, रुद्राक्षमाला, तलवार, धनुष, खट्वाङ्ग, ढाल आदि अनेक आयुध रहते हैं।

४. कार्य की भिन्नता--कभी वे अपने बैल नन्दी पर भगवती के साथ बैठते हैं। कभी नन्दी पर बैठकर अपने गणों के साथ अकेले विचरण करते हैं। किसी रूप में वे अनुग्रह करते हुए, किसी रूप में नृत्य करते हुए तथा किसी रूप में संहार करते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं।

मङ्गलकारी शान्त मूर्ति--इसके अन्तर्गत दो प्रकार की प्रतिमाएँ आती हैं-

(अ) सौम्य तथा शान्तमूर्ति एवं

(ब) अनुग्रह मूर्ति।

सौम्य तथा शान्त मूर्ति के अन्तर्गत-

१. महादेव,

२. नीलकण्ठ,

३. महेश्वर,

४. वृषभवाहन,

५. उमा-महेश्वर,

६. कल्याणसुन्दर,

७. अर्धनारीश्वर तथा

८. हरिहर।

की प्रतिमाएँ आती हैं।

महादेव—विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि महादेव को वृष पर आरूढ़ बनाना चाहिए। इनके पाँच मुख हैं। पाँचों मुखों में चार मुख तो सौम्य रूप वाले हैं, किन्तु दक्षिण की ओर का मुख बड़ा भयङ्कर होता है–

देवदेवं महादेवं वृषारूढं तु कारयेत्।
तस्य वक्त्राणि पञ्च यादवनन्दन।
सर्वाणि सौम्यरूपाणि दक्षिणं विकटं मुखम्॥[1]

महादेव अपने गले में मुण्डों की माला पहनते हैं। इनके सभी मुखों में तीन नेत्र होते हैं। किन्तु उत्तर की ओर वाले मुख में तीसरा नेत्र नहीं होता। सिर पर इनके विकट जटाओं का समूह रहता है और सिर पर चन्द्रकला धारण करते हैं।[2] जटाओं के ऊपर पाँचवाँ मुख रहता है। वासुकि नाग का यज्ञोपवीत इन्हें धारण कराया जाता है—

तस्योपरिष्टाद्वदनं पञ्चमं तु विधीयते।
यज्ञोपवीतं च तथा वासुकिं तस्य कारयेत्॥[3]

श्रीमद्भागवत सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों को ही इनके तीन नेत्र स्वीकार करता है।[4]

बैनर्जी महोदय ने इस प्रकार की दो प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। इनमें से एक प्रतिमा पूर्वी भारत की तथा दूसरी पश्चिमी भारत की है। दोनों ही प्रतिमाओं में पाँच मुख हैं और वे बड़ी सुन्दर बनी हैं।[5]

नीलकण्ठ—जब समुद्र से मन्थन करते समय हलाहल प्रकट हुआ उस समय सभी देवों की प्रार्थना तथा पार्वतीजी के अनुमोदन से शिव ने हथेली पर रखकर उस विष को पी लिया। विष को उन्होंने अपने कण्ठ में ही रोक लिया, जिससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया—

---

१. वि० ध० ४४।१४–१५.
२. कपालमालिनं भीमं जगत्संहारकारकम्॥
त्रिनेत्राणि च सर्वाणि वदनं ह्युत्तरं बिना।
जटाकपाले महति तस्य चन्द्रकला भवेत्। वि० ध० ४४।१५–१६.
३. वि० ध० ४७।१७.
४. श्रीमद्भा० ८।७।३०.
५. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० २९५.

ततः करतलीकृत्य व्यापि हलाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेव कृपयाभूतभावनः ।।
यच्चकार गले नीलं तच्चसाघोर्विभूषणम् ।।[१]

इस रूप में उनके शरीर का वर्ण तपे हुएं सोने के समान कान्तिमान्, कण्ठ नीला तथा तीन विशाल नेत्र हैं ।[२]

शारदातिलक ग्रन्थ में नीलकण्ठ उदय होते हुए सूर्य के समान चमकती हुई जटाओं को धारण करने वाले कहे गये हैं । उनके पाँच मुख हैं तथा सिर पर चन्द्रकला रहती है । उनकी चारों भुजाएँ, सर्प, अक्षमाला, त्रिशूल तथा खट्वाङ्ग से भूषित रहती हैं । सभी मुखों में तीन नेत्र रहते हैं। वे बाघाम्बर पहनते हैं और कमल पर खड़े रहते हैं ।[३]

नीलकण्ठ की एक ऐसी प्रतिमा बङ्गाल से प्राप्त हुई है जिसमें पाँच सिर होकर केवल एक ही सिर है । दोनों ओर गङ्गा तथा गौरी स्थित हैं । नीलकण्ठ के सामने उनका वाहन वृषभ है जो ऊपर सिर करके उन्हें देख रहा है । देव के सिर के ऊपर छत्र है। उसके नीचे गणेश तथा कार्तिकेय हैं ।[४] प्रतिमा ढाका म्यूज़ियम में है ।

महेश्वर—महेश्वर के रूप में शिव चन्द्रज्योत्स्ना के समान श्वेतवर्ण वाले हैं, उनका नीला वर्ण नहीं होता—

वर्णस्तथा च कर्त्तव्यः चन्द्रांशुसदृशप्रभः ।।[५]

इस सुन्दर श्वेत वर्ण वाली मूर्ति के दस भुजाएँ होती हैं । दाहिनी पाँच भुजाओं में वे अक्षमाला, त्रिशूल, दण्ड, नीला कमल तथा एक बड़ा सर्प धारण करते हैं । बायीं भुजाओं में मातुलुङ्ग, धनुष, दर्पण, कमण्डलु तथा चर्म रहता है—

दशबाहुस्तथा कार्यो देवदेवो महेश्वरः ।
अक्षमालां त्रिशूलं च शरदण्डमथोत्पलम् ।।
तस्य दक्षिणहस्तेषु कर्त्तव्यानि महाभुज ।
वामेषु मातुलुङ्गं च चापादर्शीकमण्डलुम् ।।
तथा चर्म च कर्त्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ।[६]

---

१. श्रीमद्भा० ८।७।४२–४३.
२. तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ।। श्रीमद्भा० ४।२४।२५.
३. शा० ति० १९।२५–२७.
४. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० ११६–११७.
५. वि० ध० ४४।२०.
६. वि० ध० ४४।१७–१९.

राव महोदय ने कवेरीपक्कम् के समीप मल्वेरी में स्थित शिव मन्दिर में स्थित हुई महेश्वर की प्रतिमा का उल्लेख किया है । प्रतिमा में दस भुजाएँ हैं जिनमें अक्षमाला, त्रिशूल, दण्ड, कमल, धनुष तथा दर्पण आदि हैं और वह श्वेत पत्थर की बनी है । इसमें शिव का रूप बड़ा सुन्दर एवं भव्य है ।[1] इसके अतिरिक्त तीन और प्रतिमाओं का उल्लेख राव महोदय ने किया है जो क्रमशः ऐलिफण्टा, बेलगौम जिला तथा उदयपुर, मेवाड़ के चित्तौड़गढ़ में प्राप्त होती हैं, किन्तु ये तीनों प्रतिमाएँ वैष्णव प्रसङ्गों से भिन्न हैं । डॉ० अग्रवाल ने भी महेश्वर की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है । प्रतिमा अंशतः वैष्णव पुराणों में वर्णित रूप से मिलती है ।[2]

वृषभवाहन––मार्कण्डेय को शङ्कर के जिस रूप के दर्शन हुए वह उनका दश-भुजधारी मङ्गलमय रूप था । जब ऋषि बालमुकुन्द के रूप का दर्शन कर उन्हीं की शरण में एकाग्र हो गये उसी समय भगवान् शङ्कर उधर से निकले । वे भगवती उमा के साथ नन्दी पर आरूढ़ थे, सभी गण उनके साथ थे––

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ।।[3]

ध्यान मग्न होने के कारण ऋषि उनके आगमन को न जान सके । तब शङ्करजी उनके हृदय में प्रवेश कर गये । वहीं पर ऋषि ने उनके दर्शन किये । उन्होंने देखा शिवजी के सिर पर बिजली के समान चमकती जटाएँ सुशोभित हो रही हैं । तीन नेत्र तथा दस भुजाएँ हैं । खूब-लम्बा चौड़ा शरीर उदयकालीन सूर्य के समान चमक रहा है । शरीर पर वे बाघाम्बर धारण किये हैं । उनकी दसों भुजाओं में शूल, खट्वाङ्ग, ढाल, रुद्राक्ष की माला, डमरू, खप्पर, तलवार तथा धनुष आदि आयुध हैं ।[4] अपने हृदय में सहसा शङ्कर के इस दसभुजायुक्त रूप के दर्शन कर मार्कण्डेय ने अपनी समाधि भङ्ग की और शङ्कर तथा पार्वती को अपने गणों के साथ उसी रूप में उपस्थित देखा ।[5]

---

१. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० २७७.
२. अग्रवाल, वा० श०, इण्डि० आ० पृ० २८३.
३. श्रीमद्भा० १२।१०।३.
४. आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिवभास्करः ।।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूलखट्वाङ्गचर्मभिः ।
अक्षमालाडमरुककपालासि धनुः सह ।। श्रीमद्भा० १२।१०।११–१२.
५. नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ।।
तस्मै सपर्या व्यदधात् सगणाय सहोमया ।। श्रीमद्भा० १२।१४।१४–१५.

इसके अतिरिक्त एक अन्य स्थल पर भी शिव का यही रूप प्राप्त होता है। एक वार शिव विष्णु के समीप उनके मोहिनी रूप को देखने की इच्छा से वृषभ पर बैठ कर गये। उस समय पार्वतीजी भी उनके साथ बैठी थीं—

वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥[1]

यह शिव का अत्यन्त सुन्दर एवं भव्य रूप है। दक्षिण में दस दिन तक मनाये जाने वाले उत्सव के समय वहाँ के मन्दिरों में स्थापित हुई वृषभवाहन मूर्तियाँ बड़ी पवित्र एवं शुद्ध मानी जाती हैं। इनमें शिव अपने वाहन पर बैठे दिखाये जाते हैं।[2] ऐहोल में प्राप्त हुई शिव की वृषभवाहन मूर्ति कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। शिव सुखासन मुद्रा में वृषभ पर बैठे हैं।[3] पियर्स संग्रह के अन्तर्गत प्राप्त हुई शिव की वृषभवाहन मूर्ति तीन सिर तथा चार भुजा वाली है। इसमें भी शिव सुखासन मुद्रा में वृषभ पर आरूढ़ हैं। प्रतिमा भव्य है।[4] मथुरा म्यूज़ियम में शिव की एक प्रतिमा ऐसी है जिसमें शिव पार्वती के साथ अपने वाहन नन्दी पर बैठे हैं। अपने दोनों हाथो में नीलोत्पल लिये हुए हैं। यह पत्थर की प्रतिमा है।[5]

उमामहेश्वर—इस रूप में शिव पार्वती के साथ प्रदर्शित किये जाते हैं। शिव के आठ सिर होते हैं जो जटाजूट से शोभित रहते हैं—

युग्मं स्त्रीपुरुषं कार्यमुमेशौ दिव्यरूपिणौ।
अष्टवक्त्रं तु देवेशं जटाचन्द्रार्धभूषितम् ॥[6]

शिव की भुजाएँ दो ही रहती हैं। बायाँ हाथ देवी के स्कन्ध पर रखा रहता है और दाहिने हाथ में उत्पल रहता है—

वामपाणिं तु देवस्य देवस्स्कन्धेनियोजयेत् ॥
दक्षिणं तु करं शम्भोरुत्पलेन विभूषितम्।[7]

समीप में देवी पार्वती रहती हैं। उनका दाहिना हाथ शिव के स्कन्ध पर रहता है और बाँये में दर्पण रहता है। देवी की कटि क्षीण तथा शरीर सुन्दर होता

---

१. श्रीमद्भा० ८।१२।२.
२. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० २७८.
३. वही पृ० २७८.
४. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६८.
५. वही पृ० ४६८–९.
६. वि० ध० १०५।८–९.
७. वि० ध० १०५।९–१०.

है।[१] श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि शिव भगवती पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर विराजमान रहते हैं।[२] सिद्ध, चारण, ऋषि, मुनि सब उनकी सेवा किया करते हैं। विद्याधर चित्रकेतु ने जिस समय सिद्ध चारणों की सभा में बैठे शिव को देखा उस समय पार्वती भी उनके पास थीं। शङ्करजी उन्हें अपनी गोद में बिठाये थे और अपना एक हाथ उनकी पीठ पर रखे हुए थे––

गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥
आलिङ्ग्याङ्गीकृतां देवीं बाहुना मुनि संसदि ॥[३]

रूपमण्डन इस रूप में शिव को पार्वती के साथ बतलाता है किन्तु उनके दो के स्थान पर चार भुजाएँ रहती हैं। दाहिने हाथों में त्रिशूल तथा मातुलुङ्ग रहता है। बाएँ हाथों में से एक हाथ से वे देवी के साथ आलिङ्गन मुद्रा में रहते हैं और दूसरे में सर्प रहता है। देवी का हाथ शिव के स्कन्ध पर रहता है।[४]

इन भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में कथित रूपों के अनुसार बनी हुई भिन्न-भिन्न प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। रामपुर स्थान से प्राप्त अवशेषों में शिव की इसी रूप की प्रतिमा प्राप्त होती है। शिव तथा पार्वती दोनों का साथ चित्रण है। शिव के दोनों हाथों में से दाहिने हाथ में उत्पल है और बाँया पार्वती के ऊपर रखा है। पार्वती उनकी बायीं जाँघ पर बैठी हैं।[५] यह प्रतिमा भागवत के 'आलिङ्ग्याङ्गी-कृतां देवीं बाहुना'[६] तथा 'दक्षिणं तु करं शम्भोरुत्पलेन विभूषितम्'[७] के रूप को प्रकट करती है। यह प्रतिमा अष्टधातु की बनी है और ५ फी० लम्बी तथा २।। फी० चौड़ी है। खजुराहो के संग्रहालय में उमामहेश्वर की जो प्रतिमा है उसमें शिव तथा पार्वती ललितासन मुद्रा में एक आसन पर बैठे हैं। यह प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्ग को व्यक्त करती है। शिव का दाहिना चरण नीचे लटकते हुए पाद-पीठ

---

१. द्विपाणिं द्विभुजां देवी सुमध्यां सुपयोधराम्।
. . . .
देव्यास्तु दक्षिणं पाणिं स्कन्धे देवस्यकल्पयेत्।
वामपाणौ तथा देव्य दर्पणं दापयेच्छुभम् ॥ वि० ध० १०५।६१.
२. श्रीमद्भा० ६।१७।४.
३. श्रीमद्भा० ६।१७।५.
४. रूपमण्डन ३५।१६।२०.
५. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० १२९.
६. श्रीमद्भा० ६।१७।५.
७. वि० ध० १०५।१०.

पर रखा है और बाँया चरण मुड़ा हुआ है। उस पैर पर उमा बैठी हैं। उनका दाहिना पैर घुटने के पास से मुड़ा है। शिव दो भुजा वाले हैं। एक में त्रिशूल है और दूसरा उमा के स्कन्ध पर रखा है। उमा का दाहिना हाथ शिव के गले में पड़ा है। प्रतिमा के पीछे अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमा बनी है।[१] डॉ० अग्रवाल ने मथुरा की एक उमामहेश्वर प्रतिमा का उल्लेख किया है। पार्वती आलिङ्गन मुद्रा में शिव की वाम जाँघ पर बैठी हैं। प्रतिमा बड़ी सुन्दर है।[२]

कल्याणसुन्दर--शिव की कल्याणसुन्दर मूर्तियाँ वैवाहिक मूर्तियाँ भी कहलाती हैं। ये प्रतिमाएँ शिव तथा पार्वती के विवाह का चित्रण करती हैं। अनेक पुराणों में शिव तथा पार्वती के विवाह का वर्णन हुआ है। वैष्णव पुराणों में विवाहादि का वर्णन तो नहीं हुआ है किन्तु कुछ ऐसे प्रसङ्ग अवश्य प्राप्त होते हैं जो इस रूप की ओर सङ्केत कर देते हैं। पार्वती ने दुःसह तपस्या के पश्चात् शिव को प्राप्त किया। शिव ने आनन्दमग्न होकर उनके साथ पाणिग्रहण किया। इससे सभी देवता प्रसन्न हुए, ऐसा विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है।[३]

कल्याणसुन्दर रूप की अनेक प्रतिमाएँ यत्र-तत्र प्राप्त हैं। ढाका के संग्रहालय में एक कल्याणसुन्दर मूर्ति है। इसमें शिव बीच में खड़े हैं। उनके दाहिने हाथ में त्रिशूल है। शिव के सिर पर जटामुकुट है। देवी समीप में वधू के रूप में प्रदर्शित की गयी हैं। उनके बाएँ हाथ में शीशा है। शिव के समीप नन्दी है और देवी का सिंह भी उपस्थित है। कुछ देवों की भी प्रतिमाएँ बनी हैं।[४] ये प्रतिमाएँ काले पत्थर की बनी हुई हैं।

तन्जौर में प्राप्त हुई कल्याणसुन्दर प्रतिमा का उल्लेख थापर महोदय ने किया है। यह प्रतिमा काँस्य की बनी हुई है। इसमें विकसित कमल के पुष्प पर शिव तथा पार्वती खड़े हैं। शिव के सिर पर जटामुकुट, कानों में कुण्डल हैं। सर्प-यज्ञोपवीत शोभित है। उनके चार भुजाएँ हैं। पीछे के दो हाथों में त्रिशूल तथा मृग है। आगे का बायाँ हाथ वरद मुद्रा में है और दाहिना हाथ नीचे लटका है जो पार्वती की ओर है। समीप में खड़ी पार्वती शिव के हाथ को पकड़े है। देवी की वेशभूषा बड़ी सुन्दर है।[५]

---

१. खजुराहो पृ० २४ प्लेट० ८७.
२. अग्रवाल, वा० श० इण्डि० आ० पृ० २५८.
३. वि० पु० ३।२८।२७.
४. आ० बु० ब्र० स्क० पृ० १२२.
५. थापर, डी० आर०, आइ० इ० ब्र० पृ० ८०-८१.

सद्योजात––यह रूप शिव के सद्योजात (शीघ्र उत्पन्न हुए बालक) रूप को प्रकट करता है। वैष्णव पुराणों में रुद्र की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि एक बार प्रजापति ब्रह्मा ने अपने असह्य क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न किया किन्तु वह क्रोध शान्त न हुआ और उनकी भौंहों के मध्य से एक नीललोहित बालक के रूप में प्रकट हो गया और रोना प्रारम्भ कर दिया–

क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ।।
धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ।
सद्योऽजायत् तन्मन्युः कुमारोनीललोहितः ।।
स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ।[1]

विष्णु पुराण में इस नीललोहित सद्योजात बालक (रुद्र) की उत्पत्ति ब्रह्मा की भौंह से न बताकर गोद से बतलायी गयी है–

प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ।
रुरोद सुस्वरं सोऽथ प्राद्रवद्द्विजसत्तम ।[2]

इसी प्रसङ्ग का स्पष्टीकरण सद्योजात प्रतिमाओं में अनेक ढङ्ग से हुआ है। पार्वती के साथ शिव छोटे बालक के रूप में रहते हैं। यही इन प्रतिमाओं की विशेषता है। इसी कारण इन प्रतिमाओं को 'माता तथा शिशु' का नाम भी प्रदान किया गया है।

उत्तरी बङ्गाल (प्राचीन वरेन्द्री) में इस प्रकार की प्रतिमाएँ साधारणतः प्राप्त होती हैं। राजशाही के वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी म्यूज़ियम के १९१४ में प्रकाशित हुए कैटलॉग में इस रूप की आठ प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है। ये प्रतिमाएँ अब ढाका म्यूज़ियम में हैं। दीनापुरा जिले के बालुरघाट स्थान में अब भी दो इसी रूप की प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा आत्रेयी नदी के पश्चिमी तट पर वट वृक्ष के नीचे है और दूसरी बाजार में दक्षिण-पूर्व की ओर है। अतः ये प्राचीन वरेन्द्री निवासियों के इष्टदेव प्रतीत होते हैं। एन्डरसन महोदय ने भी इसे वरेन्द्री की ही प्रतिमा बतलायी है, जो प्राचीन गौर के अवशेषों में प्राप्त हुई थी।[3] इन प्रतिमाओं का उल्लेख आर० डी०

---

१. श्रीमद्भा० ३।१२।६-८.
२. वि० पु० १।८।२-३.
३. एन्डरसन्स केटेलॉग ऑफ दि इण्डियन म्यूज़ियम पृ० २५८.

बैनर्जी महोदय[1] ने तथा स्मिथ महोदय[2] ने अपने ग्रन्थों में किया है और प्रतिमा को सद्योजात रूप की ही बतलाया है। इण्डियन म्यूज़ियम में एक 'माता तथा शिशु' की प्रतिमा है जिसमें पार्वती को कार्तिकेय अथवा गणेश की माता के रूप में प्रदर्शित किया गया है। गणेश और कार्तिकेय भी उपस्थित हैं। पार्वती लेटी हुई हैं और उनके समीप एक शिशु पड़ा है जिसके पैर कमल पर रखे हैं। यही सम्भवतः सद्योजात शिव हैं।[3] कलकत्ता के नाहर संग्रह में शिव के इसी रूप की एक प्रतिमा प्राप्त होती है जिसमें लेटी हुई देवी के समीप शिशु पड़ा है। प्रतिमा के नीचे एक चार अक्षरों वाला शिलालेख है जो शिव की ओर सङ्केत करता है। देवी के दाहिनी ओर छोटा-सा शिव लिङ्ग है जो इसे शिव की सद्योजात प्रतिमा ही सिद्ध करता है। दीनाजपुर जिले में निर्मल नामक स्थान में प्राप्त हुई प्रतिमा में एक स्त्री (पार्वती) कोच पर लेटी है। पास में पड़े हुए शिशु के पैर मुड़े हैं। उसके पैर में एक स्त्री मालिश कर रही है। वह लेटी हुई स्त्री के पैरों के समीप बैठी है। सिर के पास चँवर लिए हुए एक और स्त्री खड़ी है। गणेश और कार्तिकेय की प्रतिमाएँ भी पार्वती के ऊपर बनी हैं।[4] काले पत्थर की बनी हुई यह प्रतिमा देखने में सुन्दर लगती है।

शिव का अर्धनारीश्वर रूप—शिव का यह ऐसा रूप है जो शैव तथा शाक्त धर्म में एकता स्थापित करता है। विष्णु पुराण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि जब ब्रह्मा की टेढ़ी भृकुटि और क्रोध संतप्त ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुई तो उसका आधा शरीर पुरुष का था और आधा स्त्री की भाँति था।[5] श्रीमद्भागवत में शिव के लिए कहा गया है कि उन्होंने प्रीतिवश अपना आधा शरीर पार्वती को समर्पित कर दिया—

प्रेम्णाऽऽत्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ।।[6]

यद्यपि इस रूप का विस्तृत वर्णन इन दोनों पुराणों में कहीं नहीं प्राप्त होता है फिर भी प्राप्त प्रसङ्ग उनके अर्धनारीश्वर रूप की ओर सङ्केत अवश्य कर देते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित गौरीश्वर रूप ही शिव का अर्धनारीश्वर रूप है। इस रूप

---

१. बैनर्जी आर० डी०, हिस्ट्री आफ बङ्गाल, पृ० २९६.
२. डॉ० स्मिथ—हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्टस् इन इण्डिया एण्ड सीलोन पृ० १६५.
३. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० १३७.
४. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० १४२.
५. अर्धनारीवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् । वि० पु० १।७।१३.
६. श्रीमद्भा० ४।४।३.

में शिव चार भुजाओं वाले रहते हैं और उनके आधे बाएँ शरीर में पार्वती का प्रदर्शन होता है–

वामार्धे पार्वती कार्या शिवः कार्यश्चतुर्भुजः ।।[1]

शरीर का आधा दाहिना भाग पुरुष का तथा बायाँ आधा भाग स्त्री का होता है। अपनी दोनों दाहिनी भुजाओं में वे अक्षमाला तथा त्रिशूल धारण करते हैं, किन्तु दोनों बाँयी भुजाओं में इन्दीवर (नीलकमल) तथा दर्पण रहता है। उनका एक मुख रहता है जिसमें आधा मुख शिव की भाँति, जटा, चन्द्रकला तथा कुण्डल आदि से भूषित होता है। आधा मुख जो स्त्री के समान होता है वह स्त्रियोचित सभी प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहता है। देव के दो नेत्र होते हैं।[2] यह प्रकृति और पुरुष का अभिन्न रूप है जो अर्धनारीश्वर रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसे गौरी-शर्व तथा गौरीश्वर रूप भी कहते हैं।[3]

एक अन्य स्थल पर अर्धनारीश्वर रूप का उल्लेख करते समय विस्तार से अङ्गों के निर्माण एवं अलङ्कार चरणादि पर प्रकाश डाला गया है। शिव के आधे भाग में देवी का रूप और आधा भाग पुरुष का हो जो सभी लक्षणों से भूषित हो। आधे शरीर पर जटाजूट, चन्द्रकला, भस्मलेप, नाग यज्ञोपवीत, सर्प मेखला, त्रिशूल, अक्षमाला हो तथा आधे भाग में सुन्दर केश विन्यास, तिलक, हार, केयूर, स्तन, आलक्तक, दर्पण आदि होना चाहिए।[4]

---

१. वि० ध० ५५।१८-१९.

२. अक्षमालां त्रिशूलं च तस्य दक्षिणहस्तयोः ।
दर्पणेन्दीवरौ कार्यौ वामयोर्यदुनन्दनः ।।
एकवक्त्रो भवेच्छम्भुर्वामार्धदयितातनुः ।
द्विनेत्रश्च महाभाग सर्वाभरणभूषितः ।। वि० ध० ५५।२-४.

३. अभेदभिन्ना प्रकृतिः पुरुषेण महाभुज ।
....
गौरीशर्वेति विख्याता सर्वलोकनमस्कृता ।। वि० ध० ५५।८.

४. अर्धं देवस्य नारी तु कर्त्तव्या शुभलक्षणा ।
अर्धं तु पुरुषः कार्यस्सर्वलक्षणभूषितः ।
ईश्वरार्धे जटाजूटं कर्त्तव्यं चन्द्रभूषितम् ।
उमार्धे तिलकं कुर्यात् सीमन्तमलकं तथा
भस्मोद्धूलितमर्धं तु अर्धं कुङ्कुमभूषितम् ।
नागोपवीतिनं चार्धमर्धं हारविभूषितम् ।
वामार्धे तु स्तनं कुर्यात् घनं पीनं सुवर्तुलम् ।।
मेखला दापयेत्तत्र वज्रवैडूर्यभूषिताम् ।
ऊर्ध्वलिङ्गं महेशार्धं सर्पमेखलमण्डिताम् ।।
....
त्रिशूलमक्षसूत्रं च भुजयोस्सव्ययोस्स्मृतम् ।। वि० ध० ५५।९-१३.

अर्धनारीश्वर रूप की कल्पना अत्यन्त प्राचीन है। जिस अण्ड से सृष्टि की उत्पत्ति हुई उसका भी आधा भाग पुरुषतत्त्व और आधा भाग स्त्रीतत्त्व था ऐसा अथर्ववेद में कहा गया है।[१] ऋग्वेद प्रत्येक पुरुष में अर्धस्त्रीतत्त्व और प्रत्येक स्त्री में अर्ध पुरुषतत्त्व स्वीकार करता है।[२] अर्धनारीश्वर रूप की कथा कालिका पुराण में दी हुई है। एक दिन शिव के मरकतमणि के समान चमकते हुए वक्ष:स्थल पर पार्वती ने अपनी प्रतिबिम्बित हुई छाया को देखा और किसी दूसरी स्त्री का प्रतिबिम्ब समझ कर शिव से रुष्ट हो गयी। तत्पश्चात् अपनी शङ्का का समाधान हो जाने की आकांक्षा प्रकट की। इसी के फलस्वरूप दोनों ने अपने शरीर को आधे-आधे रूप से मिला दिया।[३] यही शिव का अर्धनारीश्वर रूप बन गया। मत्स्य पुराण[४] में इस रूप के निर्माण करने की विधि का विस्तृत वर्णन हुआ है। जिसमें शिव का आधा शरीर जटा, त्रिशूल, सर्पयज्ञोपवीत, बाघाम्बर, सर्प-कुण्डल से शोभित रहता है किन्तु बायीं ओर का अर्ध भाग, मुकुट, कुण्डल, सुन्दर वस्त्र, केयूर, मेखला, कङ्कण आदि से शोभित रहता है। वाम चरण में आभूषण रहते हैं तथा आलक्तक लगा रहता है।

अर्धनारीश्वर रूप की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। वल्लालसेन की नैहाटी प्लेट पर नृत्य करते हुए अर्धनारीश्वर का चित्रण है। पूर्वी बङ्गाल में रामपाल स्थान से पाँच मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित पूरापारा अथवा पूरापाड़ा नामक ग्राम में एक अर्धनारीश्वर की प्रतिमा प्राप्त हुई। इस ग्राम के मध्य में एक मन्दिर के बीच में ताम्रकुण्ड नामक कुण्ड है। उसी कुण्ड से यह प्रतिमा खोद कर निकाली गयी है और अब राजशाही म्यूज़ियम में रखी है। इस प्रतिमा में दो ही हाथ हैं। एक हाथ कन्धे के पास से और दूसरा कोहनी के पास से टूटा है। प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर में कथित गौरीशङ्कर रूप से विल्कुल मिलती है। इसका बायाँ भाग स्त्रियों की भाँति खूब सजा है और दाहिना भाग शिव के रूप वाला है। घुटने से नीचे का भाग भी टूटा हुआ है।[५]

राव महोदय बादामी, कुम्भकोणम्, महाबलिपुरम्, काञ्जीवरम् तथा मदुरा में प्राप्त हुई अर्धनारीश्वर की प्रतिमाओं का उल्लेख करते हैं। सभी प्रतिमाएँ सुन्दर, भव्य, आकर्षक एवं पत्थर की बनी हैं।[६] मद्रास म्यूज़ियम में काँस्य की बनी

---

१. कालि० पु० अ० ४५।१७-३८.
२. म० पु० २६०।८-१७.
३. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० १३१.
४. तत्त्वं स्त्रीतत्त्वं पुमान्। अथर्व वे० १०८।२७.
५. ऋ० वे० १।१६४।१६.
६. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० २७८.

हुई एक अर्धनारीश्वर की प्रतिमा है जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़ी सुन्दरता से बने हैं।[१] बैनर्जी महोदय इस प्रकार की प्रतिमाओं को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं और उनका कथन है कि कुषाण तथा गुप्त काल के भी पूर्व उत्तरी भारत में इस प्रकार की प्रतिमाएँ बनती थीं। इसके अतिरिक्त तन्जौर के बृहदीश्वर मन्दिर में प्राप्त अर्ध-नारीश्वर की प्रतिमा का उल्लेख किया है।[२]

खजुराहो के संग्रहालय में अर्धनारीश्वर की प्रतिमा है। प्रतिमा में देव ललितासन मुद्रा में बैठे हैं। देव के शरीर का दाहिनी ओर का आधा भाग जटा-जूट, अर्ध-चन्द्र, कुण्डल, त्रिशूल, यज्ञोपवीत आदि से शोभित है। आधा वाम भाग सुन्दर केश विन्यास तथा स्त्रियोचित वेशभूषा से सुसज्जित है।[३] थापर महोदय ने काँस्य की बनी हुई दो अर्धनारीश्वर प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। दोनों प्रतिमाएँ वैष्णव ग्रन्थों में वर्णित रूप से साम्य रखती हैं और बड़ी सुन्दर हैं।[४]

हरिहर -शिव का यह रूप वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय में एकता स्थापित करता है। वैष्णव पुराणों में स्थान-स्थान पर विष्णु तथा शिव की एकता का कथन हुआ है। विष्णु पुराण में शिव स्वयं अपने श्रीमुख से कहते हैं कि वे हरि का ही अर्धभाग हैं और विष्णु से अलग उनका कोई व्यक्तित्व नहीं है।[५] बाणासुर की रक्षा करने के बाद कृष्ण ने स्वयं शिव से कहा था—

मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ।।
योऽहं सत्त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्वं ज्ञातुमिहार्हसि ।।[६]

अर्थात् आप अपने को हमसे भिन्न न समझें। जो आप हैं वही मैं हूँ।

हरिहर की एकता की ओर श्रीमद्भागवत में भी सङ्केत हुआ है। शिव, विष्णु के मोहिनी रूप को देखने की इच्छा से उनके स्थान पर पार्वतीजी के साथ गये। शिव की इच्छा जानकर विष्णु उसी क्षण एक सुन्दर मोहिनी रूप में उनके समक्ष आ गये। उसके हाव-भाव, क्रिया-कलाप तथा सौन्दर्य को देखकर शिव आकृष्ट हो गये और प्रेम से अभिभूत होकर उन्होंने मोहिनी का आलिङ्गन कर लिया। शीघ्र ही

---

१. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० २७८.
२. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४८६-८७.
३. खजुराहो पृ० २५, प्ले० ८९.
४. थापर, डी० आर०, आइ० ब्रा० पृ० ९१, प्ले० ५७.
५. वि० पु० ५।६।११-१३.
६. वि० पु० ५।३३।४७-४८.

विष्णु अपने रूप में आ गये ।[1] यह प्रसङ्ग वैष्णव तथा शैव इन दोनों धर्मों की एकता एवं प्रधानता को प्रकट करता है ।

विष्णुधर्मोत्तर में हरिहर के रूप के विषय में कहा गया है कि इस प्रतिमा के दाहिने आधे भाग में सदाशिव तथा वामार्ध भाग में हृषीकेश बनाने चाहिए। शिव का वर्ण श्वेत तथा विष्णु का नीला होता है। रूप के अनुसार हाथों में भी त्रिशूल, डमरू, चक्र तथा कमल रहता है--

कार्यं हरिहरस्यापि दक्षिणार्धं सदाशिवः ।
वाममर्धं हृषीकेशश्श्वेतनीलाकृतिः क्रमात् ।।[2]

इस प्रतिमा की बायीं ओर शिव का वाहन वृषभ तथा दाहिनी ओर विष्णु का वाहन पक्षिराज गरुड़ उपस्थित रहता है।[3] सुप्रभेदागम में विष्णु को पीताम्बरधारी, मुकुट पहने हुए और शिव को जटायुक्त व्याघ्र-चर्म पहने हुए बतलाया है। यहाँ पर इसे हर्यर्ध मूर्ति कहा गया है।[4] शिल्परत्न में इस मूर्ति का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। वह इन दोनों देवों के समीप देवियों की भी उपस्थिति बतलाता है।[5]

बैनर्जी महोदय ने बादामी में प्राप्त हुई इस प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा के वामार्ध में हरि तथा दक्षिणार्ध में हर क्रमशः किरीट-मुकुट एवं जटा-मुकुट वाले हैं। हरि के कानों में मकर अथवा नक्र कुण्डल है, शिव के कानों में सर्पाकार कुण्डल हैं। विष्णु के समीप लक्ष्मी तथा बड़े उदर वाला गरुड़ उपस्थित है। शिव के समीप पार्वती और वाहन वृषभ है।[6]

थापर महोदय ने हरिहर मन्दिर में बनी एक हरिहर प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा कांस्य की बनी हुई है। प्रतिमा का दाहिना भाग शिव के वस्त्रों, आभूषणों एवं आयुधों से भूषित है और अर्ध वाम भाग विष्णु की वेषभूषा, आभूषण तथा आयुधों से शोभित है। प्रतिमा खड़ी हुई है।[7] खजुराहो के संग्रहालय में जो

---

१. श्रीमद्भा० ८।१२।१८-२९.
२. वि० ध० १०८।३५.
३. वरत्रिशूलचक्राब्जधारिणो बाहवः क्रमात् ।
दक्षिणे वृषभः पार्श्वे वामे विहङ्गराट् ।। वि० ध० १०८।३७-३८.
४. पीताम्बरधरं विष्णु व्याघ्रचर्माम्बरं हरम् ।
. . . .
हरिरर्धमिदं प्रोक्तं.. .. .. ।। सुप्रभेदा० ३४.
५. शिल्परत्न २२।१५.
६. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६७.
७. थापर-डी० आर०, आइ० ब्रा० पृ० ९१

हरिहर की प्रतिमा है उसमें शिव खड़े हुए हैं, उनके चार भुजाएँ हैं। पीछे की दो भुजाओं में से दाहिनी भुजा में त्रिशूल है और बायीं भुजा में चक्र है। आगे की दोनों भुजाएँ टूट गयी हैं। दाहिनी भुजा की हथेली है जिसमें रुद्राक्ष की माला है। शरीर का दाहिना भाग जटाजूट, कुण्डल, कङ्कण तथा सर्पाभूषण से शोभित है और वाम-भाग पर किरीट, कुण्डल, पीताम्बर आदि हैं। हरिहर के दोनों ओर अनेक देव तथा देवियों की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।[1]

अनुग्रह मूर्ति—इस रूप में शिव अपने भक्तों को अभयदान देते हुए अथवा उन पर अनुग्रह करते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत निम्न रूप आते हैं[2]—

१. विष्ण्वानुग्रह
२. नन्दीशानुग्रह
३. विघ्नेश्वरानुग्रह
४. अर्जुनानुग्रह
५. चण्डेशानुग्रह तथा
६. रावणानुग्रह।

वैष्णव पुराणों में इनमें से किसी रूप का भी वर्णन विस्तार से नहीं हुआ है। हाँ, कुछ रूपों की ओर सङ्केत अवश्य हुआ है जिनमें विघ्नेश्वरानुग्रह, रावणानुग्रह तथा अर्जुनानुग्रह रूप का आभास हो जाता है।

विघ्नेश्वरानुग्रह––श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर कहा गया है कि शिव ने गणेश को पुनः जीवित कर देवी पार्वती को प्रसन्न किया।[3] इस कथा का वर्णन नहीं हुआ है। शिव ने गणेश के कटे हुए सिर पर गजमस्तक रखकर उन्हें जीवित कर दिया।

रावणानुग्रह––श्रीमद्भागवत में नारद वृकासुर को समझाते हुए कहते हैं कि रावण तथा बाणासुर आदि ने बन्दी जनों के समान शिव की कुछ स्तुतियाँ की थीं। उसी से प्रसन्न होकर शिव ने अतुलनीय सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य उन्हें प्रदान किया—

---

१. खजुराहो–पृ० २३ प्ले० ९१.
२. राव, गो० ना०, ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० २७५.
३. श्रीमद्भा० १०।९०।५–७.

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव ।
ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत् आप सुसङ्कटम् ।।[१]

शिव आशुतोष हैं । शीघ्र ही उनका हृदय द्रवित हो जाता है ।[२] शरणागत के द्वारा जल ही चढ़ा दिये जाने से वे संतुष्ट हो जाते हैं ।[३] विष्णु पुराण में भी इस रूप की ओर केवल सङ्केत मात्र हुआ है ।[४]

अर्जुनानुग्रह—इस रूप में शिव ने किरात रूप धारण कर अर्जुन पर कृपा की थी। महाभारत में इस कथा का विस्तृत वर्णन हुआ है ।[५] विष्णु पुराण में इस कथा का उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु इतना अवश्य कहा गया है कि अर्जुन ने अपनी तपस्या से शिव को प्रसन्न किया ।[६] श्रीमद्भागवत में भी ऐसा ही उल्लेख हुआ है और शिव को 'किरातरूपिणं देवं'[७] भी कहा गया है ।

इस प्रकार की मूर्तियों के कुछ रूप कला के अन्तर्गत प्रदर्शित किये गये हैं । रावणानुग्रह मूर्ति एलोरा के कैलाश मन्दिर में प्राप्त होती है । मूर्ति में शिव कैलाश उठाते हुए रावण पर अनुकम्पा करते हुए दिखाये गये हैं । पर्वत के ऊपर शिव-पार्वती बैठे हैं । नीचे रावण प्रदर्शित किया गया है ।[८] अर्जुनानुग्रह मूर्ति तिरुच्छन्न-गत्तनंगुर्ड में प्राप्त होती है । प्रतिमा पत्थर की बनी है । शिव का किरात रूप बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित किया गया है ।[९]

दक्षिणामूर्ति—शिव की दक्षिणामूर्ति के विषय में राव महोदय का मत है कि शिव देव महर्षियों को धर्म एवं ज्ञान का उपदेश देने के लिए दक्षिण की ओर मुख करके बैठते थे इसी कारण उनका यह रूप दक्षिणामूर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।[१०] शिव ज्ञान, योग, वीणा तथा अन्य सब शास्त्रों के आचार्य माने जाते हैं । इसी के आधार पर इनकी चार प्रकार की दक्षिणामूर्तियाँ हैं[११]—

---

१. श्रीमद्भा० १०।८८।१६.
२. श्रीमद्भा० १०।८८।११.
३. पीयेथ तोयेन नृणां प्रपद्यतां.:..श्रीमद्भा० १०।८८।२०.
४. वि० पु० ४।१५।६–७.
५. महा० वन० ३७।२०–६६.
६. वि० पु० ४।१७।९.
७. श्रीमद्भा० १०।४९।४५.
८. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० २७६.
९. वही पृ० २७८.
१०. राव, गो० ना०, ए० हि० आ० वा० २ भाग० १ पृ० २७३.
११. वही पृ० २७५.

ज्ञान दक्षिणा मूर्ति,
योग दक्षिणा मूर्ति,
वीणाधर दक्षिणा मूर्ति तथा
व्याख्यान दक्षिणा मूर्ति ।

इन चारों प्रकार की मूर्तियों में वैष्णव पुराणों में व्याख्यान दक्षिणा मूर्ति का वर्णन हुआ है । शिव की उपदेश देने वाली मुद्रा व्याख्यान दक्षिणा कहलाती है । विष्णु-धर्मोत्तर में व्याख्यान दक्षिणामूर्ति को बनाने का आदेश निम्न प्रकार से दिया गया है—

दक्षेण मुद्रां प्रतिपादयन्तं सिताक्षसूत्रं च तथोर्ध्वभागे ।
वामे च पुरस्तामखिलागमाद्यां बिभ्राणमूर्ध्वेन सुधाधरं च ।
सिताम्बुजस्थंसितवर्णमीशंसिताम्बरा लेपनमिन्दुमौलिम् ।
ज्ञानं मुनिभ्यः प्रतिपादयन्तं तं दक्षिणामूर्त्तिमुदाहरन्ति ।।[1]

अर्थात् शिव को श्वेत अक्षमाला लिए, मस्तक पर चन्द्रमा, श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, मुनियों को ज्ञान का उपदेश देते हुए, दक्षिण की ओर बैठे हुए बनाना चाहिए। किन्तु श्रीमद्भागवत में व्याख्यान दक्षिणामूर्ति का अधिक स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है, यद्यपि इस रूप के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है । सभी देव कैलाश पर्वत पर धर्म का उपदेश लेने के लिए जब शिव के समीप आये, तो उन्होंने शान्त मुद्रा में महासिद्ध आदि से घिरे हुए, गुह्यक राक्षसों के स्वामी के द्वारा उपासना किये जाते हुए, चन्द्रलेखा को मस्तक पर धारण किये हुए, दर्भ के बने हुए आसन पर पैर के घुटनों को मोड़कर पद्मासन लगाकर बैठे हुए, अक्षमाला लिए हुए, हाथ को तर्क मुद्रा में प्रदर्शित करते हुए शिव को देखा––

ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ।।
सनन्दाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः सशान्तविग्रहम् ।
उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यरक्षसाम् ।।
विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ।
. . . .
अङ्गेन संध्याभ्ररुचाचन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ।।

---

१. वि० ध० १०८।१५–१७.

उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्मसनातनम् ।
....
कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ।
बाहुप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ।।[१]

शिल्परत्न व्याख्यान दक्षिणामूर्ति को वट वृक्ष के नीचे बनाने का आदेश देता है इसमें उनका दाहिना पैर फैला और बायाँ पैर मुड़ा रहता है । शेष बातें तो समान हैं किन्तु एक हाथ ज्ञान मुद्रा में रहता है ।[२] उमा कामिकागम में शिव का दाहिना आगे का हाथ ज्ञान मुद्रा में बनाने का आदेश दिया गया है--

दक्षिणे पूर्वहस्तं तु ज्ञानमुद्रां तु धारयेत् ।।[३]

विष्णुकाञ्ची में एक प्रतिमा शिव की ऐसी प्राप्त होती है जिसमें उनका बायाँ पैर मुड़कर दाहिने पैर की जाँघ पर रखा है। उनके पीछे के हाथ में अक्षमाला है । वे अक्षवलय आभूषण के रूप में भी अपने शरीर पर धारण किये हैं। आगे का बाँया हाथ तर्क मुद्रा में है । वे वट वृक्ष के नीचे ऊँचे बने हुए आसन पर बैठें हैं ।[४] इस प्रतिमा में वैष्णव पुराणों का अंश अधिक तथा आगम ग्रन्थों का अंश कम है। किन्तु तेरोवरियूर में इसी प्रकार का जो कलापूर्ण चित्रण प्राप्त होता है वह श्रीमद्भागवत के वर्णन से अक्षरशः मिलता है । इसमें शिव वट के नीचे नहीं हैं वे पद्मासन लगाये सब देव ऋषियों से घिरे, अपना बाँया हाथ तर्क मुद्रा में किये तथा दूसरे में अक्षमाला लिये हैं ।[५] यह शिव की व्याख्यान दक्षिणामूर्ति वैष्णव पुराणों में वर्णित चित्रण का ही स्पष्टीकरण है ।

नृत्त मूर्ति--शिव ज्ञान, योग, वीणा तथा सभी शास्त्रों में पारङ्गत होने के साथ-साथ वे नृत्य के भी आचार्य हैं। उनकी यह मुद्रा उसी भाव को स्पष्ट करती है । जिस प्रकार सब कलाओं एवं ज्ञान का प्रतिनिधित्व कोई न कोई देवता ही करता है उसी प्रकार शिव नृत्य शास्त्र के प्रवर्तक हैं । भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में नृत्य की १०८ मुद्राओं का उल्लेख किया है । शैवागमों का कथन है कि शिव १०१ मुद्राओं से भी अधिक मुद्राओं में नृत्य कर लेते हैं । चिदम्बरम् के नट-राज मन्दिर के गोपुर के दोनों ओर नृत्य की १०८ मुद्राएँ उत्कीर्ण हैं और उनके

---

१. श्रीमद्भा० ४।६।३३-३८.
२. शिल्परत्न ४९।१४-१५.
३. उ० कामि० अ० ३०.
४. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० २५५.
५. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० २५६.

नीचे नाट्यशास्त्र के श्लोक लिखे हुए हैं। प्रतिमा कला की दृष्टि से केवल नव प्रकार की मुद्रा में ही है।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि एक बार ताण्डव नृत्य करते हुए शिव को बाणासुर ने अपनी हजार भुजाओं से वाद्य बजाकर प्रसन्न किया था।[1] विष्णु पुराण में शिव के लिए नटराज—नटराजेन राजितम्—[2] विशेषण का प्रयोग हुआ है। शिव के नृत्य करते हुए रूप की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। मत्स्य पुराण में नटराज की मूर्ति किस प्रकार बनानी चाहिए इसका विस्तृत वर्णन हुआ है किन्तु श्रीमद्-भागवत में इसका सङ्केत मात्र हुआ है। सम्भवत: इस समय तक विष्णु तथा शिव दोनों देवों ने समाज में इतना अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था कि दोनों धर्म किसी से कम न थे। इसी कारण वैष्णव पुराणों में विष्णु के समक्ष शिव की किसी प्रकार की निन्दा नहीं हुई है वरन् उन्हें एक ही माना गया है फिर भी शिव का तथा उनके रूपों का इतना विस्तृत वर्णन नहीं हुआ है जितना विष्णु का।

भगवान् शङ्कर के इन रूपों के आधार पर कालान्तर में अनेक प्रतिमाएँ बनीं। हर्षवर्द्धन का उत्तराधिकारी शशाङ्क शिव का ही उपासक था। बाद में सेन आदि राजाओं ने शैव धर्म ही अपनाया और दश भुजा वाली शिव की सदाशिव प्रतिमा उनका राजकीय चिह्न बन गयी। सेन राजाओं के सभी ताम्र पत्रों पर सदा-शिव का चिह्न प्राप्त होता है। सदाशिव की कुछ सुन्दर प्रतिमाएँ कलकत्ता के संग्रहालय[3] में तथा राजशाही संग्रहालय[4] में हैं।

शिव की नटराज मूर्ति भारतीय कला का प्रमुख रूप है। नटराज की जो मूर्तियाँ ढाका तथा तिपरा जिलों में प्राप्त होती हैं वे दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं[5]——

१. वह प्रतिमा जिसमें दस भुजाएँ हैं और उन दसों भुजाओं में वही आयुध हैं जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है। शिव अपने मूल दोनों हाथों से नृत्य की मुद्राएँ स्पष्ट करते हैं।

२. दूसरे प्रकार की मुद्रा बारह भुजाओं से युक्त है। इस मुद्रा में भुजाओं के तीन जोड़े विशेष हैं। प्रथम जोड़ा जो उनकी मूल भुजाएँ हैं उससे वे

---

१. सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवे तोषयन्मृडम्।। श्रीमद्भा० १०।६२।४.
२. वि० पु० ५।८।११.
३. वङ्गीय साहित्य परिषद् कलकत्ता पृ० ११०.
४. वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही पृ० ११०.
५. आइ० बु० ए० ब्र० स्क० ढा० म्यू० पृ० १११–११२.

वीणा को अपने वक्ष:स्थल पर रखे हुए बजा रहे हैं। दूसरे जोड़े वाले दो हाथों में वे शेषनाग को इस प्रकार पकड़े हैं कि वह सिर पर छत्र के समान तना है। तीसरी भुजाओं का जोड़ा सिर के ऊपर इस प्रकार रखा है मानों ताली बजाने के लिए ऊपर उठा हो। शेष छ. हाथों में वे त्रिशूल, खड्ग, खेटक, डमरू, अक्षमाला आदि आयुधों को धारण किये हैं। दोनों ही मुद्राओं में नन्दी उनके पैरों के समीप उपस्थित है, जो प्रभु के नृत्य को देखकर प्रसन्न हो रहा है।

शिव के समीप उनका वृषभ नन्दी रहता है, यह उत्तरी भारत की प्रतिमाओं की प्रथा है, किन्तु दक्षिण भारत में बनने वाली शिव की प्रतिमाओं में बैल के स्थान पर अपस्मार नामक दैत्य रहता है और शिव विशेषत: चार भुजाओं वाले चित्रित किये जाते हैं।[1]

बैनर्जी महोदय ने एक नटराज की प्रतिमा का उल्लेख किया है। इसमें शिव चार भुजा वाले हैं। चारों भुजाओं में त्रिशूल, डमरू, तथा सर्पादि लिए हुए हैं।[2] थापर महोदय ने दो नटराज की मूर्तियों का उल्लेख किया है दोनों प्रतिमाएँ काँस्य की हैं। पहली प्रतिमा में शिव चार भुजा वाले हैं। ऊपर के दाहिने हाथ में डमरू तथा नीचे का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। ऊपर के बाँये हाथ में मातुलुङ्ग तथा नीचे का गज हस्त मुद्रा में है। उनका बाँया पैर ऊपर उठा हुआ है।[3] दूसरी मुद्रा में नटराज ६ भुजाओं वाले हैं। मूल दो भुजाएँ नृत्य मुद्रा में और शेष चार भुजाओं में डमरू, खड्ग, मातुलुङ्ग तथा त्रिशूल हे। शरीर पर सर्वाभूषण हैं।[4]

अमङ्गलमय रूप—यह शिव का बड़ा ही भयानक एवं अशिव रूप है। इसके अन्तर्गत—

श्मशान वासी,
भैरव,
कामान्तक तथा
त्रिपुरान्तक।

रूप आते हैं।

---

१. आइ० बु० ए० ब्रु० स्क० ढा० म्यू० पृ० ११२–११३.
२. बैनर्जी, जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४६७.
३. थापर, डी० एन०, आइ० इ० ब्रा० पृ० ८८ प्ले० ५२.
४ वही पृ० ८८ प्ले० ५३.

श्मशानवासी––इस रूप का वर्णन कश्यपजी अपनी पत्नी दिति से करते हैं। वे कहते हैं कि सन्ध्या समय राक्षसादि जीवों का है और देखने में बड़ा भयानक है। इस समय भगवान् भूतनाथ अपने बैल पर आरूढ़ होकर अपने भूत-प्रेतादि गणों के साथ घूमते हैं। वे सिर पर जटा-जूट धारण करते हैं जो श्मशान की उठती हुई धूल से धूसरित रहती हैं। स्वर्ण की कान्ति के समान चमकते शरीर पर भस्म लगी रहती है। सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि रूप में वे तीन नेत्र अपने मुख में धारण करते हैं—

चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह।
एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान् भूतभावनः ॥
परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट्।
श्मशान चक्रानिलधूलिधूम्र विकीर्ण विद्योत जटा कलापः।
भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥[१]

भैरव तथा महाकाल–––यह शङ्करजी का बड़ा भयानक रूप है। इस रूप में वे भूत-प्रेतों के निवास स्थान श्मशान भूमि में निवास करते हैं। पागलों की तरह इनके सिर के बाल बिखरे रहते हैं और नङ्गे घूमा करते हैं। कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं। सारे शरीर में चिता की अपवित्र भस्म लपेटे रहते हैं। गले में भूतों के पहनने योग्य नर-मुण्डों की माला धारण करते हैं। पूरा शरीर हड्डियों के गहनों से सजा रहता है। इस रूप में ये तमोगुणी जीवों के नेता हैं।[२]

विष्णुधर्मोत्तर में भैरव का रूप कुछ भिन्न प्रकार से वर्णित है। भैरव का उदर लम्बा, पिङ्गल वर्ण के गोल-गोल नेत्र तथा बड़ी-बड़ी दाढ़ें होती हैं। अत्यन्त भीषण मुख में बड़े-बड़े नासापुट होते हैं। वे अपने गले में मुण्डों की माला पहनते हैं। उनका शरीर सर्पों के आभूषणों से सुसज्जित रहता है—

लम्बोदरं तथा कुर्याद्वृत्तपिङ्गललोचनम् ॥
दंष्ट्राकरालवदनं फुल्लनासापुटम् तथा।
कपाल मालिनं रौद्रं सर्वतः सर्पभूषणम् ॥[३]

---

१. श्रीमद्भा० ३।१४।२२--२४.
२. प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः।
अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥
चिताभस्मकृतास्नानः प्रेतस्रङ्न्नस्थिभूषणः।
शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तोमत्तजनप्रियः।
पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥
श्रीमद्भा० ४।२।१४–१५.
३. वि० ध० ५३।१–२.

इनके शरीर का वर्ण जल से भरे हुए मेघों के समान होता है और गजचर्म का उत्तरीय धारण करते हैं। सभी भुजाएँ आयुधों तथा आभूषणों से सुसज्जित होती हैं। खूब तीक्ष्ण, लम्बे तथा स्वच्छ नख होते हैं और वे सर्प से भगवती पार्वती को डरवाते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं।[1] महादेव का महाकाल रूप भी भैरव रूप के समान ही होता है। अन्तर केवल इतना होता है कि महाकाल के सम्मुख पार्वती नहीं रहतीं। उनका वर्ण न श्वेत होता है न रक्त। समीप में विचित्र रूप वाले बहुत से गण उपस्थित रहते हैं—

महाकालस्य कथितमेतदेव च सम्मुखम् ।
देवीत्रासनकश्चास्य करे कार्यस्तु पन्नगः ।।
न चास्य पुरतः कार्यो देवी पर्वतनन्दिनी ।
शुक्ला न कार्या न तथास्य रक्तासमीपतो मातृगणः प्रधानः ।
कार्यस्त्वथान्यः परिर्व्रह्मस्य गणाश्च कार्यो बहुरूपरूपाः ।।[2]

राव महोदय ने भैरव का वर्ण जल से भरे हुए मेघ के समान बताया है। अपनी अनेक भुजाओं में वे भिन्न-भिन्न आयुध धारण करते हैं और विष्णुधर्मोत्तर द्वारा कहे गये "देवीत्रासनकश्चास्य करेकार्यस्तु पन्नगः" रूप को स्वीकार करते हैं।[3] शारदातिलक[4] ग्रन्थ बटुक भैरव को तीन प्रकार का बताता है—

सात्त्विक भैरव,
राजसिक भैरव तथा
तामसिक भैरव।

राव महोदय ने एक भैरव की प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा के हाथ में सर्प है और विष्णुधर्मोत्तर में कथित रूप से मिलती है। प्रतिमा इण्डियन म्यूज़ियम में है।[5] रिवचिंग में प्राप्त हुई भैरव की प्रतिमा भी बड़े उदर, गोल पीले नेत्र, बड़ी

---

१. व्यालेन त्रासयन्तं च देवीं पर्वतनन्दिनीम् ।
सजलाम्बुदसङ्काशं गजचर्मोत्तरच्छदम् ।।
बाहुभिर्बहुभिर्व्याप्तं सर्वायुधविभूषणैः ।
बृहत्सालप्रतीकाशैस्तथा तीक्ष्णनखैः शुभैः ।।
साचीकृतमिदं रूपं भैरवस्य प्रकीर्तितम् ।। वि० ध० ५६।३–४.
२. वि० ध० ५९।५–७.
३. राव, गो० ना०, ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० १७७.
४. शा० ति० तं अ० २० पृ० ५९.
५. राव, गो० ना०, ए० हि० आ० वा० १ पा० १ प्ले० ६२ नं० १.

दाढों, चौड़े नथुने वाली है। गले में मुण्डमाला पड़ी है। प्रतिमा बिलकुल विष्णुधर्मोत्तर के चित्रण से मिलती है। इसका उल्लेख बैनर्जी महोदय ने किया है।[1] इसके अतिरिक्त उत्तरी बङ्गाल से भी भैरव की प्रतिमा प्राप्त हुई है। उसमें भैरव के बहुत से हाथ हैं और उनका रूप बड़ा भयानक है। इस प्रतिमा का रूप विष्णुधर्मोत्तर के भैरव से कुछ साम्य रखते हुए भी अधिकांशतः भिन्न है। प्रतिमा इस समय आशुतोष म्यूज़ियम में है।[2] भैरव की एक और मूर्ति है जिसमें शिव का मुख बड़ा भयानक बना है। बड़ी गोल आँखें, लम्बी दाढ़ें मुख को और भयानक बना रही हैं। देव के छः भुजाएं हैं। सभी भुजाओं में अनेक आयुध हैं। बड़ा सर्प कटि प्रदेश के समीप है। मुण्डों की माला तथा यज्ञोपवीत पहने हैं। किन्तु देवी समीप में नहीं हैं। थापर महोदय ने इसे भैरव मूर्ति माना है किन्तु विष्णुधर्मोत्तर के "न चास्य पुरतः कार्या देवी पर्वत नन्दिनी" के अनुसार इसे महाकाल की प्रतिमा मानना अधिक उपयुक्त होगा।

कामान्तक—वैष्णव पुराणों में इस रूप का यद्यपि पूर्ण रूप से उल्लेख नहीं प्राप्त होता फिर भी जो कुछ अंश प्राप्त होते हैं वे शिव के इस रूप की ओर सङ्केत अवश्य कर देते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि रुद्र की क्रोधाग्नि में भस्म हो जाने के पश्चात् कामदेव कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में उत्पन्न हुए––

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।
. . . .

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः।
प्रद्युम्न इति विख्यात . . . . . ॥[3]

बैनर्जी महोदय ने एक इस रूप की प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा गङ्गैकोण्ड-चोलपुरम् मन्दिर में है। यहाँ पर सम्पूर्ण रूप तीन भागों में चित्रित है। बीच में शिव योगासन मुद्रा में बैठे हैं। ध्यान मुद्रा में होने से उनकी आँखें बन्द हैं। इनके बायीं ओर कामदेव तथा रति हैं। रति भयभीत है और कामदेव उसे समझा रहे हैं। शिव के दाहिनी ओर पार्वती तथा उनके सहायक अञ्जलि बाँधे शिव को प्रसन्न कर रहे हैं। प्रतिमा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि शिव काम को अपने तीसरे नेत्र द्वारा भस्म कर देना चाहते हैं, क्योंकि उनका तीसरा नेत्र कुछ थोड़ा खुला है।[4] यह शिव

---

१. बैनर्जी जे० एन०– डे० हि० आ० पृ० ४८१.
२. वही पृ० ४८२.
३. श्रीमद्भा० १०।५५।१–२.
४. बैनर्जी–जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ४८८.

की कामान्तक मूर्ति ही है किन्तु काम को भस्म कर देने के पूर्व की है। प्रतिमा में सभी के आकार सुन्दर बने हैं।

त्रिपुरान्तक—जिस समय मय दानव के स्वर्ण, चाँदी तथा लोहे के बनाये हुए पुरों के समान विमानों को नष्ट करने के लिए भगवान् शङ्कर उद्यत हुए उस समय उन्होंने वीर वेष धारण किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी शक्तियों के द्वारा उनके लिए युद्ध की समस्त सामग्री तैयार कर दी। धर्म से रथ, ज्ञान से सारथी, वैराग्य से ध्वजा, ऐश्वर्य से घोड़े, तपस्या से धनुष, विद्या से कवच, क्रिया से बाण और अन्य शक्तियों से और बहुत-सी वस्तुएँ तैयार हुई।[१] इन सभी सामग्रियों से सज-धज कर धनुष-बाण धारण कर रथ पर आरूढ़ होकर शङ्करजी चले और त्रिपुर को जाकर भस्म कर दिया।[२]

त्रिपुर का प्रसङ्ग वैदिक साहित्य में भी सूक्ष्म रूप से प्राप्त होता है। वाजसनेयी संहिता,[३] शतपथ ब्राह्मण,[४] ऐतरेय ब्राह्मण,[५] तथा तैत्तिरीय संहिता[६] में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि तीन असुरों द्वारा तीन दुर्ग बनाये गये। वे सब इन्द्र अथवा अग्नि अथवा रुद्र के द्वारा नष्ट किये गये।

त्रिपुरान्तक मूर्ति को कला के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार से प्रदर्शित किया है। अंशुमद्भेदागम में आठ प्रकार के त्रिपुरान्तक रूपों का वर्णन हुआ है।[७] अपराजित पृच्छा[८] त्रिपुरान्तक रूप में शिव को एक मुख, दस भुजाओंवाला, बाघाम्बर का अधोवस्त्र तथा मृगचर्म का उत्तरीय पहने हुए बतलाता है। शिल्परत्न[९] भी इस रूप के आठ भेद बतलाता है। राव महोदय ने इन आठों रूपों में अधिक अन्तर नहीं बतलाया है। सभी में साम्य है। उनका कथन है कि सभी त्रिपुरान्तक मूर्तियाँ रक्त वर्ण की और तीन नेत्र वाली हैं। देवी उनके वाम भाग में विराजमान रहती हैं। वे इस

---

१. श्रीमद्भा० ७।१०।५४, ६५–६६.
२. सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे।
   शरं धनुषि सन्धाय मुहूर्त्तेऽभि जितीश्वरः॥
   ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप। श्रीमद्भा० ७।१०।६७-६८.
३. वाज० सं० ८।१५।३.
४. शत० ब्रा० ७।६। ५–६.
५. ऐत० ब्रा० ४।५।७.
६. तैत्ति सं० १०।३।७.
७. अंशु० आ० अ० २९.
८. अ० पृ० १२९.
९. शिल्प० ४९।२१.

रूप को सत्त्व और रजस् पूर्ण बतलाते हैं ।[१] इस विषय में कोई अपना विशिष्ट विचार नहीं प्रस्तुत किया है ।

राव महोदय ने त्रिपुरान्तक मूर्ति के चार उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उनमें से दो शिल्प एलोरा में तथा एक शिल्प दशावतार मन्दिर में प्राप्त होता है। दशावतार गुफा में प्रदर्शित शिव दस भुजाओं वाले हैं और रथ पर खड़े हैं ।[२] कैलाश मन्दिर में प्राप्त होने वाली शिव की त्रिपुरान्तक प्रतिमा में दो हाथ ही हैं ।[३] काञ्जीवरम् के कैलाशनम् मन्दिर में शिव की प्रतिमा है जिसमें वे एक ओर आलीढ़ासन मुद्रा में रथ पर बैठे हैं। ब्रह्म मन्दिर सारथी के रूप में रथ को चला रहे हैं। उनके आठ हाथ हैं।[४] मदुरा के सुन्दरेश्वर मन्दिर के बीच में स्थित मण्डप में इसी रूप की प्रतिमा अब भी है। प्रतिमा बड़ी सुन्दर बनी हुई है।[५] बैनर्जी महोदय ने तञ्जौर के बृहदीश्वर मन्दिर में स्थित एक त्रिपुरान्तक प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा काँस्य धातु की बनी है। इसमें शिव धनुष बाण लिए चलाने के लिए उद्यत हैं ।[६] तञ्जौर में एक और त्रिपुरान्तक मूर्ति प्राप्त होती है। इसमें देव पार्वती के साथ खड़े हैं । शिव के चार भुजाएँ हैं । पीछे की भुजाओं में त्रिशूल तथा मृग है, आगे के हाथ की अँगुलियाँ टूटी हुई हैं ।[७]

वाहन नन्दी

नन्दी, नन्दीश्वर और अधिकार नन्दिन् आदि अनेक विशेषण शिव के वाहन वृषभ के लिए प्रयुक्त हुए हैं । वैदिक काल में वृषभ अनेक देवों का प्रतीक था किन्तु उत्तर वैदिक काल में यह शिव का वाहन ही माना गया। ग्रीक तथा खरोष्ठी लिपियों की कथाओं में पूजा जाने वाला स्वर्ण-वृषभ शिव का प्रतीक माना गया है । मिहिरकुल के सिक्कों पर भी 'जयतु वृषभ' लिखा है ।[८] रामायण काल में शिव के वाहन नन्दी को वानर रूप[९] वाला कहा गया है। वह काला भयानक छोटे हाथों वाला बलशाली

---

१. राव–गो० ना०, ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० १७०.
२. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० १७१.
३. वही पृ० १७१.
४. वही पृ० १७२.
५. वही पृ० १७२
६. बैनर्जी–जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ४८८.
७. थापर–डी० एन०, आइ० इ० ब्रा० पृ० ७९–७८.
८. गार्डनर–पी०, ब्रि० म्यू० कै० क्वा० ग्री० सी० कि० बै० ए० इण्डि० पृ० १६२ , स्मिथ–वी० ए० कै० क्वा० इण्डि० म्यू० वा० १ पृ० २३६.
९. रामा० ८।१६।१४.

है।[1] इसके लिए 'द्वितीयमिव शङ्करः'[2] का प्रयोग किया गया है और शिव के प्रमुख गणों में माना गया है। शिव के गण अनेक पशुओं के मुख वाले थे। उनमें यही प्रधान थे। शिव पुराण तथा लिङ्ग पुराण के आधार पर राव महोदय ने नन्दी की तीन प्रकार से उत्पत्ति प्रस्तुत की है। उस आधार पर इसे शिव की कुछ विशेषताओं से युक्त मानव रूप में कहा गया है[3] किन्तु मध्य काल में इसे बैल के समान मुखवाला प्रदर्शित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर नन्दी को चार भुजा तथा तीन नेत्रवाला, सिन्दूर के समान लाल वर्ण वाला, व्याघ्र चर्म पहने हुए बतलाता है। नन्दी अपने दो हाथों में त्रिशूल तथा भिन्दिपाल लिए हुए रहते हैं—

नन्दी कार्यस्त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्महाभुजः।
सिन्दुरारुणसङ्काशो व्याघ्रचर्माम्बरच्छदः।
त्रिशूलभिन्दिपालौ च करयोस्तस्य कारयेत्॥[4]

इसके शेष दो हाथों में से एक सिर पर रहता है और दूसरा तर्जनी मुद्रा में रहता है। यह इस प्रकार से स्थापित किया जाता है जैसे यह दूर से आते हुए मनुष्य को देख रहा हो।[5] राव महोदय ने दक्षिण के एक ग्रन्थ के आधार पर इसे परशु लिए हुए तथा मृगचर्म पहने हुए बतलाया है। उसका शरीर भस्म से धूसरित है और गङ्गा के समान उज्ज्वल जटाएँ सिर पर हैं। उन्होंने ग्रन्थ विशेष के नाम का उल्लेख नहीं किया है।[6] मत्स्य पुराण नन्दी की स्थापना की कुछ भिन्न अवस्था बतलाता है। उसके कथनानुसार नन्दी की स्थापना इस प्रकार होनी चाहिए जैसे वह शिव को देखने में तत्पर हो।[7] इस प्रकार नन्दी को शिव के मन्दिर में स्थापित करने के दो रूप हैं—

१. जिसमें वह दूर से आने वाले मनुष्य को देखता हुआ प्रदर्शित हो अर्थात् उसका मुख शिव की ओर न होकर मन्दिर के द्वार की ओर हो। तथा

---

१. ....करालकृष्णपिङ्गलः।
वामनो विकटो मुण्डी नन्दीहृस्वभुजाबली॥ रामा० ५।८।८.
२. रामा० ८।१६।१६.
३. राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ पृ० ४५५–५८.
४. वि० ध० ७७।१५–१६.
५. शिरोगतं तृतीयं तु तर्जयन्तं तथा परम्।
आलोकमानं कर्त्तव्यं दूरादागामिकं जनम्॥ वि० ध० ७३।१७.
६. बिभ्राणं परशुं मृगं करतले ईशप्रणामाञ्जलिम्।
भस्मोद्धूलित पाण्डुरं शशिकला गङ्गाकपर्दोज्ज्वलम्॥
राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० १ पृ० ४५५.
७. देववीक्षणतत्परः—मत्स्य पु० १९५।१८.

२. जिसमें वह शिव को देख रहा हो अर्थात् उसका मुख शिव की ओर हो।

दक्षिण भारत के अनेक शिवमन्दिरों के द्वार पर नन्दी का चित्रण मनुष्य के रूप में हुआ है। मूर्ति चार भुजा वाली, त्रिशूल लिए हुए है[1] जो विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित आकार से मिलती है। बस अन्तर केवल आगे के दो हाथों में है। यह हाथ सिर के ऊपर तथा तर्जनी मुद्रा में बतलाता है और इस प्रतिमा में नन्दी के आगे के दोनों हाथ प्रणामाञ्जलि मुद्रा में हैं। वह शिवलिङ्ग के समक्ष है अतः वह मत्स्य पुराण के 'देववीक्षणतत्परः' का स्पष्ट उदाहरण है। किन्तु जहाँ पर नन्दी द्वार पर अथवा शिव से दूर स्थापित किया जाता है वहाँ वह विष्णुधर्मोत्तर के आलोकमानं.. 'दूरादागामिकं जनम्' का सिद्धान्त ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार की कुण्डेश्वर टीकमगढ़ में प्राप्त एक नन्दी की प्रतिमा है जिसमें नन्दी अपने पैर मोड़े हुए बैठा है। उसके गले में मालाएँ पड़ी हैं। उसका मुख ऊपर उठा हुआ है।[2] नन्दी का भव्य रूप 'दूरादागामिकं जनम्' की उक्ति को चरितार्थ करता है। नन्दी के यही दो रूप आज भी देखने को प्राप्त होते हैं परन्तु उसका वृषभ रूप अधिक व्यापक हुआ प्रतीत होता है।

---

१. बैनर्जी–जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ५३३–३४.
२. दीक्षित, आर० के०–चन्द० जे० जा० टा०–परिशिष्ट ब . ५.

पञ्चम परिच्छेद

सूर्य तथा नवग्रह

सूर्य

वेदों में सूर्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता स्वीकार किये गये हैं। इन्हीं के साथ कुछ अन्य देवों के नामों की गणना हुई है जो सूर्य के ही रूप माने गये हैं। वे देवता सवितृ, धाता, मित्र, अर्यमा, विष्णु, विवस्वत्, पूषन् तथा भग आदि हैं। ये सब संख्या में बारह हैं अतः द्वादश आदित्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी देवता किसी न किसी रूप में परस्पर साम्य रखते हैं। कुछ देवों के कर्म समान होने से वे एक दूसरे का रूप भी धारण कर सकते हैं। यथा अपने नियमों में साम्य होने से सवितृ मित्र का रूप धारण कर लेते हैं।[1] ग्रिस्वल्ड महोदय का कथन है कि सम्पूर्ण चर और अचर वस्तुओं के स्वामी सूर्य, सवितृ तथा पूषन् हैं। मैकडॉनल महोदय भी इस कथन का अनुमोदन करते हैं।[2] ये अग्निदेव के परम सहायक माने गये हैं।[3] इन्हें मित्र, वरुण तथा अग्नि का नेत्र कहा गया है।[4] निरुक्त सवितृ देवता को 'सर्वस्य प्रसविता'[5] कह कर सर्वव्यापी कहता है। वेदों में कुछ स्थानों में वे सुनहरे पङ्खों वाले सुन्दर पक्षी के रूप में चित्रित किये गये हैं, किन्तु कहीं पर वे श्वेत चमकते हुए घोड़े के रूप में स्वीकार किये गये हैं, जो उषस् के द्वारा चलाये जाते हैं।[6] इसके अतिरिक्त उनके लिए ऐसा भी प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि वे चार अथवा सात घोड़ों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी पर बैठकर चलते हैं।[7] त्वष्टा की पुत्री सरण्यू के साथ विवस्वान् सूर्य का विवाह हुआ।[8] वेदों का 'सूर्यो आत्मा जगतः तस्थुशश्च' मन्त्र सूर्य को विश्व की आत्मा वतलाता है।[9] ग्रिस्वल्ड महोदय सूर्य का जन्म पुरुष नामक दैत्य के नेत्रों से मानते हैं।[10] हिलेब्रॉण्ड महोदय सभी देवों की उत्पत्ति सूर्य से ही मानते हैं।[11] महाभारत 'भाति दिविदेवेश्वरः' कह कर देवेश्वर[12] सूर्य को पीत वर्ण, विशाल-

---

१. ऋ०वे० ५।८१।४. २. वैदिक रिलिजन पृ० ६०३.
३. ऋ०वे० १।११५।१. ४. ऋ०वे० ७।७७।३, ६।५१।१, १।११५।१.
५. निरुक्त १०।३१. ६. ऋ०वे० ७।७७।३.
७. ऋ०वे० १।११५।३–४, ७।६०।३, ७।६३।२.
८. ऋ०वे० १।१६४. ९. ऋ० वे० १।११५।१.
१०. ग्रिस्वल्ड ऋ० वे० पृ० २६७.
११. वै० मा० १ पृ० ४८८.
१२. महा० सभा० ५०।१६.

बाहु, कवच, कुण्डल तथा आभूषणधारी बताता है ।[१] पुराणों के द्वारा भी द्वादश आदित्यों की सत्ता स्वीकार की गयी है । इनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा से हुआ । सूर्य के प्रचण्ड तेज को न सहन कर सकने के कारण वह अपने स्थान पर अपनी छाया छोड़ कर चली गयी और हिमालय प्रदेश में घोड़ी का रूप रख कर तपस्या करने लगी। अन्त में विश्वकर्मा ने इनके तेज को कम कर दिया ।[२] संज्ञा के उसी रूप से सूर्य के अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए ।[३] उपासना के क्षेत्र में विष्णु के बाद सूर्य का दूसरा स्थान है ।

सूर्य की उपासना सम्पूर्ण भारत में दो रूपों में प्रचलित थी—

१. नवग्रह सूर्य तथा

२. आदित्य सूर्य—द्वादश आदित्यों में से एक ।

उत्तर और दक्षिण भारत में व्यापक रूप से सूर्य की पूजा होती थी । सूर्य उपासक लाल चन्दन का तिलक लगाते, लाल पुष्पों की माला पहनते तथा सूर्य-गायत्री मन्त्र का जप करते थे ।[४] मयूरभट्ट ने १०० श्लोकों में सूर्यशतक की रचना की और सूर्योपासना द्वारा अपनी कुष्ठ व्याधि से मुक्ति प्राप्त की । वराह पुराण इस बात का साक्षी है कि साम्ब को कृष्ण के शाप से जो कोढ़ हो गया था वह सूर्य की उपासना से ठीक हो गया ।[५] साम्ब ने उदयगिरि, मथुरा तथा साम्बपुर में तीन सूर्य मन्दिरों की स्थापना करवायी। इन तीनों मन्दिरों में स्थापित सूर्य की प्रतिमाएँ प्रातः, मध्याह्न तथा सायङ्कालीन अस्त होते हुए सूर्य की प्रतीक हैं ।[६] मथुरा में साम्ब के द्वारा स्थापित करवायी हुई प्रतिमा शम्बादित्य के नाम से प्रसिद्ध है ।[७] पश्चिमी पञ्जाब में चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित मूलस्थान (वर्तमान मुल्तान इसी का नाम शाम्बपुर था) में जो सूर्य का मन्दिर था उसमें सोने की बनी हुई सूर्य की प्रतिमा भारत की समस्त सूर्य प्रतिमाओं में प्रसिद्ध थी । सभी धनी व्यक्ति उस सजी हुई आभूषणों से भूषित प्रतिमा की उपासना करते थे । चीनी यात्री ह्वेनसाँग तथा एलेडिसी अबूइश्कल तथा इश्तखर आदि अरब के भौगोलिकों ने मुक्तकण्ठ से इसका वर्णन किया है ।[८] डाउसन महोदय ने भी अपने ग्रन्थ में कहा है कि शाम्बपुर के मन्दिर में बनी हुई सोने की

---

१. महा० आदि० ३०६।७–९.
२. वि० पु० ३।२।९.
३. वि० पु० ३।२।७.
४. भण्डारकर—आर० सी० वै० शै० मा० रे० सि० पृ० १५२.
५. वराह पु० १७७।५९–७२ पृ० ५६५.
६. एम० गाङ्गुली–उड़ीसा एण्ड हर रिमेन्स पृ० ४३९–४४१.
७. वराह० पु० १७७।७३.
८. बैनर्जी—जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ४३१.

प्रतिमा २३० मन की थी और इसे मोहम्मद बिन कासिम ने नष्ट कर दिया था ।[1] शाम्बपुर मुल्तान ही था जो चन्द्रभागा के तट पर था । भविष्यत पुराण चिनाब का ही प्राचीन नाम चन्द्रभागा सिद्ध करता है ।[2] किन्तु अलबेरूनी इस मत से सहमत नहीं वे दोनों में भिन्नता बतलाते हैं ।[3]

सूर्य के मन्दिरों एवं मूर्तियों को स्थापित करने वाले प्रसङ्ग उत्तरी ईरान में होने वाली सूर्य की उपासना से साम्य रखते हैं । बृहत् संहिता के अनुसार मग नाम से प्रसिद्ध पुरोहित ही मन्दिरों में सूर्य की प्रतिमा स्थापित कर सकते थे । यह अधिकार किसी अन्य को प्राप्त न था ।[4] पारसी पुरोहित भारत में भी आकर 'मग' नाम से प्रसिद्ध हुए । अलबेरूनी की यह उक्ति उपर्युक्त प्रसङ्ग को स्पष्ट कर देती है ।[5]

युवानच्वाँग ने कन्नौज में एक सूर्य मन्दिर का उल्लेख किया है । इस मन्दिर की प्रतिमा भी बड़ी सुन्दर है। थानेश्वर के राज्यवर्धन, आदित्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन आदि सब आदित्य के परम भक्त थे ।[6] हूणवंशीय मिहिरकुल के शिलालेख में ग्वालियर में गोपाद्रि के सूर्य मन्दिर का तथा मगध के राजा जीवितगुप्त द्वितीय के समय के देव-बरनर्क शिलालेख में, बिहार में शाहाबाद जिले (अरह से २५ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर) के स्थान में एक सूर्य मन्दिर होने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[7] कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मन् के मन्दसौर शिलालेख में एक सूर्य मन्दिर का प्रसङ्ग प्राप्त होता है । इसे जुलाहों ने दशपुर (मन्दसौर का प्राचीन नाम) में बनवाया था ।[8] बुलन्दशहर में इन्द्रपुर (इन्दौर का प्राचीन नाम) में भी एक सूर्य मन्दिर था । ऐसा स्कन्दगुप्त के इन्दौर के ताम्रपत्र अभिलेख से ज्ञात होता है ।[9] मध्ययुग में भी अनेक सूर्य मन्दिर बने । इनमें पश्चिमी गुजरात के मोघेरा स्थान में तथा उड़ीसा के अर्क क्षेत्र में स्थित कोणार्क का मन्दिर प्रसिद्ध है ।[10] मध्यभारत के मन्खेरा (जिला टीकमगढ़) स्थान में प्रतीहारों ने तथा खजुराहो में (चित्रगुप्त मन्दिर) चन्देलों ने सूर्य मन्दिर का निर्माण

---

१. डाउसन ए० इलिअट, हि० आ० इण्डि० बा० इ० आ० हि० वा०१ पृ० २०६.
२. भविष्यत् पु० अ० ७४.
३. बैनर्जी—जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ४३१.
४. बृ० सं० ५९।५–७.
५. बैनर्जी० जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४३२.
६. बैनर्जी – जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४३३.
७. सी० आई० आई० २ पृ० ७०, ८०, १६२, २१८.
८. सी० आई० आई० वा० ३ पृ० ८०.
९. वही पृ० ७०.
१०. बरगेज़ –जे० आ० स० वे० इ० वा० ९.

कराया ।[१] अल्बरूनी ने एक और सूर्य की प्रतिमा का उल्लेख किया है । यह प्रतिमा लकड़ी की बनी थी और उस पर चमड़े का आवरण मढ़ा था ।[२] यह प्रतिमा १७वीं शताब्दी तक रही और औरङ्गजेब ने इसे नष्ट किया ।[३] कुछ विद्वानों ने पुरी में स्थित जगन्नाथ की प्रतिमा का भी सम्बन्ध सूर्य से स्थापित किया है और उस प्रतिमा का बाह्याकार सूर्य मण्डल का प्रतीक बतलाया है ।[४] जगन्नाथ पुरी में जो रथोत्सव होता है वही उत्सव मथुरा तथा साम्बपुर में होता है । जो तीर्थयात्री सूर्य के रथोत्सव को देखने के लिए मथुरा जाते हैं वे शाम्बपुर में माघ मास की सप्तमी तिथि को होने वाले पर्व में सम्मिलित होते हैं ।[५] इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में सूर्य की उपासना प्रचलित थी किन्तु उत्तर में विदेशी प्रभाव अधिक होने से सूर्य के रूप में भिन्नता आ गयी । दक्षिण में विदेशी प्रभाव नहीं फैल सका । इसलिए दक्षिण की प्रतिमाएँ सर्वसाधारण देवों की भाँति बनीं हैं ।

प्रतिमा कला के अन्तर्गत सूर्य को दो रूपों में प्रदर्शित किया गया है––

१. उत्तरी वेशभूषा में तथा

२. दक्षिणी वेशभूषा में ।

दक्षिण भारत में प्राप्त प्रतिमाओं में सूर्य के हाथ कन्धों तक ऊपर उठ रहते हैं और अर्ध-विकसित कमल पुष्प हाथों में रहता है । जंघाएँ तथा चरण नङ्गे होते हैं । ऊर्ध्वबन्ध रहता है । न तो सारथी अरुण ही रहता है और न कोई अनुचर ही साथ रहते हैं । किन्तु उत्तरी वेशभूषा में सूर्य के हाथ स्वाभाविक हैं । उनमें पूर्ण विकसित कमल रहता है जो कन्धे तक ऊपर उठा रहता है । पैरों में मोजे की भाँति का आवरण रहता है । चरण बूट के समान जूतों से ढके रहते हैं । इनका शरीर कोट के आकार के एक पतले वस्त्र से ढका रहता है ।[६]

वैष्णव पुराणों में सूर्य के कुछ रूपों का वर्णन हुआ है । विष्णुधर्मोत्तर सूर्य और चन्द्रमा को अग्नि तथा वरुण का ही दूसरा रूप स्वीकार करता है । इस पुराण का कथन है कि सूर्य का रूप अत्यन्त सुन्दर है । उनका वर्ण सिन्दूर के समान लाल है और मूँछें भी चमकती हुई हैं । उत्तरी वेशभूषा से उनका शरीर सुसज्जित रहता है । सभी

---

१. देव कै०– ए० इ० न० १५ पृ० ४४.
२. अल्वरूनी –इ० वा० १ पृ० ११६.
३. कनिंघम्स आर० सर्वे० रि० वा० ५ पृ० ११९.
४. डा० बलोच –स० कै० आ० क० इण्डि० म्यू०– सेक्शन ऑन इमेजेज़ ऑफ दि सन गॉड पृ० ७९ टिप्पणी ।
५. आइ० बु० ब्र० स्क० पृ० १६७.
६. राव– गो० ना०, ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० ३२२–२४.

आभूषण शरीर पर धारण करते हैं। चार भुजाएँ हैं। शरीर कबन्ध से ढका रहता है। यह उनकी वेशभूषा की विचित्रता है। इसके अतिरिक्त कमर में करधनी पहनते हैं जो यावियाङ्ग कहलाती है—

रविः कार्यः शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसमप्रभः।
उदीच्यवेशः स्वाकारः सर्वाभरणसंयुतः॥
चतुर्बाहुर्महातेजाः कवचेनाभिसंवृतः।
कर्त्तव्या रचना चास्य यावियाङ्गेति संज्ञिता॥[1]

सूर्य देव के दो दाहिने तथा बाएँ हाथ रश्मियों से भरे होते हैं। ये रश्मियाँ हारों के रूप में रहती हैं, जिनके तागे ऊपर की ओर उठे हुए रहते हैं और वे सब प्रकार के पुष्पों से ढके रहते हैं—

रश्मयस्तस्य कर्त्तव्या वामदक्षिणहस्तयोः।
ऊर्ध्वस्त्रग्दामसंस्थानाः सर्वपुष्पाञ्चिता शुभाः॥[2]

सूर्य के दोनों ओर उनके अनुचर शोभा पाते हैं। बायीं ओर सुन्दर रूप वाला दण्ड नामक अनुचर रहता है और दाहिनी ओर पिङ्गल नामक सेवक रहता है। इनके शरीर का वर्ण पिङ्गल वर्ण का होता है। दोनों अनुचरों के ऊपर सूर्य के हाथ रखे रहते हैं। वे दोनों उत्तरीय वेशभूषा में सूर्य के समान ही सुसज्जित रहते हैं। पिङ्गल के हाथों में पत्र तथा लेखनी रहती है और दण्ड के हाथों में चर्म, शूल तथा दण्ड रहता है। इसके अतिरिक्त एक ध्वजा सूर्य के बाँयी ओर रहती है जो सिंह के ध्वज से भूषित रहती है।[3] सूर्य के रेवन्त, यम, मनु, तथा द्वितय नाम के चार पुत्र इन्हीं के समीप स्थापित किये जाते हैं। सूर्य ग्रहों के राजा हैं और सब ग्रहों से घिरे हुए हैं। निक्षुभा, छाया और सुवर्चला नाम की इनकी पत्नियाँ इनके दोनों ओर उपस्थित रहती हैं—

---

१. वि० ध० ६७।२–३.
२. वि० ध० ६७।४.
३. सरूपरूपः स्वाकारो दण्डः कार्योऽस्य वामतः।
दक्षिणे पिङ्गलो भागे कर्त्तव्यश्चातिपिङ्गलः॥
उदीच्यवेशौ कर्त्तव्यौ तावुभावपि यादव।
तयोर्मूर्ध्नि विन्यस्तौ करौ कार्यौ विभावसोः॥
लेखनी पत्रककरः कार्यो भवति पिङ्गलः।
चर्मशूलधरो दण्डस्तथायत्नाद्विधीयते।
सिंहसूध्वजश्च कर्त्तव्यस्तथा सूर्यस्य वामतः॥ वि० ध० ६७।५–८.

चत्वारश्चास्य कर्त्तव्यास्तनयास्तस्य पार्श्वयोः ।
रेवन्तश्च यमश्चैवमनुद्वितयमेव च ।
ग्रहराजो रविः कार्यो ग्रहैर्वा परिवारतः ।
राज्ञी च निक्षुभा छाया तथा देवी सुवर्चला ।
चतस्रश्चास्य कर्त्तव्याः पत्न्यश्च परिपार्श्वयोः ।।[१]

विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित सूर्य का रूप उत्तरी और दक्षिणी दोनों ग्रन्थों में प्राप्त रूपों की पूर्ति कर देता है। उत्तरी भारत के ग्रन्थ सूर्य के शरीर को अधिक ढकने पर बल देते हैं । उन्होंने यावियीङ्ग तथा बूट पहने हुए (उपानत् पिनद्धपादयुगलम्) बतलाते हैं। इस प्रकार इन ग्रन्थों में वर्णित सूर्य के शरीर के रूप पर विदेशी छाप स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है ।[२] दक्षिणी वेशभूषा में सूर्य के शरीर को अधिक ढका हुआ नहीं बतलाया है। उनके कुछ स्त्री और पुरुष अनुचर अवश्य अधिक ढके हुए शरीर वाले बतलाये गये हैं ।[३] सूर्य के इस पारिवारिक रूप के अतिरिक्त रथारूढ़ सूर्य का रूप भी बड़ा वैभवपूर्ण है । इस रूप में वे सात घोड़े के द्वारा खींचे जाने वाले अत्यन्त सुन्दर रथ में बैठे रहते हैं । इस रथ में एक पहिया होता है जिसमें छः दण्ड रहते हैं। अरुण सूर्य का सारथी है जो उनके रथ को चलाता है––

एक चक्रेऽथ सप्ताश्वे षडरेवाङ्के रथोत्तमे ।
उपविष्टस्तु कर्त्तव्यो देवो ह्यरुणसारथिः ।।[४]

सूर्य के रथ के सम्मुख गन्धर्व गण यशोगान करते हैं । अप्सराएँ नृत्य करती हुई रथ के आगे-आगे चलती हैं, राक्षस रथ के पीछे चलते हैं, सर्पगण रथ का साज सजाते हैं और यक्ष घोड़ों की बागडोर सँभालते हैं तथा बालखिल्य रथ को सब ओर से घेरे रहते हैं ।[५]

श्रीमद्भागवत में सूर्य के रथ का वर्णन विस्तार के साथ हुआ है । सूर्य का वेदमय रथ एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन के हिसाब से चलता है और

---

१. वि० ध० ६७।८–१०.
२. बैनर्जी जे० एन०, डे० हि० आ० पृ० ४३८.
३. वही पृ० ४३८.
४. वि० ध० ६७।११.
५. स्तुवन्ति चैनं मुनयो गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति तस्यतानु निशाचरः ।
वहन्ति पन्नगायक्षैः क्रियतेऽभीषुसङ्ग्रहः ।
बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समाप्यते ।। वि० पु० २।११।१६–१७.

इन्द्र, यमराज, वरुण तथा चन्द्रमा की क्रमशः अमरावती, संयमिनी, निम्लोचनी तथा विभावरी पुरियों को पार करता है ।[1] इनके रथ में संवत्सर नामक एक पहिया है उसमें बारह आरे तथा छः नेमियाँ हैं तीन नाभि (आँवन) हैं। रथ की धुरी का एक सिरा मेरु पर्वत की चोटी पर है और दूसरा मानसरोवर पर्वत पर। इनमें लगा हुआ पहिया कोल्हू के पहिये के सदृश चक्कर काटता है। रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा तथा नौ लाख योजन चौड़ा है । इसका जुआ ३६ लाख योजन लम्बा है। अरुण नामक सारथी रथ पर विराजमान रहता है। गायत्री आदि छन्दों के नाम वाले सात अश्व इनके रथ में जुतते हैं। वे ही इस रथ को खींचते हैं। अरुण सूर्य की ओर मुख करके बैठता है और सारथी का कार्य करता है। बालखिल्य, गन्धर्व, अप्सरा, नाग सब आगे-पीछे स्वस्ति-वाचन करते हुए चलते हैं। इस प्रकार सूर्य भूमण्डल के नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन लम्बे घेरे का चक्कर लगाता है।[2]

वृहत् संहिता में भी सूर्य को उत्तरी वेशभूषा (उदीच्य वेश) पहनाने का आदेश दिया गया है। इस वेश के अनुसार वक्षःस्थल से पैर तक उनका शरीर ढका रहता है। वे सिर पर मुकुट धारण करते हैं और हाथों में दो कमल पुष्प के डण्ठल पकड़े रहते हैं। उनके कानों में कुण्डल तथा गले में हार रहते हैं। कमर में वियङ्ग तथा उनका मुख एक आवरण से ढका रहता है।[3] यह ग्रन्थ सूर्य के रथ, उनके अनुचर तथा घोड़ों के विषय में मौन है। विष्णुधर्मोत्तर तथा अन्य वैष्णव पुराण सूर्य के रथ, सारथी इनके अङ्गरक्षकों का उल्लेख कर उस कमी की पूर्ति कर देते हैं। विष्णु-धर्मोत्तर में कही हुई सूर्य की यावाङ्गवीय (यावियाङ्ग) नाम की मेखला ईरानियों द्वारा कमर में पहने जाने वाले पवित्र सूत्र का ही भारतीय रूप है। यह कुषाण, गुप्तकाल तथा इससे बाद में बनी हुई प्रतिमाओं से स्पष्ट हो जाता है। उत्तरी भारत में इस प्रकार की बनने वाली सूर्य की प्रतिमाएँ ईरानियों के मिथ देवता से मिलती हैं। पहले वे लोग भी सूर्य को मानवीय रूप में न दिखाकर गोल पहिया तथा चक्र के रूप में प्रदर्शित करते थे। कला के अन्तर्गत नक्शी-रुस्तम मिश्र के समीप एक गोल चक्र प्रदर्शित किया गया है। बाद के मिश्र काल के अवशेषों में सूर्य तथा चन्द्र को मानवी

---

१. श्रीमद्भा० ५।२१।७–१२.
२. श्रीमद्भा० ५।२१।१३–१९.
३. कुर्यादुदीच्यवेषं गूढं पादादुरो यावत् ।।
बिभ्राणस्वकररूहे पाणिभ्यां पङ्कजे मुकुटधारी ।
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बतरोवियङ्गवृतः ।।
कमलोदरद्युतिमुखः कञ्चुकगुप्तस्स्मितप्रसन्नमुखः ।
रत्नोज्ज्वलप्रभामण्डलश्च कर्त्तुश्शुभकरोऽर्कः ।।
बृ० सं० ५७।४६–४८.

रूप प्रदान किया गया ।[१] इस रूप की अनेक प्रतिमाएँ हैं जो ईरानी सूर्य देवता मिथ अथवा मिहिर से साम्य रखती हैं ।[२]

बैनर्जी महोदय ने सूर्य की प्रतिमा का उल्लेख किया है। इसमें सूर्य का चक्र युक्त रथ बना है । रथ पर सारथी के स्थान पर एक प्रतिमा स्थापित है । यही सूर्य के सारथी अरुण हैं । रथ में घोड़े जुते हुए हैं । रथ के नीचे दो दैत्यों की आकृति बनी है ।[३] इस प्रतिमा का रूप विष्णुधर्मोत्तर की 'एकचक्रेऽथ सप्ताश्वे . . .'[४] रूप से तथा विष्णु पुराण के 'तस्यतानु निशाचराः'[५] रूप से मिलता जुलता है । यह प्रतिमा काशीपुर में प्राप्त हुई और कलकत्ता के आशुतोष संग्रहालय में रखी है। सूर्य की एक और प्रतिमा ढाका जिले में सुखबासपुर स्थान से प्राप्त हुई । प्रतिमा काले पत्थर की बनी है और ४',१०''×२',५'' है । देव अपने रथ पर खड़े हैं । नीचे का वस्त्र एक मखला द्वारा कमर में बँधा है । वक्षःस्थल कवच से ढका है । गले में हार तथा कानों में कुण्डल हैं । अपने दो हाथों में वे कमल पुष्प के डण्ठल पकड़े हैं । दाहिनी ओर लेखनी तथा पत्र लिए हुए दाढ़ीयुक्त, पैरों में बूट पहने हुए व्यक्ति एक है। यह सूर्य का पिङ्गल अनुचर है । बाँयी ओर कवच से ढका हुआ दण्ड है जो पैर में बूट पहने तथा अपने दाहिने हाथ में खड्ग तथा बाएँ में दण्ड लिए है । सूर्य के रथ में सात घोड़े हैं। अरुण सारथी है । इस प्रतिमा में उनके बायीं तथा दाहिनी ओर इनकी दो पत्नियाँ दिखायी गयी हैं । चार नहीं हैं ।[६]

बैनर्जी महोदय[७] ने एक सङ्गमरमर की बनी हुई प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमें वे अपने रथ पर बैठे हैं । रथ सारथी चला रहा है । उनके बायीं ओर दाढ़ी-मूँछ युक्त लेखनी पत्र लिए हुए पिङ्गल उपस्थित है और दाहिनी ओर एक और व्यक्ति है जिसके हाथ में लम्बा दण्ड है । सूर्य के दोनों ओर चार और व्यक्तियों की प्रतिमाएँ हैं जो देखने में बड़ी सुन्दर लगती हैं । ये चारों आकृतियाँ विष्णुधर्मोत्तर के प्रसङ्ग 'चत्वारश्चास्य कर्त्तव्यस्तनयास्तस्य पार्श्वयोः'[८] के अनुसार सूर्य के रेवन्त, यम, मनु और द्वितय नाम के चारों पुत्र हैं । प्रतिमा कला का सुन्दर एवं उत्कृष्ट उदाहरण है । यह

---

१. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४३८.
२. ब्रिटिश म्यूजियम कैटेलॉग ऑफ क्वायन्स पृ० ३२ प्ले० १० आकार ५–९.
३. बैनर्जी–जे० एन० डे० आ० हि० आ० पृ० ४३.
४. वि० ध० ६७।११.
५. वि० पु० २।११।१६.
६. आइ० आ० बु० ए० ब्र० स्क० ढा० म्यू० पृ० १६९ प्ले० ५३-३अ.
७. बैनर्जी–जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४३५.
८. वि० ध० ६७।८–९.

अफगानिस्तान के खैरखनेह नामक स्थान में प्राप्त हुई थी और अब काबुल के संग्रहालय में रखी है ।[१]

सूर्य के सभी पुत्रों में रेवन्त ही मुख्य हैं और उन्हीं का चित्रण कला में अधिक हुआ है। कालिका पुराण रेवन्त की आराधना प्रतिमा द्वारा अथवा द्वार पर जल पात्र द्वारा करने का आदेश देता है ।[२] बृहत्संहिता इसे अपने अनुचरों के साथ मृगया व्यापार में लगा हुआ बताती है ।[३] विष्णुधर्मोत्तर इसका रूप सूर्य के समान ही बनाने का आदेश देता है और वह उन्हें घोड़े की पीठ पर बैठा प्रदर्शित करता है ।[४] इसकी एक प्रतिमा घाटनगर (दीनापुर) में है। प्रतिमा काले पत्थर की है। रेवन्त बाएँ हाथ में चाबुक लिए घोड़े पर आरूढ़ हैं। वे बूटादि पहने हैं, दाहिने हाथ में लगाम है। एक स्त्री अनुचर छत्र लिये पीछे खड़ी है।[५]

भूमरा के अवशेष में जो सूर्य की प्रतिमा है इसमें उनके साथियों एवं अनुचरों की संख्या में वृद्धि हो गयी है । इसमें दण्डी तथा पिङ्गल दोनों ओर हैं। रथ अरुण द्वारा चलाया जा रहा है। सूर्य चौड़ा किरीट मुकुट, कानों में कुण्डल तथा गले में हार पहने हैं, धोती कमर में स्थित मेखला से सामने की ओर बँधी है । उनके पीछे गोल प्रभामण्डल है । अपने दोनों हाथों में फूलों के गुच्छे पकड़े हैं। यद्यपि कुषाणकालीन वेशभूषा नहीं है फिर भी शरीर पर पवित्र सूत्र है।[६] इस प्रतिमा में रानियाँ नहीं हैं किन्तु पालदेशीय अवशेषों में राज्ञी निक्षुमा, सुवर्चला तथा छाया आदि चारों देवियाँ उपस्थित हैं। डॉ० अग्रवाल ने सूर्य की एक ऐसी प्रतिमा का उल्लेख किया है। जो काबुल के समीप खेरखनेह स्थान से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा संङ्गमरमर की है। सूर्यदेव अपने सात अश्वों द्वारा चलाये जाने वाले रथ पर आरूढ़ हैं।[७] सूर्यदेव का वक्षःस्थल कवच से तथा पैर बूट की भाँति किसी वस्तु से ढके हैं। खजुराहो के संग्रहालय में स्थित सूर्य देव की प्रतिमा बड़ी भव्य है । बीच में सूर्यदेव अपने रथ पर खड़े हैं। सारथी अरुण घोड़ों को चला रहा है ।[८] खजुराहो के भरत मन्दिर में प्राप्त सूर्य की ५ फी० ऊँची प्रतिमा उदीच्य वेशभूषा में है। सूर्य के शरीर पर कसे हुए वस्त्र हैं। पैरों में जूते हैं । सात अश्वों द्वारा चलाये जाने वाले रथ पर बैठे हैं। उनके दोनों ओर

---

१. जे० आइ० यस० ओ० ए० वा० १६ पृ० १४ आ० २.
२. कालि० पु० ५।४९.
३. बृ० सं० ५७।५।५६.
४. वि० ध० ७०।१२–१५.
५. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ४४२.
६. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ४३६.
७. अग्रवाल, वा० श०, गु० आर्ट पृ० १० प्ले० ७ आ० ९.
८. खजुराहो–पृ० २४, प्ले० ९२.

उनकी रानियाँ, अनेक देव-देवियाँ, अप्सरा, गन्धर्व तथा उनके अनुचर आदि उपस्थित हैं।[१] इस भव्य प्रतिमा में वैष्णव पुराणों के प्रसङ्गों का पूर्णतः स्पष्टीकरण हुआ है।

इस प्रकार सूर्य की उत्तरी भारत में प्राप्त होने वाली प्रतिमाएँ दक्षिणी भारत में प्राप्त होने वाली प्रतिमाओं से भिन्न हैं। उत्तरी भारत के ग्रन्थों के अनुसार यहाँ पर बनने वाली प्रतिमाएँ सूर्य के शरीर को अधिक से अधिक ढकने का आदेश देती हैं। उनके साथ-साथ उनके अनुचरों को भी उन्हीं के अनुरूप बनाकर तथा यावियाङ्ग पहनाकर उनकी वेशभूषा को विदेशी आधार दे दिया है। कुछ ग्रन्थ 'उपानत पिनद्धपादयुगलम्' कहकर उनके पैरों को भी लम्बे जूतों से ढक देते हैं। दक्षिण भारत की मूर्तियाँ इन सबसे भिन्न हैं।

नवग्रह

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नवग्रहों में सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु–इन नव ग्रहों की गणना होती है। सांसारिक ऐश्वर्य, सुख, समृद्धि, शान्ति की प्राप्ति के लिए नवग्रहों की पूजा सदा से होती रही है। याज्ञवल्क्य मुनि ने स्वर्ण, रजत आदि के पट्ट पर नव ग्रहों की स्थापना कर उनकी पूजा का आदेश दिया है।[२] पट्ट पर स्थापित पूजा का यही विधान आज भी प्रचलित है।

सूर्य––सूर्य नवग्रहों में सर्वप्रमुख ग्रह हैं। इनके रूप एवं प्रतिमाओं का वर्णन हो चुका है।

सोम––विष्णु पुराण में चन्द्रमा के सुन्दर रथ का वर्णन हुआ है। सुन्दर रथ पर चन्द्रदेव विराजमान रहते हैं। इनके रथ में तीन पहिये रहते हैं। रथ में दस घोड़े जुते रहते हैं। घोड़ों का वर्ण चमेली के पुष्प के समान श्वेत है। रथ की गति तीव्र रहती है। इसी रथ पर आरूढ़ होकर वे अन्य ग्रहों का भ्रमण करते हुए निरीक्षण किया करते हैं––

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः
वामदक्षिणतो युक्ता दशतेन चरत्यसौ ।।[३]

विष्णुधर्मोत्तर में और अधिक विस्तार के साथ चन्द्रदेव के रूप का वर्णन हुआ है। उसका कथन है कि चन्द्रमा श्वेत शरीर वाले बनाने चाहिए और उनके वस्त्र भी श्वेत वर्ण के होने चाहिए। वे चार भुजावाले अमित तेज वाले हैं और उनका शरीर सभी

१. डॉ० दीक्षित–आर० के० चन्दे० जे० जा० टा० पृ० ४३९-४०.
२. याज्ञ० स्मृ० १।२९५–५८.
३. वि० पु० २।१२।१.

प्रकार के सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित रहता है ।[१] अपनी दो भुजाओं में दो कुमुद के पुष्प धारण करते हैं। चन्द्र के दाहिनी ओर समीप ही कान्ति की सुन्दर मूर्ति और बायीं ओर शोभा की मूर्ति रहनी चाहिए । ये दोनों ही मूर्तियाँ अतुलनीय एवं अपार सौन्दर्य वाली होनी चाहिए । सूर्य के सिंहाङ्क ध्वज की भाँति इनके समीप भी बायीं ओर सिंहाङ्क ध्वजा रहनी चाहिए ।[२] विष्णुधर्मोत्तर का चन्द्रमा के रथ के विषय में विष्णु पुराण से भिन्न मत है । वह चन्द्रमा का रथ दो पहियों वाला स्वीकार करता है । घोड़ों की संख्या दस ही मानी गयी है। अम्बर (आकाश) रथ का सारथी है—

दशाश्वो वा रथः कार्यो द्विचक्रोऽम्बरसारथिः ।।[३]

मत्स्य पुराण भी चन्द्रमा को चार भुजा वाला, श्वेत वस्त्रधारी तथा रथ को द्विचक्र वाला बतलाता है ।[४] हेमाद्रि को भी चन्द्र देव का यही रूप मान्य है ।[५] अग्नि पुराण में चन्द्रमा को जपमाला तथा कमण्डलु लिए हुए बतलाया गया है ।[६] अंशुमद्भेदागम[७] तथा शिल्परत्न[८] ग्रन्थ चन्द्रमा को दो भुजा वाला प्रदर्शित करते हैं । उनके दाहिने हाथ में गदा रहती है और बायाँ हाथ वरद मुद्रा में रहता है ।

मङ्गल—महाभारत में मङ्गल के लिए अङ्गारक[९] तथा लोहिताङ्ग[१०] विशेषणों का प्रयोग हुआ है। अतः स्पष्ट है कि ये लाल वर्ण के हैं। विभिन्न ग्रन्थों में भौम

---

१. चन्द्रः श्वेतवपुः कार्यस्तथाश्वेताम्बरः प्रभुः ।
चतुर्बाहुर्महातेजाः सर्वाभरणवांस्तथा ।। वि० ध० ६८।१.

२. कुमुदौ च सितौ कार्यौ तस्य देवस्य हस्तयोः ।
कान्तिमूर्तिमती कार्या तस्य पार्श्वे तु दक्षिणे ।।
वामे शोभा तथा कार्या रूपेणाप्रतिमाभुवि ।
चिह्नं तस्यास्य सिंहाङ्कं वामपार्श्वेऽर्कवद्भवेत् ।।
वि० ध० ६८।२–३.

३. वि० ध० ६८।४.

४. चतुर्बाहुर्महातेजः.................।
दशाश्वे च रथे कार्यो द्वि चक्रे वरं सारथिः ।। मत्स्य पु० १२५।८.

५. चतु० हे० ब्र० खं० अ० १ पृ० १४९–५०.

६. अग्नि पु० ५१।१.

७. सोमस्सिंहासनासीनः कुन्दशङ्खसमद्युतिः ।
प्रभामण्डलसयुंक्तो द्विभुजस्सौम्यवक्त्रकः ।। अंशुमद्भेदागम १९.

८. द्विभुजं दक्षिणे पाणौ गदाबिभ्रत्पृथूदरीम् ।। शिल्परत्न अ० ५२.

९. मघास्वाङ्गारको वक्त्रः श्रवणे च बृहस्पतिः । महा० भीष्म० ३।१४.

१०. ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ।। महा० भीष्म० ३।१८.

के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन हुआ है । शिल्परत्न मङ्गल को चार भुजा वाला बतलाता है। उनके दोनों दाहिने हाथों में से एक में शक्ति रहती है और दूसरा वरद मुद्रा में रहता है । दोनों बायीं भुजाओं में गदा तथा शूल रहता है । मेष इनका वाहन है।[१] इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ इन्हें सिंहासन पर आसीन बतलाते हैं । मत्स्य पुराण में भौम लालमाला, शक्ति, शूल, गदा धारण करने वाले कहे गये हैं। उनके चार हाथ हैं।[२] वे सोने के रथ पर आरूढ़ रहते हैं, जिसमें लाल वर्ण के आठ घोड़े जुते रहते हैं और अग्नि के समान लाल ध्वजा रथ पर रहती है।[३] विष्णु पुराण भौम को रथारूढ़ ही बतलाता है । इस पुराण में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि मङ्गल का रथ अत्यन्त सुन्दर एवं स्वर्णनिर्मित है। यह रथ बहुत बड़ा है और इसमें अग्नि से उत्पन्न हुए पद्मराग मणि के समान अरुण वर्ण के आठ घोड़े जुते रहते हैं । ऐसे सुन्दर रथ पर मङ्गल आरूढ़ होते हैं—

अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान् ।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तौ वह्निसम्भवैः ।।[४]

विष्णुधर्मोत्तर भी भौम को अग्नि के समान लाल वर्ण का बनाने का आदेश देता है और उनके रथ में जुते हुए घोड़ों की संख्या आठ ही बतलाता है—

भौमोऽग्नितुल्यः कर्त्तव्यश्चाष्टाश्वे काञ्चने रथे ।।[५]

अग्नि पुराण में मङ्गल शक्ति तथा अक्षमाला लिए हुए बताये गये हैं।[६]

बुध—बुध चन्द्रमा के पुत्र हैं । महाभारत में ये प्राणियों को महाभय की सूचना देने वाले कहे गये हैं।[७] पुराणों में इनके रूप का थोड़ा-सा वर्णन प्राप्त होता है । मत्स्य पुराण बुध को पीली माला तथा पीले वस्त्र धारण करने वाला बतलाता है । कर्णिकार के पुष्प के समान उनका वर्ण है और वे सिंह पर आरूढ़

---

१. चतुर्भुजो मेषगमश्चाङ्गारकसमद्युतिः ।
दक्षिणं तद्वरं हस्तं वरदं परिकल्पयेत् ।
ऊर्ध्वं शक्तिसमायुक्तं वामौ शुक्ल गदाधरौ ।। शिल्परत्न० अ० २५.
२. रक्तमाल्याम्बरधरश्शक्तिशूलगदाधरः ।
चतुर्भुजः श्वेतरोमा वरदः स्याद्धरासुतः ।। मत्स्य पु० ९३।३.
३. ततो भौमरथश्चापि अष्टाङ्गः काञ्चनः स्मृतः ।
अष्टाभिर्लोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः ।। मत्स्य पु० १२७।४.
४. वि० पु० २।१२।१६.
५. वि० ध० ९६।२.
६. अ० पु० ५१।११.
७. कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।
अभीक्षणवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ।। महा० भीष्म० ३।३०.

रहते हैं। खड्ग, चर्म तथा गदा अपने हाथों में धारण करते हैं।[1] शिल्परत्न ग्रन्थ भी बुध को सिंहारूढ़ एवं पीले पुष्प की माला पहनने वाला बतलाता है। कर्णिकार के पुष्प के समान पीला वर्ण है। हाथ में चन्द्रपुत्र, बुध, गदा है तथा शरीर को सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित रखते हैं।[2] विष्णु पुराण बुध को चन्द्रमा के समान ही सुन्दर मानता है। वे रथारूढ़ रहते हैं। उनका रथ वायु तथा अग्निमय द्रव्य का बना हुआ है। उसमें वायु के समान वेग वाले आठ घोड़े जुते हुए रहते हैं। घोड़ों का वर्ण पिशङ्ग (पीले) का होता है--

वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च।
पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ॥[3]

विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि बुध को विष्णु के समान बनाना चाहिए और उनका रथ मङ्गल के समान होना चाहिए--

विष्णुतुल्यो बुधः कार्यो भौमतुल्ये तथा रथे ॥[4]

बृहस्पति--बृहस्पति देवों के गुरु हैं। उनके रूप के विषय में शिल्प ग्रन्थों के भिन्न-भिन्न मत हैं। शिल्परत्न बृहस्पति को चार भुजा वाला बतलाता है।[5] मत्स्य पुराण भी उनकी चार भुजाओं का समर्थन करता है। अपने हाथों में वे दण्ड, कमण्डलु तथा अक्षमाला धारण करते हैं।[6] विष्णु पुराण बृहस्पति के रथ का उल्लेख करता है। वह रथ सोने का बना हुआ है और उसमें पाण्डु (पीले) वर्ण के आठ घोड़े जुते रहते हैं। इसी पर बृहस्पति आरूढ़ होते हैं--

अष्टाभिः पाण्डुरैर्युक्तो वाजिभिः काञ्चनो रथः।
तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ-राशौ बृहस्पतिः ॥[7]

---

१. पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः।
खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः मत्स्य पु० ९३।४.

२. सिंहारूढं संप्रवक्ष्ये कर्णिकारसमप्रभम्।
पीतमाल्याम्बरधरं स्वर्णभूषप्पभूषितम् ॥
वरदं खड्गसंयुक्तं खेटकेन समन्वितम्।
गदया च समायुक्तं बिभ्राणं दोश्चतुष्टयम् ॥
एवं लिखेच्चन्द्रसूनुं बुधं ग्रहपतिं शुभम् ॥ शिल्परत्न अ० २५.

३. वि० पुराण २।१२।१६.

४. वि० ध० ९६।२.

५. चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्तश्चित्रकर्मविशारदैः ॥ शिल्परत्न अ० २५.

६. दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥ मत्स्य पु० ९३।५.

७. वि० पु० २।१२।१९.

विष्णुधर्मोत्तर बृहस्पति के कुछ भिन्न रूप का वर्णन करता है। बृहस्पति तपे हुए सोने के समान पीले वर्ण के हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपनी दोनों भुजाओं में पुस्तक तथा अक्षमाला धारण करते हैं। सभी सुन्दर आभूषणों से उनका शरीर सुसज्जित रहता है—

तप्तजाम्बूनदाकारो द्विभुजस्तु बृहस्पतिः।
पुस्तकं चाक्षमालां च करयोस्तस्य कारयेत्॥
सर्वाभरणयुक्तश्च तथा पीताम्बरो गुरुः।
अष्टाश्वे काञ्चने दिव्ये रथे दृष्टिमनोहरे॥[1]

शुक्र—शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु हैं। शिल्परत्न[2] तथा मत्स्य पुराण[3] शुक्राचार्य को चार भुजा वाला, अक्षमाला तथा दण्ड, कमण्डलु धारण करने वाला बतलाता है। शुक्र का रथ चाँदी का बना होता है उसमें श्वेत वर्ण के घोड़े जुते रहते हैं।[4] विष्णु पुराण का कथन है कि शुक्र का रथ बहुत बड़ा होता है। वरूथ, अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका तथा पृथिवी से उत्पन्न हुए घोड़े शुक्र के रथ में जुते रहते हैं—

सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयैः।
सोपाङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान्॥[5]

विष्णुधर्मोत्तर शुक्राचार्य को गौर वर्ण वाला बतलाता है। उनके वस्त्र श्वेत वर्ण के ही होने चाहिए। उनके दो भुजाएँ हैं। वे अपने दोनों हाथों में निधि तथा पुस्तक धारण करते हैं। दस अश्वों से जुते हुए रथ पर शुक्र आरूढ़ होते हैं—

शुक्रः श्वेतवपुः कार्यः श्वेताम्बरधरस्तथा।
द्वौ करौ कथितौ तस्य निधिपुस्तकसंयुतौ॥
दशाश्वे च रथे कार्यो राजते भृगुनन्दन॥[6]

शनि—शनि काले वर्ण के कहे गये हैं। आगम ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख है कि शनि श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं। अपनी दोनों भुजाओं में से एक में गदा धारण

---

१. वि० ध० ६९।३–४.
२. शिल्परत्न अ० २५.
३. मत्स्य पु० ९३।७.
४. गौराश्वेन तु रौप्येन स्यन्दनेन विसर्पति॥ मत्स्य पु० १२७।७.
५. विष्णु पु० २।१२।१७.
६. वि० धर्मो० ६९।५–६.

करते हैं तथा दूसरा वरद मुद्रा में रहता है ।[1] मत्स्य पुराण इन्हें लौहे से निर्मित रथ पर आरूढ़ बतलाता है ।[2] विष्णु पुराण में ऐसा कहा गया है कि शनि मन्द गामी हैं और अपने रथ पर आरूढ़ होकर शनैः शनैः चलते हैं । इनके रथ में आकाश से उत्पन्न हुए विचित्र वर्ण के घोडे जुते हैं--

आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम् ।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ।।[3]

विष्णुधर्मोत्तर शनि के रूप का अधिक स्पष्ट उल्लेख करता है । उसके अनुसार शनि को काले वर्ण का होना चाहिए और उन्हें वस्त्र भी काले वर्ण के ही पहनाने चाहिए । उनके दोनों हाथों में दण्ड तथा अक्षमाला रहती है । उनका सम्पूर्ण शरीर नसों से ढका रहता है । शनि का रथ लोहे का बना होता है और आठ सर्प मिलकर उस रथ को चलाते हैं—

कृष्णवासास्तथाकृष्णः शनिः कार्यस्सिराततः ।।
दण्डाक्षमालासंयुक्तः करद्वितयभूषितः ।
कार्ष्णायसे रथे कार्यस्तथैवाष्टभुजङ्गमे ।।[3]

राहु--राहु अत्यन्त भयानक रूप वाले हैं । शिल्परत्न में इन्हें सिंहासन पर आरूढ़ कहा गया है । वे अपनी भुजाओं में खड्ग तथा खेटक धारण करते हैं । इनका मुख बड़ा भयङ्कर है ।[4] मत्स्य पुराण भी इन्हें विकराल एवं भयङ्कर मुख वाला, दो भुजावाला तथा नील सिंहासन पर आरूढ़ बतलाता है ।[5] विष्णु पुराण राहु को रथारूढ बतलाता है । जिस रथ पर राहु बैठते हैं वह धूसर अर्थात् मटियाले रंग का है । उस रथ में भौंरे के समान काले वर्ण के आठ घोड़े जुते रहते हैं । इन घोड़ों में एक महती विशेषता यह है कि एक बार जब ये रथ में जोत दिये जाते हैं तब निरन्तर चलते ही रहते हैं—

---

१. शनैश्चरः कृष्णवर्णः द्विभुजस्सितवाससा ।
करण्डमकुटोपेतस्सर्वाभरणभूषणः ।।
दण्डं दक्षिणहस्ते तु वरदं वाममुच्यते ।
स्थानकं पद्मपीठे तु शुक्लवस्त्रधरः शुचिः ।।
आ० अ० ४९.

२. कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं यात्यसो शनिः ।। म० पु० १२७।८.

३. वि० धर्मो० ६९।७–८.

४. सिंहासनगतं राहुं करालवदनं लिखेत् ।
वरदं खड्गसंयुक्त खेट-शूलधरं क्रमात् ।। शिल्परत्न अ० २५.

५. नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ।
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।। म० पु० ९३।१७.

स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभाधूसरं रथम् ।
सकृद्युक्तास्तु मैत्रेय वहन्त्यविरतं सदा ।।[1]

विष्णुधर्मोत्तर का कथन है कि राहु का रथ चाँदी का है और उसमें बड़े सुन्दर आठ घोड़े जुतते हैं––

रौप्ये रथे तथाष्टाश्वे राहुः कार्यो विचक्षणैः ।।[2]

राहु के शरीर की गठन में भी एक मुख्य विशेषता है। उनका सिर एक भुजा से जुड़ा हुआ दिखाया जाता है। यद्यपि यहाँ पर किसी विशिष्ट भुजा का उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु आगे चलकर इसी प्रसङ्ग में दाहिनी भुजा का वर्णन आया है जो शून्य रहती है। इससे सम्भवतः स्पष्ट होता है कि बाँयीं भुजा से ही ग्रन्थ का तात्पर्य होगा। राहु के बाल ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं। खुला हुआ मुख भुजा से जुड़ा हुआ होता है और दाहिनी भुजा उनकी खाली रहती है––

केवलं मस्तकं कार्यं भुजेनैकेन संयुतम् ।
ऊर्ध्वकेशं विवृताक्षं भुजेनैकेन संयुतम् ।
करमेकं तु कर्त्तव्यं तस्य शून्यं तु दक्षिणम् ।।[3]

केतु––केतु बडे भयङ्कर आकार वाले हैं। शिल्परत्न गृद्ध को इनका वाहन बतलाता है। वे दो भुजा वाले हैं। एक भुजा में गदा धारण करते हैं तथा दूसरी भुजा वरद मुद्रा में रहती है। ये लाल कुण्डल, केयूर तथा हार आदि से सुसज्जित रहते हैं।[4] मत्स्य पुराण भी गृद्ध को ही केतु का वाहन स्वीकार करता है।[5] किन्तु विष्णु पुराण में ऐसा उल्लेख नहीं हुआ है। वह केतु के रथ का वर्णन करता हुआ कहता है कि केतु के रथ में जो घोड़े रहते हैं वे पुआल के धुएँ की-सी आभा वाले तथा लाख के समान लाल वर्ण के होते हैं। इस प्रकार के आठ घोड़े केतु के रथ को खींचते हैं। वे हवा के समान वेग वाले हैं––

---

१. वि० पु० २।१२।२१.
२. वि० धर्मो० ६९।८.
३. वि० धर्मो० ६९।८–९.
४. धूम्राद्विबाहवस्सर्वे वरदाश्च गदाधराः ।
गृध्रपृष्ठासमारूढा लेखनीयास्तु केतवः ।।
गृध्राः किरीटनः कार्या नवतालप्रमाणकाः ।
रक्त कुण्डलकेयूरहाराभरण भूषिताः ।। शिल्परत्न अ० २५।३१.
५. गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ।। म० पु० ९३।७.

तथा केतुः रथस्याश्वा अप्यष्टौ वातरंहसः।
पलालधूम्रवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणा! ।।[1]

विष्णुधर्मोत्तर केतु के रथ में आठ के स्थान पर दस घोड़े जुते हुए बतलाता है । भौम और केतु में यही अन्तर है—

केवलं चास्य कर्त्तव्या दशराज्ञस्तुरङ्गमाः ।।[2]

भौम और केतु की वेशभूषा में कोई अन्तर नहीं । भौम के समान ही केतु को बनाने के आदेश दिये गये हैं—

भौमस्य च तथा कार्यं केतोः रूपं विजानता ।।[3]

इन नव ग्रहों की पूजा के विषय में याज्ञवल्क्य का कथन है कि शत्रु पर विजय, फसल आदि की वृद्धि, सुख, मङ्गल का इच्छुक व्यक्ति इन ग्रहों की ताँबा, लाल चन्दन, स्वर्ण, चाँदी, लोहा, जस्ता तथा कांस्यादि की प्रतिमाएँ बनाकर पूजा करे ।[4]

सूर्य के मन्दिर में ग्रहों की स्थापना निम्न प्रकार से होनी चाहिए[5]—

पूर्व	—	सोम
दक्षिण–पूर्व	—	भौम
दक्षिण	—	बृहस्पति
दक्षिण-पश्चिम	—	राहु
पश्चिम	—	शुक्र
उत्तर-पश्चिम	—	केतु
उत्तर	—	बुध
उत्तर-पूर्व	—	शनि

सूर्य की प्रतिमाओं के साथ-साथ नव ग्रहों का भी चित्रण होता है । राव महोदय ने सूर्य की एक ऐसी प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमें उनके शरीर के ऊपर प्रभावली में शुक्र, शनि, राहु तथा केतु का चित्रण हुआ है। यह प्रतिमा जूनागढ़ के म्यूजियम में है ।[6] सारनाथ में बृहस्पति, शुक्र, शनि तथा राहु इन चार ग्रहों की

१. वि० पु० २।१२।२३.
२. वि० ध० ६६।१०.
३. वि० ध० ६६।१०—११.
४. याज्ञ० स्मृ० पृ० ८९.
५. राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० १ भा० १ पृ० ३२४.
६. वही वही पृ० ३१७.

प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। सभी प्रतिमाएँ दो भुजाओं वाली हैं। बृहस्पति तथा शुक्र का आकार भयानक है। उन्हें केवल वक्षःस्थल तक प्रदर्शित किया गया है। उनकी आँखें गोल तथा भयानक हैं। बाल ऊपर की ओर बँधकर उठे हुए हैं। इसका रूप विष्णुधर्मोत्तर के "ऊर्ध्वकेशं विवृताक्ष"[१] से मिलता है। ये सभी प्रतिमाएँ इण्डियन म्यूजियम में हैं। बृहस्पति, शुक्र तथा शनि के पीछे प्रभामण्डल है। बृहस्पति के एक हाथ में अक्षमाला है।[२] तञ्जौर जिले में सूर्य की नारकोयिल के सूर्य मन्दिर में काँस्य की प्रतिमा है। मन्दिर के मध्य में सूर्य हैं। बृहस्पति बीच में हैं। उनके हाथ में अक्षमाला है। अन्य ग्रह सूर्य के दोनों ओर गोलाई से बने हैं।[३] खजुराहो के संग्रहालय में भी नवग्रहों की प्रतिमा है। नव प्रतिमाएँ एक साथ एक ऊँचे पीठ पर खड़ी हैं। आठ प्रतिमाएँ एक पंक्ति में हैं और एक प्रतिमा बाँयें कोने में आगे की ओर बैठी हुई प्रदर्शित की गयी है। सभी प्रतिमाओं के सिर पर मुकुट है और सबका एक दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है।[४]

शनैः शनैः नवग्रहों के चित्रण में भी परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष म्यूज़ियम में जो नवग्रह शिलापट्ट प्राप्त होता है उसमें नवग्रह समूह का चित्रण गणेश की प्रतिमा से प्रारम्भ हुआ है। गणेश के पश्चात् पद्मपीठों पर सुन्दर आकृति वाले नवग्रह उत्कीर्ण हैं।

---

१. वि० धर्मो० ६९।८.
२. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ४४४.
३. राव, गो० ना०–ए० हि० आ० वा० १ भा० २ पृ० ३२३.
४. खजुराहो, पृ० २४ प्ले० ९६.
५. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ४४४–४५ प्ले० ३१ आ० २.

षष्ठ परिच्छेद

अष्ट दिक्पाल

विभिन्न दिशाओं के स्वामी दिक्पाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या के विषय में विभिन्न मत हैं। अथर्ववेद में अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, विष्णु तथा बृहस्पति इन छः दिक्पालों का वर्णन हुआ है।[1] कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में इसी छः संख्या को स्वीकार किया गया है किन्तु विष्णु की गणना नहीं की गयी है। उसके स्थान पर यम की गणना हुई है।[2] गृह्य सूत्रों में इनकी गणना भिन्न प्रकार से हुई है। गोभिल गृह्यसूत्र में भवन निर्माण के समय दस देवताओं को वलि देने का आदेश दिया गया है। ये देव दसों दिशाओं के स्वामी हैं।[3] ऐसा ही फोगेल महोदय का मत है।[4] मनुस्मृति में आठ दिक्पालों का प्रसङ्ग प्राप्त होता है जो क्रमशः चन्द्र; सूर्य, वायु, अग्नि, यम, वरुण, इन्द्र, कुबेर हैं। सभी राजा के शरीर में विद्यमान रहते हैं—

सोमाग्नेयर्कानिलेन्द्राणां वित्तापपत्योर्यमस्य च।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः॥[5]

हॉप्किंस महोदय का कथन है कि अग्नि, यम, वरुण और इन्द्र अधिक प्राचीन हैं। बाद में अग्नि का ही स्थान कुबेर ने ले लिया।[6] रामायण में इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर ये लोकपाल माने गये हैं।[7] महाभारत में ऐसा कहा गया है कि पूर्व दिशा में देवगण अपने नेता अग्नि के साथ रहते हैं। यम दक्षिण में स्थित होकर पितरों का निरीक्षण करते है। वरुण के द्वारा पश्चिम दिशा की रक्षा की जाती है और उत्तर दिशा के स्वामी सोम हैं।

बौद्ध ग्रन्थ भी चार दिक्पालों को ही मानते हैं किन्तु उनका रूप भिन्न है। पूर्व दिशा के दिक्पाल गन्धर्वों के राजा धृतराष्ट्र हैं, दक्षिण दिशा के स्वामी कूष्माण्डों

---

१. अथर्व वे० ३।२७।१–६.
२. तैत्ति० सं० ५।५–१०.
३. गो० गृ० १४।४।७।३७–४१.
४. फोगे० इण्डि० स० लो० पृ० १९८. तथा यस० वी० एफ० वा० ३० पृ० १२३.
५. मनु० स्मृ० ५।९६.
६. हाप० एपि० माइ० पृ० १४९.
७. वा० रा० २।१६।२४.

के राजा विरूधक हैं। विरूपाक्ष नाम का निरङ्कुश नाग पश्चिम दिशा की रक्षा करता है और यक्षों के स्वामी वैश्रवण उत्तर दिशा का स्वामित्व करते हैं। इन्हें चतुर्महाराज कहा गया है।[१] जैन ग्रन्थों में जिन लोकपालों अथवा दिक्पालों के नाम दिये हैं, वे बाद के हिन्दू धर्म ग्रन्थों द्वारा स्वीकार किये गये हैं। उनके अनुसार इन्द्र पूर्व के, अग्नि दक्षिण-पूर्व के, यम दक्षिण के, निऋति दक्षिण-पश्चिम के, वरुण पश्चिम के, वायु उत्तर-पश्चिम कें, कुबेर उत्तर के, ईशान उत्तर-पूर्व के, ब्रह्मा ऊपर के भाग के तथा नाग नीचे के भाग के स्वामी हैं। ये दिक्पाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय ब्रह्मा और नाग इन दो को नहीं मानता। उसके स्थान पर हिन्दू धर्म द्वारा मान्य लोकपालों को मानता है।[२] राव महोदय का कथन है कि सभी अष्ट दिक्पाल वैदिक काल में अपना महत्त्व रखते थे।[३] किन्तु इसी प्रसङ्ग में उक्त विद्वान् ने यह भी कहा है कि पतञ्जलि ने शिव और वैश्रवण को लौकिक देवता माना है अतः ईशान और कुबेर वैदिक दिक्पाल थे यह मत उचित नहीं।[४]

यद्यपि इन अष्ट दिक्पालों में से सभी वैदिक देवता हैं फिर भी पुराणकाल आते-आते देवों में बड़ा परिवर्तन हो गया। इन्द्र, वरुण, अग्नि जो वेदों में महत्त्व-पूर्ण देव थे कालान्तर में उनका स्थान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ने लिया। ऋग्वेद में सबसे अधिक मन्त्र अग्नि पर हैं। अग्नि के बाद इन्द्र का स्थान है। वरुण पर इन्द्र तथा अग्नि के बराबर मन्त्र तो नहीं किन्तु फिर भी वेदों में वरुण का महत्त्व कम नहीं है।

वैष्णव पुराणों में प्राप्त गोवर्द्धन पूजा का प्रसङ्ग इन्द्र के महत्त्व को समाप्त कर देता है। खेतों में अनाज पक जाने पर इन्द्र सम्बन्धी उत्सव होते थे।[५] वे सब मेघपति इन्द्र की सब सामग्रियों द्वारा पूजा करते थे।[६] कृष्ण ने अपनी पूजा करवाकर इन्द्र की पूजा को समाप्त कर दिया। इन्द्र ने एक बार फिर अपना क्रोध वर्षा के रूप में प्रदर्शित किया किन्तु गोवर्द्धन धारण कर कृष्ण ने उनका वह क्रोध भी नष्ट कर दिया। अन्त में इन्द्र ने स्वयं कृष्ण का अभिषेक किया।[७] इसी प्रकार एक

---

१. चतुर्महाराज सुप्रमे० पृ० ८५.
२. भट्टाचार्य बी० सी०, जै० आइ० पृ० १४७–५७.
३. राव, गो० ना०–ए० हि० आ० वा० भा० २ पृ० ५१५.
४. राव, गो० ना०–ए हि० आ० ५२१–२२.
५ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः।। श्रीमद्भा० १०।२०।४८.
६. श्रीमद्भा० १०।२४।८–१०.
७. अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्।।
श्रीमद्भा० १०।२७।१–२३.

बार स्नान करते हुए वसुदेव को वरुणदेव का अनुचर पकड़ ले गया ।[1] कृष्ण जब अपने पिता को लेने पहुँचे तब वरुण ने कृष्ण की भलीभाँति पूजा की और कृष्ण के दर्शन से अपने को धन्य माना । वरुण ने अपने को कृष्ण का दास कहा है । यह कथानक भी कृष्ण के समक्ष वरुण की हीनता को प्रकट करता है ।[2] श्रीमद्भागवत में वर्णित अजामिल का आख्यान विष्णु दूतों के समक्ष यमदूतों के भय को प्रकट करता है ।[3] यमदूत विष्णुदूतों से डरते हैं ।[4] यमराज अपने दूत के हाथ में पाश देखकर उससे कहते हैं कि मैं विष्णु का दास हूँ तथा विष्णु के जो भक्त न हों उन्हीं को सताना ।[5] इन्द्र, निऋृति, वरुण, अग्नि आदि सब उन्हीं के अधीन हैं ।[6] ये प्रसङ्ग भी यमराज के महत्त्व को कम कर देते हैं । इसी प्रकार इन देवों का महत्त्व कम होता रहा और ये केवल दिक्पाल मात्र रह गये ।

इन्द्र--इन्द्र पूर्वीय दिक्प्रदेश के दिक्पाल हैं । वेदों में इन्द्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देव कहे गये हैं ।[7] सोम उनके पिता हैं ।[8] और वृत्र दैत्य को मारने के लिए[8] उनकी उत्पत्ति विश्व पुरुष के मुख से हुई ।[9] त्वष्टा ने इनके लिए वज्र तथा अङ्कुश बनाया ।[10] शतपथ[11] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[12] में इनकी उत्पत्ति प्रजापति से बतायी गयी है । रामायण काल में भी इनकी महत्ता कम नहीं हुई । इन्हें वर्षा का देवता माना गया है । ये निश्चित समय पर खेतों पर वर्षा करते हैं ।[13] अपने प्रिय जनों को अस्त्र-शस्त्र प्रदान करते हैं ।[14] शव में भी चेतना सञ्चार कर देते हैं ।[15] इनका वाहन ऐरावत गज भी युद्धगज कहा गया है ।[16] महाभारत भी इन्द्र को ब्रह्मा का पुत्र बताकर

---

१. श्रीमद्भा० १०।२८।२.
२. श्रीमद्भा० १०।२८।५-८.
३. श्रीमद्भा० ६।१।२०-४५.
४. श्रीमद्भा० ६।२।१८-२०.
५. श्रीमद्भा० ६।३।२०.
६. अहं महेन्द्रो निऋृतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्कोविरिञ्चः । श्रीमद्भा० ६।३।१४.
७. ऋ० ९।९६।५.
८. ऋ० वे० ६।४९।१.
९. ऋ० वे० १०।९०।१३.
१०. ऋ० वे० १।३२।२.
११. शत० ब्रा० ११।१।६।१४.
१२. तै० ब्रा० २।२।१०।६१.
१३. रामा० ७।७०।१०, ४।१४।१५.
१४. रामा० ५।६६।५.
१५. रामा० ६।१२३।१.
१६. रामा० ७।२९।२७.

इनकी महत्ता को स्वीकार करता हुआ उनके अनेक रूपों का वर्णन करता है । वे देवों के स्वामी हैं और सभी देवों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।) वे पीली दाढ़ी, पीले नेत्र वाले हैं ।[१] सिर पर श्वेत छत्र तथा शरीर पर दिव्य वस्त्र, अङ्गद, कङ्कण, मुकुट, कुण्डल तथा सुगन्धित मालाएँ धारण करते हैं ।[२] वैजयन्त प्रासाद उनका निवास स्थान है ।[३] मयूर के समान वर्ण वाले अश्व उनके प्रकाशमान रथ को चलाते हैं । उस पर बैठकर विचरण करते हैं ।[४] श्वेत वर्ण वाला, चार दाँत, सुन्दर लम्बी सूँड वाला ऐरावत इन्द्र का वाहन है ।[५] उसी के सिर पर और कभी स्कन्ध पर इन्द्र बैठते हैं ।[६] (वे वृष्टि के देवता हैं[७] और यज्ञ में भी उनका सम्मान होता है ।[८]) राजा उपरिचर को जो बाँस की लकड़ी पालन के लिए इन्द्र द्वारा प्राप्त हुई थी उसे वह पृथ्वी पर गाड़कर पूजा करते थे । यह इन्द्रध्वज कहा गया, आगे भी राजाओं द्वारा इसकी पूजा होती रही ।[९] रामायण में अश्विन् मास की पूर्णमासी को शक्रध्वज गाड़ कर पूजा करने का उल्लेख है ।[१०] इन्द्र गज के अतिरिक्त जैत्ररथ (विजय का) पर आरूढ़ होते हैं । मोर के वर्ण के हजारों घोड़े उसे चलाते हैं । यह रथ सभी अस्त्र-शस्त्रों से भरा रहता है ।[११]

पुराण काल में इन्द्र का रूप और अधिक स्पष्ट हो गया । यद्यपि इनका कोई अपना पृथक् सम्प्रदाय नहीं रहा फिर भी इनकी आराधना अधिकांशत: समाज में होती रही । पुराणकाल में भी इनकी आराधना धनी सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा होती थी । गोवर्द्धन पूजन के प्रसङ्ग में नन्द कृष्ण से कहते हैं कि इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के स्वामी हैं । वही जीवनदाता हैं और कृषि आदि प्रयत्नों के फल देने वाले हैं, इसी से हम सब उन्हीं की पूजा करते हैं—

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तय: ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पय: ।।

---

१. इन्द्रो वै ब्रह्मण: पुत्र: कर्मणा क्षत्रियोऽभूत् । महा० शां० प० २२।११.
२. महा० वन० १७१।२४.
३. महा० सभा० ७।५ । अनु० ४०।२९.
४. महा० सभा० २२।१९.
५. महा० वन० १७२।२२–२३.
६. महा० आदि० १८।४०.
७. महा० द्रोण० १०५।२९.
८. महा० वन० १८८।५०.
९. महा० वन० १७६।४०.
१०. महा० आदि० ६३।१७।१८-१९.
११. महा० उद्यो० १०४।३–४.

तं तस वयमन्ये च वामुर्चा पतिमीश्वरम् ।
द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ।।
....
पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ।।[1]

फॉसवौल (Fausboll) महोदय[2] भी इन्हें संसार के प्राणियों का जीवनाधार मानते हैं। किन्तु मैक्डॉनल महोदय इन्हें युद्ध का देवता स्वीकार करते हैं।[3] यही इन्द्र का रूप समाज में बढ़ता रहा। मध्यकाल के प्रारम्भ में इन्द्र के सम्मान में होने वाले एक वार्षिक पर्व का उल्लेख राव महोदय ने अपने ग्रन्थ में किया है। यह पर्व वैशाखी पूर्णिमा से प्रारम्भ होकर २८ दिन तक चलता रहता था।[4] परन्तक चोल के शिलालेख में इनके विषय में और अधिक विस्तृत वर्णन हुआ है।[5]

वृहद्संहिता इन्द्र को वज्र धारण किये हुए ललाट पर तीसरे नेत्र वाला, श्वेत वर्ण के चार दाँतों वाले गज पर चढ़ा हुआ बताती है।[6] वैष्णव पुराणों में इन्द्र देवों के अधिपति हैं। नन्दनवनादि सुन्दर उद्यानों एवं उपवनों से सुशोभित अमरावती पुरी में इन्द्र निवास करते हैं।[7] आकाश-गङ्गा खाई के समान चारों ओर से पुरी को घेरे रहती है।[8] शची इन्द्र की पत्नी है और ऐरावत गज उनका वाहन है। उसके गण्डस्थल एवं कपोलों से मदस्राव होता रहता है—

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।।[9]

वैष्णव पुराणों में इनके तीन रूपों का वर्णन हुआ है—

वज्रधारी इन्द्र,
गजारूढ़ इन्द्र तथा
रथारूढ़ इन्द्र ।

---

१. श्रीमद्भा० १०।२४।८-१०.
२. फ्रॉसवौल—इण्डि० माइ० पृ० ९७.
३. मैक्डानल—वैदिक माइथालोजी पृ० ५४.
४. राव, गो० ना०—ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५१७.
५. वही वही पृ० ५१८.
६. शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् ।
तिर्यग्ललाटसंस्थम् तृतीयमपिलोचनं चिह्नम् ।। वृ० सं० ५७।५।४२.
७. श्रीमद्भा० ८।१५।११-१२.
८. श्रीमद्भा० ८।१५।१२-२२.
९. श्रीमद्भा० ८।१०।२५.

वज्र इन्द्र का अस्त्र है जो दधीचि की अस्थियों से निर्मित है। यह आठ धारा वाला है। इसी से इन्द्र ने पाक नामक दैत्य का शिरच्छेद कर डाला था—

उद्यच्छदरिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा।
स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ॥[१]

इन्द्र के रथ में हजार घोड़े जुतते हैं और मातलि उनका सारथी है।[२] रथ के घोड़ों का वर्ण हरा है, वे देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं।[३] इन्द्र का शरीर आभूषणों से सुसज्जित रहता है वे अपने सिर पर रत्नजटित मुकुट धारण करते हैं।[४] अग्नि पुराण भी ऐरावत पर आरूढ़, स्वर्ण मुकुटधारी, वज्रहस्त इन्द्र का चित्रण करता है।[५] विष्णुधर्मोत्तर में इन्द्र के रूप का वर्णन अधिक स्पष्ट हुआ है। यह पुराण बतलाता है कि इन्द्र को नीले वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्ण के समान आभा वाले, सभी आभूषणों से विभूषित बनाना चाहिए। ललाट पर भी एक नेत्र होना चाहिए जो तिरछा हो—

नीलवस्त्रः सुवर्णाभः सर्वाभरणवांस्तथा।
तिर्यग्ललाटगेनाक्ष्णा कर्त्तव्यश्च विभूषितः ॥[६]

इन्द्र के वाम उत्सङ्ग में शची रहती है और उनका वाहन ऐरावत श्वेत वर्ण का तथा चार दाँतों वाला है।[७] इन्द्र चार भुजा वाले तथा शची दो भुजाओं वाली हैं। इन्द्र के दोनों दाहिने हाथों में कमल तथा अङ्कुश रहता है और शेष दोनों बाँयें हाथों में से एक शची के पृष्ठ पर रखा रहता है और दूसरे बाँयें हाथ में वज्र रहता है।[८] शची अपना दक्षिण हाथ इन्द्र की पीठ पर रखे रहती हैं और बाँयें हाथ में वे सन्तान मञ्जरी लिये रहती हैं—

वामे शच्याः करे कार्या रम्या सन्तानमञ्जरी।
दक्षिणं पृष्ठविन्यस्तं देवनाथस्य कारयेत् ॥[९]

---

१. श्रीमद्भा० ८।११।२८.
२. ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः श्रीमद्भा० ८।११।१६.
३. हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ॥ श्रीमद्भा० ८।१५।५.
४. श्रीमद्भा० ८।३७।२.
५. इन्द्रो वज्री गजारूढः ....। अग्नि पु० ५१।१४.
६. वि० ध० ५०।३.
७. चतुर्दन्ते गजे शक्रः श्वेतः कार्यः सुरेश्वरः।
वामोत्संगता कार्या रक्षमाणा तथा शची ॥ वि० ध० ५०।२.
८. शक्रश्चतुर्भुजः कार्यो द्विभुजा च तथा शची।
पद्माङ्कुशौ तु कर्त्तव्यौ शक्र दक्षिणहस्तयोः ॥
वामशचीपृष्ठगतं द्वितीयं वज्रसंयुतम् ॥ वि० ध० ५०।४–५.
९. वि० ध० ५०।६.

रूपमण्डन ग्रन्थ इन्द्र को अङ्कुश और कुण्डी हाथ में धारण करने वाला, सहस्राक्ष और पूर्व दिशा का स्वामी बतलाता है ।[१] अंशुमद्भेदागम तथा कुछ अन्य दक्षिण के ग्रन्थ इन्द्र की प्रतिमा को दो भुजा वाली शक्ति, अङ्कुश, वज्र अथवा नीलोत्पल लिये हुए, दो नेत्र वाला बतलाता है। कुछ ग्रन्थों में इन्द्र चार भुजा तथा तीन नेत्र वाले भी कहे गये हैं ।[२]

इन्द्र के इन रूपों को अनेक प्रकार से प्रतिमाओं में ढाला गया। इनके कुछ अवशेष गान्धार तथा मथुरा कला के अन्तर्गत प्राप्त होते हैं। मथुरा में लाल पत्थर पर बना हुआ एक अवशेष है जिसमें इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर बुद्ध से मिलने आये हैं । उस समय बुद्ध इन्द्रशाल गुहा में निवास करते थे।[३] गज पर आरूढ़ इन्द्र का भागवत तथा विष्णु आदि पुराणों में अनेक स्थल पर वर्णन हुआ है।[४] पहरपुर में इन्द्र की एक प्रतिमा है जो पत्थर की है। इसमें इन्द्र तीन आँखों वाले हैं । वे गज के समक्ष पूर्व की ओर मुख करके खड़े हैं। दो हाथों में अङ्कुश तथा नीलोत्पल है ।[५] उनका तीसरा नेत्र विष्णुधर्मोत्तर के 'तिर्यग्ललाटगेनाक्षणा' का प्रत्यक्षीकरण है । राव महोदय ने अपने ग्रन्थ में इन्द्र की चार भुजा वाली एक प्रतिमा का उल्लेख किया है। इसमें इन्द्र गज पर बैठे हैं । आगे के दोनों हाथ वरद तथा अभय मुद्रा में हैं । पीछे के दोनों हाथों में अङ्कुश तथा वज्र है । यह प्रतिमा चिदम्बरम् में है ।[६] एक अन्य प्रतिमा में इन्द्र भद्रपीठ पर बैठे हैं। उनके चार भुजाएँ हैं। आगे का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में है और उसमें अक्षमाला लटक रही है और बायें हाथ में कमण्डलु है। पीछे के दाहिने हाथ में अङ्कुश तथा बायें में वज्र है। सिर पर जटामुकुट है और वक्ष:स्थल पर यज्ञोपवीत तथा हार शोभित है ।[७]

वरुण—वैदिक काल में वरुण की गणना देवत्रयी (इन्द्र, वरुण, अग्नि) के मध्य की जाती थी। वेदों में उनकी प्रशंसा से सम्बद्ध अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि वे जल के देवता होने के साथ-साथ ऋतु के भी देवता हैं।[८] ये अपने हाथ में पाश धारण करते हैं। पाश धारण करने वाले को वे पाश से

---

१. वरं वराङ्कुशौ चैव कुण्डीं धत्ते करैस्तु यः ।
गजारूढ़: सहस्राक्षः इन्द्रः पूर्वदिशाधिपः ।। रूपम० २।३१.
२. बैनर्जी, जे० एन०—डे० हि० आ० पृ० ५२३.
३. बैनर्जी जे० एन० डे० हि० आ० पृ० ५२४.
४. अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।। श्रीमद्भा० १०।२५।७.
५. दीक्षित, के० एन०—पहरपुर, पृ० ४७ प्ले २७ डी०.
६. राव गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५२०.
७. वही पृ० ५२१.
८. ऋ० वे० ५।५७।८.

बाँध कर दण्ड देते हैं।[१] वे सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं।[२] रामायण में इन्हें पश्चिम दिशा का स्वामी कहा गया है।[३] महाभारत में इनके लिए राजा वरुण[४] तथा धर्मपाशधर[५] विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। ये अपने हाथ में पाश तथा अशनि धारण करते हैं।[६] कभी-कभी इनके हाथ में शङ्ख भी रहता है।[७] स्वर्ण निष्कों की माला पहनते हैं।[८] दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण कर वरुण देव अपनी पत्नी वारुणी के साथ आसन पर विराजमान होते हैं।[९] इनका श्वेत वर्ण है और अदिति के पुत्र कहे गये हैं।[१०].

पुराण काल तक वरुण का देव परिवार के मध्य महत्त्व बहुत कम हो गया। वे केवल पश्चिम दिशा के दिक्पाल ही रह गये।बृहत्संहिता में वरुण को हंस पर आरूढ़ तथा पाश को धारण करने वाला बतलाया है।[११]

वरुण जलचरों के स्वामी हैं। समुद्र इनका निवास स्थान है।[१२] ये शरीर पर अनेक आभूषण धारण करते हैं। छत्र इनके सिर पर सुशोभित रहता है। इनका जल बरसाने वाला छत्र नरकासुर हरण कर ले गया था।[१३] उस छत्र को कृष्ण उसे मारकर ले आये थे। वरुणदेव का वैडूर्य मणि के समान वर्ण है। वे श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। उनका उदर कुछ नीचे की ओर लटका हुआ होता है। मोतियों का बना हुआ हार गले में पहनते हैं और विविध आभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित रखते हैं। वरुण चार भुजाओं वाले हैं––

स्निग्धैः वैडूर्यसङ्काशः श्वेताम्बरधरस्तथा ।।
किञ्चित्प्रलम्बजठरो मुक्ताहार विभूषणः ।
सर्वाभरणवान्राजा तथा देवश्चतुर्भुजः ।।[१४]

---

१. ऋ० वे० ६।८।११.
२. ऋ० वे० ५।६।११.
३. रामा० ४।४५।६.
४. महा० सभा० १४।१४.
५. महा० सभा० ६।१७.
६. महा० आदि० २२७।३२.
७. महा० सभा० ५३।१५.
८. महा० सभा० ५३।१६.
९. महा० सभा० ९।६.
१०. महा० शा० ४९।१२.
११. बृ० सं० ५८।५७.
१२. वि० पु० ५।२।१८.
१३. छत्रं वत्सलिलस्रावि......वि० पु० ५।२९।१०.
१४. वि० ध० ५२।१–२.

देव वरुण अपनी दोनों दाहिनी भुजाओं में कमल तथा पाश धारण करते हैं और दोनों बायें हाथों में शङ्ख तथा रत्नों का पात्र (बर्तन) रहता है—

पद्मपाशौ करे कार्यौ देव दक्षिणहस्तयोः ।
शङ्खं च रत्नपात्रं च वामयोस्तस्य कारयेत् ।।[1]

वरुण के सिर पर जो छत्र शोभित रहता है वह भी श्वेत वर्ण का है । इनके समीप ही सर्वाङ्गसुन्दरी गौरी बाँयीं गोद पर विराजमान रहती हैं। वे अपने दोनों हाथों में से बायें में कमल पुष्प लिए रहती हैं और दाहिना हाथ वरुण देव की पीठ पर रहता है ।[2] वे बड़े चमकते हुए रथ पर चलते हैं जिसमें सात हंस जुते रहते हैं——

सप्तहंसरथे कार्यो वरुणो यादसाम्पतिः ।।[3]

विष्णुधर्मोत्तर में इनका वाहन मकर कहा गया है जो इनकी बायीं ओर विद्यमान रहता है। वाहन मकर के साथ-साथ मकर से चित्रित ध्वजा का भी इनके प्रसङ्ग में वर्णन हुआ है।[4] इनके दाहिनी ओर मकर पर आरूढ़ गङ्गाजी रहती हैं । वे चन्द्रमा के समान सुन्दर गौर वर्ण वाली एवं सुन्दर मुख वाली हैं और हाथ में कमण्डलु लिये रहती हैं। सब ओर से चँवर डुलाती रहती हैं—

भागे तु दक्षिणे गङ्गा मकरस्था सचामरा ।
देवी पद्मकरा कार्या चन्द्रगौरी वरानना ।।[5]

वरुणदेव के बायीं ओर कछुए पर आरूढ़ यमुनाजी विराजमान रहती हैं । नील कमल के समान उनकी आभा रहती है । अपने हाथ में वे भी नील कमल लिए रहती हैं और हाथ में चँवर लिए उन पर डुलाया करती हैं।[6] हेमाद्रि ने भी वरुणदेव के इसी रूप को स्वीकार किया है ।[7]

वरुण के वाहन के विषय में विभिन्न पुराण अनेक मत वाले हैं। अग्नि पुराण तो वरुण का वाहन मकर ही मानता है और उन्हें मकरारूढ़ तथा हाथ में पाश लिए

---

१. वि० ध० ५२।२–३.
२. छत्रं च सुसितं मूर्ध्नि भार्या सर्वाङ्गसुन्दरी ।।
वामोत्सङ्गगता कार्या गौरी तु द्विभुजा नृप ।
उत्पलं तु करे वामे दक्षिणं देवपृष्ठगाम् ।। वि० ध० ५२।३–४.
३. वि० ध० ५२।१.
४. वामभागगतं केतुं मकरस्य तु कारयेत् ।। वि० ध० ५२।३.
५. वि० ध० ५२।६.
६. वामे तु यमुना कार्या कूर्मसंस्था सचामरा ।
नीलोत्पलकरासौम्या नीलनीरजसन्निभा ।। वि० धर्मो० ५२।७.
७. चतु० व० ख० अ० १ पृ० १४५।४६.

हुए बतलाता है । इस पाश के द्वारा ही बलवान् वरुण पश्चिम दिशा में न्याय एवं शान्ति की स्थापना करते हैं ।[१] नाग पाश ही इनका अस्त्र है और ये श्वेत वर्ण वाले हैं ।[२] किन्तु मत्स्य पुराण किरीट, अङ्गद, पाश, तथा शङ्ख धारण करने वाले वरुण का वाहन मकर ही मानता है—

वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ।।
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।।[३]

अपराजितप्रच्छ ग्रन्थ का वरुणदेव की भुजाओं के विषय में भिन्न मत है । वह भी वरुण को चार भुजा वाला ही मानता है । उनका एक हाथ वरद मुद्रा में रहता है और शेष तीन हाथों में पाश, कमल तथा कमण्डलु रहता है ।[४] रूपमण्डन को भी यही रूप मान्य है ।[५]

कला में वरुण का कुछ भिन्न प्रकार से चित्रण हुआ है । अधिकांशत: दो भुजा वाले वरुण मकर पर आरूढ़ दिखाये गये हैं । वरुण की एक सुन्दर प्रतिमा भुवनेश्वर के राजरानी मन्दिर में है । इसमें वरुण का रूप बड़ा आकर्षक है । उनका बायाँ हाथ वरद मुद्रा में है और दाहिने हाथ में गोलाकार पाश है । सिर पर रत्नजटित मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार और मोतियों का यज्ञोपवीत पहने हैं । कमर में मेखला है ।[६] खजुराहो में वरुणदेव की कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं । प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। कुछ अंश में उनका रूप वैष्णव पुराणों के प्रसङ्ग से मिलता है किन्तु आयुध के प्रकटीकरण में प्रतिमा अपराजितपृच्छ तथा आगम ग्रन्थों का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है ।

यम—वेदों में यम महत्त्वपूर्ण देवता स्वीकार किये गये हैं । वेदों के बहुत से मन्त्रों में इनकी प्रशंसा की गयी है । विवस्वान्[७] उनके पिता तथा सरण्यू[८] उनकी माता हैं । मैत्रायणी संहिता[९] में मृत्यु को ही यम कहा गया है । विल्किस महोदय

---

१. मकरारूढ वरुण ! पाशहस्तमहाबल: ।
आगच्छ पश्चिमं द्वारं रक्ष-रक्ष नमोऽस्तुते । अग्नि पु० ५६।२३–२४.
२. वरुणं मकरे श्वेतं नागपाशधरं स्मरेत् ।। अग्नि पु० १६९।२९.
३. म० पु० २६१।१७–१८.
४. अपरा० पृ० २१३।१३.
५. रूपमं० २।३५..
६. बैनर्जी, जे० एन० –डे० हि० आ० पृ० ५२७.
७. ऋ० वे० १०।१४।५.
८. ऋ० वे० १०।१७।१–२.
९. मै० सं० २।५।६.

का कथन है कि यम पापियों को दण्ड देने वाले नहीं वरन् कुछ व्यक्तियों को भय देने वाले हैं ।[1]

यम दक्षिण दिशा के लोकपाल हैं और उस दिशा की सम्पूर्ण व्यवस्था करना इन्हीं का कर्त्तव्य है । रामायण में यमसदन[2] तथा यमकक्ष्य[3] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इस यमकक्ष्य में यम के कार्यों से सम्बन्धित अभिनय हुआ करता है ।[4] ये मृत्यु के देवता हैं और मृत्यु के समय कालदण्ड का प्रयोग करते हैं ।[5] महाभारत में वे गदाधारण करने वाले, विशाल शरीर वाले, शृङ्ग युक्त पर्वत के समान बताये गये हैं—

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ॥[6]

बृहत्संहिता में यम को दण्ड धारण करने वाला बतलाकर उनके वाहन महिष का भी उल्लेख हुआ है—

दण्डी यमो महिषगो ॥[7]

शिल्प संग्रह ग्रन्थ उन्हें नीले अञ्जन के समान द्युति वाला, दण्ड, पाश तथा धनु धारण किये हुए, प्रदीप्त अग्नि के समान चमकीले नेत्र वाला, विशाल महिष पर आरूढ़ बतलाता है । दोनों ओर इनके मृत्यु और चित्रगुप्त रहते हैं । ये सब ओर से भयानक रूप तथा आकार वाले सेवकों से घिरे रहते हैं ।[8]

पुराणों में यम के आकार एवं महत्त्व का विस्तृत उल्लेख हुआ है । यमराज अपनी संयमिनी नाम की प्रिय पुरी में निवास करते हैं ।[9] यमराज के शरीर का वर्ण जल से भरे हुए मेघों के समान है । वे तप्त स्वर्ण के सदृश चमकीले वर्ण के वस्त्र अपने शरीर पर धारण करते हैं । उनका पूरा शरीर आभूषणों से सुसज्जित रहता है और उन्हें भैंसे पर बैठे हुए दिखलाया जाता है—

सजलाम्बुदछायस्तप्तचामीकराम्बरः ।
महिषस्थश्च कर्त्तव्यः सर्वाभरणवान्यतः ॥[10]

---

१. विल्किन्स, डब्लू० जे० —हि० माइ० पृ० ७९.
२. रामा० ३।२२।४.
३. रामा० ७।७३।८.
४. रामा० २।६०।३.
५. रामा० ७।२२।२३.
६. महा० शल्य ३२।४०–४५.
७. बृ० सं० ५८।९।५७.
८. शि० सं० ८।२१.
९. श्रीमद्भा० १०।४५।४२.
१०. वि० ध० ५१।१.

यम की पत्नी धूमोर्णा उनके बायें उत्सङ्ग में विराजमान रहती हैं। उनके शरीर की आभा नीले कमल के समान नील वर्ण की है। धूमोर्णा की दो भुजाएँ हैं जब कि यम-राज चार भुजा वाले हैं।[१] अपनी चारों भुजाओं में यमराज अपने रूप एवं पद के अनुसार विभिन्न प्रकार के अस्त्र एवं आयुध धारण करते हैं। उनके दोनों हाथों में दण्ड तथा खड्ग रहता है। यमराज का दण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण है। यही इनका मुख्य अस्त्र है जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण प्रजा को नियन्त्रित करते हैं। इस दण्ड के मुख के ऊपर ज्वालाओं की माला पहनायी जाती है। यह ज्वालमाला उनके दण्ड का शृङ्गार है। यह दण्ड अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है—

दण्डखड्गावुभौ कार्यौ यम दक्षिणहस्तयोः।
दण्डो परिमुखं कार्यं ज्वालामालविभूषणम्॥[२]

यम के दण्ड से सभी भयभीत रहते हैं। इनकी दोनों बायीं भुजाओं में से एक में चमड़े का ढाल रहता है और दूसरा धूमोर्णा की पीठ पर रखा रहता है।[३] धूमोर्णा के बायें हाथ में अत्यन्त सुन्दर मातुलुङ्ग रहता है और दाहिना हाथ यमराज की पीठ पर रहता है।[४] अग्निपुराण भी यमराज को महिषारूढ़ तथा दण्ड धारण करने वाला बत-लाता है। उनका रूप भयानक, कालानल के समान भीषण है।[५] अत्यन्त विकराल कालदण्ड वे अपने हाथ में धारण करते हैं—

महिषस्थं दण्डहस्तं यमं कालानलं स्मरेत्॥[६]

किन्तु मत्स्यपुराण हरिण को यमराज का वाहन स्वीकार करता है।[७]

चित्रगुप्त यमराज का लिपिक है जो सबके कर्मों का लेखा लिखता है। सदैव लिखते रहना ही उसका कार्य है। अतः उसके दोनों हाथों में लिखने का सामान रहता है। उसके दाहिने हाथ में लेखनी तथा बायें हाथ में कागज (अथवा बही) रहता है। वह यमराज के समीप दाहिनी ओर बैठा रहता है। यद्यपि वह दक्षिण

---

१. नीलोत्पलाभा धूमोर्णा वामोत्सङ्गे च कारयेत्।
धूमोर्णा द्विभुजा कार्या यमः कार्यश्चतुर्भुजः॥ वि० ध० ५१।२.
२. वि० ध० ५१।३.
३. धूमोर्णा पृष्ठगंवामं चर्मयुक्तं तथापरम्॥ वि० ध० ५१।४.
४. धूमोर्णा दक्षिणं हस्तं यमपृष्ठगतं भवेत्।
वामे तस्याः करे कार्यं मातुलुङ्गं सुदर्शनम्॥ वि० ध० ५१।४–५.
५. महिषस्थं समागच्छ दण्डहस्त महाबले॥ अग्नि पु० ५६।२०.
६. अग्नि पु० १६६–२८.
७. म० पु० २६१।१२।१४.

दिशा के स्वामी के समीप रहता है फिर भी वह उत्तरी वेशभूषा को धारण करता है । यह देखने में सुन्दर एवं शोभा से पूर्ण लगता है——

पार्श्वे तु दक्षिणे तस्य चित्रगुप्तं च कारयेत् ।
उदीच्यवेशं स्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् ।
दक्षिणे लेखनी तस्य वामे पत्रं तु कारयेत् ।।[1]

अपराजितपृच्छ ग्रन्थ में यम को लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट धारी बतलाया गया है ।[2] रूपमण्डन में यम के विषय में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है——

लेखनीं पुस्तकं धत्ते कुक्कुटं दण्डमेव च ।
महामहिषमारूढो यमः कृष्णाङ्गं ईरितः ।।[3]

आगम ग्रन्थ इन्हें भयानक मुख, भयानक शरीर वाला, मुकुट आभूषणधारी, प्रदीप्त अग्नि के समान प्रचण्ड तेज वाला तथा दो भुजा वाला बतलाते हैं ।[4] यह वर्णन वर्तमान समय के विश्वासों का चित्र प्रस्तुत करता है । यमराज की बायीं ओर काल उपस्थित रहता है अपने नाम के सदृश ही उसकी आकृति भी अत्यन्त भीषण रहती है ।[5]

चिदम्बरम् के शिव मन्दिर में यम की प्रतिमा प्राप्त होती है । इसमें यम के दो भुजाएँ हैं । दाहिने हाथ में पाश और बायें में गदा है । शरीर सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित है । सिर पर छोटा मुकुट है । उनका वाहन पीछे खड़ा है ।[6] खजुराहो के मन्दिरों में यम की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं । सभी प्रतिमाएँ चार भुजा वाली हैं । उनमें कुछ प्रतिमाएँ दो भुजा वाली भी हैं । किन्तु विष्णुधर्मोत्तर तो यम को चार भुजा वाला ही बतलाता है ।

कुबेर——कुबेर उत्तर दिशा के दिक्पाल हैं । अथर्ववेद ने इनके लिए यक्षराज विशेषण का उल्लेख किया है ।[7] रामायण में वैश्रवण ब्रह्मा के मानस पुत्र और पुलस्त्य के पुत्र कहे गये हैं ।[8] महाभारत में ऐसा प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि विश्वकर्मा के

---

१. वि० ध० ५१।५–६.
२. अप० पृ० २१३।११.
३. रूप मं० २।३३.
४. करालदंष्ट्रवदनो रक्तमाल्यानुलेपनः ।
दीप्ताग्निसदृशाक्षश्च महामहिषवाहनः ।।
राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ परिशिष्ट पृ० ३५७.
५. वि० ध० ५१।८–१०.
६. राव० गो० ना०–ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५२४.
७. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ३३७.
८. ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५३३–३५.

द्वारा बनाये गये पुष्पक विमान पर कुबेर चलते हैं।[१] वह विमान अनेक पलङ्ग, आसन, माला तथा घोड़ों से भूषित रहता है।[२] कुबेर नरवाहन भी हैं।[३] वे अपने हाथ में कौबेरास्त्र धारण करते हैं।[४] वराह पुराण में इनके जन्म की कथा के विषय में ऐसा कहा गया है कि एक बार ब्रह्मा के मुख से पाषण वर्षा हुई। वर्षा समाप्त होने पर उन पाषाणों से उन्होंने एक दिव्य पुरुष बनाया और उसे धनपति बना कर देव-कोष का रक्षक नियुक्त कर दिया।[५] कुबेर यक्षों के अधिपति स्वीकार किये गये हैं। धन के स्वामी होने के कारण वे धनपति तथा धनद कहे जाते हैं। बृहत्संहिता में कुबेर किरीट मुकुट को धारण करने वाले तथा नरवाहन कहे गये हैं।[६] कुबेर को विष्णु-धर्मोत्तर भी नरवाहन कहता है। वे कमल पत्र के समान तथा स्वर्ण की आभा के सदृश हैं—

कर्त्तव्यः पद्मपत्राभो धनदो नरवाहनः।
चामीकराभो धनदः सर्वाभरण भूषणः।।[७]

यहाँ पर 'पद्मपत्राभो' तथा 'चामीकराभो' दोनों शब्द कुबेर के लिए ही प्रयुक्त हैं। पद्मपत्राभो (अर्थात् लाल कमल की आभा वाले) सम्भवतः उनके वस्त्रों के लिए और चामीकराभो (स्वर्ण की आभा) उनके शरीर के वर्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि अंशुमद्भेदागम कुबेर के लिए 'रक्ताम्बरधरस्सौम्य'[८] कहकर उनके रक्त वस्त्रों की ओर सङ्केत करता है और 'तप्तकाञ्चनसङ्काशो'[९] कहकर तपे हुए स्वर्ण के सदृश कुबेर के वर्ण को स्वीकार करता है। विष्णुधर्मोत्तर में स्पष्ट रूप से वर्ण और वस्त्र का उल्लेख नहीं हुआ है। कुबेर का सभी प्रकार के आभूषणों से शरीर सुसज्जित रहता है। अग्निपुराण 'कुबेरं मेषसंस्थितम्'[१०] कहकर मेष को कुबेर का वाहन स्वीकार करता है।

कुबेर उत्तर दिशा के लोकपाल हैं अतः वे उत्तरी वेशभूषा ही धारण करते हैं। वे चमकता हुआ कवच तथा पेट तक लटकता हुआ हार पहनते हैं। उनके

---

१. महा० वन० १६१।३७.
२. महा० वन० १६१।२३–२६.
३. महा० वन० १६१।४२, वन० १६८।१३.
४. कौबेरमधिजग्राहदिव्यमस्त्रं महाबलः ।। महा० वन० ४१।४१.
५. राव० गो० ना०–ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५३३–३५.
६. बृ० सं० ५८।५७.
७. वि० ध० ५३।१.
८. ए० हि० आ० वा० २ भा ३ पृ० ५३५–३७.
९. वही पृ० ५३५–३७.
१०. अग्नि पु० ५१।१५.

मुख में दो दाढ़ें अथवा बड़े दाँत रहते हैं और बड़ी-बड़ी मूँछें होती हैं। उनके सिर का मुकुट कुछ बायीं ओर झुका रहता है। ये चार भुजा वाले, लम्बे उदर वाले हैं और इनका बाँया नेत्र पीला है।[१] अपनी दोनों बायीं भुजाओं में वे शक्ति तथा गदा धारण करते हैं। पैरों में सुन्दर नूपुर रहते हैं जिन पर सिंह के चिह्न बने हैं—

गदाशक्ती च कर्त्तव्ये तस्य दक्षिणहस्तयोः ।।
सिंहाङ्कलक्षणं केतुं शिविकामपि पादयोः।
शङ्खपद्मौ निधी कार्यौ सुरूपौ निविसंस्थितौ ।।
शङ्खपद्मान्तनिष्क्रान्तं वदनं तस्य पार्श्वतः ।[२]

कुबेर के समीप शङ्ख और पद्म नाम की दो निधियाँ खड़ी रहनी चाहिए। उनके दोनों के मुख कुबेर की ओर रहते हैं, वे देखने में अत्यन्त सुन्दर होती हैं। कुबेर की पत्नी ऋद्धि वर देने वाली हैं और उनकी बायीं गोद में विराजमान रहती हैं। ऋद्धि के दो भुजाएँ रहती हैं। वे बायें हाथ में रत्नों का पात्र धारण किए रहती हैं और दाहिना हाथ कुबेर की पीठ पर रखा रहता है।[३]

दोहद पञ्चमहल स्थान में कुबेर की एक प्रतिमा है। इसमें कुबेर लम्बोदर, श्मश्रुयुक्त, प्रदर्शित किये गये हैं। दो बड़ी दाढ़ उनके मुख के बाहर निकली हैं। उनके वक्षःस्थल पर कवच तथा हार शोभित है। प्रतिमा विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित रूप से साम्य रखती है।[४] मथुरा म्यूज़ियम में एक कुबेर की प्रतिमा है। इसमें कुबेर एक आसन पर बैठे हैं। उनके दो भुजाएँ हैं। दाहिने हाथ में रत्न पात्र और बायें में शङ्ख है। दाहिना पैर नीचे लटक कर पादपीठ पर रखा है और बाँया पैर मुड़ा हुआ आसन पर रखा है। दो प्रतिमाएँ चँवर लिए हुए देव के दोनों ओर उत्कीर्ण हैं।[५] खजुराहो में एक कुबेर की आलिङ्गन मूर्ति भी है। जिसमें वे ललितासन मुद्रा में बैठे हैं। वामोत्सङ्ग में देवी हैं। चार भुजाओं में से एक भुजा देवी का आलिङ्गन कर

---

१. लम्बोदरश्चतुर्बाहुर्बामपिङ्गललोचनः ।
उदीच्यवेशः कवचीहारभारार्पितोदरः ।।
द्वे च दंष्ट्रे मुखे तस्य कर्त्तव्ये श्मश्रुधारिणः ।
वामेन विनता कार्या मौलिस्तस्यारिमर्दिनी ।। वि० ध० ५३।३-४.
२. वि० धर्मो० ५३।५-६.
३. वामोत्सङ्गगता कार्या ऋद्धिर्देवीवरप्रदा ।।
देवपृष्ठगतंपाणिं द्विभुजायास्तुदक्षिणम् ।
रत्नपात्रं करे कार्यं वामे रिपुनिषूदनः ।। वि० धर्मो० ५३।४-५.
४. स्मिथ, वी० ए० — हि० फा० आ० इण्डि० ए० सीलो० पृ० १९६-९९.
५. सरस्वती, एस० के० सर्वे० इण्डि० स्क० पृ० १५८ प्ले० २३.

रही है और देवी का दाहिना हाथ उनके दाहिने स्कन्ध पर रखा हुआ निम्न प्रसङ्ग को स्पष्ट कर रहा है–

वामोत्सङ्गगता कार्या ऋद्धिर्देवीवरप्रदा ।
देवपृष्ठगतंपाणिं द्विभुजायास्तुदक्षिणम् ॥[१]

देवी के समीप एक अनुचर है। पादपीठ पर शङ्ख तथा पद्म निधियाँ हैं।[२] ऐसी ही कुबेर की आलिङ्गन मूर्ति ग्वालियर के म्यूज़ियम में भी है।[३]

अग्नि––अग्नि देवों के दूत हैं। देवों के पुरोहित होने के कारण वेदों में इन्हें ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया है।[४] यज्ञ के प्रधान होने के कारण होतृ[५] तथा अध्वर्यु[६] भी हैं। शतपथ ब्राह्मण भी इन्हें पुरोहित का कार्य करने वाला ब्राह्मण बतलाता है।[७] ये गृह के प्रथम अतिथि[८] तथा गृहपति[९] हैं। ग्रिसोल्ड[१०] तथा मेकडानल[११] आदि विद्वान् भी इन्हें सर्वव्यापक तथा महत्त्वपूर्ण बताते हैं। ऋग्वेद में अग्नि की उत्पत्ति अन्तरिक्ष, पृथ्वी और जल द्वारा बतायी गयी है।[१२] इसी आधार पर म्यूर महोदय स्वर्ग में सूर्य, अन्तरिक्ष में विद्युत् तथा पृथ्वी में अग्नि, ये तीन अग्नि बताते हैं।[१३] हॉप्किंस महोदय इन्हें अन्धकार को दूर करने वाले तथा ब्रह्मा की प्रथम कृति बताते हैं। उनके अनुसार अग्नि सप्तजिह्व, विलास मुख वाले, लाल गरदन तथा छोटी चमकती आँखों वाले हैं।[१४]

वेदों में उन्हें सप्तजिह्व[१५], सुनहरे चमकते हुए दाँत वाला[१६], चार नेत्र वाला,[१७]

---

१. वि० ध० ५३।४.
२. खजुराहो पृ० २४ प्ले० ८४.
३. ठेकोर, यस० आर०– कै० स्क० आर० म्यू० ग्वा० पृ० १६०.
४. ऋ० वे० २।१।२, ४।६।४.
५. ऋ० वे० २।१।२-३.
६. ऋ० वे० ३।५।४, १।९४।६.
७. शत० ब्रा० १०।४।१।५.
८. ऋ० वे० ५।८।२.
९. ऋ० वे० १।४६।५, १।६०।४.
१०. ऋ० वे०– ग्रिसोल्ड– पृ० १३२.
११. मेकडॉनल– वै० माइ० पृ० ९५-९७.
१२. ऋ० वे० ८।४४।१६.
१३. ओ० संस्कृ० टे० वा० ५ पृ० २०६.
१४. एपि० माइ० पृ० ९७.
१५. ऋ० वे० ३।२०।२.
१६. ऋ० वे० ५।२।३.
१७. ऋ० वे० १।३१।१३.

हज़ार सींग वाला,[1] धूम्रपताका[2] धारण करने वाला कहा गया है। महाभारत में वे तपे हुए सोने के वर्ण वाले, हरित, पीली चमकती श्मश्रु वाले, जटाधारी पद्मपत्र के समान नेत्र वाले तथा पिङ्गल वर्ण के कहे गए हैं।[3] पुराण काल में अग्नि का स्वरूप और अधिक स्पष्ट हुआ। इसके साथ ही साथ उनके अनेक नवीन रूपों की भी कल्पना हुई। अग्नि पुराण में अग्नि बकरे पर बैठे हुए चित्रित किए गए हैं और शक्ति बल से पूर्ण हैं–

आगच्छग्ने ! शक्तियुत ! छागस्थ ! बलसंयुत ।।[4]

बकरे के पृष्ठ पर विराजमान हुए अग्नि देव सप्त ज्वाला वाले हैं। यही सात ज्वालाएँ उनकी सात जिह्वा हैं। वे चार भुजा वाले हैं। अपने हाथों में अक्षमाला, कमण्डलु तथा शक्ति धारण करते हैं और ज्वालाओं से लिपटे रहते हैं।[5] इनके हाथों में आयुधों का उल्लेख तो हुआ है किन्तु किस हाथ में कौन-सा आयुध है इसकी ओर सङ्केत नहीं किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर अग्निदेव के रूप का अधिक स्पष्ट उल्लेख करता है। वे धुएँ के वस्त्र पहनते हैं। लाल-लाल जटाएँ सिर पर शोभित रहती हैं। वे ज्वालाओं से घिरे रहते हैं। उनके तीन नेत्र तथा ख़ूब बड़ी दाढ़ी तथा मूँछें रहती हैं–

रक्तं जटाधरे वह्निं कुर्याद्वै धूम्रवाससम् ।
ज्वालामालाकुलं सौम्यं त्रिनेत्रं श्मश्रुधारिणम् ।।[6]

वे चारों दाढ़ों तथा चार भुजा वाले हैं। अपने दोनों दाहिने हाथों में ज्वाला तथा त्रिशूल धारण करते हैं। शेष दोनों बाएँ हाथों में से एक में अक्षमाला रहती है और दूसरे बाएँ हाथ में क्या रहता है इस विषय में यह पुराण चुप है–

ज्वाला त्रिशूलौ कर्त्तव्यौ चाक्षमाला तु वामके ।।[7]

अग्नि पुराण में अग्निदेव के हाथों में जिस शक्ति का उल्लेख हुआ है वही शक्ति, सम्भवतः अग्निदेव अपने दूसरे बाएँ हाथ में लिए रहते होंगे।

---

१. ऋ० वे० ६।२।१८.
२. ऋ० वे० १।२७।११.
३. बृहच्छालप्रतीकाशः प्रतप्तकनकप्रभः ।
हरिपिङ्गोज्वलश्मश्रुः प्रमाणायामतः समः ।
तरुणादिव्यसङ्काश चीरवासा जटाधरः ।
पद्मपत्राननः पिङ्गस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।। महा० आदि० २२२।३१-३२.
४. अग्नि पु० ५६।१९.
५. सप्तार्च्चिषं तु विभ्राणमक्षमालां कमण्डलुम्
ज्वालामालाकुलं रक्तं शक्तिहस्तमजासनम् ।। अग्नि पु० ६९।२७.
६. वि० ध० ५६।१.
७. वि० ध० ५६।४.

विष्णुधर्मोत्तर अग्नि को रथारूढ़ चित्रित करता है। उनका रथ कुछ विचित्र प्रकार का होता है। उनके रथ पर धुएँ की ध्वजा रहती है और चार तोते उनके रथ को खींचते हैं। वायु उनके रथ के सारथी हैं–

चतुर्बाहुं चतुर्दंष्ट्रं देवेशं वातसारथिम्।
चतुर्भिश्च शुकैर्युक्तं धूम्रचिह्नरथोस्थितम्॥[1]

अग्निदेव की पत्नी का नाम स्वाहा है। वे अग्निदेव की बायीं गोद में उसी प्रकार विराजमान रहती हैं जैसे इन्द्र की गोद में शची। वे अपने एक हाथ में रत्नपात्र लिए रहती हैं।[2] दूसरे हाथ के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। सम्भवतः वह अन्य देवियों की भाँति अग्निदेव के पृष्ठ पर रखा रहता हो।

श्रीमद्भागवत में अग्नि के जिस रूप का वर्णन हुआ है वह रूप उनका अत्यन्त भीषण तथा भयङ्कर है। काशिनरेश के पुत्र सुदक्षिण ने कृष्ण को मारने के लिए जब अग्निदेव का यज्ञ में आवाहन किया उसी समय अत्यन्त भयङ्कर रूप को धारण कर अग्निदेव अग्निकुण्ड से प्रकट हो गये।[3] उस समय उनके केश और दाढ़ी मूँछें तपे हुए ताँबे के समान लाल-लाल थे। आँखों से भीषण अङ्गारे बरस रहे थे। उनकी उग्र दाढ़ों तथा कुटिल भृकुटियों के कारण वे और भी भीषण लग रहे थे। हाथ में त्रिशूल था उसे घुमा रहे थे। उसमें से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रहीं थीं। वे वस्त्रहीन थे, शरीर लपटों से घिरा हुआ था। अपनी जीभ से मुख के दोनों कोनों को चाट रहे थे। ताड़ के समान लम्बी-लम्बी टाँगें थीं। शरीर के चारों ओर खूब लम्बी-लम्बी लपटें निकल रही थीं, अपने भार से पृथ्वी को कँपाते हुए चलते थेः—

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः।
तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः॥
दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया।
आलिहन् सृक्विणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन्॥
पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम्॥[4]

रूपमण्डन ग्रन्थ अग्निदेव को शक्ति, कमण्डलुधारी, मेष पर आरूढ़, ज्वालापुञ्ज से घिरा हुआ बताता है।[5] अपराजितपृच्छ ग्रन्थ भी ऐसा ही रूप स्वीकार करता है।[6]

---

१. वि० ध० ५६।२.
२. वामोत्सङ्गगता स्वाहा शक्रस्येव शची भवेत्।
रत्नपात्र करादेवी वह्नेदक्षिणहस्तयोः॥ वि० ध० ५६।३.
३. श्रीमदभा० १०।६६।२७–३२.
४. श्रीमद्भा० १०।६६।३२–३४.
५. वरदः शक्तिहस्तश्च समृणालकमण्डलुः।
ज्वालापुञ्जनिभो देवो मेषारूढो हुताशन॥ रूपमं० २।३२.
६. अप० पृ० २१३।१०।११.

शिल्परत्न उन्हें रक्त वस्त्र पहने हुए, शुद्ध स्वर्ण के समान वर्ण वाले, यज्ञोपवीत धारण किये हुए, लम्बी दाढ़ी वाले मेषपृष्ठ पर बैठे हुए बताता है। दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा बायें हाथ में कमण्डलु रहता है। कुमकुम का लेप किये हुए स्वाहा देवी इनके वाम पार्श्व में उपस्थित रहती हैं। वे सप्त ज्वालाशीर्षो वाले हैं।[१]

अग्नि के ये रूप अनेक प्रतिमाओं में ढाले गये। बैनर्जी महोदय ने एक अग्नि की प्रतिमा का उल्लेख किया है। उनमें अग्नि लम्बे उदर वाले हैं और मेष के ऊपर पर्यङ्कासन मुद्रा में बैठे हैं। दाहिने हाथ में अक्षमाला है और बायें में जलपात्र है। उनके लम्बी दाढ़ी है। वे क्रुद्ध वेश में हैं। यज्ञोपवीत पहने हैं और सभी आभूषण शरीर पर सुसज्जित हैं। शरीर से लपटें निकल रही हैं।[२] इस प्रतिमा के अक्षमाला, लम्बकूर्च, लपटों से लिपटा शरीर, यज्ञोपवीत, आभूषण ये कुछ विशेषताएँ विष्णु-धर्मोत्तर में कथित रूप से साम्य रखती हैं। इस प्रतिमा में भुजाएँ केवल दो ही हैं। पहरपुर में अग्नि की एक और प्रतिमा है। जिसमें भी वे दो भुजावाले हैं। भुजाओं में अक्षमाला तथा जलपात्र है। शरीर से लपटें निकल रही हैं। इसमें उनका वाहन मेष नहीं है।[३] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की वाह्य भित्ति पर अग्नि देव की प्रतिमा उत्कीर्ण है। प्रतिमा देखने में बड़ी सुन्दर है। अग्निदेव के सिर पर मुकुट है सभी आभूषण शरीर पर यथास्थान शोभित हैं। देव के चार भुजाएँ हैं जिनमें अक्षमाला कमण्डलु आदि हैं। देव के मुख की दाढ़ें तथा लम्बी दाढ़ी उनके मुख को भयानक बना रही है। वे खड़े हुए हैं। समीप में दोनों ओर दो छोटी-छोटी प्रतिमाएँ बनी हैं।[४] प्रतिमा का रूप अंशतः विष्णुधर्मोत्तर से मिलता है।

वायु—वायु भी वैदिक देवता है। इनकी उत्पत्ति विश्व पुरुष के प्राणों से बतलायी गयी है।[५] यद्यपि इनकी पत्नी के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, फिर भी ये त्वष्टा के जामाता कहे गये हैं।[६] रामायण में वायु को इन्द्र का दूत कहा गया

---

१. वह्नेस्स्वरूपं वक्ष्यामि शुद्धकाञ्चनसुप्रभम्।
   ………रक्तवस्त्रविराजितम्॥
   युक्तं यज्ञोपवीतेन लम्बकूर्चेन शोभितम्॥
   मेषपृष्ठस्थितं देवं भुजद्वयसमन्वितम्।
   दक्षिणे चाक्षसूत्रं स्यात् करे वामेकमण्डलुः।
   स्वाहादेवी कृतापार्श्वे कुमकुमेनविलेपिता॥ शि० र० १३।९–१०.

२. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ५२४ प्ले० ६५ फी ४.

३. दीक्षित, के० एन०–पहरपुर पृ० ४८ प्ले० ३२ फी० ब।

४. खजुराहो पृ० २१, प्ले० ५३.

५. ऋ० वे० १०।९०।१३.

६. ऋ० वे० ८।२६।२१–२२.

है ।[१] ये सभी की आत्मा तथा जीवन हैं ।[२] महाभारत में वायु अग्नि के मित्र कहे गये हैं ।[३] वे मेघों को उत्पन्न कर वर्षा करते हैं ।[४] कुन्ती के द्वारा आवाहन किये जाने पर वे मृग पर आरूढ़ होकर आते हैं ।[५] वायु देव बड़े शक्तिशाली तथा युवा हैं । इनके रूप एवं आकार के विषय में विभिन्न ग्रन्थों के भिन्न-भिन्न मत हैं । विष्णु धर्मोत्तर में वायु आकाश के समान नीले वर्ण वाले कहे गये हैं उसी प्रकार के उनके वस्त्र हैं जो वायु से भरे हुए होते हैं । वे दो भुजा वाले हैं और दोनों भुजाओं से अपने वस्त्र के कोने पकड़े रहते हैं––

वायुरम्बरवर्णस्तु तदाकारोऽम्बरो भवेत् ।
वाय्वापूरितवस्त्रश्च द्विभुजो रूपसंयुतः ।।
....
कार्यो गृहीतवस्त्रान्तः कराभ्यां पवनो द्विज ।[६]

वायु का मुख खुला हुआ तथा केश बिखरे रहते हैं । गमन की इच्छावाली इनकी सुन्दरी पत्नी शिवा इनकी बाँयी ओर स्थापित की जाती है ।[७] अपराजितपृच्छ ग्रन्थ वायु को चार भुजा वाला बतलाता है । तीन भुजाओं में ध्वज, पताका तथा कमण्डलु रहता है और एक भुजा वरद मुद्रा में रहती है ।[८] रूपमण्डन ग्रन्थ इन्हें हरे वर्ण का ध्वज, पताका, कमण्डलु लिए हुए मृग पर आरूढ़ बतलाता है––

वरं ध्वजं पताका च कमण्डलुकरैर्दधत् ।
मृगारूढ़ो हरिद्वर्णः पवनो वायुदिक्पतिः ।।[९]

शुमद्भेदागम वायु को दो भुजावाला, बलशाली, धुएँ के समान वर्ण वाला, ताँबे के समान आँखों वाला, श्वेत वस्त्र पहने हुए, अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित बिखरे हुए बालों वाला बतलाता है । इनकी भौंहें कुछ टेढ़ी होती हैं और दाहिने

१. रामा० ६।७४।६२.
२. रामा० ७।३५।६१.
३. महा० आदि० २२३।७८.
४. महा० आदि० २२८।४०.
५. ······वायुर्मृगारूढ़ो महाबलः । महा० आदि० १२३।१२.
६. वि० ध० ५८।१–२.
७. गमनेच्छा शिवा भार्या तस्य कार्या च वामतः ।
....
तथैव देवी कर्त्तव्या शिवा परमसुन्दरी ।।
व्यावृतास्यस्तथा कार्यो देवो व्याकुलमूर्धजः ।। वि० ध० ५८।२–३.
८. अप० पृ० २१३।१४.
९. रूप० म० २।३६.

हाथ में ध्वजा तथा बायें हाथ में दण्ड धारण करते हैं। सिंहासन पर बैठे हुए शीघ्रता से जाने के लिए उत्सुक दिखाये जाते हैं ।[1]

खजुराहो के मन्दिरों में वरुण के साथ वायु की प्रतिमा प्राप्त होती है । खजुराहो के संग्रहालय में वायु की दो सुन्दर प्रतिमाएँ हैं । दोनों प्रतिमाएँ चार भुजा वाली हैं। चारों भुजाओं में से तीन भुजाओं में ध्वज, कमल, पुस्तक है तथा एक भुजा वरद मुद्रा में है । दूसरी प्रतिमा में भी एक हाथ वरद मुद्रा में है और शेष तीन में ध्वज, पताका तथा कमण्डलु है । इस प्रकार प्रतिमा वैष्णव पुराणों से तो अंशतः साम्य रखती है किन्तु रूपमण्डन का पूर्णतः स्पष्टीकरण प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रतिमाएँ हैं किन्तु वैष्णव पुराणों से कोई साम्य नहीं रखतीं ।

निऋति—निऋति वैदिक कालीन देवता हैं और दक्षिण-पश्चिम दिशा के स्वामी माने जाते हैं। यह पाप अथवा दोष के देवता हैं । इनका पौराणिक रूप भिन्न है । विष्णुधर्मोत्तर में इनका स्वयं का नाम विरूपाक्ष है और निऋति उनकी पत्नी हैं । ये फैले हुए ज्वाला निकलते हुए मुख वाले, ऊर्ध्व केश, हरित श्मश्रुयुक्त, भीषण मुख तथा दो भुजावाले हैं । इनके शरीर का वर्ण लालिमा लिए हुए काला वर्ण है और काले ही वस्त्र ये पहनते हैं। ऊँट इनका वाहन है। इनके हाथ में दण्ड तथा ऊँट की लगाम रहती है—

विरूपाक्षो विवृताक्षः प्राङ्शुदण्डोज्ज्वलाननः ।
ऊर्ध्वकेशो हरिच्छ्मश्रुर्भिबाहुर्भीषणाननः ।।
वर्णेन रक्तकृष्णाङ्गः कृष्णाम्बरधरस्तथा
सर्वाभरणवानुष्ट्रं दण्डरश्मिकरस्तथा ।।[2]

इनका शरीर सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित रहता है । इनकी पत्नी का नाम निऋति है वह काले मुख तथा अङ्गों वाली, पाश लिए हुए विरूपाक्ष की बायीं ओर विद्यमान रहती है ।[3] राव महोदय ने इसी प्रसङ्ग के आधार पर निऋति के देवी,

---

१. द्विभुजस्तु महावीर्यस्ताम्राक्षो धूम्रसन्निभः ।
ध्वजं वै दक्षिणे हस्ते वामहस्ते तु दण्डधृक् ।।
....
सिंहासनोपरिष्टात्तु शीघ्रयात्रोत्सुकः स्थितः ।।
ए० हि०-वा० २ भा० २ परिशिष्ट ब० पृ० २६१-६२.

२. वि० ध० ५७।१-२.

३. भार्या च तस्य कर्त्तव्या देवी निऋतिस्तथा ।
कृष्णाङ्गी कृष्णवदना पाशहस्ता तु वामतः ।। वि० ध० ५७।३.

कृष्णाङ्गी, कृष्णवदना, कृष्णपाशा ये चार पत्नियाँ मानी हैं । डॉ० रामाश्रय अवस्थी ने यहाँ पर प्रयुक्त चारों विशेषण निऋृति के ही बतलाकर राव महोदय[१] का कथन भ्रमपूर्ण बतलाया है । किन्तु विष्णुधर्मोत्तर की अन्य प्रतियों में प्राप्त 'भार्याश्चितस्त्र: कर्त्तव्या देवी च निऋृतिस्तथा' पाठ के आधार पर राव महोदय ने अपना उपर्युक्त मत निर्धारित किया है और उनका यह विचार युक्ति संगत प्रतीत होता है । अत: उक्त विद्वान् के लिए डॉ० अवस्थी का ऐसा आक्षेप उचित नहीं ।[२]

विरूपाक्ष काल का तथा निऋृति मृत्यु का प्रतीक है । तामस रूप को वस्त्र के रूप में विरूपाक्ष धारण करते हैं । उनके हाथ का दण्ड मारण है और उनका वाहन उष्ट्र महामोह का रूप है––

> काल: प्रोक्तो विरूपाक्षोमृत्युर्हि निर्ऋतिस्तथा ।
> बिभर्ति तामसंरूपं वासांसि च ततो नृप ।।
> मारणं तत्करे दण्डं बन्धनं चोष्ट्ररश्मय: ।
> महामोहस्तथैवोष्ट्र कथितस्तस्य वाहन: ।।[३]

अग्नि पुराण 'नैर्ऋत: खड्गवानकरे'[४] कहकर खड्ग को निर्ऋति का आयुध बतलाता है । भट्टाचार्य महोदय सम्भवत: 'करे' के स्थान पर 'खरे' पाठ देखकर निर्ऋति का वाहन उष्ट्र न मानकर खर मानते हैं ।[५] मत्स्य पुराण नर को उनका वाहन बतलाता है और नर विमान का भी उल्लेख करता है ।[६] अपराजितपृच्छ में देव का रूप बड़ा भयानक बतलाया गया है ।[७] रूपमण्डन उनके रूप का चित्रण निम्न प्रकार से करता है––

> खड्ग च खेटकं हस्तै: कर्त्तिकां वैरिमस्तकम् ।
> दंष्ट्राकरालवदनं श्वानारूढश्च राक्षस: ।।[८]

---

१. राव गो० ना०–ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५२८.
२. अवस्थी, रा०–ख० दे० प्र० पृ० २२० टि० ४.
३. वि० ध० ५७।४–५.
४. अ० पु० ५१।१४.
५. भट्टाचार्य–इण्डि० इमे० पृ० ३०.
६. म० पु० २६१।१५–१६.
७. अप० पृ० २१३।१२.
८. रूप० मं० २।३४.

अंशुमद्भेदागम[1] के अनुसार वे भद्रपीठ पर, सुप्रभेदागम[2] के अनुसार सिंह पर आरूढ़ रहते हैं। शिल्परत्न[3] उन्हें पीत वस्त्र धारी नर पर आरूढ़ बतलाता है।

निऋति का कलात्मक प्रत्यक्षीकरण बहुत कम प्राप्त होता है। राव महोदय ने इस दिक्पाल की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है। यह प्रतिमा अहोविलम् से प्राप्त हुई है, जो देखने में बड़ी सुन्दर तथा आकर्षक है। इस प्रतिमा में निऋति एक मनुष्य के स्कन्ध पर आरूढ़ हैं।[4] राव महोदय ने एक और प्रतिमा का भी उल्लेख किया है जो चिदम्बरम् से प्राप्त हुई है।[5] बैनर्जी महोदय ने अपने ग्रन्थ में इस दिक्पाल की एक प्रतिमा का उल्लेख किया है। यह प्रतिमा राजशाही संग्रहालय में है। इसमें भी विरूपाक्ष मनुष्य के स्कन्ध पर आरूढ़ हैं। इस प्रतिमा का मुख खुला हुआ, खुले हुए नेत्र, भयानक रूप विष्णुधर्मोत्तर के 'विरूपाक्षो विवृताक्षः प्राङ्शु-दण्डोज्ज्वलाननः[6] का स्मरण दिलाता है।[7]

ईशान—ईशान उत्तर-पूर्व दिशा के दिक्पाल हैं। ईशान शिव के ही विशिष्ट रूप हैं। विष्णुधर्मोत्तर में शिव के गौरीशर्व रूप को ही ईशान कहा गया है। इसके अनसार ईशान के एक मुख, दो नेत्र, चार भुजा होती हैं। उनके शरीर का वामार्ध भाग पार्वती के समान स्त्रियोचित वेशभूषा से सुसज्जित रहता है किन्तु दाहिना आधा भाग जटा,-मण्डल, चन्द्रकला, सर्पकुण्डल, यज्ञोपवीत, अक्षमाला, त्रिशूल आदि से भूषित रहता है-—

वामार्धे पार्वती कार्या शिवः कार्यश्चतुर्भुजः।
अक्षमालां त्रिशूलं च तस्य दक्षिणहस्तयो:॥
दर्पणेन्द्वीवरौ कार्यौ वामयोर्यदुनन्दन।
एकवक्त्रोभवेच्छम्भुर्वामार्धदयितातनुः॥
द्विनेत्रश्चमहाभाग सर्वाभरणभूषितः॥[8]

---

१. भद्रपीठोपरिस्थिताः। ए० हि० आ० वा० २ भा० २ परिशिष्ट ब० पृ० २५८–५९.
२. सिंहारूढं द्विनेत्रकम् वही पृ० ५९.
३. नरयानसमारूढं वही पृ० २५९–६०.
४. राव० गो० ना०–ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५३२.
५. वही वही पृ० ५३३.
६. वि० ध० ५७।१.
७. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ५२३.
८. वि० ध० ५५।२–४.

शिव का यही गौरीशर्व रूप अर्धनारीश्वर रूप है और उसी को ईशान रूप माना गया है।[१] अग्नि, निऋति और वायु के रूप के साथ इनके भी रूप का वर्णन हुआ है।[२] विष्णुधर्मोत्तर की इस विशेषता से अन्य पुराण सहमत नहीं। मत्स्य पुराण में ईशान को धवल नेत्र वाला, धवल कान्तियुक्त, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र तथा वृषभ पर बैठे हुए बतलाया गया है।[३] अग्नि पुराण कहता है कि जटाधारी ईशान वृषभ पर बैठे रहते हैं।[४] रूपमण्डन में ईशान के रूप का चित्रण निम्न प्रकार से हुआ है—

> वरं तथा त्रिशूलं च नागेन्द्रबीजपूरकम्।
> बिभ्राणो वृषमारूढ ईशानो धवलद्युतिः ॥[५]

अपराजितपृच्छा ग्रन्थ इसी रूप को स्वीकार करता है।[६] अन्य शिल्प ग्रन्थों से सम्बद्ध कुछ प्रतिमाएँ तो अवश्य प्राप्त होती हैं किन्तु वैष्णव पुराणों से सम्बद्ध ईशान प्रतिमा का वर्णन शिव के अर्धनारीश्वर रूप के अन्तर्गत हो चुका है।

---

१. वि० ध० ५५।६.
२. वि० ध० ५५।१.
३. म० पु० २६१।२३–२४.
४. अ० पु० ५१।१५–१६.
५. रूप० मं० २।३८.
६. अप० पृ० १३।१६.

सप्तम परिच्छेद

व्यन्तर देवता

देवों एवं देवियों के साथ-साथ कुछ ऐसी शक्तियों की सत्ता भी हिन्दू धर्म में स्वीकार की गयी है जो देवत्व की सीमा तक तो नहीं पहुँची है, किन्तु फिर भी उनका अपना पृथक् महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है । ऐसी शक्तियों की भी देवत्व की सीमा के अन्तर्गत गणना हुई है और वे व्यन्तर देवताओं के नाम से प्रसिद्ध हैं । विष्णु पुराण में इन्हें ही देवयोनियाँ माना गया है और आठ प्रकार की देवयोनियों में सिद्ध, गुह्यक, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, विद्याधर, पिशाच की गणना की गयी है—

सिद्धगुह्यक गन्धर्व यक्ष राक्षस पन्नगाः ।
विद्याधरा पिशाचाश्च निर्दिष्टा देवयोनयः ।।[१]

राव महोदय ने इन शक्तियों को डेमी गाड्स अर्थात् अर्धदेव नाम प्रदान किया है और इनके अन्तर्गत वसु, नाग, साध्य, असुर, अप्सरा, पिशाच, वेताल, पितृ, ऋषि-मुनि, गन्धर्व तथा मरुद्गण को माना है ।[२] डॉ० शुक्ल ने अपने ग्रन्थ में असुर, पिशाच तथा वेताल के नाम को व्यन्तर देवता की तालिका से हटा दिया है । वे इन तीनों की गणना दैत्यों के अन्तर्गत करते हैं ।[३] हिन्दू धर्म के अन्तर्गत इन सबका बड़ा महत्त्व है । तर्पण के समय पढ़े जाने वाले मन्त्र में सभी व्यन्तर देवों के नाम आ गये हैं—

देवायक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसो सुराः ।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णश्च तरवोऽजिमगाः खगाः
विद्याधराः जलधरास्तथैवाकाशगामिनः ।।

यक्ष—ऋग्वेद में यक्ष पूजा के विषय में अनेक स्थान पर उल्लेख हुआ है । मित्र और वरुण देव को यक्षों के प्रभाव से स्वतन्त्र रहने की प्रार्थना की गयी है ।[४]

---

१. वि० पु० पृ० २४३ पर टिप्पणी के अन्तर्गत. ।
२. राव० गो० ना०—ए० हि० आ० वा० २ भा० २ पृ० ५४९.
३. शुक्ल, डी० एन०, वा० शा० वा० २ पृ० ३४२.
४. ऋ० वे० ७।६१।५.

मित्र और वरुण के मुख पर आश्चर्यजनक शक्ति (अद्भुत क्रतु) हो जिससे उन्हें यक्ष ऐसे देव की आवश्यकता न हो ।[१] एक स्थान पर अग्नि को यक्षों का भी अध्यक्ष बतलाया गया है[२] और अग्नि को उस स्थान पर जाने के लिए मना किया गया है जहाँ यक्षों को पूजने वाले व्यक्ति रहते हों ।[३] इससे स्पष्ट होता है कि यक्षों के उपासक ऐसे व्यक्ति होंगे जो आर्य धर्म या वैदिक देवों को न मानते होंगे । यक्षों को मरुतों से अधिक सुन्दर बतलाया गया है ।[४] अथर्ववेद में इनके लिए 'इतर जना'[५] विशेषण प्रयुक्त हुआ है । पिप्पलाद ने अथर्ववेद पर लिखी हुई टीका में इन्हें 'पुण्य-जनाः'[६] कहा है । इस समय यक्षों का महत्त्व बहुत बढ़ गया था । राज्य के सभी प्रमुख यक्ष, देवों को सम्मान प्रदान करने आते थे ।[७] इन्द्र, वरुण, अर्यमा आदि सभी वैदिक देवों के साथ ही यक्ष भी मिलते चले जा रहे थे । इनकी पुरी को ब्रह्मपुरी नाम देकर अपराजित कहा गया है ।[७] गोभिल[८] तथा द्राह्यायन[९] गृह्यसूत्रों में यक्ष के नेत्र प्रिय तथा सुन्दर बतलाये गये हैं । कुछ गृह्यसूत्रों[१०] में भूतों के मध्य में यक्षों की गणना हुई है । कीथ महोदय ने भी इस मत का अनुमोदन किया है ।[११]

पाणिनि के समय में भी यक्षों का महत्त्व कम नहीं हुआ था । पाणिनि ने अष्टाध्यायी में पुत्र का व्यक्तिगत नाम रखने के लिए वरुण, अर्यमा आदि वैदिक देवों के साथ शेवल, सुपरि तथा विशाल आदि यक्षों के नाम की भी गणना की है ।[१२] विशाल, वैश्रवण की सभा का यक्ष था । यक्षों के अनेक पवित्र स्थान भी थे जिसमें कपिलवस्तु में यक्ष शाक्यवर्द्धन का, चम्पा में यक्ष पूर्णभद्र का, राजगृह में यक्ष मोग्गर-पाणि का मन्दिर प्रसिद्ध है ।[१३]

---

१. ऋ० वे० ५।७०।४.
२. यक्षस्याध्यक्षं तविशं बृहन्तं ऋ० वे० १०।८८।१.
३. ऋ० वे० ४।३।१३.
४. यक्ष सदृशो न शोभयन्तमर्हाः ऋ० वे० ७।५६।१६.
५. अथ० वे० ८।८।११
६. अथ० वे० पिप्पलाद की टीका ८।८।१५.
७. अथ० वे० १०।८।१५.
७. अथ० वे० १०।२।२९–३३.
८. गो० गृ० सू० ३।४।२८.
९. द्रा० गृ० सू० ३।१।२५.
१०. शां० गृ० सू० ८।९, आश्व गृ० सू० ३।४.
११. कीथ–रेलि० एण्ड फिला० आ० वे० पृ० २१३.
१२. अष्टा० ५।३।८४.
१३. आर० ८३।२३–दृष्टव्य–अग्रवाल वा० श०–इण्डि० आ० पृ० ११७.

रामायण में देवों द्वारा दिये जाने वाले वरदान 'यक्षत्व अमरत्वञ्च' का प्रसङ्ग प्राप्त होता है।[1] इससे स्पष्ट है कि यक्षत्व और अमरत्व समान माने जाते थे।

महाभारत काल में इनको पूर्णतः देवत्व के पद पर स्थापित कर दिया गया। ब्रह्मन् को यक्ष का पर्यायवाची माना जाने लगा। महाभारत में ब्रह्ममह नाम के एक ऐसे उत्सव का उल्लेख हुआ है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के व्यक्ति आनन्दपूर्वक भाग लेते थे--

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्चसुविस्मिताः।
वैश्याः शूद्राश्च मुदिताः चक्रुर्ब्रह्ममहं तथा।।[2]

इनका क्रोध भी प्राणघातक होता था। यक्षों के नगर को ब्रह्मपुर कहते थे।[3] इसके साथ-साथ मचक्रुक,[4] राजगृह[5] आदि कुछ ऐसे तीर्थों का भी वर्णन महाभारत में हुआ है जहाँ यक्षों की नित्य पूजा होती थी। अरन्तुक तीर्थ में स्नान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है।[6] मुञ्जवट तीर्थ में स्थित यक्षिणी स्थान में स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।[7] मचक्रुक तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है।[8] राजगृह में प्राप्त यक्षिणी का प्रसाद ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति देता है।[9] महाभारत का यक्षिणी का यह रूप व्यापकता में चेचक की शीतला माता तथा हैजे की ओलाबीबी देवी से साम्य रखता है। सप्तमातृकाओं, चौंसठ योगिनी, डाकिनी तथा कुछ देवियों में यक्षिणी भी हैं। दक्षिण भारत में आज भी सभी ग्राम देवियाँ स्त्री जाति की ही हैं। मदुरा के विशाल मन्दिर में पूजी जाने वाली मीनाक्षी देवी कुबेर की पुत्री हैं। इन्हें शिव की पत्नी के रूप में माना जाता है।[10]

जैन साहित्य में यक्षों को देवता तो माना गया है किन्तु वे शासन देवता कहे गये हैं।[11] भगवती सूत्र में पुण्यभद्र और मणिभद्र शक्तिशाली देव माने गये हैं। देवताओं

---

१. रामा० ३।११।९४.
२. महा० आदि० १५२।१८.
३. अवध्यं ब्रह्मपुरं–महा० शां० १७१।१५.
४. महा० वन० ८३।९.
५. महा० वन० ८४।१०४.
६. महा० वन० ८३।५२.
७. महा० वन० ८३।२२–२३.
८. महा० वन० ८३।९.
९. महा० वन० ८४।१०४–१०५.
१०. कुमारस्वामी–यक्ष भाग १ पृ० ९.
११ उवासगदसाओ ९३.

की सूची में पुण्णभद्द, मणिभद्द, सीलभद्द, सुमणभद्द, चक्षुरक्ष, सव्वन आदि की गणना हुई है। ये सभी वैश्रवण के आज्ञाकारी सेवक थे।[1] दीर्घनिकाय[2] में अच्छे और बुरे दो प्रकार के यक्ष कहे गये हैं। बुरे यक्ष अपने राजाओं के विरुद्ध उपद्रव करते थे। वैष्णव, बुद्ध को स्वयं अच्छे-अच्छे यक्ष सेवा कार्य के लिए देते थे और उन्हें यक्षों के प्रमुखों की सूची प्रदान करते थे जिनमें इन्द्र,[3] सोम, वरुण प्रजापति,[4] मणिभद्र, श्रावक हैं। वैश्रवण जाकर उनको बतलाते थे कि कौन बुद्ध में विश्वास रखता है कौन नहीं।[5] इस प्रकार शनैः शनैः यक्षों का महत्त्व कम होता जा रहा था। उन्हें प्रमुख देवता न मान कर देवों का अनुचर माना गया। इन्हें उतनी प्रधानता न दी गई जितनी पूर्व में दी जाती थी।

विष्णु पुराण में यक्ष तथा राक्षसों की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जब अन्धकार में स्थित होकर क्षुधाग्रस्त सृष्टि की रचना की उसी के अन्तर्गत यक्ष तथा राक्षसों की उत्पत्ति की। ये उत्पत्ति के समय समान थे। उत्पन्न होते ही ये सब ब्रह्माजी को खाने दौड़े। उन्हीं में से कुछ बोल पड़े रक्षा करो वे राक्षस कहलाये और जिन्होंने कहा हम भक्षण करेंगे वे यक्ष कहलाये।[6] यह पुराण इन्हें बड़ा ही कुरूप, दाढ़ी मूँछ युक्त बतलाता है––

विरूपाः श्मश्रुजातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम् ॥[7]

विष्णुधर्मोत्तर यक्षों को सभी अलङ्कारों से भूषित, सुन्दर आकार वाला बतलाता है––

सालङ्काराः स्मृताः सर्वे यक्षास्तेऽभिहिता मया ॥[8]

मानसार यक्षों को श्याम तथा पीत वर्ण का बतलाता है।[9] हेमाद्रि के अनुसार यक्ष तुण्डिल, दो भुजा वाले, मदिरा पीने से उन्मत्त तथा देखने में भयानक होते हैं।[10]

---

१. कुमारस्वामी–यक्ष भा० १ पृ० १०.
२. दी० नि० ३।१९५ महाविंश ३१।८१ में भी यही यक्षों के भेद कहे गये हैं
३. यहां पर इन्द्र, शक्र का नाम न होकर यक्ष का नाम है।
४. प्रजापती–पतैनी देवी के मन्दिर में जोगिनी का नाम है।
५. कुमारस्वामी–यक्ष आ० १ पृ० १०–११.
६. भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते ॥ वि० पु० १।५।४३.
७. वि० पु० १।५।४२.
८. वि० ध० ४२।१६.
९. मानसार १५।२३.
१०. चतु० चि० वा० २ व्र० खं० भा० १ पृ० १३८.

प्रतिमा कला के अन्तर्गत यक्षों की अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने यक्षों को कुछ सुन्दर प्रतिमाओं के उदाहरण दिये हैं। मथुरा जिले में परखम ग्राम में प्राप्त यक्ष की प्रतिमा भारतीय कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह भारतीय वेशभूषा में है। कमर में लम्बी मेखला, गले में ग्रैवेयक हार तथा कानों में कुण्डल शोभित हैं। इसके हाथ टूट गये हैं अतः हाथों में क्या था इसके विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं हो पाता। प्रतिमा में मुख की आकृति भाव भङ्गिमा बड़ी आकर्षक तथा सुन्दर है।१ पटना से प्राप्त हुई यक्ष की प्रतिमा के वस्त्र-कुछ भिन्न तो अवश्य हैं किन्तु हैं भारतीय ही। इस प्रतिमा की सबसे बड़ी विशेषता है अङ्गों का सन्तुलन। सभी अङ्ग बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं। सिर पर उष्णीय है। शरीर खूब बढ़ा है। अधोवस्त्र नीचे तक लटक रहा है। यह प्रतिमा अब इण्डियन म्यूज़ियम में है।[2] चन्द महोदय ने मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा का भी उल्लेख किया है। यह प्रतिमा उपर्युक्त दोनों प्रतिमाओं से पतली है। इसका उदर बड़ा तथा वक्षःस्थल पर कोई वस्तु बँधी है। स्कन्ध पर यज्ञोपवीत (उपवीती ढंग से) सुन्दरता से पड़ा हुआ है। उसके बायें हाथ में एक गोल-गोल वस्तु है जो सम्भवतः निधि हो सकती है। दाहिना हाथ टूट गया है फिर भी इसके आकार-प्रकार को देखकर इसमें चँवरी होने की सम्भावना होती है। प्रतिमा की मुद्रा बड़ी सुन्दर है। यह पवाया से प्राप्त हुई है और ग्वालियर म्यूज़ियम में है।[3] यह प्रतिमा पवाया में व्यापारियों की श्रेणी द्वारा स्थापित की गयी थी। वे इस प्रतिमा के सम्मुख आनन्द मनाते तथा गोष्ठी करते थे। व्यापारियों के वाणिज्य व्यापार में लाभ इसी प्रतिमा की पूजा से होगा उनका ऐसा विश्वास था।[4]

इसके अतिरिक्त मथुरा जिला के बरोदा ग्राम से यक्ष की, झींग का नगरा स्थान से यक्षिणी की प्रतिमा प्राप्त हुई।[5] भरतपुर जिले में नोह ग्राम में प्राप्त हुई यक्ष की प्रतिमा भी बड़ी सुन्दर है।[6] भूपाल के समीप बेसनगर से प्राप्त हुई यक्षिणी की प्रतिमा भी बहुत सुन्दर है। यह प्रतिमा अब इण्डियन म्यूज़ियम में है।[7] बेसनगर में एक और यक्षिणी की सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है वहाँ उसका स्थानीय नाम तेलिन

---

१. अग्रवाल—वा० श०—इण्डि० आर्ट पृ० १११ आ० ५०.
२. चन्द, आर० पी०—फोर ए० यक्ष स्टेचूज़ जे० डी० एल० वा० ४, १९२१ पृ० ४७–८४.
३. वही.
४. कुमारस्वामी, यक्ष भा० १ पृ० ७.
५. अग्रवाल—वा० श०—इण्डि० आ० पृ० ११.
६. वही पृ० १२.
७. वही पृ० १२.

प्रसिद्ध है ।[१] तीन मुख वाले यक्ष की प्रतिमा भी राजघाट से प्राप्त हुई और अब वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारत कला भवन में रखी है ।[२] सोपारा स्थान से प्राप्त यक्ष की एक प्रतिमा अब नेशनल म्यूज़ियम में है। इससे पूर्व यह प्रतिमा एल्बर्ट म्यूज़ियम में थी ।[३] अभी कुछ वर्ष पीछे उड़ीसा में शिशुपाल गढ़ की खुदायी में यक्ष की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं ।[४] भरहुत के स्तूप पर उत्तर, दक्षिण-पूर्व तथा पश्चिम के चारों द्वारों पर यक्षों की प्रतिमाएँ हैं। कनिंघम महोदय ने कहा है कि उत्तरी द्वार पर कुबेर (कुपिरो यक्खो) दक्षिणी द्वार पर विरूधक हैं । उत्तरी द्वार पर कुबेर के साथ ही अजकालक यक्ष तथा चन्द्रा यक्षी की भी प्रतिमाएँ स्तूप पर हैं। पूर्वी द्वार पर सुदर्शना यक्षी, दक्षिणी द्वार पर विरूधक यक्ष के साथ गङ्गित यक्ष तथा चक्रवाक नागराज की और पश्चिमी द्वार पर के एक स्तम्भ पर सुचिलोम यक्ष और सिरीमा देवता की तथा दूसरे स्तम्भ पर सुपावस यक्ष की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं ।[५] सभी खड़ी प्रतिमाएँ हैं। यक्षों के सिर पर उष्णीय, कानों में कुण्डल तथा हाथों में कङ्कन (वलय) की तरह के आभूषण पहने हैं । उनके बायें स्कन्ध पर से चौड़ा पट्ट उपवीती ढङ्ग से पड़ा है ।[६] यक्षिणी के शरीर पर खूब आभूषण हैं। कटि में पड़ी हुई मेखला बड़ी सुन्दर है । उसकी लड़ें नीचे तक लटक रही हैं। पैरों में कड़े की तरह के आभूषण हैं। इनके कर्ण-आभूषण खूब लम्बे, लटकते हुए सुन्दर हैं ।[७]

गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर एवं अप्सराएँ—अथर्ववेद में यक्षों के साथ गन्धर्वों की भी गणना हुई है ।[८] शतपथ ब्राह्मण में गन्धर्वों को वरुण राजा की प्रजा कहा है।[९] ये सोम के रक्षक हैं।[१०] यक्ष में इन्द्र को सोम आहुति देने के लिए सोम गन्धर्वों से ही खरीदा जाता था।[११] रामायण में गन्वर्वों को देवों का सहायक माना गया है ।[१२]

---

१. अग्रवाल–वा० श० इण्डि० आ० पृ० १२–१३.
२. वही पृ० ११२.
३. वही.
४. वही.
५. वही पृ० १३४.
६. कुमार स्वामी, यक्ष भा० १ प्ले० ३ आ० १ तथा २.
७. कुमारस्वामी यक्ष भा० १ प्ले० ४ आ० १ तथा २.
८. अथ० वे० ८।८।१५.
९. शत० ब्रा० ४।३।७–८.
१०. शत० ब्रा० ३।३।३।११.
११. ए० ब्रा० १।२७।१.
१२. वा० रामा० ३।१०।१८, ९।६।२०.

महाभारत में इन्हें गीत तथा नृत्य में बड़ा कुशल कहा गया है । ये नाच गाकर सबका मनोरञ्जन करते हैं ।[1] इन्हें सभी वाद्य बजाने आते हैं ।[2]

विष्णु पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा के गाते समय उनके शरीर से गन्धर्व उत्पन्न हुए । वाणी का उच्चारण करते हुए उत्पन्न होने के कारण वे गन्धर्व कहलाये—

गायतोऽङ्गात्समुत्पन्ना गन्धर्वास्तस्य तत्क्षणात् ।।
पिवन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्वास्तेन ते द्विज ।[3]

वैष्णव पुराण में नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, अर्णायु, धृतराष्ट्र तथा चित्रकेतु आदि गन्धर्वों के नामों का उल्लेख हुआ है। अधिकांशत: इनका यशोगान करते हुए चित्रण किया गया है । इससे स्पष्ट है कि ये संगीतप्रिय थे । गन्धर्व रूप और धन से युक्त होते हैं और अपनी इच्छा के अनुसार विहार करने वाले एवं रूप धारण करने वाले होते हैं—

आवाहयिष्ये गन्धर्वान् रूपद्रविणसंयुतान् ।
आयान्तु सर्वगन्धर्वा वरदा: कामरूपिण: ।।[4]

यह जाति बड़ी युद्धप्रिय भी होती है । चण्डवेग नामक गन्धर्वराज के अधीन तीन सौ साठ महाबलवान् गन्धर्व थे । उन्होंने राजा पुरुञ्जन का नगर लूट लिया था ।[5] मानसार ग्रन्थ में कहा गया है—

गीतवीणाविधानैश्च गन्धर्वाश्चेति कथ्यते ।।[6]

गन्धर्व गान विद्या के अतिरिक्त वाद्य विद्या में भी निपुण होते हैं । वे मृदङ्ग, वीणा, ढोल आदि वाद्य बजा लेते हैं—

ननृतुस्तस्य पुरत: स्त्रियोऽथो गायका जगु: ।
मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ।।[7]

---

१. महा० आश्व० ८८।३९–४०.
२. महा० वन० ४४।६–७.
३. वि० पु० १।५।४६–४७.
४. वि० ध० १०३।१४.
५. श्रीमद्भा० ४।२७।१३.
६. मानसार अ० १५।२२.
७. श्रीमद्भा० १२।८।२४.

किन्नर भी संग्रीतप्रिय हैं। वे देवों का यश-गान करते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में किन्नरों का आवाहन करने का जो विधान दिया गया है उससे स्पष्ट है कि किन्नर मधुर स्वर युक्त संगीत का गायन करते थे—

> आवाहयिष्यामि तथा किन्नरान् देवगायनान्।
> आयान्तु किन्नराः सर्वे सुस्वरास्तु सुलोचनाः ।।[१]

इनके नेत्र बड़े सुन्दर होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में किन्नरों के विषय में कहा गया है—

> किन्नरा द्विविधाः प्रोक्ता नृवक्त्रा हयविग्रहाः ।।[२]

अर्थात् किन्नर दो प्रकार के होते हैं—

१. मानव मुख वाले तथा

२. अश्व मुख वाले।

इनको नृदेह और अश्ववक्त्र कहते हैं। अश्वमुख वाले किन्नरों को सभी आभूषणों से सुसज्जित बनाना चाहिए। गीत में चतुर वाद्य लिए हुए होने चाहिए।[३]

विद्याधर भी बड़े सुन्दर होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में इनका उड़ता हुआ चित्रण हुआ है। विद्याधर अपनी स्त्रियों विद्याधरियों के साथ माला लिए हुए प्रदर्शित किये जाने चाहिए। इनका शरीर सभी आभूषणों से सुसज्जित रहता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी या आकाश में इन्हें खड्ग लिए हुए भी चित्रित किया जाता है—

> रुद्रप्रमाणाः कर्त्तव्यास्तथा विद्याधराः नृप।
> सपत्नीकाश्च ते कार्या माल्यालङ्कारधारिणः ।।
> खड्गहस्ताश्च ते कार्या गगने वाथवाभुवि।[४]

इस जाति को पुष्पों तथा मालाओं से विशेष प्रेम रहता है। किसी की सफलता पर यही पुष्पवर्षा करते हैं। विष्णुपुराण में ऐसा उल्लेख हुआ है कि एक बार दुर्वासा ऋषि ने एक सुन्दर विद्याधरी को सन्तानक पुष्पों की माला लिए हुए देखा उस सुन्दर एवं पुष्पों की माला की सुगन्धि से सम्पूर्ण वन सुगन्धित हो रहा था। वह विद्याधरी अत्यन्त सुन्दर बड़े-बड़े नेत्रों वाली एवं कृशाङ्गी थी। ऋषि द्वारा याचना किये जाने पर माला उसने दे दी—

---

१. वि० ध० १०३।१८.
२. वि० ध० ४२।१३.
३. नृदेहाश्चाश्ववक्त्राश्च तथान्ये परिकीर्तिताः।
अश्ववक्त्रास्तु कर्त्तव्याः सर्वालङ्कारधारिणः ।।
गीत वाद्य समायुक्ता द्युतिमन्तस्तथैव च ।। वि० ध० ४२।१४–१५.
४. वि० ध० ४२।९–१०.

स ददर्श स्रजं दिव्यामृर्षिविद्याधरी करे ।।
सन्तानकानामखिलं यस्या गन्धेन वासितम् ।
....
याचिता तेन तन्वङ्गी मालां विद्याधराङ्गना ।
ददौ तस्मै विशालाक्षीं सादरं प्रणिपत्य तम् ।।[१]

चित्रकेतु विद्याधरों के राजा हैं। वे विमान पर चढ़कर सब स्थानों का भ्रमण करते थे।[२] सात दिन तक लगातार उग्र तप करने के पश्चात् उन्होंने विद्याधरों के आधिपत्य को प्राप्त किया था।[३]

विद्याधर तथा किन्नरों की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं किन्तु पृथक् रूप से नहीं। विष्णु आदि प्रमुख देवों की प्रतिमाओं के समीप किन्नर वीणा लिए स्तुति करते हुए उपस्थित रहते हैं और विद्याधर अपनी सुन्दरियों के साथ मालाएँ लिए हुए आकाश से पुष्प वर्षा करते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसे रूप का वर्णन यथा स्थान अनेक प्रतिमाओं में होता रहा है।

गन्धर्वों की प्रतिमाएँ कला के अन्तर्गत अपना अलग महत्त्व रखती हैं। साँची तथा भरहुत के स्तूप पर इनका सौन्दर्य अधिकांशत: अधिक दिखायी पड़ता है। भगवान् बुद्ध के दोनों ओर सुन्दर भावभङ्गिमा वाले गन्धर्व उत्कीर्ण हैं। उनके शरीर का निम्न भाग पक्षियों की भाँति है और हाथों में पङ्ख जुड़े हैं। शरीर के ऊपर का भाग मनुष्यों की भाँति है। सिर पर सुन्दर मुकुट पहने हैं। कानों में कुण्डल तथा शरीर पर अन्य आभूषण शोभित हैं। इनके हाथों में वीणादि वाद्य न होकर हार लटक रहा है।[४] अजन्ता की गुफाओं में यत्र तत्र गन्धर्व मिथुन का प्रदर्शन हुआ है। गन्धर्व वाद्य बजा रहे हैं और उनकी स्त्रियाँ नृत्य कर रही हैं।[५] देवगढ़ में जो गन्धर्वों की प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं उनमें कुछ भिन्नता है। उनके शरीर का ऊर्ध्व भाग मनुष्य की भाँति है। स्कन्ध के दोनों ओर पङ्ख निकले हैं। हाथ नहीं दिखायी देते। इनके शरीर के नीचे का भाग भी मनुष्य की भाँति है, केवल पैर पक्षियों की भाँति हैं। आँखें बड़ी तथा गोल-गोल हैं।[६] ग्रुण्डवेल (Grundwel) महोदय का कथन है कि ये व्यन्तर देवता केवल घुटनों तक ही दिखाए जाते थे और अपने शरीर

---

१. वि० पु० १।९।२–५.
२. श्रीमद्भा० ६।१७।१–३.
३. श्रीमद्भा० ६।१३।२८.
४. बैनर्जी, जे० एन०– डे० हि० आ० पृ० ३५२.
५. वही पृ० ३५४-५५.
६. वही पृ० ३५४-५५.

के चारों ओर वृक्ष की पत्तियाँ पहनते थे[१] । खजुराहो के इल्लादेव मन्दिर में एक गन्धर्व की बड़ी सुन्दर प्रतिमा है । गन्धर्व के सिर पर पगड़ी की तरह की कोई वस्तु है । कान में बड़े-बड़े कुण्डल हैं । उसके हाथ में कड़े तथा केयूर हैं । कमर में बड़ी सुन्दर चौड़ी मेखला है । उसकी लम्वी लड़ें लटक रही हैं । पैर में भी वह कड़े पहने है । पूरा शरीर मनुष्य आकार के समान है किन्तु चरण पक्षियों के समान प्रतीत होते हैं । गन्धर्व बड़ी आनन्द मुद्रा में नृत्य करता हुआ वंशी वादन कर रहा है जिसे उसने अपने दोनों हाथों से पकड़ रखी है ।[२] खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर में एक और गन्धर्व प्रतिमा प्राप्त होती है किन्तु यह प्रतिमा गन्धर्व मिथुन की है । गन्धर्व के साथ गन्धर्वी भी आलिङ्गन मुद्रा में उसी के समीप खड़ी है । गन्धर्व का बायाँ हाथ उसे अङ्क में भरता हुआ उसके वक्षस्थल पर रखा है और गन्धर्वी का दाहिना हाथ गन्धर्व के कण्ठ से होकर उसके दाहिने स्कन्ध पर रखा है । दोनों की बड़ी सुसज्जित वेशभूषा है । गन्धर्व के सिर पर उष्णीष, कानों में बड़े-बड़े कुण्डल, गले में हार, माला, ग्रैवेयक, स्कन्ध पर यज्ञोपवीत, भुजाओं में केयूर तथा कड़े हैं । इस प्रतिमा में सबसे सुन्दर है यक्ष की कटि मेखला । वह बड़ी सुन्दर बनी है । उसकी लड़ें घुटनों तक लटक रही हैं । इसी प्रकार गन्धर्वी की मेखला और भी सुन्दर है । उसकी केशसज्जा बड़ी सुन्दर है । कानों में कुण्डल, गले में माला, हार आदि शोभित हैं ।[३]

अप्सरा––अथर्ववेद में गन्धर्वों के साथ अप्सराओं का भी वर्णन हुआ है ।[४] सोम इनके राजा हैं । शतपथ ब्राह्मण में इन्हें हंसिनी के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो पानी पर तैरती रहती है ।[५] रामायण में कहा गया है कि अप्सराएँ देवों के प्रत्येक प्रसन्नता के अवसर पर गन्धर्वों के साथ नृत्यादि करती हैं और प्रत्येक कार्य में देवों की सहायता करती हैं ।[६] महाभारत में अप्सराएँ इन्द्र की वरदानी सेविकाएँ[७] देवारण्यविहारिणी[८], देवपुत्रियाँ[९], इन्द्र कन्याएँ[१०] कही गयी हैं । ये अनेक प्रकार के

---

१. ग्रुण्डवेल– बुद्धि० आर्ट पृ० ४८ आ० २२.
२. खजुराहो–पृ० २४ प्ले० ८३.
३. खजुराहो–पृ० २३ प्ले० ६२.
४. अथ० वे० ८।८।१५.
५. शत० ब्रा० ११।५।१।४.
६. वा० रामा० १।३०।५५-५६, १।४१।२४-२५, ६।८।१६, ६।१५।११-१६.
७. महा० वन० ४३।३२.
८. महा० आदि० २१६।१५.
९. महा० आदि० १३०।६.
१०. महा० अनु० १०७।२१.

वस्त्राभूषण तथा दिव्य मालाएँ धारण करती हैं[१] । अपने केशों को ऊपर कर पाँच भागों में विभक्त कर बाँधती हैं ।[२] वे अपने सौन्दर्य तथा नृत्य से तपस्वियों की तपस्या भङ्ग कर इन्द्र की रक्षा करती हैं ।[३] उर्वशी इन्द्र की सभा की सुन्दरी, सर्वश्रेष्ठ अप्सरा थी । नाच गाकर इन्द्र को प्रसन्न करना उसका कार्य था ।[४] पुराणों में सहजन्या, विश्वाची, उर्वशी तथा तिलोत्तमा आदि के नामों के प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं ।[५] ये अप्सराएँ समुद्रमन्थन के समय समुद्र से प्रकट हुई थीं । ये बड़ी सुन्दर होती हैं । वे सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित तथा गले में स्वर्ण हार पहने थीं । शरीर आभूषणों से सुसज्जित था । उनकी चाल तथा चितवन सुन्दर थी–

ततश्चाप्सरसो जातानिष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ।।[६]

अप्सराएँ स्वर्ग की नर्तकियाँ हैं । अपने नृत्य से देवों को रिझाना यही इनका कार्य है । इनका सम्बन्ध किसी एक विशेष व्यक्ति से नहीं रहता और न इनका कोई पति ही होता है । इनका सम्बन्ध गन्धर्वों के साथ अधिक रहता है । इसके अतिरिक्त पृथ्वी के वीरों के साथ भी इनका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जब वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं । सायण का मत है कि अप्सराएँ दैवी जाति की स्त्रियाँ हैं । चित्ररथ इनके भी स्वामी हैं । अप्सराओं की संख्या सात कही गयी है जिनमें उर्वशी, रम्भा, विपुला तथा तिलोत्तमा का नाम प्रमुख है–

रम्भा च विपुला चैव उर्वशी च तिलोत्तमा ।
मध्यक्षामसमायुक्ताः पीनोरुजघनस्तनाः ।।[७]

विष्णुधर्मोत्तर इन्हें श्वेत वर्ण वाली सुन्दरी कह कर इनके लिए देवयोषा शब्द का सम्बोधन करता है—

आवाहयिष्यामि तथैवाप्सरसः शुभाः ।
समायान्तु महाभागा देवयोषा समोज्ज्वलाः ।।[८]

---

१. महा० आदि० १३३।५३.
२. महा० वन० १३४।१२.
३. महा० आदि० १३०।६-७, ७१।२७-२८, ३५.
४. महा० वन० ४५।४-८.
५. वि० पु०-३।६।१७, श्रीमद्भा० ८।८।४-६.
६. श्रीमद्भा० ८।८।७.
७. सुप्रभेदागम–दृष्टव्य–राव, गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ परि० ब० पृ० ३५७.
८. वि० ध० १०३।२०.

ये सभी इन्द्र की सेवा में रहती हैं । इन्द्र की आज्ञा से वे पृथ्वी पर ऋषियों का तप भङ्ग करने के लिए आती हैं । श्रीमद्भागवत में ऐसा प्रसङ्ग आया है कि मार्कण्डेय ऋषि का तप भङ्ग करने के लिए पुञ्जिकस्थली नाम की अप्सरा आयी । वह अत्यन्त सुन्दरी थी । ध्यानावस्थित ऋषि के समक्ष आकर वह गेंद खेलने लगी । पीन स्तनों के भार से उसकी पतली कमर लचक जाती थी । उसकी चोटी में सुन्दर पुष्प एवं मालाएँ गुथी हुईं थीं जिससे पुष्प गिर-गिर कर पृथ्वी पर फैल रहे थे । उसकी दृष्टि मोहक थी । कभी-कभी वह तिरछी चितवन से इधर-उधर देख लेती थी । कभी गेंद के साथ उसके नेत्र आकाश की ओर उठ जाते, कभी धरती की ओर आ जाते, कभी नेत्र हथेली के गेंद पर स्थिर हो जाते थे । वह बड़े हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई गेंद की ओर दौड़ रही थी । कमर में सुन्दर करधनी थी और वह अत्यन्त महीन रेशमी साड़ी पहने थी जो वायु के झोंके के साथ हिल रही थी[१] । इसके अतिरिक्त उसके साथ जो अन्य अप्सराएँ थीं वे हास-भाव प्रदर्शित करती हुई नृत्य कर रही थीं–

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथ गायका जगुः ।।[२]

अप्सराएँ अत्यन्त पवित्र मानी जाती हैं । भगवान् ने स्वयं कहा है कि वे गन्धर्वों में विश्वासु और अप्सराओं में ब्रह्माजी के दरबार की अप्सरा पूर्वचित्ति प्रसिद्ध है ।[३] शिल्परत्न ग्रन्थ में अप्सराओं को रेशमी वस्त्र पहने हुए पयोधर तथा पीन (मोटी) जघनस्थल, पतला कटि प्रदेश, किञ्चित् मधुर हास्ययुक्त तथा सुन्दर कटाक्ष वाली कहा गया है ।[४]

अप्सराओं की प्रतिमाएँ तो प्रतिमा कला की प्राण हैं । पत्थरों में उत्कीर्ण अप्सराओं की प्रतिमाएँ यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगत होती हैं । भरहुत के अवशेष में कामदेव की मृत्यु के बाद देवों द्वारा आनन्द मनाए जाने का चित्र प्रदर्शित किया गया है। इसमें मिश्रकेशी, अलम्बुषा, सुभद्रा तथा पद्मावती आदि अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं । इनकी मुख मुद्रा तथा भावभङ्गिमा बड़ी सुन्दर है ।[५] खजुराहो के कन्दरिया महादेव मन्दिर में आँख बन्द किये हुए तथा शान्त मुद्रा में खड़ी हुई दो अप्सराओं की प्रतिमाएँ हैं। पहली प्रतिमा में अप्सरा के केश किसी वस्तु से ढके हैं । शरीर पर

---

१. क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् ।
भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ।।
इतस्तेताभ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम् ।
वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ।। श्रीमद्भा० १२।८।१६-२२.

२. श्रीमद्भा० १२।८।२४.

३. विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् ।। श्रीमद्भा० ११।१६।३४.

४. शिल्प० ४५।१५.

५. बैनर्जी, जे० एन०–डे० हि० आ० पृ० ३५३-५४ आ० २३.

मोतियों के आभूषण हैं। दूसरी प्रतिमा खड़ी है । कटि में पड़ी मेखला की लड़ें घुटनों से नीचे तक लटक रही हैं ।[१] लक्ष्मण मन्दिर की दक्षिणी बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण अप्सरा की प्रतिमा बड़ी सुन्दर है । शरीर पर बहुत आभूषण हैं । कण्ठ मुक्ताहारों से भरा है। कटि मेखला की अनेक लड़ें हैं। अप्सरा अपना दाहिना हाथ सिर के पीछे किए है और उसका बायाँ हाथ दाहिने वक्षःस्थल के समीप है ।[२] लक्ष्मण मन्दिर की बाह्य पश्चिमी भित्ति पर जृम्भणभाव में संलग्न एक अप्सरा की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके दोनों हाथ ऊपर की ओर आधे उठे हुए हैं। शरीर अङ्गड़ाई के कारण तिरछा है । चित्रण वड़ा स्वाभाविक है ।[३] आदिनाथ मन्दिर में एक नृत्य करती हुई अप्सरा की[४], पार्श्वनाथ मन्दिर में एक नेत्र में अञ्जन लगाती हुई[५] और एक पैर से काँटा निकालती हुई अप्सरा का प्रदर्शन है।[६] सभी प्रतिमाएँ बड़ी स्वाभाविक हैं। अप्सराएँ सदैव नृत्य वाद्य के आनन्द में ही संलग्न रहती हैं। भरहुत में अलम्बुषा, मिश्रकेशी, सुदर्शना तथा सुभद्रा इन चार अप्सराओं की प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। सभी प्रसन्न मुद्रा में हैं ।[७] किसी उत्सव का वातावरण प्रतीत होता है क्योंकि इसके लिए 'साडिकं सम्मदं तुरं देवानाम्' पाठ का प्रयोग हुआ है।[८] साडिक शरद् ऋतु में मनाया जाने वाला सट्टक पर्व ही है। वे सभी प्रसन्नता से उस पर्व पर देवों की सभा में वाद्य सङ्गीत प्रस्तुत कर रही हैं ।

नाग तथा सर्प—हिन्दू धर्म में अन्य व्यन्तर देवों की भाँति नागों का भी प्राधान्य कम नहीं रहा। उनकी उपासना भारत में सदा से दो रूपों में होती रही—

१. प्रमुख देवों के रूप में तथा
२. पार्श्व देव के रूप में ।

वेदों के समय से भी पूर्व नागों की पूजा प्रचलित थी जैसा कि मोहञ्जोदड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त हुई मुद्राओं के ऊपर बनी हुई नाग प्रतिमाओं से स्पष्ट होता है । इसका उल्लेख पूर्व में हो चुका है । वे लोग इन्हें देवता के रूप में पूजते थे। अथर्ववेद में गन्धर्व, अप्सरा तथा यक्षों के साथ इनका वर्णन हुआ है ।[९] तिरश्चिराजी,

---

१. खजुराहो पृ० प्ले० ८ और ९.
२. वही पृ० प्ले० ३५.
३. वही पृ० प्ले० ३९.
४. वही पृ० प्ले० ५०.
५. वही पृ० प्ले० ५२.
६. वही पृ० प्ले० ५५.
७. अग्रवाल, वा० श० इण्डि० आ० पृ० १३६.
८. वही पृ० १३६.
९. गन्धर्वाप्सरसः सर्वान्पुण्यजनान्पितृहन् अथ० वे० ८।८।१५,

असित्, बभ्रु, पृदाकू, कैराट, पृष्ण, सावित्र आदि नागदेवों का भी उल्लेख हुआ है ।[१] तिरश्चिराजी, पृदाकू, स्वजो, कल्मासग्रीवो तथा सावित्र ये पाँच नागदेव दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व तथा ऊपर के स्थान के रक्षक कहे गये हैं ।[२] तक्षक नाग विशाल का उत्तराधिकारी[३] तथा धृतराष्ट्र नाग ईरावन्त का पुत्र कहा गया है ।[४] वेदों में वृत्रासुर एक विशाल सर्प (अहि) के रूप में माना गया है जो मृत्यु, तमस, अनृत का द्योतक है। देवों का शत्रु है । इन्द्र ने इसका वध किया । इसी प्रकार कालान्तर में शिव ने विषपान किया और सर्पों को अपने शरीर पर आभूषण के रूप में धारण किया। ये सभी नाग पृथ्वी का विष पी लेते हैं। नाग का अर्थ सर्प के साथ-साथ गज़ भी है। गृह्यसूत्रों में सर्प-बलि नाम के महत्त्वपूर्ण यज्ञ का उल्लेख हुआ है । महाभारत में शेषनाग, वासुकि, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, तक्षक आदि प्रमुख नागों का वर्णन हुआ है । ये अपनी इच्छानुसार वेश बदल सकते थे। क्योंकि तक्षक के साथी तपस्वी का वेष धारण कर महाराज परीक्षित् के समीप गये थे और तक्षक एक छोटे से कीड़े का रूप रखकर एक फल के बीच में बैठ रहा था। राजा के द्वारा फल काटे जाने पर वह सूक्ष्म कीड़ा शीघ्र ही तक्षक के रूप में प्रकट हो गया और राजा को डस लिया। तक्षक नाग पुनः भिखारी का वेष धारण कर उत्तङ्क द्वारा रखे हुए कुण्डल चुरा ले गया था। परीक्षित् के पुत्र जनमेजय के द्वारा किया हुआ नाग-यज्ञ तो प्रसिद्ध ही है ।

जिस समय विधिवत् नाग-यज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय मन्त्रोच्चारण के प्रभाव से काले, पीले, हरे, लम्बे, मोटे, नाग गिरने लगे ।[५] कोई गोकर्ण के समान छोटे थे तो कोई एक कोश या चार कोश के लम्बे थे।[६] कोई हाथी की शुण्ड के समान तथा कोई घोड़े के आकार के थे ।[७]

नाग जाति के व्यक्ति मङ्गोलिया के मूल निवासी थे । वे भारत में आकर बस गये। यह जाति बड़ी शक्तिशाली थी, अतः जब आर्य भारत में आये तो उन्होंने इन्हें परास्त किया । यह कथा आर्यों द्वारा उत्तरी भारत के मैदान से नागों को भगा दिये जाने की प्रतीक है । नाग वहाँ से हटकर इधर-उधर चले गये। वासुकि जो

---

१. अथ० वे० ३।२६–२७, ५।१३।५–६, ७।५६।१, १०।४।१३.
२. अथ० वे० ५।१३।८, ८।१२।१४–१६, ३।२६।९–११.
३. तक्षको वैशालेयो......। अथ० वे० ८।१०।२९.
४. धृतराष्ट्रो ऐरावतो....। अथ० वे० ४।२।१७.
५. महा० आदि० ५२।६–१२.
६. महा० आदि० ५२।७.
७ महा० आदि० ५२।९.

नागों का राजा था वह गोदावरी के द्वारा सींचे जाने वाले स्थान में शासन करता था। नागों की माता ने भी इन्हें गङ्गा के उद्भव स्थान में नमी तथा सीले स्थान में रहने का शाप दिया। इससे स्पष्ट है कि नाग आर्यों से अपनी रक्षा करने के लिए अन्य स्थानों में शरण लेते रहे[1]। कुछ ऐसे भी नाग थे जिनका आर्य सम्मान करते थे। जो अच्छे नाग थे वे नहीं भागे थे। ऐतरेय ब्राह्मण में अर्बुद् नामक सर्प का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। वे कद्रू के पुत्र थे और वैदिक कर्मकाण्ड न कर पाने के कारण अन्धे हो गये थे। महाभारत में अर्बुद् एक नाग ही था जो मगध में रहता था। चुल्लवग्ग[2] में चार सर्प राजाओं की जातियों का प्रसङ्ग आया है। इनके नाम बिरुपक्ख (विरूपाक्ष), एरपन्थ (एलापत्र), चव्यापुत्त, तथा कण्हगोतमक हैं।[3] जैन देवों के नाग पार्श्वदेव स्वीकार किये गये हैं। बौद्ध साहित्य में मुचलिन्द, कालिय, अपलाल आदि ऐसे नाग राजाओं का उल्लेख हुआ है जो समय-समय पर भगवान् बुद्ध को सम्मान प्रदान करने आते थे। उरुविल्व (उरुविला) के मन्दिर में एक भयङ्कर नागराज रहता था। उसके भय से कश्यप तथा उनके शिष्य मन्दिर में प्रवेश भी नहीं करते थे। बुद्ध ने कश्यप से मन्दिर में रहने के लिए स्थान माँगा। पहले तो कश्यप ने उन्हें मना किया किन्तु बाद में आज्ञा दे दी। बुद्ध ने मन्दिर में प्रवेश किया और जैसे ही वे तप करने के लिए बैठे वैसे ही पूरा मन्दिर अग्नि के समान तेज प्रकाश से भर गया। सर्प भयभीत हो गया और वह बुद्ध के कमण्डलु में आकर बैठ रहा। अग्नि के प्रचण्ड तेज को देखकर कश्यप आदि भयभीत हुए। उन्होंने समझा कि नाग ने अपने तेज से बुद्ध को भस्म कर दिया। किन्तु जब वे मन्दिर में आये तब बुद्ध ने उन्हें कमण्डलु में बैठे सर्प को दिखाया। कश्यप बुद्ध से बड़े प्रभावित हुए।[4] इसी भावना का अनुमोदन श्रीमद्भागवत पुराण में हुआ है। वासुदेव के द्वारा ले जाते हुए कृष्ण पर शेषनाग अपने फणों का छत्र फैलाकर उनके पीछे चलने लगे। कृष्ण ने कालिय मर्दन किया। ये प्रसङ्ग नाग-धर्म की कृष्ण सम्प्रदाय के समक्ष पराजय को प्रकट करते हैं। कृष्ण का भागवत-सम्प्रदाय उस समय मथुरा में खूब फैल रहा था। जब किसी का बुद्ध धर्म में प्रवेश कराया जाता था तो उससे पूछा जाता था वह नाग है या नहीं अथवा नाग पूजा करता है या नहीं।[5]

उरविला के मन्दिर में कालिरू नाग और बुद्ध की प्रतिमाएँ बनी हैं। बुद्ध कश्यप को वह नाग दे रहे हैं। पेशावर म्यूज़ियम में प्राप्त अवशेष में यह रूप भली

---

१. हॉप्किंस ए० माइ० पृ० २७.
२. चु० व० ५।६.
३. फोगेल—इण्डि० स० लो० पृ० १०.
४. गा० स्क० इण्डि० म्यू० भाग २ पृ० ४९.
५. ग्रीन०—बुद्धि० आर्ट पृ० ४४.

प्रकार प्रदर्शित किया गया है[1]। यहीं पर उरुवेला के राजा सेनपति की कन्या सुजाता के द्वारा दी हुई खीर बुद्ध ने खायी थी। वह नागराज को खीर खिलाने आयी थी।[2] जिस समय बुद्ध बोधिसत्व वृक्ष के नीचे बैठे थे उस समय मुचलिन्द नामक नागराज ने वर्षादि से उनकी रक्षा के लिए उन पर अपने फणों का छत्र फैला दिया था।[3] इस प्रकार नाग बुद्ध के सहायक थे।

पुराणों में भी नागों एवं सर्पों का विशद वर्णन है। कद्रू के महाबली, विशाल, अनेक सिर वाले नाग उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त सुरसा के पुत्र भी सर्प ही थे जो आकाश में विचरण करने वाले, विशाल तथा अनेक वर्ण के थे––

सुरसायां सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्।
अनेकशिरसां ब्रह्मन् खेचराणां महात्मनाम्॥
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः।
सुपर्णवशा ब्रह्मन् जज्ञिरे नैकमस्तकाः॥[4]

इसके अतिरिक्त सर्पों की उत्पत्ति अन्य प्रकार से बतलायी गयी है। जब ब्रह्मा ने यक्ष तथा राक्षस उत्पन्न किये तो वे उन्हें खाने दौड़े। उनकी बुरी प्रवृत्ति देखकर ब्रह्मा के सिर के बाल नीचे गिर गये और फिर ऊपर चढ़ गये। यही गिरने वाले बाल अहि और चढ़ने वाले बाल सर्प कहलाये।[5]

वैष्णव पुराणों में नागों के दो रूप प्राप्त होते हैं––

१. प्रमुख देव के साथ––इस रूप में नागों ने प्रमुख देवों के समान सम्मान प्राप्त किया। बलराम इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्हें कृष्ण के समान ही पूजा गया।

२. दलित रूप––इस रूप में नागों का भली-भाँति दलन किया गया उन्हें परास्त कर दिया गया। इस रूप का आभास विष्णु के शेयशायी रूप से तथा कृष्ण के कालियमर्दन रूप से हो जाता है। ये रूप वैष्णव धर्म के समक्ष नागों की पराजय के द्योतक हैं।

---

१. अग्रवाल, वा० श० इण्डि० आर्ट पृ० २७२–७३.
२. बु० स्टो० स्थो० पृ० २३–२४.
३. मार्शल गा० सा० पृ० ६९.
४. वि० पु० १।२१।१८–२०.
५. हीनाश्च शिरसो भूयः समारोहन्त तच्छिरः॥
सर्पणात्तेऽभवन् सर्पाहीनत्वादहयः स्मृताः॥ वि० पु० १।५।४४–४५.

नागों में ऐरावत, तक्षक, कम्बल, शङ्खपाल आदि के नामों का उल्लेख विष्णु पुराण[1] में हुआ है। इसके अतिरिक्त वासुकि, अनन्त, कालिय आदि नागों के रूप का भी वर्णन हुआ है जिसका उल्लेख यथास्थान हो चुका है।

रसातल के नीचे जो महातल है वहाँ पर कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुए नागों के अनेक समुदाय निवास करते हैं। इनमें कुहक, तक्षक, कालिय, सुषेण आदि प्रधान हैं। इन सभी नागों के खूब बड़े-बड़े अनेक फण हैं। वे विष्णु के वाहन गरुड़ से डरते हैं फिर भी कभी-कभी अपने परिवार के साथ विहार करते हैं।[2] पाताल में शङ्ख-कुलिका, महाशङ्ख, श्वेत वासुकि, धनञ्जय, धृतराष्ट्र शङ्खचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि नाग रहते हैं। ये सभी बड़े क्रोधी तथा विशाल फण वाले हैं। इनमें वासुकि प्रधान है। इस सबमें कोई पाँच, कोई सात तथा कोई दस फण वाले हैं। किसी के सौ तथा किसी के हजार फण भी हैं। इनके फणों की जगमगाती हुई मणियों के प्रकाश से पाताल लोक का अन्धकार दूर हो जाता है।[3] इसके अतिरिक्त नाग रक्षा का भी कार्य करते थे। महाराज पुरञ्जन की नगरी की रक्षा पाँच फण वाला प्रजागर नामक एक सर्प करता था। जब चण्डवेग गन्धर्वराज के तीन सौ साठ अनुयायियों ने नगरी पर आक्रमण किया तो वह बराबर लड़ता रहा।[4] मत्स्यपुराण चार, पाँच, सात तथा सहस्र फण वाले सर्पों का उल्लेख करता है।[5] शिल्परत्न नागों के शरीर के नीचे का भाग सर्प की भाँति तथा ऊपर का भाग मनुष्य की भाँति बनाने का आदेश देता है। उनके मस्तक पर भोगमण्डल होता है। दो जिह्वा होती हैं। भुजाओं में खड्ग तथा चर्म रहता है।[6]

नाग वरुण लोक के निवासी हैं। ये दैवी विभूतियाँ हैं फिर भी मनुष्यों के समान आकार वाले हैं। उनके सिर पर फण रहते हैं। ये सभी जल के स्थानों की रक्षा करते हैं। पूर्व में मथुरा के आसपास नागों की पूजा प्रचलित थी। कनिष्क के शासन काल में तालाब तथा बगीचों को भूमिनाग कहा जाता था।[7] इसी के शासन के २६ वें वर्ष में नागों के राजा दधिकर्ण के स्थान में एक प्रस्तर रखा गया।[8] हुविष्क

---

१. वि० पु० २।१०।५–१७.
२. श्रीमद्भा० ५।२४।२९.
३. श्रीमद्भा० ५।२४।३१.
४. श्रीमद्भा० ४।२७।१५–१६.
५. म० पु० १६२।५५–५७.
६. नागानां वक्ष्यते रूपं नामेरूर्ध्वं नराकृतिः।
सर्पाकारमधोभागं मस्तकेभोगमण्डलम्॥ शिल्प० अ० २३.
७. एपि० इण्डि० वा० १७ भा० १ पृ० १०–१२.
८. अनु० रि० आर० स० इण्डि० १९०८–९ पृ० १५९.

के शासन काल में शेनहस्ती और भोणुक नामक दो मित्रों ने अपने तालाब के मध्य में एक नाग की प्रतिमा बनवायी।[1] कुषाण काल के ५२वें वर्ष में बनी हुई नाग की प्रतिमा अब भी मथुरा म्यूज़ियम में रखी है।[2] इससे स्पष्ट है कि उस समय नाग-सम्प्रदाय अधिक प्रभावशाली हो रहा था। कोई भी तालाब बनवाते समय उसके मध्य में एक नागकाष्ठ बनता था। नागकाष्ठ एक स्तम्भ होता था जो नाग के रूप में बनाया जाता था। यही नाग इस तालाब के रक्षक माने जाते थे। अब भी नाग पूजा बङ्गाल में प्रचलित है। नागपञ्चमी पर्व नागों की पूजा का ही पर्व है।

नागों के स्वरूप का विभाजन वैष्णव पुराणों के आधार पर निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है––

१. मानवी रूप तथा

२. स्वाभाविक नाग एवं सर्प रूप।

मानवी रूप में चित्रण करने पर देवों के समान इनका रूप बनाना चाहिए। सिर पर फण शोभित होता है तथा पूरा शरीर अलङ्कारों से शोभित रहता है।[3] कालिय-मर्दन के समय नागों के दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। कालिय तो अपने स्वाभाविक रूप में दिखाया गया है किन्तु नागपत्नियाँ सुन्दरी स्त्रियों के रूप में प्रकट होकर अञ्जलि बाँध कर कृष्ण की स्तुति कर रही हैं। भय से उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। उनके केश की चोटियाँ बिखर गईं, पुष्प गिर गये, वे अपने बालकों को आगे करके पति को छोड़ने की प्रार्थना करने लगीं:––

दृष्ट्वाहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य
आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥
....
कायं निधायं भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्यभर्तुः ॥[4]

यह आधा मनुष्य का तथा आधा सर्प का आकार कला में भी प्रदर्शित हुआ है। सर्पों का आधा सर्प भाग जल में डूबा रहता है और मानव रूप जल से ऊपर रहता है। यह रूप इनके जल के निवास को प्रकट करता है।[5]

---

१. एनु० रि० आर० स० इण्डि० १९०८–९ पृ० १६०.
२. वही पृ० १६१.
३. दैवाकाराश्चकर्त्तव्याःनागाः फणविराजिताः ॥ वि० ध० ४२।१६.
४. श्रीमद्भा० १०।१६।३१–३२.
५. अग्रवाल–वा० श० इण्डि० आ० पृ० ३३५.

प्रतिमा कला के अन्तर्गत भी नागों को दो रूपों में प्रदर्शित किया गया है--

१. स्वाभाविक रूप--जैसे कालिय, अनन्त, शेष आदि नाग इनके रूप का यथास्थान चित्रण इनसे सम्बद्ध प्रतिमाओं में हो चुका है।

२. मानवी रूप--नागों को मानव रूप में प्रदर्शित करने का ज्वलन्त उदाहरण बलराम हैं जो जीवन भर मानव रूप में रहकर मृत्यु के समय स्वाभाविक रूप में आगये। बलराम की प्रतिमाओं का वर्णन बलराम के अन्तर्गत हो चुका है। मानव रूप में प्रदर्शित कर इनके सिर के पीछे सर्प की कुण्डली और फणों का छत्र होता है। खजुराहो में कन्दरिया महादेव के मन्दिर में एक नागकन्या की प्रतिमा है। एक सुन्दरी कन्या के रूप में नागकन्या अपने दोनों हाथ जोड़े खड़ी है। उसका शरीर सुन्दर आभूषणों से सजा हुआ है। कटि मेखला की लड़ें घुटने से नीचे तक लटक रही हैं। उसके पीछे सिर के ऊपर सर्प के फैले हुए फणों का छत्र है।[१] मथुरा से नागराज की एक मानवी प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसमें सिर तथा एक हाथ टूट गया है। शरीर में सर्पों की कुण्डलियाँ लिपटी हुई हैं। अब यह प्रतिमा पैरिस में है।[२] खिचिङ्ग में प्राप्त नाग की प्रतिमा बड़ी सुन्दर है। नामदेव के सिर पर सर्पों की कुण्डली ही लिपटी है और बायें हाथ में भी सर्प का फण पकड़े हैं। दाहिना हाथ टूटा हुआ है। कानों में कुण्डल, गले में मालाएँ तथा स्कन्ध पर यज्ञोपवीत पड़ा है। सिर के ऊपर नाग के फणों का छत्र फैला हुआ है। नागदेव की मुख मुद्रा बड़ी शान्त है इससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका टूटा हुआ हाथ वरद अथवा अभय मुद्रा में रहा होगा।[३]

सिद्ध तथा साध्य—श्रीमद्भागवत में भगवान् ने स्वयं अपने मुख से कहा है कि मैं सिद्धों में कपिल हूँ।[४] सिद्धों के मध्य इनका प्रमुख स्थान है। ये सिद्ध गणों के स्वामी हैं और सांख्याचार्यों में भी माननीय हैं—

अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यः सुसम्मतः ।
लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ।।[५]

ये कर्दम के पुत्र थे। देवहूति के गर्भ से अपनी योगमाया का आश्रय लेकर स्वयं नारायण ही कपिलरूप में उत्पन्न हुए। इन्हें नारायण का अवतार माना जाता है।[६]

---

१. खजुराहो पृ० २० प्ले० ७.
२. सरस्वती—एस० के०, इण्डि० स्क० पृ० ५०.
३. वही पृ० १८२ प्ले० १६०.
४. सिद्धेश्वराणां कपिल ····श्रीमद्भा० ११।१६।१५.
५. श्रीमद्भा० ३।२४।१९.
६. वेदमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।
भूतानां शेवधि देहं बिभ्राणं कपिलं मुनेः ।। श्रीमद्भा० ३।२४।२-१६.

शिशु के रूप में इनके सुनहले बाल, कमल के समान सुन्दर नेत्र तथा कमलाङ्कित चरणकमल थे—

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरज्जटाः ।
हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ।।[१]

निरुक्त के अनुसार साध्य शब्द का अर्थ है प्रकाश की किरण ।[२] जो देवता आकाश में स्थित रहते हैं और पृथ्वी पर के जल आदि रसों को शोषण किया करते हैं उन्हीं को साध्य गण कहते हैं । इनकी भी देवों के मध्य ही गणना होती है ।[३] महाभारत में इनकी उत्पत्ति सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए अण्डे से कही गयी है ।[४] ये देवों के साथ रहते हैं और स्वर्ग के कार्य में हाथ बँटाते हैं । स्वर्ग ही इनका निवास स्थान है ।[५] ये संख्या में बारह हैं जिनके नाम, मान, मन्त, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, विनिर्भय, नय, दंश, नारायण, वृष तथा प्रभी हैं ।[६] ये सब धर्म के पुत्र कहे गये है और महान् आत्मा वाले (महात्मा) स्वीकार किये गये हैं । ब्रह्मा ने 'मैं तेजोमय हूँ' ऐसी भावना करके अपने अदृश्य रूप से साध्यगण तथा पितृगण को उत्पन्न किया ।[७] ब्रह्माण्ड पुराण में साध्यों को पद्मासन रूप में स्थित कमण्डलु, अक्षमाला धारण किये हुए कहे गये हैं और धर्म के पुत्र स्वीकार किये गये हैं ।[८] कला के अन्तर्गत इनका प्रदर्शन अन्य देवों के साथ होता है ।

पितृगण—देवों के समान पितरों को भी प्रधान देव स्वीकार किया गया है । महाभारत में सात प्रकार के पितृवंशों का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः सोमपद, अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सोमप, हविर्भुक्, आज्प तथा शुक्लि हैं । देवों के साथ इनका भी भाग निश्चित कर दिया गया है ।[९] किन्तु आगम ग्रन्थ पितृगणों की संख्या तीन

---

१. श्रीमद्भा० ३।२४।१७.
२. निरुक्तः ३।५१.
३. महा० उद्यो० ३६।३.
४. महा० आदि० १।३५.
५. महा० आदि० ८७।१.
६. अग्नि० पु० १४१।१३–१४.
७. ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ।
साध्यान् गणान् पितृगणान् परोक्षेणासृजत्प्रभुः ।।
श्रीमद्भा० ३।२०।४२.
८. साध्याः पद्मासनगताः कमण्डल्वक्षसूत्रिणः ।
धर्मपुत्रा महात्मानो द्वादशामरपूजिताः ।। ब्र० पु० १६५।१३.
९. महाभारत अनु० ९१।२८, ९१।२४.

ही निश्चित करते हैं। वे तीन पितृ पिता, पितामह तथा प्रपितामह हैं। इन्हें लकड़ी के पीठ पर अथवा भद्रपीठ पर बैठाने का आदेश दिया गया है। इनको इनकी अवस्था के अनुसार बनाया जाना चाहिए। इनके शरीर का वर्ण पीला होता है और श्वेत वर्ण के वस्त्र पितृगण पहनते हैं। इनके स्कन्ध पर यज्ञोपवीत पड़ा रहता है। सिर पर केशबन्ध बाँधे रहते हैं जिससे केश दिखाई नहीं पड़ते। इनका शरीर आभूषणों से सुसज्जित रहता है। ये बलवान् होते हैं और शरीर पर भस्म लेप किये रहते हैं। दो भुजाएँ रहती हैं। इनमें घूमने की छड़ी तथा छाता रहता है। बायाँ हाथ घुटनों से नीचे आगे की ओर लटकता हुआ रहता है, बाँया पैर झुका हुआ होता है।[1] विष्णुधर्मोत्तर में यह आदेश दिया गया है कि इन्हें कुशासन पर बैठाना चाहिए। वह कुशासन बना हुआ हो या कुश फैलाकर बनाया गया आसन हो। उनके हाथ में पिण्डपात्र होना चाहिए जिससे वे अपने वंशजों के द्वारा दिये गये पिण्डों को उसमें ले सकें —

कुशपद्मविष्टरस्थाः पितरः पिण्डपात्रिणः ।।[2]

शिल्परत्न में भी पितरों को पीत वर्ण वाला, दो भुजाओं एवं सौम्य मुख वाला, यज्ञसूत्र पहने हुए फलक अथवा भद्रपीठ पर बैठाया हुआ श्वेत वस्त्र पहने हुए चित्रित किया है।[3]

बालखिल्य —क्रतु की सन्तति नाम की भार्या से बालखिल्यादि ऋषियों का जन्म हुआ। इनका आकार अँगूठे के पोरुओं के बराबर है। इनकी संख्या साठ हजार है। ये सब ऊर्ध्वरेता मुनि हैं और सतत् तपस्या करते रहना इनका मुख्य कर्म है:—

ऋतोश्च संततिर्भार्या बालखिल्यानसूयत् ।।
षष्ठिपुत्र सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
अंङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करतेजसाम् ।।[4]

---

१. पितापितामहौ चैव प्रपितामह एव च ।
पितरस्तूयमानास्तु तेषां वै लक्षणं श्रृणु ।।
सुदृढा पीतवर्णास्तु छत्रदण्डधरास्तथा ।
शुक्लवस्त्रैः परिच्छिन्नाः कीर्तिताः पितरस्त्रयः ।।
राव० गो० ना० ए० हि० आ० वा० २ भा० २ परिशिष्ट ब पृ० ३५८—६.

२. वि० ध० १०३।२३.

३. पितरः पीतवर्णाभाः द्विभुजाः श्वेतवाससः ।
यज्ञसूत्रसमायुक्तास्सौम्यदृग्वदनान्विताः ।।
फलके भद्रपीठे वा त्रयस्तु सहिताननाः ।। शिल्परत्न अ० २६.

४. वि० पु० १।१०।११—१२.

महाभारत में मरीचप, फेनप ऋषियों के साथ बालखिल्य ऋषियों की गणना हुई है और इनका आकार अँगूठे के पोर के बराबर छोटा बतलाया गया है।[१]

असुर, दैत्य, दानव तथा राक्षस––दिति तथा दनु के जो पुत्र थे उनमें दिति के पुत्र दैत्य तथा दनु के पुत्र दानव कहे गये। दिति के हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु नामके दो जुड़वाँ पुत्रों का जन्म हुआ।[२] ये दोनों बड़े बलवान् दैत्य थे। भगवान् विष्णु ने वराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष का तथा नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का वध किया। वे दोनों दैत्य खूब लम्बे, ऊँचे विशालकाय थे। सिर पर सोने का मुकुट पहनते थे। लम्बे होने के कारण उनके मुकुट का अग्र भाग स्वर्ग को छूता था। भुजाओं में सोने के बाजूबन्द तथा कमर में स्वर्णनिर्मित करधनी पहनते थे। फौलाद के समान उनके शरीर कठोर थे– चलते समय अपने चरणों के आहत से पृथ्वी को प्रकम्पित कर देते थे––

दिविस्पृशो हेमकिरीटकोटिभि–
निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ।
गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे
कट्या सुकाञ्च्यार्कमतीत्य तस्थतुः ॥[३]

हिरण्याक्ष पैरों में सोने के नूपुर, गले में विजय माला पहने हुए और कन्धे पर गदा रखकर देवों से युद्ध करने स्वर्ग पहुँचा था––

गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन् रणम् ॥
तं वीक्ष्यदुःसह जवं रणत्काञ्चन नूपुरम्।
वैजयन्त्यां स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥[४]

उसके पीले केश थे तथा तीखी दाढ़ों वाला था।[५] वह सोने के आभूषण तथा अद्भुत कवच धारण किये हुए था। इस प्रकार उसका रूप बड़ा भयानक था––

पशनुषक्तं तपनीयोपकल्पं
महागदं काञ्चनचित्रदंशम्।[६]

---

१. महा० आदि० ३१।८.
२. विष्णु० पु० १।१७।२.
३. श्रीमद्भा० ३।१७।१७.
४. श्रीमद्भा० ३।१७।२०–२१.
५. हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः।
करालदंष्ट्रोऽशनिनिस्वनोऽब्रवीत्। श्रीमद्भा० ३।१८।७.
६. श्रीमद्भा० ३।१८।९.

दैत्य बड़े मायावी तथा युद्ध-कुशल होते हैं। ये युद्ध करते-करते बीच में सूर्य चन्द्रादि ग्रह छिपाकर, पीब, केश, रुधिर, विष्टा तथा हड्डियों की वर्षा कर अपनी आसुरी माया का प्रदर्शन करते हैं।[1] इन दैत्यों की दाढ़ें तीखी, विकराल वदन, लाल वर्ण की दाढी मूँछ होती है। हाथ में त्रिशूल लेते हैं—

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ।

तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥[2]

ये दैत्य कठिन तपस्या करने में अभ्यस्त हैं। हिरण्यकशिपु ने मन्दराचल की घाटी में जाकर हाथ ऊपर को उठाकर, आकाश की ओर देखकर एक पैर से अँगूठे के बल खड़े रहकर तपस्या की थी। इनकी जटाएँ प्रलयकालीन सूर्य की किरणों की भाँति चमक रही थीं। तपस्या करते-करते उसके सिर से तपोमयी आग निकल कर चारों ओर फैलने लगी। अन्त में उसका शरीर दीमक की मिट्टी, घास तथा बाँसों से ढँक गया। चीटियाँ उसका मेदा, त्वचा तथा माँस चाट गयीं किन्तु ब्रह्मा के द्वारा कमण्डलु के जल डालते ही वह स्वस्थ हो गया।[3] इसके अतिरिक्त एक स्थान पर बल्वल नाम के दानव के रूप का चित्रण हुआ है। उसकी चोटी, दाढ़ी, मूँछ तपे हुए ताँबे के समान लाल थीं। बड़ी-बड़ी दाढ़ों और विकट भौंहों के कारण उसका मुख बड़ा भयानक लग रहा था। उसका वर्ण काला, डीलडौल बड़ा था। वह हाथ में त्रिशूल लिए हुए था—

अभवद् यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यतशूलधृक् ।

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जन चयोपमम् ।

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥[4]

ये दैत्य दानव शिल्पकला में भी बड़े निपुण होते थे। सुतल के नीचे जो रसातल है उसमें मय दानव रहता है। वह मायावियों का परम गुरु है। उसने सोने, चाँदी तथा लोहे के तीन पुर बनाये थे। जो विमान के समान थे और देखने में बड़े सुन्दर लगते थे। उसके तीनों पुरों को भस्म करने के पश्चात् शङ्करजी की कृपा से उसे यह स्थान प्राप्त हुआ। यहाँ सब उसका आदर करते हैं।[5] रसातल में पाणि नाम के दैत्य

---

१. श्रीमद्भा० ३।१९।१८–२०.
२. श्रीमद्भा० ७।५।३९.
३. श्रीमद्भा० ७।३।२–२२.
४. श्रीमद्भा० १०।७९।२–३.
५. श्रीमद्भा० ५।२४।२८.

और दानव रहते हैं। ये निवातकवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं। ये दैत्य, दानव बड़े साहसी और बलवान् हैं और देवताओं से विरोध करते हैं।[1] दैत्यराज बाणासुर के हजार भुजाएँ थीं। उन्होंने ताण्डव नृत्य करते हुए शङ्करजी को अपने हजार हाथों से अनेक वाद्य बजाकर प्रसन्न किया था––

सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवे तोषयन्मृडम् ।।[2]

बाणासुर शरीर पर आभूषण तथा सिर पर स्वर्ण का मुकुट पहनता था।[3] बाणासुर की एक धर्ममाता थी, जिनका नाम कोटरा था। यही बाणासुर की कुलदेवी थी। जिस समय मधुसूदन ने बाणासुर को मारने के लिए चक्र उठाया उसी समय वह आसुरी देवी बाल-बिखेरे हुए नग्नावस्था में उनके समक्ष आकर उपस्थित हो गयी––

तन्माता कोटरा नाम नग्नामुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ।।[4]

विष्णु पुराण भी कोटरा को बाणासुर की कुलदेवी स्वीकार करता है।[5]

वैष्णव पुराणों में राक्षसों का भी वर्णन प्राप्त होता है। ये राक्षस एवं राक्षसियाँ अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थीं। राक्षस भयङ्कर रूप वाले तथा अनेक अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। ध्रुव के समक्ष जो राक्षस प्रकट हुए उनके मुख बड़े भयङ्कर थे, किसी का मुख सिंह के समान, किसी का ऊँट के समान तथा किसी का मकर के समान था। उनके आकार भी बड़े भयङ्कर थे––

ततोनानाविधान्नादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः ।
त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ।।[6]

पूतना राक्षसी का प्रसङ्ग राक्षस जाति के स्वभाव को स्पष्ट रूप से प्रकट कर देता है। यह पूतना राक्षसी बड़ी क्रूर थी। बच्चों का खून चूस कर उन्हें मार डालना उसका काम था। वह आकाश में भी उड़ सकती थी और अपनी इच्छा के अनुसार रूप बना लेती थी। नन्द के यहाँ वह सुन्दरी स्त्री के रूप में आयी थी। उसने अपनी चोटियों में बेले के फूल गूँथे थे। सुन्दर साड़ी पहने थी। कानों में सुन्दर कर्णफूल थे जो हिल कर लटकती हुई अलकों से युक्त मुख को और अधिक सुन्दर बना रहे थे।

---

१. श्रीमद्भा० ५।२४।३०.
२. श्रीमद्भा० १०।६२।४.
३. श्रीमद्भा० १०।६२।२७.
४. श्रीमद्भा० १०।६३।२०.
५. वि० पु० ५।३३।३६७.
६. वि० पु० १।१२।२८.

उसका शरीर सुन्दर तथा कटि प्रदेश पतला था। वह अपनी मधुर मुस्कान तथा कटाक्षपूर्ण दृष्टि से अपना मन मोह रही थी। अपने हाथ में कमल का पुष्प लिए थी।[१] जब श्रीकृष्ण ने उसका स्तन पान करना प्रारम्भ किया तब उसे इतनी पीड़ा हुई कि वह अपने असली रूप को छिपा न सकी। उसका भयानक राक्षसी रूप प्रकट हो गया।[२] उसका मुँह फट गया, हाथ-पैर फैल गये, बाल बिखर गये। उसका शरीर बड़ा भयानक था। उसका मुँह हल के समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ों से युक्त था। उसके नथुने पहाड़ की गुफा के समान गहरे थे और स्तन पहाड़ों की गिरी हुई चट्टान के समान विशाल थे। रक्त वर्ण के बाल चारों ओर फैले हुए थे। आँखें अन्धे कुएँ के समान गहरी, नितम्ब नदी के करार की तरह भयङ्कर थे। उसकी भुजाएँ, जाँघें और पैर नदी के पुल के समान तथा पेट सूखे हुए सरोवर के समान प्रतीत होता था। उसकी गर्जना को सुनकर सबके कान फटे जाते थे—

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम्।
गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥
अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम्।
बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥[३]

हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष तथा बलि आदि दैत्य की प्रतिमाओं का तो यथास्थान चित्रण हो चुका है। किन्तु राक्षसियों में पूतना की प्रतिमा दर्शनीय है। खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर में गर्भगृह की उत्तरी बाह्य भित्ति पर यह प्रतिमा उत्कीर्ण है। प्रतिमा में पूतना एक ऊँचे आसन पर बैठी है। उसका दाहिना पैर नीचे लटका हुआ है और बायाँ पैर मुड़ा हुआ आसन पर रखा है। उसकी मुद्रा बड़ी भयानक है। शरीर पर नसें दिखायी दे रही हैं। वह अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाये है। उसके सिर

---

१. साखेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम्।
योषित्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत् कामचारिणी ॥
तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम्।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणं
त्विषोल्लसन्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥
वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै
र्मनोहरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्य:श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ श्रीमद्० १०।६।४–६.

२. श्रीमद्भा० १०।६।१२–१३.

३. श्रीमद्भा० १०।६।१५–१७.

पर मुकुट है। समीप में कृष्ण उसका स्तन पान कर रहे हैं। यहाँ पर पूतना की मुद्रा श्रीमद्भागवत[1] के रूप से मिलती है। इसके भी रूप में वही भयानकता है।[2]

प्रेत तथा पिशाच––वैसे तो कर्म इनके भी राक्षसी ही होते हैं किन्तु फिर भी ये राक्षसों से भिन्न हैं। गोकर्ण जब तीर्थयात्रा करके अपने घर में रात्रि के समय सोने के लिए आता है तब प्रेत योनि को प्राप्त हुआ धुन्धकारी कभी मेढ़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र तथा कभी अग्नि का रूप धारण कर गोकर्ण के सामने प्रकट हुआ––

निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ।।
सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ।
सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ।।[3]

इस प्रकार के अनेक रूपों को देखकर गोकर्ण ने उसे कोई दुर्गति को प्राप्त हुआ जीव समझ कर उससे प्रश्न किया––

कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ।।
किं वा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ।।[4]

अर्थात् तू रात्रि के समय यह भयानक रूप क्यों दिखा रहा है ? तू कोई प्रेत है, पिशाच है अथवा राक्षस है ? इससे स्पष्ट है कि प्रेत तथा पिशाच एवं राक्षस भिन्न-भिन्न योनियाँ हैं। धुन्धकारी प्रेत-योनि को प्राप्त हुआ था वह बवण्डर के रूप में सर्वदा दसों दिशाओं में भटकता फिरता था। शीत तथा धूप से सन्तप्त और भूख प्यास से व्याकुल होकर 'हा दैव' चिल्लाता रहता था––

धुन्धकारी बभूवाथ महान् प्रेतः कुकर्मतः ।।
वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ।
शीतधामपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ।।
न लेभे शरणं क्वापि हा दैवेति मुहुर्वदन् ।।[5]

भूत, प्रेत शङ्कर के गण हैं। ये संध्या समय से इधर-उधर विचरण करना प्रारम्भ कर देते हैं।[6]

---

१. श्रीमद्भा० १०।६।१६.
२. खजुराहो पृ० २१, प्ले० ४३.
३. श्रीमद्भा० माहात्म्य ५।२१–२२.
४. श्रीमद्भा० माहात्म्य ५।२४.
५. श्रीमद्भा० माहा० ५।१६–१८.
६. श्रीमद्भा० ३।१४।२३–२४.

परिशिष्ट

देवों के अङ्ग तथा प्रत्यङ्ग, वस्त्राभूषण, आयुध तथा वाहन

प्रत्येक देवी-देवता के आकार, वेशभूषा, आयुध तथा वाहन भिन्न-भिन्न होते हैं और ये सभी उनके व्यक्तित्त्व तथा कार्य के प्रतीक के रूप में होते हैं। यही विशिष्ट देवी-देवता का परिचय देते हैं। वैष्णव पुराणों में देवी-देवताओं का आन्तरिक परिचय प्राप्त करने के लिए उनके अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध तथा वाहन आदि का जो उल्लेख प्राप्त होता है उसी का विवेचन यहाँ पर किया गया है।

ब्रह्मा--ब्रह्मा रजोगुण के प्रतीक हैं इसी से उन्हें कमल के अग्र भाग में बैठा हुआ प्रदर्शित किया गया है।[१] चारों वेद ही ब्रह्मा के चारों मुख हैं। उनकी चारों भुजाएँ चारों दिशाओं की प्रतीक हैं। उनका पूर्व मुख ऋग्वेद, दक्षिण मुख यजुर्वेद, पश्चिम मुख सामवेद तथा उत्तर मुख अथर्ववेद है--

> ऋग्वेदः पूर्ववदनं यजुर्वेदस्तु दक्षिणम्।
> पश्चिमं सामवेदः स्यादाथर्वणमथोत्तरम्॥
> ये वेदास्ते मुखा ज्ञेयाश्चतस्रो वाहवो दिशः॥[२]

इसी के आधार पर चारों वेदों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से बतलायी जाती है। जल, स्थावर और जङ्गम प्रकृति का आधार है। ब्रह्मा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं अतः सृष्टि के प्रतीक स्वरूप जल को रखने के लिए वे कमण्डलु को धारण करते हैं। उनकी अक्षमाला काल की प्रतीक है।[३] कृष्णाजिन् यज्ञ के शुक्ल तथा कृष्ण कर्मों का द्योतक है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यं ये सात हंसों के रूप में उनके रथ में जुते रहते हैं--

---

१. अरुणं रजसो वर्णं तेन पद्माग्रसन्निभः।
ब्रह्मादेववरो ज्ञेयः सर्वभूतनमस्कृतः॥ वि० ध० ४६।७.

२. वि० ध० ४६।८-९.

३. आप एव जगत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा॥
ताश्च धारयते ब्रह्मा तेन हस्ते कमण्डलुः।
अक्षेमाला विनिर्दिष्टा कालस्तु ब्रह्मणः करे॥ वि० ध० ४६।९-१०.

शुक्लाशुक्लमतो ज्ञेयं वासः कृष्णाजिनं विभोः ।
भूर्लोकश्च भुवो लोकः स्वर्लोकोऽथ महत्तथा ।।
जनस्तपश्च सत्यं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः ।
ये लोकास्ते रथे हंसा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।[१]

पृथ्वी की सब औषधियाँ ही ब्रह्मा की जटाएँ हैं। जगत् को ज्ञान से प्रकाशित करने वाले सभी विद्यास्थान उनके शरीर को सुशोभित करने वाले आभूषण हैं—

तथैवौषधयो राजन्जगद्धारणकारणः ।
ब्रह्मणस्ता जटा ज्ञेयाः सर्वगस्य महात्मनः ।।
प्रकाशकानि लोकस्य विद्यास्थानानि यानि च ।
तस्याभरणजातानि ज्ञेयानि परमेष्ठिनः ।।[२]

विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पृथ्वी है और मेरु पर्वत उसकी पङ्खुड़ियाँ है।[३] मेरु पर्वत स्थिरता का द्योतक है। उसी कमल पर पद्मासन लगाये हुए ब्रह्मा ध्यानावस्थित मुद्रा में बैठे हुए अपनी आकार शून्य सर्वोत्तम स्थिति का ध्यान किया करते हैं सांसारिक बन्धनों से निर्लिप्त उनकी आँखें बन्द रहती हैं—

सर्वत्रपार्थिवस्थैर्यं ध्यानबन्धमतःस्थितम् ।
पद्मासनेनभगवान्विधत्ते पार्थिवेन तु ।।
आत्मनः परमं धामरूपहीनं विचिन्तयेत् ।
दृष्ट्यर्थं जगतामास्ते ध्यानसम्मीलितेक्षणः ।।[४]

विष्णु—विष्णु का प्रत्येक वस्त्राभूषण, आयुध, अङ्ग-उपाङ्ग किसी न किसी शक्ति का द्योतक है। परमात्मा के दो रूप हैं प्रकृति तथा विकृति। उसका अलक्ष्य रूप प्रकृति तथा लक्ष्य रूप विकृति है—

प्रकृतिर्विकृतिस्तस्य द्वे रूपे परमात्मनः ।
अलक्ष्यं तस्य तद्रूपं प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ।।
साकारा विकृतिर्ज्ञेया तस्य सर्वं जगत्स्मृतम् ।[५]

---

१. वि० ध० ४६।१२–१३.
२. वि० ध० ४६।१७–१८.
३. विष्णुनाभौ समुत्पन्नं यत्पद्मं सा महीद्विज ।
मेरुस्तु कर्णिका तस्य विज्ञेया या राजसत्तम ।। वि० ध० ४३।१४.
४. वि० ध० ४६।१५–१६.
५. वि० ध० ४६।२–३.

संसार में परमात्मा का विकृति रूप ही दृष्टिगत होता है उसी से संसार का पालन होता है। उसका वर्ण काला है इसी से विष्णु भी कृष्ण वर्ण के हैं। हृदय पर स्थित कौस्तुभ-मणि शुद्ध ज्ञान के रूप में सुशोभित है। काले वर्ण की विचित्र प्रकार की बनी हुई बड़ी वनमाला द्वारा यह सम्पूर्ण चर तथा अचर जगत् बँधा हुआ है। संसार का पालन करने वाली अविद्या ही उनका वस्त्र है।[1] विद्या का वर्ण श्वेत और अज्ञान कृष्ण वर्ण का है। इसी के मध्य का स्थान अविद्या है। इसी कारण अविद्या का स्वर्ण के समान वर्ण माना गया और वही विष्णु का पीताम्बर है। शीघ्रगामी गरुड़ मन का प्रतीक है। विष्णु की आठ भुजाएँ चार दिशा तथा चार विदिशा इन आठों की प्रतीक हैं। बल, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा शक्ति ये उनके चार मुख हैं। बल, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा शक्ति रूप ये चारों मुख, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के द्योतक हैं——

विद्या शुक्ला विनिर्दिष्टा कृष्णमज्ञानमुच्यते।
अज्ञानविद्यामध्यस्था त्वविद्या परिकीर्तिता ॥
न कृष्णा न तथा शुक्ला तेन विद्येयमुत्तमा ।
अन्तरालं बिभर्त्येव सुवर्णकनकोपमम् ॥
मनस्तु गरुडो ज्ञेयः सर्वभूतशरीरगम् ।
तस्माच्छीघ्रतरं नास्ति तथैव बलवत्तरम् ॥
दिशश्चतस्रो धर्मज्ञ तावत्यो विदिशस्तथा ।
बाहवोऽष्टौ विनिर्दिष्टास्तस्य देवस्य शार्ङ्गिणः ॥
बलं ज्ञानं तथैश्वर्यं शक्तिश्च यदुनन्दन ।
विज्ञेयं देवदेवस्य तस्य वक्त्रचतुष्टयम् ॥
वासुदेवस्य भगवांस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ।
प्रद्युम्नानिरुद्धश्च बलाद्याः परिकीर्तिताः ॥
द्वौ द्वौ भुजौ तु विज्ञेयौ प्रतिवक्त्रं महात्मनः ॥[2]

---

१. अपरस्य पुरुषस्यैषा संसारे विकृतिर्मता ।
सर्वा च विकृतिः कृष्णा तेन संसारपालनम् ॥
ॐ कृष्णरूपं स भगवन्विधत्ते भूतभावनः ।
ब्रह्मणैव हरेः प्रोक्तं सर्वाभरणधारणम् ॥
बिभर्ति वक्षसाज्ञानं कौस्तुभं विमलं हरिः ।
कृष्णा दीर्घा विचित्रा च वनमालाप्रकीर्तिता ॥
यया सर्वमिदं बद्धं जगद्राजंश्चराचरम् ।
अविद्यावसनं तस्य संसारपरिपालिनी ॥ वि० ध० ४७।१-४.

२. वि० ध० ४७।५-११.

वासुदेव के दोनों हाथों में सूर्य और चन्द्रमा, चक्र और गदा के रूप में रहते हैं। सूर्य-चन्द्रमा पुरुष तथा प्रकृति के रूप हैं, हल काल का और मूसल मृत्यु का प्रतीक है। इन्हीं के द्वारा सङ्कर्षण देव इस चराचर जगत् को चलाते हैं। यही हल और मूसल आयुध सङ्कर्षण के हाथ में रहते हैं––

> वासुदेवस्य करयोर्ज्ञातव्यौ सूर्यरात्रिपौ ।।
> सङ्कर्षणस्य करयोस्तथा मूसललाङ्गले ।
> पुरुषप्रकृतौ ज्ञेयौ सूर्यचन्द्रमसावुभौ ।
> एते च वासुदेवस्य करे चक्रगदे स्मृते ।
> कालं च लाङ्गलं विद्धि मृत्युं च मूसलं तथा ।।
> ताभ्यां सङ्कर्षणो रुद्रः कर्षतीदं चराचरम् ।[1]

अग्नि के प्रतीक के रूप में शार्ङ्ग धनुष तथा सांख्य और योग रूप वाण प्रद्युम्न के हाथों में रहता है।[2]

विष्णु के आयुधों का उल्लेख विष्णु पुराण में भी प्रतीक रूप में हुआ है। निर्लिप्त, निर्गुण, निर्मल-आत्मा को हरि कौस्तुभ-मणि के रूप में तथा जगत् की प्रधान प्रकृति को श्रीवत्स के रूप में धारण करते हैं। उनकी गदा बुद्धि की प्रतीक है। भूतों के कारण सृष्टि में तामस अहङ्कार तथा इन्द्रियों के कारण राजस अहङ्कार व्याप्त रहता है और वे शङ्ख तथा शार्ङ्ग धनुष के रूप में धारण करते हैं।[3] उनका चक्र मन का प्रतीक है। मन पवन से भी अधिक गतिमान्, अत्यधिक चञ्चल तथा सात्त्विक अहङ्कार से पूर्ण है। चक्र इसी मन का प्रत्यक्ष रूप है जो हरि के कर कमलों में विद्यमान रहता है। वैजयन्ती माला जो मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरे से

---

१. वि० ध० ४७।११–१२, १४–१५.

२. प्रद्युम्नस्य तथा ज्ञेयौ चापवाणौ महाभुज ।
अनिरुद्धस्य विज्ञेयौ चर्मखड्गौ विचक्षणैः ।।
....
नन्दन्ति योगिनो यस्मात्तस्मात्तन्नन्दकं स्मृतम् ।।
वि० ध० ४७।१२–१३, १५–१८.

३. आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम् ।
बिभर्त्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान्हरिः ।।
श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्तेन समाश्रितम् ।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ।।
भूतानामिन्द्रियादिं च द्विधाहङ्कारमीश्वरः ।
बिभर्त्ति शङ्खरूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम् ।।
वि० पु० १।२२।६८–७०.

निर्मित है वह पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध) तथा पञ्चतत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) का मिश्रित रूप है—

चलत्स्वरूपमत्यन्तं जवेनान्तरितानिलम् ।
चक्रस्वरूपं च मनो धत्ते विष्णुकरे स्थितम् ।।
पञ्चरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः ।
सा भूतहेतुसंघाता भूतमाला च वै द्विज ।।[1]

समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ बाण के रूप में उनके हाथों में रहती हैं। अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान का प्रतीक वह शुद्ध एवं निर्मल खड्ग है जिसे वे हाथ में धारण करते हैं।[2] इस प्रकार निर्गुण तथा रूपरहित होकर भी प्राणियों के कल्याण के लिए अपनी माया के आश्रय से मायापूर्ण शरीर रखकर पुरुष, प्रकृति (प्रधान), बुद्धि, अहङ्कार (सत्त्व, रजस्, तमस्), पञ्चभूत, पञ्च तन्मात्रा, मन, दस इन्द्रियाँ, विद्या एवं अविद्या इन सबको आयुध एवं आभूषण के रूप में धारण करते हैं—

भूतानि च हृषीकेशे मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्वमेतत्समाश्रितम् ।।
अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितः ।
बिभर्त्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे प्राणिनां हरिः ।।[3]

श्रीमद्भागवत में विष्णु पुराण से कुछ भिन्न वर्णन हुआ है। विष्णु स्वयं अजन्मा है किन्तु जीव चैतन्य रूप आत्मज्योति को कौस्तुभ मणि के रूप में धारण करते हैं। आत्मज्योति की सर्वव्यापिनी प्रभा को श्रीवत्स रूप से वक्षःस्थल पर धारण किये रहते हैं। उनके गले में पड़ी हुई वनमाला सत्त्व रजस् आदि गुणों वाली माया की तथा पीताम्बर छन्द का प्रतीक है। स्कन्ध पर पड़ा हुआ यज्ञोपवीत 'अ उ म' इन तीन मात्रा वाले प्रणव (ॐ) का रूप है। कानों में पड़े हुए मकराकृति दोनों कुण्डल सांख्य तथा योग के प्रतीक हैं। लोकों को सुख देने वाले ब्रह्मलोक को वे मुकुट रूप में धारण करते हैं—

---

१. वि० पु० १।२२।७१–७२.

२. यानीन्द्रियाण्यशेषाणि बुद्धिकर्मात्मकानि वै ।
शररूपाण्यशेषाणि तान्निधत्ते जनार्दनः ।।
बिभर्त्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्मलम् ।
विद्यामयं तु तज्ज्ञानमविद्याकोशसंस्थितम् ।।
वि० पु० १।२२।७३–७४.

३. वि० पु० १।२२।७५–७६.

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।
तत्प्रभाव्यापिनो साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ।।
स्वमाया वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ।
वासश्छन्दोमयंपीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत् स्वरम् ।।
बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले ।
मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयङ्करम् ।।[1]

शेष की शय्या मूल प्रकृति है उसी पर वे शयन करते हैं । नाभि से निकला हुआ कमल धर्म, ज्ञानादियुक्त सत्त्व गुण का रूप है।[2] मन, इन्द्रिय शरीर सम्बन्धी शक्ति युक्त प्राणतत्त्व कौमोदकी गदा के रूप में, जल तत्त्व पाञ्चजन्य शङ्ख के रूप में, तेज तत्त्व सुदर्शन चक्र के रूप में उनके हाथों में विद्यमान रहता है । उनका खड्ग आकाश तत्त्व का, ढाल तमोमय अज्ञान का, शार्ङ्ग-धनुष काल का और तरकश कर्म का रूप है । इन्द्रियों को वे बाण के रूप में धारण करते हैं। क्रिया तथा शक्तियुक्त मन ही इनका रथ है । इस रथ का बाहरी भाग तन्मात्राएँ हैं––

ओजस्सहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ।
अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ।।
नमो निभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ।
कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ।।
इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थ क्रियात्मताम् ।।[3]

जिस कमल को विष्णु अपने हाथ में धारण करते हैं वह लीलाकमल ऐश्वर्य रूप धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, और वैराग्य का ही रूप है । धर्म और यश चँवर तथा व्यजन (पङ्खे) के रूप में और सम्पूर्ण वैकुण्ठ धाम छत्र के रूप में उनके ऊपर सुशोभित रहते हैं। तीनों वेदों का ही दूसरा नाम गरुड़ है जो उस अन्तर्यामी प्रभु को वहन करते हैं।[4] विष्णु की आत्मशक्ति का ही लक्ष्मी नाम है। वे प्रभु से कभी अलग नहीं

---

१. श्रीमद्भा० १२।११।१०–१२.
२. अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ।। श्रीमद्भा० १२।११।१३.
३. श्रीमद्भा० १२।११।१४–१६.
४. भगवान् भग शब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभवत् ।।
आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजाधामा कुतोभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ।।
श्रीमद्भा० १२।११।१८–१९.

होतीं। उनके पार्षदों के नायक विश्वविश्रुत तथा विष्वक्सेन, पाञ्चरात्र तथा आगम रूप हैं। नन्द, सुनन्दादि आठ द्वारपाल आठों सिद्धियाँ हैं। सूर्यमण्डल तथा अग्नि-मण्डल इनकी पूजा का स्थान है। इस प्रकार सभी कुछ उन्हीं के आश्रित हैं।[1]

शिव—महादेव पाँच मुख वाले कहे गये हैं। उनके नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान हैं। ये पाँचों मुख पाँच तत्त्वों के प्रतीक हैं। सद्योजात पृथ्वी का, वामदेव जल का, अघोर तेज का, तत्पुरुष वायु का तथा ईशान मुख जो सबसे ऊपर है आकाश तत्त्व का द्योतक है—

सद्योजातं मही प्रोक्ता वामदेवं तथा जलम्।
तेजस्त्वघोरं विख्यातं वायुस्तत्पुरुषंमतम्॥
ईशानं च तथाकाशमूर्ध्वस्थं पञ्चमं मुखम्।
विभागे नाथ वक्ष्यामि शम्भोर्वदनपञ्चकम्॥[2]

इन पाँचों मुखों का दिशाओं के अनुसार भी विभाजन हुआ है।[3] शिव का पूर्व की ओर का महादेव मुख भूमि का, दक्षिण की ओर का भैरव मुख तेज का, पश्चिम की ओर का नन्दि मुख वायु का, उत्तर की ओर का उमा मुख जल का तथा ऊपर की ओर का सदाशिव मुख आकाश तत्त्व का प्रतीक है—

महादेवमुखं भूमिस्तेजः स्याद्भैरवं मुखम्।
नन्दिवक्त्रं तथा वायुरौमेयं चाप उच्यते।
सदाशिवाख्यं विज्ञेयमाकाशं यदुनन्दन॥[4]

शिव की दस भुजाएँ दसों दिशाओं की प्रतीक हैं। उनका त्रिशूल सत्त्व, रजस, तमस्, गुणों का ही व्यक्त रूप है। शिव के द्वारा सिर पर धारण की जाने वाली चन्द्रकला ऐश्वर्य की, वासुकि नाग त्रिलोक को नाश करने वाले शम का, चित्रित व्याघ्र-चर्म विचित्र विशाल तृष्णा का तथा उनका वाहन वृष चार पैरों वाले धर्म का द्योतक है—

---

१. श्रीमद्भा० ११।११।७–२१.
२. वि० ध० ४८।२–३.
३. महादेव मुखं ज्ञेयं पूर्वं शम्भोर्महात्मनः।
....
दक्षिणं तु मुखं रौद्रं भैरवं तत्प्रकीर्तितम्।
पश्चिमं यन्मुखं तस्य नन्दिवक्त्रं तदुच्यते॥
उमावक्त्रं च विज्ञेयं तस्य देवस्य चोत्तरम्।
सदाशिवाख्यं विज्ञेयं पावनं तस्य पञ्चमम्॥ वि० ध० ४८।४–६.
४. वि० ध० ४८।७–८.

दिशो दश भुजास्तस्य विज्ञेयं वदनं प्रति
....

त्रिशूल दण्डमव्यक्त शूलेषु व्यक्ततां गतम् ।।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव विज्ञातव्यं नृपोत्तम ।
....

ऐश्वर्यं च कला चान्द्री मूर्ध्नि शम्भोः प्रकीर्तिता ।
त्रैलोक्यशमनः क्रोधो वासुकिर्नागराट्स्मृतः ।।
तृष्णा विशाला चित्रा च व्याघ्रचर्म प्रकीर्तितम् ।
वृषो हि भगवान्धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः ।।[१]

महादेव के हाथ की अक्षमाला काल (समय) की प्रतीक है । भैरव के हाथ का दण्ड मृत्यु का तथा मातुलुङ्ग इस संसार के बीज का द्योतक है । वह बीज उस परमाणु को बतलाता है जो संसार को स्थित रखता है । इसीलिए यह बीजपूर भी कहलाता है ।[२] देवी के हाथ में आदर्श तथा उत्पल रहता है जो क्रमशः निर्मल ज्ञान तथा वैराग्य का प्रत्यक्ष रूप है ।[३] संसार में जो सृष्टि का अभाव है उसे ही प्रकृति कहते हैं उसका वर्ण श्वेत ही कहा गया है इसी कारण महेश्वर का वर्ण भी श्वेत ही होता है—

जगतो यदभावस्तु प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ।
शुक्ला च प्रकृतिः सर्वा तेन शुक्लो महेश्वरः ।।[४]

नन्दी के हाथ में चर्म और शूल रहता है जो क्रमशः धर्म और व्याकरण के द्योतक हैं । शूलदण्ड अव्यक्त है वह त्रिशूल के रूप में स्पष्ट होता है । यही शूल शिव के हाथ में रहने पर सत्त्व रजस्, तमस् का प्रतीक हो जाता है ।[५] शिव का जो गौरीश्वर रूप है उसमें शिव एक मुख वाले होते हैं। उनके चार भुजाएँ रहती हैं । दाहिनी दो भुजाओं में अक्षमाला तथा त्रिशूल रहता है । जो समय तथा सत्त्व, रजस्, तमस् का द्योतक है । किन्तु उनका आधा शरीर स्त्री की भाँति रहता है । इसमें दर्पण इन्दीवर

---

१. वि० ध० ४८।९–१८.
२. महादेवकरे ज्ञेयावक्षमालाकमण्डलू
दण्डश्च मातुलुङ्गश्च करयोर्भैरवस्य तु ।
तैः पूर्णं बीजपूरत्वं भैरवस्य करे स्मृतम् ।। वि० ध० ४८।११–१३.
३. आदर्शं निर्मलं ज्ञानं वैराग्यं च तथोत्पलम् ।। वि० ध० ४८।१६.
४. वि० ध० ४८।१९.
५. वि० ध० ४८।१४–१५.

तथा सब स्त्रियों के आभूषण रहते हैं ।[१] यह रूप प्रकृति और पुरुष की अभिन्नता को प्रकट करता है—

अभेदभिन्ना प्रकृतिः पुरुषेण महाभुजा ॥[२]

यही शिव का ईशान रूप भी कहा जाता है जो मङ्गलदायी है ।[३] शिव की जटाएँ ब्रह्मा के समान ही पृथ्वी की सब औषधियों की प्रतीक हैं ।[४]

आदित्य—समस्त तेज का धाम होने के कारण सूर्य रक्त वर्ण के हैं—

रक्तवर्णः स भगवांस्तेजसां धामकारणात् ॥[५]

इनके रथ में जुते हुए सप्त अश्व गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती ये सात छन्द हैं । सम्पूर्ण जगत् को वे अपने हाथ में रश्मियों के रूप से धारण करते हैं । उनकी ध्वजा में अङ्कित हुआ सिंह साक्षात् धर्म का प्रतिरूप है । अपने चारों ओर जो यावियाङ्ग नाम की रशना धारण करते हैं वह इनके सम्पूर्ण आन्तरिक जगत् में व्याप्त रहने की द्योतक है । इनकी पत्नी राज्ञी भू की, निक्षुभा द्यौ की, छाया छाया की तथा सुवर्चला प्रभा का रूप है—

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ।
त्रिष्टुप् च जगती सप्त छन्दांस्यर्करथे हयाः ॥
रश्मिभिः करसंस्थैस्तु धारयत्यखिलं जगत् ।
सिंहोध्वजगतश्चास्य साक्षाद्धर्मः प्रकीर्तितः ॥
रशनास्थं जगत्सर्वं देवो धारयते तथा ।
राज्ञी भू निक्षुभा द्यौश्च छाया-छाया प्रकीर्तिता ॥
प्रभासुवर्चला प्रोक्तास्तस्य देवस्य पत्नयः ।[६]

वे असह्य तेज को धारण करने वाले हैं । उनके सभी अङ्ग उसी तेज से ढके हैं । सभी तेजों के धाम होने के कारण इन्हें सूर्य कहा जाता है ।

---

१. वामार्धे पार्वती कार्या वामयोर्यदुनन्दन ।
अक्षमाला त्रिशूलं च तस्मदक्षिणहस्तयो : ।
एकवक्त्रोभवेच्छम्भुर्वामार्धदयितातनुः ॥ वि० ध० ५५।२–३.
२. वि० ध० ५५।४.
३. वि० ध० ५५।६.
४. वि० ध० ४८।१६.
५. वि० ध० ६७।१५.
६. वि० ध० ६७।१२–१५.

काल एव स्वरूपेण कालो यमसमीपगः ।
तस्य पाशः करे घोरो यममार्गः सुदुष्करः ।।[१]

विष्णु की सङ्कर्षण मूर्ति संहारकारी है और यम को भी सङ्कर्षण की मूर्ति कहा गया है किन्तु दोनों के शरीर के वर्ण में अन्तर है। सङ्कर्षण श्वेत वर्ण के हैं और यम का वर्ण जल से भरे मेघ के समान अथवा नीलोत्पल दल के समान कहा गया है ।[२] इसका कारण यह है कि सङ्कर्षण जब संसार का संहार करते हैं तो प्रकृति अवस्था में विद्यमान हो जाते हैं और प्रकृति का वर्ण श्वेत होता है इसी कारण वे श्वेत कहे गये हैं––

प्रकृतौ याति संहृतं तु तदा जगत्
तेन प्रकृतिवर्णस्थः करोति जगतां क्षयम् ।।[३]

किन्तु यम के रूप में वे बार-बार संहार किया करते हैं और यम प्रकृति अवस्था को कभी नहीं प्राप्त कर पाते। इनका संहार सुख और दुःख से पूर्ण रहता है । यम का रूप विकार पूर्ण है इसी कारण यम का वर्ण काला कहा गया है ।[४]

वरुण––वरुण जल के स्वामी हैं अतः उनके शरीर का वर्ण भी जल के समान कहा गया है। जल का दो प्रकार का वर्ण होता है–१. श्वेत, २. श्याम । शुद्ध जल [illegible] वर्ण का होता है किन्तु जल का जो वैडूर्य के समान वर्ण कहा गया है उस पर इन्द्र के साथ शची [illegible]बिम्ब पड़ता रहता है ।[५] इसी प्रकार के जल से सम्बन्ध होने के शची के हाथ में धारण का वर्ण भी वैडूर्य मणि के समान कहा गया है––
है ।[७] क्योंकि लक्ष्मी ही आदि मा[illegible] है । इन्द्र का वाहन गज ऐरावत उनके

---

१. अपां सारमयत्वाद्धि शुक्लवर्णस्तु चन्द्रमाः ।।
....
हर्षप्रसादौ विज्ञेयौ कुमुदौ चन्द्रहस्तयोः ।। वि० ध० ६८।१३–१४.
२. अपां हि धामामृतमाहुराद्या
वासस्तु तच्चन्द्रमसः प्रदिष्टम् ।
सिंहध्वजं धर्ममुशन्ति राजन्
दिशस्तुरङ्गाः शशिनः प्रदिष्टाः ।। वि० ध० ६८।१५.
३. अत्यर्थरूपसंयुक्ताः पत्नयो नक्षत्रसंज्ञिताः ।। वि० ध० ६८।६.
४. नीलवस्त्रः सुवर्णाभः सर्वाभरणवांस्तथा ।
रुक्माभवर्णतां तस्य तेजसां धामकारणात् ।
यन्नील वसनं तस्य तदाकाशं प्रकीर्तितम् ।। वि० ध० ५०।३८.
५. वि० ध० ५०।६–७.
६. वि० ध० ५०।९–१०.
७. वासुदेवः स्मृतः शक्रस्तेन लक्ष्मीः शचीमता ।
तस्याः करे तु संतानं ज्ञेया सन्तानमञ्जरी ।। वि० ध० ५०।११.

श्वेत वर्ण का प्रतिनिधित्व वरुण के श्वेत वस्त्र 'श्वेताम्बरधरस्तथा' करते हैं ।[१] श्रीमद्भागवत प्रद्युम्न को कामदेव का अवतार मानता है ।[२] उन्हीं प्रद्युम्न का रूप मकरों के स्वामी वरुण को माना गया है। इनकी स्त्री गौरी रति का रूप है। गौरी के हाथ का उत्पल सौभाग्य तथा प्रेम का प्रतीक है ।[३] वरुण के हाथ का लाल कमल धर्म का, शङ्ख अर्थ का, पाश संसार को बाँधने का तथा रत्नपात्र उस पृथ्वी का प्रतीक है जो रत्नों से भरी है। उनके ऊपर लगा हुआ श्वेत छत्र यश को तथा मकर सुख को प्रकट करता है—

> वरुणस्य करे पद्मं विद्धि धर्मं महाभुज ।।
> शङ्खमर्थं विजानीहि पाशं संसारबन्धनम् ।
> रत्नपात्रं करे ज्ञेयं सर्वरत्नधरा धरा ।।
> यशश्चसुसितं छत्रं सौख्यं मकर एव च ।[४]

वरुण के रथ में जुते हुए सात हंस पृथ्वी के लवण, क्षीर, आज्य, उदक, दधि, सुरा तथा इक्षु (गन्ने का रस) इन सात सागरों के प्रतीक हैं—

> लवणक्षीर आज्योददधिमण्डसुरोदकाः ।
> तथैवेक्षुरसोदश्च स्वादूदश्च तथापरः ।।
> समुद्राः सप्त विख्याता लोके नरवरोत्तम ।
> सप्त[illegible] रथे तस्य वरुणस्य महात्मनः ।।[५] [illegible]०)

वरुण के [illegible] इण्डि[illegible]

[illegible] दाहिनी ओर मकरारूढ़ा गङ्गा तथा बायीं ओर कूर्मस्था यमुना रहती हैं। यमुना छाया की तथा गङ्गा सिद्धि का रूप है। उनके वाहन मकर तथा कच्छप वीर्य एवं काल के प्रतीक हैं ।[६]

धनद अथवा कुबेर—कुबेर नर पर आरूढ़ कमल के पत्र के समान श्वेत तथा स्वर्ण के समान पीले कहे गये हैं।[७] इनमें से श्वेत वर्ण उनके शरीर का है

---

१. वि० ध० ५२।१.
२. श्रीमद्भा० १०।५५।१–२.
३. प्रद्युम्नः कामदेवस्तु वरुणो यादसाम्पतिः ।
   तस्यभार्यारतिर्ज्ञेया गौरी यादवनन्दन ।।
   सौभाग्यमुत्पलं तस्याः करे सुरतगं विभो ।। वि० ध० ५२।१३–१४.
४. वि० ध० ५२।१४–१६.
५. वि० ध० ५२।१७–१८.
६. छाया तु यमुना ज्ञेया सिद्धिर्भागीरथी द्विज ।
   वीर्यकालौ विनिर्दिष्टौ तथा मकरकच्छपौ ।। वि० ध० ५२।१९.
७. कर्त्तव्यः पद्मपत्राभो धनदो नरवाहनः ।
   चामीकराभो धनदः सर्वाभरणभूषणः ।। वि० ध० ५३।१.

और पीला वर्ण उनके वस्त्र का है । स्वर्ण सभी घनों में सबसे उत्तम है इसी स्वर्ण के प्रतीक उनके वस्त्र हैं—

सुवर्णं नाम विख्यातंधनानामुत्तमं घनम् ।
तस्यानुग्रहतो धत्ते वासः कनकसन्निभम् ।।[१]

कुबेर के हाथ की शक्ति बल की, गदा दण्ड नीति की प्रतीक है । ऋद्धि स्वाभाविक रूप से संसार में जीवन यात्रा चलाने की द्योतक है । उनके हाथ का रत्नों का पात्र गुणों को स्पष्ट करता है ।[२] मनुष्य कुबेर का वाहन है जो उनकी राजसत्ता का प्रतीक है । शङ्ख और पद्म निधियों की प्रतीक है कुबेर की दो बड़ी दाढ़ें अनुग्रह एवं निग्रह को स्पष्ट करती हैं—

नरं राज्यं विजानीहि यत्रस्थश्च सदा विभुः ।
स्वरूपतस्तु विज्ञेयौ शङ्खपद्मौ तथा निधी ।।
. . . .
निग्रहानुग्रहे दंष्ट्रे तस्य तात महात्मनः ।।[३]

कुबेर के पैरों में ध्वजा रहती है जिस पर सिंह और शिविका के चिह्न अङ्कित रहते हैं [illegible] जो अर्थ तथा क्षमा के द्योतक हैं ।

अग्नि—अग्नि[illegible] के शरीर का वर्ण लाल है जो तेज को प्रकट करता है । तेज का वर्ण भी लाल कहा गया है—

रक्तं हि तेजसो रूपं रक्तवर्णं ततः स्मृतम् ।।[४]

अग्नि की अक्षमाला, त्रिशूल, जटाकलाप, तीन नेत्र सभी शिव के समान काल, सत्त्व, रजस्, तमस्, गुण तथा सभी प्रकार की औषधियों की द्योतक हैं ।[५] इनकी विशाल लपटें अत्युत्तम प्रकाश को स्पष्ट करती हैं । इन्हीं से आहुति को ग्रहण कर अग्निदेव देवों तक उनका भाग पहुँचाते हैं । इनकी चार दाढ़ें (वाक्-दण्ड, धिग्दण्ड, धनदण्ड तथा वध-दण्ड) चार प्रकार के दण्ड की परिचायक हैं । उनकी श्मश्रु (मूँछें दाढ़ी) पवित्र कुशों की तथा रथ में जुते हुए चार शुक चारों वेदों के रूप हैं—

---

१. वि० ध० ५३।८–९.
२. शक्तिरेव स्मृता शक्तिर्दण्डनीतिस्तथागदा ।।
लोकयात्रा च कथिता ऋद्धिर्ज्ञेया स्वभावतः ।
तत्करे रत्नपात्रं तु गुणाधारं प्रचक्षते ।। वि० ध० ५३।९–१०.
३. वि० ध० ५३।६.
४. वि० ध० ५६।४.
५. वि० ध० ५६।६–७.

ज्वालाकारं परंधाम हुतं तेन प्रतीच्छति ।
गृहीत्वा सर्वदेवेभ्यो ततो नयति शत्रुहन् ।।
वाग्दण्डमथधिग्दण्डं धनदण्डं तथैव च ।
चतुर्थं वधदण्डं च दंष्ट्रास्तस्य प्रकीर्तिताः ।।
श्मश्रु तस्य विनिर्दिष्टं दर्भाः परमपावनम् ।
ये वेदास्ते शुकास्तस्य रथयुक्ता महात्मनः ।।[1]

आहुति के समय अग्नि के इस रूप का ध्यान करने से सभी पाप दूर हो जाते हैं ।

सीरीज, १९२२
(शि० र०)

अपराजित पृच्छा — (अ० पृ०)

रूपमण्डन — सूत्रधार मण्डन (रूप० मं०)

चतुर्वर्ग चिन्तामणि — वा० २ भा० १ (हेमाद्रि) हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रथम, १९६१ (च० चिं०)

ईशानशिव गुरुदेव पद्धति — श्रीमद् ईशान गुरुदेव मिश्र (ईशान०)

शुक्र नीति — वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९५६ (शु० नी०)

नाट्यशास्त्र — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९२९ (ना०शा०)

याज्ञवल्क्य स्मृति — मिताक्षरा की व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९३० (याज्ञ० स्मृ०)

अर्थशास्त्र — कौटिल्य, प्रथम संस्करण, महाभारत कार्यालय, दिल्ली, १९९७ वि० (अर्थशा०)

हिन्दू प्रति[illegible] पृष्ठभूमि	[illegible]
प्रतिमा विज्ञान	[illegible] नाथ शुक्ल (प्र० वि०)
प्रतिमा लक्षण	डॉ० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल (प्र० ल०)
उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास	डॉ० नलिनाथ दत्त, प्रकाशन ब्यूरो, उ० प्र० सरकार, लखनऊ
वैदिक देवता	आचार्य बलदेव उपाध्याय (वै० दे०)
खजुराहो की देव प्रतिमाएँ	डॉ० रामाश्रय अवस्थी, प्रथम संस्करण, १९६७, आगरा (ख० दे० प्र०)
हिन्दुत्व	रामदास गौड़, सेवा उपवन काशी, प्रथम संस्करण, २००० वि०
पुराण तथा कौमुदी	रघुनाथ दत्त बन्धु, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, देहली प्रथम जुलाई १९६२ (पु० कौ०)
पुराण शास्त्र एवं जनकथन	मैक्समूलर कृत अनु० रमेश तिवारी तथा सुरेश तिवारी, इतिहास प्रकाशन संस्थान, वाराणसी-१ (पु० शा० ज०)

सहायक ग्रन्थ सूची तथा साङ्केतिक शब्दावली

ऋग्वेद भाग १ से ४	संस्कृति संस्थान, बरेली द्वितीय संस्करण, १९६२. (ऋ० वे०)
यजुर्वेद	संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण, १९६० (य० वे०)
अथर्ववेद भाग १	संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय संस्करण, १९६२ (अथ० वे०)
अथर्ववेद भाग २	संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय संस्करण, १९६२.
काठक संहिता	१९१० (का० सं०)
तैत्तिरीय संहिता	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (तै० सं०)
मैत्रायणी संहिता	१९२३ (मै० सं०)
ऐतरेय ब्राह्मण	सायण व्याख्या सहित, आनन्दाश्रम [illegible] संस्कृत सिरीज पूना, १९३० (ऐ० ब्रा०)
गोपथ ब्राह्मण [illegible]	[illegible] पूना (गो० ब्रा०)
जै[illegible] [illegible]मानं उपनिषद् ब्राह्मण	(जै० उ० ब्रा०)
शतपथ ब्राह्मण	अच्युत ग्रन्थमाला, काशी (शत० ब्रा०)
तैत्तिरीय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (तैत्ति० ब्रा०)
ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (ऐ० आ०)
तैत्तिरीय आरण्यक	(तै० आ०)
बृहदारण्यकोपनिषद्	सायण भाष्य सहित । गीता प्रेस, गोरखपुर तृ० संस्करण सं० २०१४ (बृ० उ०)
तैत्तिरीयोपनिषद्	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९११ (तै० उ०)
छांदोग्य उपनिषद्	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९१३ (छां० उ०)
मुण्डकोपनिषद्	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९१३ (मु० उ०) ।
नारद शिक्षा (शिक्षा संग्रह)	बनारस संस्कृत सिरीज, १८९३ (ना० शि०)
वाल्मीकीय रामायण	भाग १, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१७ (वा० रा०)

वाल्मीकीय रामायण	भाग २, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २०१७.
महाभारत खण्ड १ से, ६	चित्रशाला प्रेस, पूना, १९२९–१९३३ (महा०)
आपस्तम्ब धर्म सूत्र	(आ० ध० सू०)
पारस्कर गृह्यसूत्र	(पा० गृ० सू०)
विष्णु धर्म सूत्र	डॉ० जाली द्वारा सम्पादित (वि० ध० सू०)
सांख्यायनस्रोत सूत्र	(सां० स्रो० सू०)
गौतम धर्मसूत्र	(गौ० ध० सू०)
मनुस्स्मृति	पं० तुलसीराम द्वारा सम्पादित, दिल्ली (मनु० स्मृ०)
मनुमृति	कुल्लूकभट्ट की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस
श्रीमद्भागवत पुराण	प्रथम खण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर (श्रीमद्भा०)
श्रीमद्भागवत पुराण	द्वितीय खण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर
अग्निपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (अ० पु०)
गरुड पुराण	पण्डित पुस्तकालय, काशी, १९६३ (ग० पु०)
कूर्म पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (कूर्म पुराण)
देवी भागवत पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (दे० पु०)
मत्स्य पुराण	गुरुमण्डल सीरीज, कलकत्ता, १९५४ ई० (म० पु०)
मार्कण्डेय पुराण	वी० आई० सीरीज, कलकत्ता (मा० पु०)
पद्मपुराण	प्रथम खण्ड, प्र० संस्करण कलकत्ता सं० २०१३ (प० पु०)
पद्मपुराण	द्वितीय खण्ड, प्र० संस्करण कलकत्ता सं० २०१४
ब्रह्मपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (ब्र० पु०)
ब्रह्माण्ड पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (ब्रह्मा० पु०)
ब्रह्मवैवर्त पुराण	गुरुमण्डल सीरीज, कलकत्ता, १९५४ ई० (ब्र० वै० पु०)
लिङ्ग पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (लिं० पु०)
वाराह पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (वा० पु०)

वायु पुराण	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना (वायु पु०)
विष्णु पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर (वि० पु०)
विष्णु पुराण	गोपाल नारायण एण्ड कम्पनी, बम्बई (वि० पु०)
विष्णुधर्मोत्तर पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई (वि० ध०)
विष्णुधर्मोत्तर पुराण	भाग ३ वा० १ गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ नं० १३०, बड़ौदा, १९५८ ई० (वि० ध०)
विष्णुधर्मोत्तर पुराण	भाग ३ वा० १, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़ नं० १३७, बड़ौदा, १९६१ ई०
स्कन्द पुराण	वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १९०६ (स्क० पु०)
बृहत् संहिता	वराहमिहिर (बृ० सं०)
मेघदूत	कालिदास, डॉ० के० एन० काटजू, सीरीज कलकत्ता १९५१ (मेघ०)
रघुवंश	कालिदास (रघु०)
समराङ्गण सूत्रधार	भोज (स० सू०)
शिल्परत्न	श्रीकुमार, त्रिवेन्द्रम संस्कृत

---

१. वि० ध० ५६।७–९.

पुराण वर्म — कालूराम शास्त्री, प्रथम संस्करण

नित्याचार प्रदीप

प्रतिमा नाटक

चित्र लक्षण

हरिभक्ति विलास

अंशुमद्भेदागम — (अं० आ०)

सुप्रभेदागम — (सु० आ०)

पूर्वकारणागम — (पू० का०)

हिन्दू सभ्यता — डॉ० राधा कुमुद मुकर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५२ ई० (हि० स०)

अष्टादश पुराण व्यवस्था — काशीनाथ भट्ट, सरस्वती सुषमा सं० २०१५ वि० (अ० पु० व्य०)

...प्राद की चतुर्मुखी ...आ... — डॉ० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल (हि० प्रा०)

...ग... — डॉ० [illegible]

इतिहास-पुराण का अनुशीलन — रमाशंकर भट्टाचार्य, इण्डालोजिकल बुक हाउस, प्रथम १९६३ (इ० पु० अ०)

हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पटना, १९५३ (हर्ष०)

मथुरा कला — वासुदेव शरण अग्रवाल

मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन — वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रथम १९६१ (मार्क० पु०)

खजुराहो — यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसायटी

अमर कोश

कल्याण — गीता प्रेस वर्ष २४, हिन्दू संस्कृति अङ्क

कल्याण — गीता प्रेस वर्ष २८, संक्षिप्त नारद विष्णु पुराणाङ्क

... शण्डया)

Religion and Philosophy of the Veda—Keith. (रे० फि० दि० वे०)

Early History of the Vaisnava Sect—H. C. Roy Choudhury. (हि० वै० से०)

The Vedic Gods—Macdonell. (वै० गॉ०)

Origin and Development of Religion in Vedic Literature —P. S. Deshmukh. (ओ० डे० रे० वै० लि०)

Hindu Mythology—W. J. Wilkins. (हि० माइ०)

Hindu Mythology—Kennedy. (हि० माइ०)

Sacred Books of the East—Max Muller. (सै० बु० ई०)

Hindu Pantheon—Muir. (हि० पै०)

Religions of Ancient India—Louis Renou, 1953. (रे० ए० इण्डि०)

History of Dharmsastra—Vol. I, P. V. Kane. (ह० धि० शा०)

Bharhut—3rd Vol.—B. M. Barua, Calcutta, 1934-37. (भरहुत)

Vastu Sastra—Vol. II—Hindu Canons of Iconography and Painting—Dr. D. N. Shukla. (वा०शा०)

Studies in the Epics and Puranas—A. D. Pusalkar, Bombay, 1955. (स्ट० ए० पु०)

Religion in Art and Archaeology (Vaishnavism and Saivism) —J. N. Banerjee, University of Lucknow, 1968. (रे०आ०आर०)

A Guide to the Sculptures in the Indian Museum, Part II, —N. G. Majumdar, Delhi, 1937. (गा० स्क० इण्डि० म्यू०)

Indian Art—V. S. Agrawal, Varanasi, 1965. (इण्डि० आ०)

Yaksas—Part I & II—A. K. Coomarswamy. (यक्ष)

Vastu Sastra—Vol. I—Dr. D. N. Shukla. (वा०शा०)

Epic Mythology—Hopkins. (एपि० माइ०)

The Great Epic of India—Hopkins. (ग्रे०ए०इण्डि०)

Dynasties of the Kali Age—Pargiter. (डा०क०ए०)

Alberuni's India—Sachau. (अलबरूनीज़ इण्डिया)

Religion and Philosophy of the Veda—Keith. (रे० फि० दि० वे०)

Early History of the Vaisnava Sect—H. C. Roy Choudhury. (हि० वै० से०)

The Vedic Gods—Macdonell. (वै० गॉ०)

Origin and Development of Religion in Vedic Literature —P. S. Deshmukh. (ओ० डे० रे० वै० लि०)

Hindu Mythology—W. J. Wilkins. (हि० माइ०)

Hindu Mythology—Kennedy. (हि० माइ०)

Sacred Books of the East—Max Muller. (सै० बु० ई०)

Hindu Pantheon—Muir. (हि० पै०)

Religions of Ancient India—Louis Renou, 1953. (रे० ए० इण्डि०)

History of Dharmsastra—Vol. I, P. V. Kane. (ह०धि०शा०)

History of Dharmsastra—Vol. II, Pt. I & II,—P. V. Kane (हि०ध०शा०)

History of Dharmsastra—Vol. III—P. V. Kane. (हि०ध०शा०)

History of Dharmsastra—Vol. IV—P. V. Kane. (हि०ध०शा०)

History of Indian Literature—M. Winternitz. (हि०इण्डि०लि०)

A History f Sanskrit Literature—Macdonell. (हि०सं०लि०)

Vedic Index—A. A. Macdonell & A. B. Keith. (वै० इन०)

Early History of India—V. A. Smith. (अ० हि० इण्डि०)

The Ideals of Indian Art—E. B. Havell, London, 1911. (आ० इण्डि० आ०)

Hand-Book of Indian Art—E. B. Havell, London, 1920. (है० इण्डि० आ०)

Catalogue of Mathura Museum—V. S. Agrawala. (कै०म०म्यू०)

Tradition of Vishnudharmottara—S. Kramrisch. (वि०ध०)

History of Kannauj—Dr. R. S. Tripathi. (हि० क०)

The Chandellas of Jejakabhukti and their Times—Dr. R. K. Dikshit. (च० जेजा० टा०)

Ancient Indian Historical Traditions—Pargiter. (ए०इण्डि०हि०ट्रे०)

Cambridge History of India—E. S. Rapson. (कै०हि०इण्डि०)

Jain Stupa of Mathura—V. A. Smith. (जै०स्तू०मथु०)

Early History of the Vaisnava Faith & Movements in Bengal—S. K. Dey, Calcutta, 1942. (हि० वै० फे० मू० बं०)

Out-line of the Religious Literature of India—J. N. Farquhar, (आ० रे० लि० इण्डि०)

Tree and Serpant Worship in India—J. Fergusson. (ट्री० एण्ड स० व० इण्डि०)

Encyclopaedia of Religion and Ethics—Pargiter. (इन०रे०ए०)

Religion of India—Hopkins. (रे० इण्डि०)